भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन

डा० कृष्णदेव उपाध्याय

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

वाराणसी-१



प्रकाशक
ओम्प्रकाश बेरी
हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
मानमन्दिर, वाराणसी–१

संस्करण : प्रथम
अक्टूबर, १९६०

मूल्य : ३० रु०

मुद्रक
कृष्णचन्द्र बेरी
विद्यामन्दिर प्रेस (प्राइवेट) लि०
मानमन्दिर, वाराणसी–१

वक्तव्य

किसी देश की वास्तविक संस्कृति उस देश के लोक-साहित्य में उपलब्ध होती है। अतः इस संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिये लोक-साहित्य का संरक्षण और अध्ययन नितान्त आवश्यक है। विदेशों में लोक-साहित्य की रक्षा के लिये अनेक समिति और संस्थायें बनी हुई हैं। हमारे देश में विद्वानों का ध्यान इस आवश्यक विषय की ओर अभी थोड़े समय से ही आकर्षित हुआ है।

लोक-संस्कृति की रक्षा की दृष्टि को ध्यान में रख कर प्रस्तुत लेखक भोजपुरी लोक-साहित्य के संरक्षण के लिये अनेक वर्षों से सतत उद्योग कर रहा है। आज से लगभग बीस वर्ष पहले उसने भोजपुरी साहित्य के संग्रह का कार्य प्रारम्भ किया था। तब से यह कार्य अनवरत गति से होता चला आ रहा है। इन गीतों, गाथाओं और कथाओं के संग्रह में उसे जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है उनका थोड़ा वर्णन उसने अपनी 'भोजपुरी लोक-गीत' भाग २ नामक पुस्तक के वक्तव्य में किया है। एक-एक गीत के संग्रह में अनेक दिन लगाने पड़े हैं और लम्बी-लम्बी भोजपुरी गाथाओं के संग्रह में महीनों का बहुमूल्य समय खपाना पड़ा है। भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा अधिक होने के कारण गीत संग्रह का कार्य और भी कठिन है। दूसरे, गवैये सदा गाने के लिये तैयार भी नहीं रहते। वे तो किसी विशेष ऋतु के आने पर ही उस ऋतु का गाना गाते हैं। अतः ऋतु-सम्बन्धी गीतों को लिपिबद्ध करने में अनेक मासों की प्रतीक्षा करनी पड़ी है। इसके अतिरिक्त इन गीतों के संग्रह के लिये अनेक अस्पृश्य जातियों—जो बहुत गन्दे स्थानों में निवास करती हैं—के घरों में भी जाना पड़ा है। उनके गन्दे घरों में बैठकर गीतों का लिखना भी कुछ आसान काम नहीं है। अनेक कठिनाइयों के बीच कई हजार भोजपुरी गीतों, गाथाओं और कथाओं का संग्रह किया गया है। इस अशेष सामग्री को पाँच भागों में प्रकाशित करने की योजना भी इस लेखक ने बनाई है। भोजपुरी लोक-गीतों के दो भाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रकाशित हो चुके हैं, जिनकी चर्चा आगे के पृष्ठों में की गई है। भोजपुरी लोक-गाथाओं का संग्रह भी तैयार है जो शीघ्र ही प्रकाशित होगा। इन पुस्तकों के अतिरिक्त लेखक ने अनेक निबन्ध भोजपुरी लोक-गीतों के सम्बन्ध में लिखे हैं। हिन्दुस्तानी पत्रिका, प्रयाग में भोजपुरी लोक-गीतों में कवित्व नामक लेखक का एक लेख पहिले प्रकाशित हो चुका है। 'भोजपुरी लोक गीतों में सांस्कृतिक चित्रण' नामक निबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय की लोक-संस्कृति-समिति के द्वारा प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'ईस्टर्न एन्थ्रोपोलाजिस्ट' में प्रकाशित हुआ है। 'प्राच्य मानव वैज्ञानिक' में भी 'भोजपुरी मुहावरों में सामाजिक चित्रण' शीर्षक लेख छपा है।

यदि हम भोजपुरी लोक-साहित्य का विश्लेषण करें तो हमें उसमें प्रधानतया गीत, गाथायें और कथायें उपलब्ध होती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसा भी मौखिक साहित्य प्राप्त होता है जो इन उपर्युक्त तीन विभागों में अन्तर्भुक्त नहीं होता। इसी वर्गीकरण के आधार पर लेखक ने अपने निबन्ध (थीसिस) को चार खंडों में विभाजित किया है—

१. लोक-गीत।

२. लोक-गाथा।
३. लोक-कथा।
४. प्रकीर्ण-साहित्य।

भोजपुरी साहित्य में लोक-गीत प्रचुर संख्या में पाये जाते हैं। अतः इस निबन्ध में विशेष रूप से इनका विवेचन किया गया है।

इस निबन्ध में भोजपुरी साहित्य का परिचय देने के पहिले भोजपुरी भाषा का स्थूल परिचय उपस्थित किया गया है। इस अध्याय में भोजपुरी भाषा का क्षेत्र, विस्तार, इसकी विभिन्न बोलियाँ, उनका पारस्परिक पार्थक्य और स्थूल व्याकरण दिया गया है। दूसरे अध्याय में भोजपुरी साहित्य का विस्तृत विवेचन किया गया है। विस्मृति के गर्त में पड़े हुए अनेक सन्त कवियों का पता लगाकर तथा उनकी कृतियों के अध्ययन के बाद इस अध्याय को लिखा गया है। उदाहरण के लिये लक्ष्मी सखी को लीजिये जो अन्धकार के गर्त में पड़े हुये थे। इनके ग्रन्थ साधारणतया आजकल उपलब्ध नहीं होते। इनके एक पट्ट शिष्य की विशेष कृपा से ही इनके ग्रंथ इस लेखक को प्राप्त हो सके हैं। इसी प्रकार आधुनिक भोजपुरी कवियों का वृत्तान्त उपस्थित करने में भी विशेष परिश्रम करना पड़ा है। भोजपुरी के अधिकांश लोक-कवियों की कवितायें अभी प्रकाशित नहीं हुई हैं। उनकी कविताओं को खोज निकालना बड़ा ही कठिन कार्य है। भोजपुरी गद्य के नमूने को प्राचीन कागज-पत्रों से संग्रहीत किया गया है, जो अत्यन्त दुष्कर व्यापार था।

तीसरे अध्याय में लोक-गीतों की भारतीय परम्परा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। वैदिक काल से प्रारम्भ होकर किस प्रकार लोक-गीतों की धारा अक्षुण्ण गति से आज तक प्रवाहित हो रही है, यही इस अध्याय का मुख्य विषय है। कुछ लोक-गीतों की अन्तरंग परीक्षा कर उनके रचना-काल का निर्णय किया गया है। इन गीतों के काल-निर्णय का कोई बहिरंग साधन नहीं मिलता। अतः अन्तरंग प्रमाणों पर ही अवलम्बित होना पड़ा है।

चौथे अध्याय में लोक-गीतों के वर्गीकरण का जो सिद्धान्त लेखक ने प्रस्तुत किया है, वह भी बिल्कुल नया है। पं० रामनरेश त्रिपाठी तथा पारीक जी ने लोक-गीतों का जो वर्गीकरण किया है वह व्यवस्थित नहीं है। लोक-गीतों के प्रकार के अन्तर्गत विभिन्न लोक-गीतों की विशद व्याख्या की गई है।

पाँचवें अध्याय में भोजपुरी लोक संस्कृति एवं प्रथाओं के चित्र अंकित हैं। यह अध्याय भी अनुसन्धानपूर्ण है। लोक-गीतों में भारतीय समाज तथा संस्कृति का सर्वांगपूर्ण चित्रण एकत्र उपलब्ध नहीं होता। यह विषय हजारों गीतों में बिखरा पड़ा है। इन गीतों में वर्णित प्रथाओं की छानबीन कर तथा इस पूरी सामग्री को एकत्रित कर इस अध्याय को लिखा गया है। इसमें भोजपुरी लोगों की सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनैतिक दशा का वर्णन है। भोजपुरी लोक संस्कृति का ऐसा चित्रण अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। अतः अनेक दृष्टियों से यह अध्याय नितान्त मौलिक एवं खोजपूर्ण है। छठवें अध्याय में लोक-गीतों की साहित्यिक समीक्षा की गई है। इसमें लोक-गीतों में अलंकार-विधान, रस-परिपाक, कोमलता, सरलता, प्रकृति-वर्णन और प्रेमपद्धति का विवेचन है।

लोक-गीतों में छन्दों का विधान व्यवस्थित रूप से नहीं पाया जाता। फिर भी सोहर और बिरहा आदि गीतों में छन्दों की नियम-संबंधी व्यवस्था को दिखलाने का प्रयास किया है। इसके साथ ही छन्द-विधान और भाव-विधान में जो सामंजस्य है उसे भी दिखाया गया है। गीतों में तुक और लय की जो योजना की गई है तथा इनमें आधुनिक भावों—देशभक्ति, स्वतन्त्रता, आदि की व्यञ्जना किस सुन्दर रीति से हुई है इसका भी वर्णन है। इस प्रकार इस अध्याय में लोक गीतों की साहित्यिक समीक्षा का सांगोपांग वर्णन किया गया है। सातवें अध्याय में लोक-गीतों के गाने की विधि बतलाई गई है तथा इनके गाने के विशेषताओं की तुलना सामगायन से की गई है। दोनों की गान-विधि में स्तोभ प्रणाली विद्यमान है। इस विशेषता की यहाँ विशद आलोचना हुई है।

आठवें अध्याय में लोक-गीतों में समान भावधारा का उल्लेख है। किस प्रकार भारतीय संस्कृति का प्रवाह भोजपुरी, मैथिली, राजस्थानी, गुजराती और बँगला आदि भाषाओं के लोक-गीतों में अविरत गति से प्रवाहित हो रहा है इसका वर्णन, उदाहरण सहित, इस अध्याय में किया गया है।

दूसरे खंड में लोक-गाथाओं की चर्चा की गई है तथा उनकी उत्पत्ति, प्रकार और विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। नवें अध्याय में लोक-भाषाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न पाश्चात्य विद्वानों के क्या सिद्धान्त हैं, उनकी समीक्षा की गई है तथा अपना स्वतन्त्र मत भी प्रतिपादित किया गया है। दसवें अध्याय में लोक-गाथाओं के प्रकार की चर्चा कर ग्यारहवें अध्याय में इन गाथाओं की विशेषताओं का विवेचन किया गया है। इस विषय के सम्बन्ध में अनेक अंग्रेजी ग्रन्थों का अनुशीलन कर, उनमें वर्णित लोक-गाथाओं की विशेषताओं का भारतीय लोक-गाथाओं से सामंजस्य स्थापित किया गया है। लोक-गाथाओं के सम्बन्ध में यह विवेचन भी नूतन है।

इस निबन्ध के तीसरे खंड में लोक-कथाओं का वर्णन है। बारहवें अध्याय में लोक-कथाओं की भारतीय परम्परा का विवेचन किया गया है और किस प्रकार वैदिक आख्यानों से लेकर लोक-कथाओं का प्रवाह अप्रतिहत गति से आज तक चला आ रहा है यह बतलाया गया है। तेरहवें अध्याय में लोक-कथाओं का वर्गीकरण नये ढंग से किया गया है। डा० दिनेशचन्द्र सेन ने अपनी पुस्तक 'फोक लिटरेचर आफ बेंगाल' में लोक-कथाओं का जो विभाजन किया है उससे यह वर्गीकरण विलक्षण है। चौदहवें अध्याय में लोक-कथाओं की प्रधान विशेषताओं की समीक्षा की गई है। इसके साथ ही लोक-कथाओं की शैली पर भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है।

चौथे खंड में प्रकीर्ण साहित्य वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके अन्तर्गत भोजपुरी लोकोक्तियों, मुहावरों, पहेलियों और त्रिविध प्रकार की सूक्तियों का अध्ययन है। इनमें उल्लिखित सामाजिक प्रथाओं का चित्र भी खींचा गया है। सोलहवें तथा अन्तिम अध्याय में भोजपुरी साहित्य की उन्नति की विभिन्न दिशाओं का दिग्दर्शन कराकर निबन्ध समाप्त किया गया है।

यद्यपि इस निबन्ध में लोक-साहित्य के सभी अंगों की समीक्षा की गई है परन्तु लेखक ने लोक-गीतों को ही विशेष महत्ता दी है और उसी का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। इस वर्णन को प्रस्तुत करते समय लेखक की दृष्टि सदा तुलनात्मक रही है। जहाँ लेखक ने भोजपुरी बारहमासे का वर्णन किया है वहाँ राजस्थानी और बँगला बारमाशी से उसकी

तुलना की है। इसी प्रकार भोजपुरी सोहर और ऋतु गीतों की तुलना मैथिली और राजस्थानी गीतों से की गई है तथा इनमें निहित भावों की विशेषता भी बतलाई गई हैं। भोजपुरी साहित्य की चर्चा करते समय लेखक ने ऐतिहासिक पद्धति को अपनाया है और क्रम के अनुसार सारा विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

निबन्ध के आरम्भ में संक्षिप्त शब्दों की तालिका दी गई है। पुस्तक को उपयोगी बनाने की दृष्टि से विषय-सूची विस्तृत रूप में प्रस्तुत की गई है। निबन्ध के परिशिष्ट (क) में सहायक सामग्री दी गई है। इसमें पहले लोक-गीत संग्रह सम्बन्धी पुस्तकों की सूची दी गई है। बाद में अन्य ग्रन्थों की। अकारादि क्रम का पालन लेखक ने जान-बूझ कर नहीं किया है। इस सूची में पहले भारतीय भाषाओं में निबद्ध ग्रन्थ तथा पत्रिकायें दी गई हैं, बाद में अंग्रेजी ग्रन्थों की तालिका है। लोक-गीतों की स्वरलिपि अलग से परिशिष्ट (ख) के रूप में प्रस्तुत की गई है। इस स्वर लिपि को प्रयाग संगीत समिति के भूतपूर्व डाइरेक्टर तथा प्रयाग विश्वविद्यालय के भूतपूर्व संगीत-अध्यापक श्री महेश नारायण सक्सेना ने लेखक के लिए तैयार किया है। यह स्वरलिपि पेशेवाले गवैयों को सामने गवा कर तैयार की गई है। गवैयों ने गीतों को जिस राग और स्वर में गाया है उसकी स्वर-लिपि उसी रूप में तैयार की गई है। अतः इसकी शुद्धता एवं वैज्ञानिकता में सन्देह का स्थान नहीं है। जहाँ तक मुझे ज्ञात है हिन्दी में लोक-गीतों की स्वर-लिपि प्रस्तुत करने का यह प्रथम एवं मौलिक प्रयास है। निबन्ध के अन्त (परिशिष्ट) में भोजपुरी भाषा के विस्तार का मानचित्र दिया गया है। यह मानचित्र सर्वे विभाग के विस्तृत एवं शुद्ध मानचित्रों की सहायता से तैयार किया गया है।

अब अन्त में लेखक उन महानुभावों को धन्यवाद देना अपना कर्तव्य समझता है, जिनकी प्रेरणा एवं सहायता से यह कार्य पूरा हो सका है। सर्वप्रथम लेखक अपने पूजनीय गुरुवर डा० दीनदयालु जी गुप्त एम० ए०, डो० लिट्, अध्यक्ष : हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय का अभिवादन करता है, जिनके चरणों में बैठ कर उसे यह निबन्ध लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यदि डा० गुप्त की अटूट कृपा लेखक पर न होती तो सम्भवतः यह कार्य अपूर्ण ही रह जाता। महामहोपध्याय डा० गोपीनाथ कविराज एवं डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी ने इस निबन्ध की विस्तृत सूची (सिनाप्सिस) देखकर अनेक सुझाव उपस्थित किये थे। अतः लेखक इन दोनों सज्जनों का हृदय से आभारी है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय काशी और डा० उदयनारायण तिवारी एम० ए०, डी० लिट् प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय ने इस निबन्ध के कई अध्यायों को पढ़कर बहुमूल्य परामर्श प्रदान किया है। अतः लेखक इन दोनों सज्जनों को हृदय से धन्यवाद देता है। श्री महेशनारायण सक्सेना का भी लेखक आभार मानता है जिन्होंने उसके लिए लोक-गीतों की स्वर-लिपि तैयार की है। पितृकल्प ज्येष्ठ भ्राता प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, रीडर, संस्कृत तथा पाली-विभाग, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी तथा आदरणीय अग्रज डा० वासुदेव उपाध्याय एम० ए०, पी० एच-डी०, रीडर, प्राचीन भारतीय इतिहास तथा संस्कृति-विभाग पटना विश्वविद्यालय, पटना का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे सदा प्रेरित तथा प्रोत्साहित किया है। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान्

रामबालक शास्त्री का मैं विशेष रूप से अनुग्रहीत हूँ जिनकी असीम कृपा तथा अथक प्रयास के द्वारा ही यह पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। चिरंजीव श्री हरिशंकर उपाध्याय एम० ए० मेरे आशीर्वाद के भाजन हैं जिनकी प्रेरणा तथा सहायता मेरे जीवन का बल और सम्बल है।

भारतीय लोक-संस्कृति शोधसंस्थान कार्यालय
६१ लूकरगंज, इलाहाबाद
रामनवमी, सं० २०१७ वि०

कृष्णदेव उपाध्याय

विस्तृत विषय सूची

दिव्य का प्रयोग, विभिन्न व्यक्तियों द्वारा दिव्य प्रयोग, दिव्य लेने का स्थान, दिव्य लेने का समय, दिव्य लेने की विधि, दिव्य के भेद, गीतों में दिव्य के भेद ।

पारिवारिक जीवन-चित्र

(क) रुचिकर संबंध (१) माता और पुत्र, (२) माता और पुत्री, (३) भाई और बहन, (४) पति और पत्नी ।
(ख) रुचिकर (५) सास और पतोहू, (६) ननद और भावज, (७) देवर और भावज, (८) ससुर और भवहि, (९) ससुर और पतोहू, (१०) सौत और सौत, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु विवाह, पर्दा प्रथा, पत्र-लेखन, भोजन, सत्तू, पूड़ी आदि, मांस, आभूषण, वस्त्र, प्रसाधन, मनोरंजन, भोजपुरी लोगों का स्वभाव ।

ख. धार्मिक जीवन की झलक और धार्मिक विश्वास

शिव, सूर्य, कृष्ण, शीतला माता, तुलसी, गंगाजी, दुर्गा, भगवान् के रूप में राम, व्रतों का विधान । कर्मवाद ।

ग. जीवन के आर्थिक तथा राजनैतिक पक्ष की झाँकी

भौगोलिक वर्णन

वस्तु वर्णन, स्थान वर्णन, नदी, जाति, आल्हखंड में भूगोल ।

अध्याय ६ : (पृष्ठ ३२३-३६८)

वर्णन की स्वाभाविकता, अलंकार विधान, रस परिपाक, शृंगार, हास्य, करुण, शान्त, गीतों में कोमलता एवं सरलता, लोक गीतों में छन्द विधान, लोक गीतों में भाव-व्यंजना और छन्द-विधान का सामंजस्य, लोक गीतों में तुक और लय, लोक गीतों में प्रेम-पद्धति, लोक गीतों में प्रकृति-वर्णन, प्रकृति-वर्णन की पद्धति, वृक्ष, पुष्प, पक्षी, वायु, वर्षा, आधुनिक लोक गीतों के विषय तथा उनमें भाव-व्यंजना, चर्खे की चर्चा, स्वदेशी के व्यवहार पर जोर, देश-प्रेम की भावना ।

अध्याय १४ : (पृष्ठ ४१९-४२६)

क. भोजपुरी लोक-कथाओं की विशेषतायें

अश्लीलता का अभाव, मूल प्रवृत्तियों से संबंध, मंगल कामना की भावना संयोग में अन्त, अलौकिकता की प्रधानता उत्सुकता की प्रबल भावना, वर्णन की स्वाभाविकता, प्राचीन लोक कथाओं और आधुनिक कहानियों में अन्तर।

ख. लोक कथाओं की शैली

चम्पू शैली का ग्रहण, अतिरंजित शैली का अभाव, सीधी, सरल भाषा और प्रवाह युक्त शैली वैदिक शैली से तुलना।

खंड ४ (प्रकीर्ण साहित्य)

अध्याय १५ : (पृष्ठ ४२९-४४६)

क. लोकोक्तियाँ —महत्व, लोकोक्ति संग्रह, वर्ण्य विषय, कहावतों में भोजपुरियों की स्वभावगत विशेषताएँ, विभिन्न जातियों की विशेषताएँ, देश या स्थान की विशेषता, ऐतिहासिक वृत्त, व्यंग्य, संस्कृति।

ख. मुहावरे मुहावरा का अर्थ, मुहावरों की उत्पत्ति, मुहावरों का महत्त्व, भोजपुरी मुहावरे, संस्कार और प्रथाओं का उल्लेख, ऐतिहासिक, पौराणिक, जातियों की विशेषताएँ, व्यंग्योक्ति, शकुन विचार, शैली, खेनी।

ग. पहेलियाँ।

घ. प्रकीर्ण सूक्तियाँ घाघ का जीवन वृत्त, वर्ण्य विषय, वायु परीक्षा, वर्षा विज्ञान, जोताई, बोआई एवं निराई, बैल की पहचान।

अध्याय १६ : (पृष्ठ ४४७-४४९)

उपसंहार

लोक गीतों का संग्रह तथा प्रकाशन, भोजपुरी लोक गीतों के रेकर्ड तैयार करना, रेडियो द्वारा गीतों का प्रचार।

परिशिष्ट (क) सहायक सामग्री
परिशिष्ट (ख) नवीन सामग्री।

संकेत शब्द सूची

संक्षिप्त रूप	पूर्ण रूप
आ० गृ० सू०	—आश्वलायन गृह्य सूत्र
इ० ए०	—इंडियन एन्टीक्वेरी
इ० एस्का० पा० बै०	—इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड
ऋ० वे०	—ऋग्वेद
ए० इ०	—एपिग्राफिका इंडिया
ऐ० ब्रा०	—ऐतरेय ब्राह्मण
कु० सं०	—कुमार संभव
ग्राम गीत (त्रिपाठी)	—कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत)
छा० उ०	—छान्दोग्य उपनिषद्
ज० ए० सो० बं०	—जरनल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
जे० आर० ए० एस०	—जरनल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी
ता० ब्रा०	—ताण्ड्य ब्राह्मण
दु० शं० सि०	—दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह
ना० प्र० प०	—नागरी प्रचारिणी पत्रिका
ना० स्मृ०	—नारद स्मृति
नै० च०	—नैषधीय चरित
पा० गृ० सू०	—पारस्कर गृह्य सूत्र
पु० नि०	—पुरातत्व निबन्धावली
भो० ग्रा० गी० (आर्चर)	—भोजपुरी ग्राम गीत
भो० ग्रा० गी० (उपाध्याय)	—भोजपुरी ग्राम गीत
भो० लो० गीत (दु० प्र० सि०)	—भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस
म० भा०	—महाभारत
मै० लो० गी०	—मैथिली लोक गीत
मै० सं०	—मैत्रायणी संहिता
या० स्मृ०	—याज्ञवल्क्य स्मृति

रा० लो० गी०	–राजस्थानी लोक गीत
लि० स० इ०	–लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया
लोक गीत	–भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस
व्य० प्र०	–व्यवहार प्रकाश
वि० ध० सू०	–विष्णु धर्म सूत्र
श० प० ब्रा०	–शतपथ ब्राह्मण
सेविन ग्रामर्स या सेविन ग्रामर्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज	–सेविन ग्रामर्स आफ दि डाइलेक्ट्स एण्ड सब-डाइलेक्ट्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज
सं० सा० इ०	–संस्कृत साहित्य का इतिहास
ह० ग्रा० सा०	–हमारा ग्राम साहित्य
हि० वि० वि०	–हिन्दू विवाह का विकास
हि० सं० लि०	–हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर

———

नवीन सामग्री

यह निबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय में पी. एच. डी. की थीसिस के रूप में सन् १९५० ई० में प्रस्तुत किया गया था। तब से लेकर आज तक इन दस वर्षों के बीच में भोजपुरी लोक साहित्य में संबंधित अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। भोजपुरी के अनेक उदीयमान कवियों की कविताएँ भी इधर प्रकाश में आई हैं तथा उनके संग्रह उपलब्ध होते हैं। अतः इन नवीन पुस्तकों तथा युवक कवियों की रचनाओं का संक्षिप्त वर्णन करना यहाँ अनुचित न होगा।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम. ए, पी. एच. डी. ने इधर 'भोजपुरी और उसका साहित्य' नामक पुस्तक की रचना की है जो 'भारतीय साहित्य परिचय ग्रन्थमाला' में दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में डा० उपाध्याय ने भोजपुरी लोक गीत, लोक नाट्य, लोक-संगीत, लोक कला आदि विषयों का प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत किया है। भोजपुरी लोक साहित्य तथा लोक संस्कृति का साधारण परिचय प्राप्त करने के लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। उपाध्याय जी की दूसरी रचना 'लोक साहित्य की भूमिका' है, जो साहित्य भवन लि० प्रयाग से प्रकाशित हुई है। इसमें लेखक ने लोक साहित्य के सामान्य सिद्धान्तों की समीक्षात्मक मीमांसा की है। लोक साहित्य के मूल-भूत तत्वों तथा सिद्धान्तों की तुलनात्मक समीक्षा प्रस्तुत करने वाली यह सर्व प्रथम तथा मौलिक पुस्तक है। डा० उपाध्याय का तीसरा ग्रन्थ 'भोजपुरी लोक-कथाएँ' है। भोजपुरी लोक-गीतों के कई संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित लोक-कथाओं का यह सर्व-प्रथम संग्रह है। ये कथाएँ गाँवों के वृद्ध पुरुषों तथा बूढ़ी दादियों के मुँह से सुनकर संकलित की गई हैं। उपाध्याय जी ने 'भोजपुरी लोक-संस्कृति की रूपरेखा' नामक एक प्रकाण्ड ग्रन्थ की रचना भी की है जिसका कुछ भाग काशी विद्यापीठ के समाज-विज्ञान परिषद् की मुख्य पत्रिका 'समाज' (वर्ष ४ अंक ३, अक्टूबर १९५८ ई०) में प्रकाशित हो चुका है।

डा० उदयनारायण तिवारी एम. ए., डि. लिट., प्राध्यापक, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग ने 'भोजपुरी भाषा और साहित्य-नामक ग्रन्थ लिखा है जो राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, (बिहार) से प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में विद्वान् लेखक ने भोजपुरी भाषा का बड़ा ही गंभीर, वैज्ञानिक तथा शोधपूर्ण अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही भोजपुरी में कुछ कवियों का भी वर्णन किया गया है। भोजपुरी भाषा के अध्ययन के लिए यह पुस्तक अत्यन्त आवश्यक है।

डा० सत्यव्रत सिनहा एम. ए., पी. एच. डी, असिस्टेण्ड सेक्रेटरी, हिन्दुस्तानी एकेडमी प्रयाग ने 'भोजपुरी लोक गाथा' की रचना की है। यह निबन्ध प्रयाग विश्व-विद्यालय में डि. फिल. की थीसिस के रूप में प्रस्तुत किया गया था। लेखक ने भोजपुरी की लोक-गाथाओं का संकलन तथा अध्ययन बड़े परिश्रम से किया है जिससे उनकी विद्वता का पता चलता है।

भोजपुरी के पुराने साहित्य सेवी तथा खाँटी विद्वान् श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह की पुस्तक 'भोजपुरी के कवि और काव्य' राष्ट्रभाषा परिषद् पटना (बिहार) से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक को लेखक ने बड़े परिश्रम, शोध तथा अध्ययन के पश्चात् लिखा है। इस ग्रन्थ में ऐसे अनेक कवियों का वर्णन प्रथम बार किया गया है जिन्हें पहिले कोई जानता ही न था। इस प्रकार अनेक अज्ञात कवियों के उद्धार करने का श्रेय दुर्गाशंकर जी को प्राप्त है।

श्री सत्यदेव ओझा एम. ए. प्राध्यापक कोआपरेटिव कालेज, जमशेदपुर (बिहार) ने भोजपुरी कहावतों का बहुत बड़ा संकलन किया है। ये भोजपुरी लोकोक्तियों के ऊपर शोधकार्य कर रहे हैं। जिसे वे अपनी पी. एच. डी. की थीसिस के रूप में बिहार विश्वविद्यालय में शीघ्र ही प्रस्तुत करने वाले हैं। 'भोजपुरी लोक साहित्य का सामाजिक अध्ययन' शीर्षक थीसिस पर श्री इन्द्रदेव जी को लखनऊ विश्वविद्यालय से डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त हो चुकी है। इसी प्रकार से अनेक शोधी छात्र प्रयाग विश्वविद्यालय में भोजपुरी साहित्य के विभिन्न अंगों पर शोधकार्य कर रहे हैं।

भोजपुरी के कवि-गण

इधर भोजपुरी के अनेक उदोयमान कवियों की रचनायें प्रकाश में आई हैं। पं० रामनाथ प्रणयी भोजपुरी के बड़े ही सुन्दर तथा सरस कवि हैं, जिनकी कविता में भोजपुरी प्रकृति का चित्रण आलम्बन रूप से उपलब्ध होता है। 'प्रणयी' ने प्रणय के भी गीत गाये हैं। परन्तु इनकी कविता की प्रधान विशेषता है ग्रामीण प्रकृति का स्वाभाविक चित्रण। इनकी कविताओं का संकलन 'सितार' और 'कोइलिया' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अन्य अनेक काव्य संबंधी पुस्तकें लिखी हैं। पूस मास का कितना सुन्दर वर्णन इन्होंने निम्नांकित पंक्तियों में किया है—

आइल पूस महीना अगहन लौट गइल मुसकाय।
थर थर काँपत हाथ पैर, जाड़ा पाला के पहरा।
निकल चलल घर से बनिहारिन ले हँसुआ भिनसहरा॥
धरत धान के थान अंगुरिया, ठिठुरि-ठिठुरि बल खात।
आइल पूस महीना अगहन बीत गइल मुसकात।
ढोवत बोझा हिलत बालि के बाज रहल पैजनियाँ।
खेतन के लक्षिमी खेतन से उठि चलली खरिहनियाँ।
पलक गिरत उड़ि जात फूस दिन, हिम पहाड़ बड़ रात।
आइल पूस महीना, अगहन लौट गइल मुसकात।

लहस उठल जव, गहुँम, बूँट रे लहसल मटर मसुरिया।
बाज रहल तीसी तारी पर, छबि के मीठ बँसुरिया।
पहिरि खेंसारी के सारी साँवरि-गोरिया अँठिलात।
आइल पूस महीना अगहन लौट गइल मुसकात।

डा० रामविचार पाण्डेय की कविताओं के तीन संकलन इधर प्रकाशित हुए हैं, जिनमें 'बिनिया बिछिया' प्रसिद्ध है। पांण्डेय जी को रचनाओं में भावों की सुन्दर कल्पना पाई जाती है। कविता पढ़ने का इनका ढंग बड़ा ही सुन्दर तथा रमणीय है जिसे सुनकर

श्रोतागण आकृष्ट हो जाते हैं। इन्होंने 'कुँवर सिंह' के संबंध में एक नाटक की भी रचना की है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

भोजपुरी के उदीयमान कवियों में श्री मोती बी. ए. बहुत प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय हैं। इनका जन्म १ अगस्त सन् १९१९ ई० में देवरिया जिले के बरेजी नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने एम. ए. तक शिक्षा प्राप्त की है तथा आजकल श्रीकृष्ण इन्टर कालेज बरहज, में इतिहास तथा अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। श्री मोती बी. ए. का कविता पढ़ने का ढंग बड़ा ही मधुर है। अनेक फिल्मों में इन्होंने गीतकार का कार्य किया है। 'नदिया के पार' के सम्पूर्ण गीतों की रचना इन्होंने की है। इनकी कविताओं का संग्रह 'महुवा बारी' के नाम से इलाहाबाद से अभी हाल में ही प्रकाशित हुआ है। प्रणयी जी की भाँति ग्रामीण प्रकृति और जीवन का चित्रण इन्होंने बड़ी मार्मिकता से किया है। महुआ का यह वर्णन कितना सुन्दर है—

"अइसन नसा झोंकलसि कि गदाये लगली पुलुई
पोरे-पोरे मधु से भराए लागलि कुरुई।
महुआ अइसन ले रँगरइले,
जरी पुलुई ले कोंचइले,
लागल डाढ़ी-डाढ़ी डोलिया कहार, सजनी।
असों आइल महुवा बारी में, बहार सजनी॥

ग्रामीण जीवन का यह चित्रण देखिये—

"सइयाँ खातिर बारी धनियाँ महुअरि पकावेली।
केहू बनिहारे खातिर तावा पर ततावेली॥
महुआ बैल प्रेम से खावें,
गाड़ी खींचें, जोत बनावें।"
ई गरीबवन के किसमिस, अनार सजनी।
असों आइल महुवा बारी में बहार सजनी॥

पं० चन्द्रशेखर मिश्र का भोजपुरी के तरुण कवियों में एक विशिष्ट स्थान है। आपका जन्म मिर्जापुर जिले में हुआ है। आजकल आप काशी के 'सन्मार्ग' नामक दैनिक समाचार पत्र के साहित्यिक सम्पादक हैं। मिश्र जी ने गाँवों में घूम-घूमकर भोजपुरी के कई हजार लोक-गीतों का संकलन किया है जो शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। मिश्र जी की कविताओं में सरसता तथा मधुरता विशेष रूप से पाई जाती है। शब्दों का चयन भी इनका बड़ा सुन्दर है। आशा है आप अपनी सरस भोजपुरी कविताओं का संकलन प्रकाशित कर अपनी मातृभाषा के भण्डार को भरने की कृपा करेंगे।

श्री राहगीर जी देवरिया जिले के निवासी हैं तथा आजकल नागरी प्रचारिणी सभा काशी में कार्य कर रहे हैं। राहगीर जी के व्यक्तित्व से सरसता टपकती है। इनकी कविता में मधुरता तथा कोमलता उपलब्ध होती है। कवि-सम्मेलननों में राहगीर जी अपने कविता-पाठ से समा बाँध देते हैं। इनकी कविताओं का संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। इन्होंने 'भोजपुरी के गीत और गीतकार' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें भोजपुरी के अनेक युवक कवियों की कविताएँ संकलित हैं।

श्री प्रभुनाथ मिश्र बलिया जिले के निवासी हैं। इन्होंने भोजपुरी के कवियों में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। मिश्र जी की कविताओं का संग्रह 'हरियर-हरियर खेत में' बलिया से प्रकाशित हुआ है, जिसमें ग्रामीण प्रकृति का मनोरम चित्रण उपलब्ध होता है। इन्होंने भोजपुरी प्रकृति को बहुत नजदीक से देखा है तथा उसका सूक्ष्म वर्णन उपस्थित किया है। प्रभुनाथ जी से भोजपुरी साहित्य को बड़ी आशा है। आजकल आपन 'बिहान' नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन कर रहे हैं, जिसमें भोजपुरी की सुन्दर कविताएँ तथा कहानियाँ प्रकाशित होती हैं।

श्री जगदीश ओझा 'सुन्दर' की कविताएँ वास्तव में सुन्दर होती हैं। इनकी कविता में शोषित, पीड़ित मानवता के करुण क्रन्दन ने स्थान प्राप्त किया है। 'मजदूर की गली' आपकी सुप्रसिद्ध कविता है जिसमें निम्नस्तर के निर्धन लोगों की दयनीय दशा का चित्रण किया गया है। ओझा जी की पदशय्या बड़ी मनोरम होती है। ये बलिया जिले के निवासी हैं तथा बलिया की नगरपालिका में शिक्षा-विभाग के अधिकारी हैं।

भोजपुरी के गद्य-लेखकों में श्री मुक्तेश्वर तिवारी 'बेसुध' का विशिष्ट स्थान है। ये बलिया जिले के निवासी हैं तथा मर्चेन्टस इन्टर कालेज चित बड़ागाँव (बलिया) में अध्यापन का कार्य करते हैं। इधर कई वर्षों से ये 'चतुरी चाचा' के नाम से चटपटी चिट्ठियाँ लिख रहे हैं जो वाराणसी के दैनिक 'आज' में प्रकाशित हो रही हैं। इन चिट्ठियों के दो संग्रह 'चतुरी चाचा की चटपटी चिट्ठियाँ' के नाम से प्रयाग से मुद्रित हुए हैं। इनकी चिट्ठियों का भोजपुरी साहित्य में वही स्थान हैं जो बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित शिवशंभु शर्मा के चिट्ठों' का हिन्दी में। चतुरी चाचा ने अपनी चिट्ठियों में ठेठ तथा खाँटी भोजपुरी का प्रयोग किया है। इनके समान टकसाली भोजपुरी-गद्य का लेखक दूसरा कोई नहीं है। ग्रामीण जीवन का जो स्वाभाविक चित्रण इनकी चिट्ठियों में पाया जाता है वैसा अन्यन्त्र उपलब्ध नहीं होता है। इन्होंने भोजपुरी लोकोक्तियों तथा मुहावरों का प्रचुर प्रयोग अपने लेखों में किया है। इनकी चिट्ठियों के शीर्षक से ही विषय का अन्दाजा लगाया जा सकता है जैसे—रूख ना बिरीछ तहाँ रेड़ परधान, कहावे के रानी चोरावे के चमरख, कई गिहिथनी माठा पातर, चार कवर भीतर तब देवता पीतर, आदि। चतुरी चाचा की चिट्ठियों में वर्तमान शासन की कटु आलोचना तथा सामाजिक बुराइयों की खिल्ली उड़ाई गई है। जैसे—

"चुप्पा हाथ उठाऊ नेता लोग जबान के तकलीफ दीहल ना चाहसु। मीटिंग में लहठि के खइनी मलत रही लोग। जब केवनों बात खातिर हाथ उठाइके वोट लियाये लागेला तब ओह लोग के नींदि टूटेला" आदि।

श्री रामेश्वर सिंह 'काश्यप' भोजपुरी एक अच्छे कवि हैं। ये पटना (बिहार) के बी. एन., कालेज में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में ये कवि-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं। इनकी कविता में ओजगुण की प्रधानता पाई जाती है। इन्होंने वीर रस का पल्ला पकड़ कर अच्छी रचना की है। परन्तु इनकी कीर्ति का प्रधान कारण इनके द्वारा रचित 'लोहासिंह' नामक नाटक है। इस नाटक में विद्वान् लेखक ने लोहासिंह के रूप में पलटन से लौटे हुए एक भोजपुरी सिपाही का चित्रण किया है। काश्यप जी एक योग्य नाटककार ही नहीं हैं प्रत्युत एक सफल अभिनेता भी हैं।

ये स्वयं इस नाटक का अभिनय करते हैं। लोहासिंह आल इण्डिया रेडियो-पटना, लखनऊ तथा इलाहाबाद से अभिनीत हो चुका है। अखिल भारतीय नाटक प्रतियोगिता में राष्ट्रपति ने इस नाटक को प्रथम पुरस्कार प्रदान कर पुरस्कृत किया था। काश्यप जी ने इस नाटक की रचना कर शिष्ट जनता का ध्यान भोजपुरी की ओर आकर्षित किया है।

बलिया (उत्तर प्रदेश) के कांग्रेसी लीडर तथा कवि श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने बाबू कुँवर सिंह के संबंध में एक वीर काव्य की रचना की है जिसमें सन् १८५७ ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के इस योद्धा तथा नेता की वीर गाथा वीर रस में गाई गई है। प्रसिद्धनारायण जी के इस काव्य को भोजपुरी प्रदेश में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। इन्होंने भोजपुरी भाषा को वीर रस के साँचे में ढालकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह भाषा वीर रस के भावों को भी अभिव्यक्त करने में पूर्णतया सशक्त है। काशी के श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद' ने इधर 'भोजपुरी लोक-साहित्य : एक अध्ययन' नामक पुस्तक की रचना कर भोजपुरी की बड़ी सेवा की है। विद्वान् लेखक ने भोजपुरी लोक-गाथाओं का इसमें प्रामाणिक परिचय प्रस्तुत किया है। इसके साथ ही विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का परिचय देते हुए विभिन्न व्रतों का वर्णन किया गया है। इस उपयोगी पुस्तक की रचना के लिए 'विनोद' जी भोजपुरी जनता के धन्यवाद के पात्र हैं। राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से भोजपुरी भाषा तथा साहित्य की परिचायिका एक छोटी-सी पुस्तिका भी प्रकाशित हुई है।

संस्थाएँ

(१) भोजपुरी साहित्य के संकलन, संरक्षण तथा प्रचार के लिए अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं, जिसमें आरा की भोजपुरी-समिति प्रधान है। इस संस्था के सेक्रेटरी श्री रघुवंश नारायण जी हैं जो बड़े ही जीवट के व्यक्ति हैं। इस समिति की ओर से 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका आज अनेक वर्षों से प्रकाशित हो रही है, जिसमें भोजपुरी के लोक-गीत, कहानियाँ तथा कविताएँ प्रकाशित होती हैं। रघुवंश नारायण जी के सम्पादकत्व में यह पत्रिका भोजपुरी की ठोस सेवा कर रही है। इसका प्रधान कार्यालय पहिले आरा में था परन्तु अब पटना में है। रघुवंश नारायण जी शीघ्र ही एक अखिल भारतीय भोजपुरी सम्मेलन, पटना में करने वाले हैं जिसमें भोजपुरी साहित्य की रक्षा तथा प्रचार के लिए एक ठोस योजना बनाने का विचार है।

(२) भोजपुरी साहित्य सम्मेलन। इस सम्मेलन का प्रधान उद्देश्य भोजपुरी भाषा तथा साहित्य का प्रचार तथा प्रसार है। इसके कर्मचारियों में पं० महेन्द्र शास्त्री प्रधान हैं। इस सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन छपरा (बिहार) जिले के सिवान नामक स्थान पर हुआ था, जिसके सभापति हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी के संस्कृत विभाग के प्रोफेसर पं० बलदेव उपाध्याय थे। महा पण्डित राहुल सांकृत्यायन इस सम्मेलन के हथुवा (बिहार) अधिवेशन के सभापति रह चुके हैं। अभी इस वर्ष (१९६० ई०) यह सम्मेलन आरा जिले के 'नयका भोजपुरी' नामक स्थान में किया गया था। आशा है इससे भोजपुरी को गति तथा प्रगति प्राप्त होगी।

(३) लोक-साहित्य-परिषद्, प्रयाग। प्रयाग के कुछ युवक साहित्य-सेवियों ने इस संस्था की स्थापना सन् १९५७ में की थी। इस परिषद् ने भोजपुरी तथा अवधी के लोक-गीतों का संकलन किया है। इस परिषद् के सेक्रेटरी श्री हरिशंकर उपाध्याय एम.

ए. हैं, जो बड़े लगन तथा उत्साह के साथ इस संस्था के कार्य को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील हैं।

(४) भोजपुरी सभा नई दिल्ली। इस संस्था के अध्यक्ष रेलवे मन्त्री जगजीवन राम जी हैं तथा मन्त्री श्री त्रिवेणी सहाय जी हैं जो एक बड़े ही कर्मठ व्यक्ति हैं। इस समाज का उद्देश्य भोजपुरी भाषा-भाषियों में भ्रातृभाव की भावना उत्पन्न करना तथा उनकी उन्नति के लिए सतत प्रयास करना है। नई दिल्ली में स्थित भोजपुरी भाइयों की इस संस्था ने बड़ी सेवा की है। प्रतिवर्ष भोजपुरी समाज की ओर से राष्ट्रपति-भवन में होली का उत्सव मनाया जाता है जिसमें होली के गीत गाने की व्यवस्था भी की जाती है। श्री त्रिवेणी सहाय जी बड़े ही जीवट के आदमी हैं तथा इनके ही अथक प्रयास का यह फल है कि यह समाज भोजपुरी जनता की ठोस सेवा करने में समर्थ हो सका है।

प्रयाग के कुछ उत्साही युवकों ने भी इसी प्रकार की एक संस्था की स्थापना की है, जो भोजपुरी भाइयों की बड़ी सहायता कर रही है। इन लोगों का ध्यान विशेषतया सामाजिक सेवा की ओर है।

(५) भारतीय लोक-संस्कृति-शोध-संस्थान। इस संस्थान का उद्देश्य भारतीय लोक-संस्कृति की रक्षा करना है। इस संस्थान के सस्थापक हैं—पं० व्रजमोहन व्यास, श्री श्रीकृष्णदास तथा डा० कृष्णदेव उपाध्याय। इस त्रयी के भगीरथ प्रयास तथा अथक उद्योग से इसकी उन्नति द्रुत गति से हो रही है। इस शोध-संस्थान के तत्वावधान में अखिल भारतीय लोक-संस्कृति-सम्मेलन प्रतिवर्ष भारत के विभिन्न राज्यों में किया जाता है। इसका प्रथम अधिवेशन प्रयाग में सन् १९५८ ई० में तथा द्वितीय अधिवेशन सन् १९५९ ई० में बम्बई में हुआ था। इस शोध-संस्थान ने भोजपुरी लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं का संग्रह करवाया है जो 'भोजपुरी लोक-कथा' नाम से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। इस लोक-संस्कृति-शोध-संस्थान के अवधान में एक लोक-कला-संग्रहालय की भी स्थापना की गई है जिसके क्युरेटर श्री हरिशंकर उपाध्याय एम. ए. हैं। इस संग्रहालय में भोजपुरी प्रदेश की लोक-कला का विशेष रूप से संग्रह किया गया है। जिसका अधिकांश श्रेय इसके क्युरेटर उपाध्याय जी को प्राप्त है।

पत्र-पत्रिकाएँ

भोजपुरी लोक साहित्य के संरक्षण में 'भोजपुरी' नामक मासिक पत्रिका अनेक वर्षों से श्री रघुवंश नारायण सिंह के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो रही है। इस पत्रिका ने भोजपुरी के उदीयमान कवियों की कविताओं को प्रकाशित कर उन्हें प्रोत्साहन प्रदान किया है। लोक-गीतों तथा लोक-कथाओं के प्रकाशन से उनकी रक्षा हो रही है। इस प्रकार यह पत्रिका अपने क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य कर रही है। बलिया (उत्तर प्रदेश) से 'बिहान' नामक साप्ताहिक पत्र आज लगभग दो वर्षों से प्रकाशित हो रहा है। इससे सम्पादक श्री प्रभुनाथ मिश्र हैं जो भोजपुरी के अच्छे कवि हैं। मिश्र जी के सम्पादकत्व में यह पत्र भोजपुरी-साहित्य की अच्छी सेवा कर रहा है। भोजपुरी में उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिका का अभाव है। आशा है इसकी भी पूर्ति शीघ्र हो जायेगी।

इधर रेडियो द्वारा भी भोजपुरी का प्रचार हो रहा है। आकाशवाणी के प्रयाग तथा पटना स्टेशनों से पंचायत घर प्रोग्राम में भोजपुरी में अनेक वार्ताएँ प्रसारित होती

है। प्रतिदिन लोक-गीतों, लोक-कथाओं या लोक नाट्यों में से कोई न कोई प्रोग्राम अवश्य रहता है। रेडियो स्टेशन द्वारा समय-समय पर भोजपुरी कवि-सम्मेलन भी आयोजित किया जाता है तथा इनकी कविताओं को प्रसारित किया जाता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है भोजपुरी प्रदेश के केन्द्रस्थान बलिया या आरा—में एक रेडियो स्टेशन की स्थापना की जाय, जहाँ से केवल भोजपुरी के प्रोग्राम प्रसारित किये जायें।

आजकल भोजपुरी लोक साहित्य की सर्वाङ्गीण उन्नति तथा वृद्धि हो रही है। इस प्रदेश के विभिन्न विश्वविद्यालयों में अनेक शोधीछात्र भोजपुरी साहित्य के भिन्न-भिन्न अंगों पर अनुसन्धान का कार्य कर रहे हैं। अनेक तरुण कवि अपनी रचनाओं से इसके साहित्य को भर रहे हैं। अनेक संस्थाएँ भोजपुरी भाइयों की सेवा में तत्पर है। इस प्रकार भोजपुरी का भविष्य बड़ा उज्ज्वल दिखाई पड़ता है।

———

प्रस्तावना

लोक साहित्य की महत्ता

लोक-साहित्य का महत्व अत्यधिक है। यदि इसका सम्यक् अनुशीलन एवं अभिवर्धन किया जाय तो हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। लोक-साहित्य के अन्तर्गत वे सभी वस्तुयें आती हैं जो लोगों में मौखिक रूप में प्रचलित हैं जैसे लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक कथा, मुहावरे, कहावतें, पहेलियाँ और मुकरियाँ। पालने के गीत, खेल के गीत और गालियाँ भी इसी में अन्तर्भुक्त होती हैं इन सब का अध्ययन बड़ा मनोरंजक एवं लाभप्रद है। लोक-साहित्य के महत्व को हम छः भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. ऐतिहासिक
२. भौगोलिक आर्थिक
३. सामाजिक
४. धार्मिक पौराणिक
५. नैतिक
६. भाषाशास्त्र।

लोक-गीतों और गाथाओं में इतिहास की प्रचुर सामग्री भरी पड़ी है जिनके सम्यक् अध्ययन से हमारा ऐतिहासिक भांडार भरा जा सकता है। इन लोक-गीतों में स्थानीय इतिहास का पुट बड़ा गहरा है जिनके उद्घाटन से हमारे विलुप्त अथवा विस्मृत इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। बलिया जिले में हल्दी एक छोटा-सा गाँव है जहाँ प्राचीन काल में क्षत्री राजा राज्य करते थे जिनके वंशज आज भी मौजूद हैं। इन राजाओं की शाहाबाद जिले के डुमराँव के राजा से बड़ी तनातनी रहती थी। बलिया जिले के बेटिया गाँव में एक भूमिहार जमींदार पांडे हैं जिनके पूर्वज बड़े सुप्रसिद्ध थे। उनमें से एक का नाम बहोरन पांडे था जो डुंमराव के राजा के कारिन्दा या मैनेजर थे। एक बार डुंमराव राज्य का कोई अधिकारी हल्दी गाँव से होकर गुजर रहा था। उस समय उसने लड़कों को यह गाते सुना[1] किः—

"राजा भइले रजुली, बहोरन भइले धुनिया
मारेले बलगंजन देव, बलकेले दुनिया"

१. लेखक का निजी संग्रह।

अर्था् डुँमराँव के राजा रजुली अत्यन्त नीच हैं। बेटियाँ के बहोरन पांडेय धनिया जुलाहा हैं। परन्तु हल्दी के राजा दलगंजन देव वीर हैं जिनकी वीरता से दुनियाँ काँपती है। लड़कों के इस गीत का उस अधिकारी के हृदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि वह उल्टे पाँव डुमराँव गया और राजा को सब समाचार सुनाया। राजा ने स गीत को सुनकर उत्तेजित हो हल्दी पर चढ़ाई कर दी और राजा को परास्त कर दिया।

यह एक स्थानीय ऐतिहासिक घटना है। न मालूम ऐसी कितनी सच्ची घटनायें इन गीतों में भरी पड़ी हैं। जौनपुर जिले के कोइरीपुर गाँव के पास चाँदा नामक एक गाँव है जहाँ १८५७ ई० के सिपाही विद्रोह में अंग्रेजों और कालाकांकर प्रतापगढ़ के विसेनवंशी राजा से घोर युद्ध हुआ था।[१] अब भी उस गाँव के आसपास इस युद्ध के गीत गाये जाते हैं जिसकी एक कड़ी यह है—

"काले कांकर क बिसेनवा, चाँदे गाड़े बा निसनवां"

कुँवर सिंह के पँवारे में उनकी वीरता को कहानी हमें पढ़ने को मिलती है। एक गीत में सिपाही विद्रोह का कारण कितनी सुन्दर रीति से व्यक्त किया गया है[२]।

"चमड़ा टोड़वा दाँत से हो काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम।"

बाद में उनकी सेना का दानापुर पटना से चलकर कोहलवर में आने का उल्लेख किया गया है। इसी समय के एक अल्पगीत में अवध की बेगमों की दुर्दशा का चित्रण भलीभाँति किया गया है। इन गीतों के अध्ययन से मुगलों के अत्याचार, उनके शासन की ढिलाई एवं व्यभिचार का भी पता चलता है। आल्हा की गाथा के द्वारा, यद्यपि इसमें कुछ कपोल कल्पना भी है, परमर्दिदेव के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। आल्हखंड में जो ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध होती है उसका महत्व कुछ कम नहीं है। गोपीचन्द्र के गीत के द्वारा पाल वंश का अप्रकाशित इतिहास प्रकाश में आता है। डा० ग्रियर्सन ने गोपीचन्द्र की ऐतिहासिकता को प्रमाणित करते हुए इस गीत के महत्व को भलीभाँति दर्शाया है। बहुला की गाथा में हमें चन्दू सौदागर, बाला लखन्दर, विषहर आदि पात्र मिलते हैं। बिहुला की यह कथा इसी रूप में अनेक प्रान्तों में प्रचलित है। बहुत संभव है कि बिहुला की यह कथा किसी ऐतिहासिक घटना के ऊपर

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ६७।
२. वही।

आश्रित हो और चन्दू सौदागर और बाला लखन्दर आदि ऐतिहासिक व्यक्ति हों।

इसी प्रकार बालकों के गीतों में, खेलों में, पहेलियों में अनेक ऐतिहासिक महत्व की बातें प्राप्त होती हैं।

भौगोलिक एवं आर्थिक

लोक-साहित्य में भौगोलिक एवं आर्थिक दशा का भी चित्रण हमें उपलब्ध होता है। लोक-गीतों में व्यापार के लिए जाने वाले उन बनजारों का उल्लेख मिलता है जो पूरब देश को जाते थे और आवागमन का साधन न होने के कारण बारह वर्ष पर परदेस से लौटा करते थे। ये बनजारे मसाले का व्यापार करते थे। गीतों के काल में आजकल की ही भाँति मगह का पान, बनारस की साड़ी, मिर्जापुर का लोटा, पटने का झूल और गोरखपुर के हाथी प्रसिद्ध थे। इन उल्लेखों से हमें आर्थिक भूगोल का पता चलता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न स्थानों का वर्णन किसी न किसी प्रसंग में प्राप्त होता है। इससे इन स्थानों की प्राचीनता का पता चलता है। आल्ह खंड का भूगोल अपना विशेष महत्व रखता है।

गीतों और कथाओं में सोने के बर्तनों और आभूषणों का प्रचुरता से वर्णन मिलता है। खाने के लिये सदा सोने की थाली का उल्लेख है। जल पीने की सुराही भी सोने की ही है। बाल करने की कंघी भी सोने की बनी हुई है। दूध से पैर धोने और घी से स्नान करने का उल्लेख मुहावरों में बार-बार आता है। बासमती चावल, मूंग की दाल, पूड़ी, पुआ आदि विभिन्न प्रकार के पकवानों का वर्णन अनेक बार हुआ है। इन सब उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज की आर्थिक दशा उन्नत थी और लोग धन, धान्य से पूर्ण सुखी थे।

सामाजिक वर्णन

लोक-साहित्य में सामाजिक वर्णन अत्यधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। समाज के अध्ययन की बहुमूल्य सामग्री इन गीतों में उपलब्ध हैं। इतिहास की बड़ी-बड़ी पोथियों में लड़ाई, झगड़ों का वर्णन भले ही मिल जाय परन्तु किसी समाज की वास्तविक अवस्था को जानने के लिये उसके लोक-साहित्य का अनुसन्धान वांछनीय है। इन लोक-गीतों, गाथाओं एवं कथाओं में मनुष्यों के रहन-सहन, आचार-विचार, खान-पान, रीतिरिवाज आदि का सच्चा चित्र देखने को मिलता है। बैरियर हलविन ने लोक-गीतों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि इनका महत्व इसीलिये नहीं है कि इनके संगीत, स्वरूप और विषय में जनता का वास्तविक जीवन प्रतिबिम्बित होता है प्रत्युत इनमें

मानवशास्त्र के अध्ययन की प्रामाणिक एवं ठोस सामग्री हमें उपलब्ध होती है[1]। मध्यप्रदेश की एक जाति करमा के एक गीत में यह उल्लेख है कि[2] 'यदि तुम मेरे जीवन की सच्ची कहानी जानना चाहते हो तो मेरे गीतों को सुनो'। ये लोक-गीत कहानियों की अपेक्षा वास्तविक जीवन के अत्यधिक निकट हैं।[3]

मानवशास्त्र (एन्थ्रोपोलोजी) और लोकवार्ता शास्त्र (फोक लोर) के विद्यार्थियों के लिये लोक-साहित्य का अनुशीलन अत्यन्त लाभप्रद है। भोजपुर प्रदेश में नेटुआ, धोबी, गोंड़, चमार, दुसाध, कमकर, मुहसर, कहार, और धिरकार आदि अनेक जातियाँ विद्यमान हैं जिनके रीति, रिवाज, जन्म और विवाह की विधियाँ, प्रथायें एवं खान, पान आदि एक दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। दुसाध जाति में 'पचरा' नामक गीत गाकर ही समस्त रोगों की ओषधि की जाती है। इस प्रकार इन जातियों के लोक-साहित्य का अध्ययन किया जाय तो हमें बहुत सी उपयोगी सामग्री उपलब्ध हो सकती है।

भोजपुरी लोक-गीतों में समाज

भोजपुरी लोक-साहित्य में समाज का जो चित्रण किया है वह उच्च, शिष्ट और सभ्य है। पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पुत्री, पिता-पुत्र, ननद-भौजाई और सास एवं बहू का जो चित्रण इन गीतों में उपलब्ध होता है उससे भोजपुरी समाज का चित्र हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। भाई बहन के जिस शुद्ध अलौकिक एवं सच्चे प्रेम का उल्लेख इन गीतों में किया गया है वह अनुकरणीय है। दुष्ट पति के द्वारा स्त्री जब अकारण छोड़ दी जाती है तो उस दीन अवस्था में भाई उसे अपने घर लाकर उसका पालन करता है। पुत्री की विदाई के समय माता का अपार प्रेम-पारावार हिलोरें मारता हुआ दिखाई देता है। कहीं माता रो रही है तो कहीं भाई चिल्ला रहा है। पुत्री के वर खोजने के लिये पिता की चिन्ता भी उल्लेखनीय है। वह अपनी प्यारी पुत्री के लिये योग्य वर की तलाश में उड़ीसा और जगन्नाथपुरी तक की यात्रा

1. The folk songs are important not only because the music, form and content of verse is itself part of the peoples life, but even more because in songs in chorus, in actually fixed and established documents we have the most athentic and unshakable witness to ethnographic fact.
2. Folk song of Mechel Hills introduction p. 16.
3. The folk songs are much nearer real life than are the folk tales. p. 15.

करता है। ननद और भावज का शाश्वतिक विरोध भी इन गीतों में देखने को मिलता है। ननद भावज को सदा झिड़कियाँ देती है और अपने भाई को उकसा कर उसे तंग किया करती है। सास और बहू का संबंध भी इन गीतों में कुछ सुन्दर नहीं है। दुष्टा सास अपनी बहू को अनेक प्रकार से कष्ट देती है। उससे दिन भर काम करवाती है परन्तु खाने के लिये शुद्ध भोजन तक नहीं देती। सौतिया डाह का जो सजीव चित्रण इन गीतों में किया गया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह का वर्णन भी स्थान-स्थान पर पाया जाता है।

इसके अतिरिक्त लोक-साहित्य में विभिन्न रीति-रिवाज भी उपलब्ध होते हैं। सोहर और विवाह के गीतों के प्रसंग में इनका विशेष वर्णन किया जायगा। भोजपुरी समाज में पुत्र-जन्म के अवसर पर ताली बजाने की प्रथा है। यह प्रथा बड़ी वैज्ञानिक है परन्तु विज्ञान के आधुनिक युग में लोग इसे छोड़ते जा रहे हैं। विवाह के अवसर पर परीछन, द्वारपूजा, गुरहत्थी, लागमेराई, भाँवर, सुमंगली और कोहबर आदि अनेक प्रथाओं का उल्लेख मिलता है। प्राचीन-कालीन वैदिक विवाह पद्धति को समझने के लिये इस मौखिक साहित्य को जानना आवश्यक है।

धर्म संबंधी वस्तुओं का वर्णन भी लोक-साहित्य में पाया जाता है। बहुरा पिड़िया, भाईदूज और जीउतिया (जीवत्पुत्रिका) आदि व्रत की कहानियों में अनेक उपदेशात्मक बातें भरी पड़ी हैं। समाज में विदुर-नीति और कौटिल्य के नीति वचनों का प्रभाव भले ही न पड़े परन्तु इन कहानियों का असर अवश्य ही पड़ता है। अतः धार्मिक और नीति की शिक्षा के लिये लोक-कथाओं का बड़ा महत्व है।

धार्मिक
पौराणिक

लोक-गीतों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि उस समय में शिव पूजा की प्रधानता थी। लोग शिव मन्दिरों में पूजा के लिये जाया करते थे। साथ ही सूर्य पूजा का भी कुछ कम प्रचार न था। सष्ठी माता का व्रत वास्तव में सूर्य का ही व्रत है। उस दिन सूर्य भगवान् को चढ़ाने के लिये जो पक्वान्न पकाया जाता है उस पर सूर्य के रथ का चित्र उत्कीर्ण रहता है। एक गीत में कोई स्त्री जल्दी उदय लेने के लिये सूर्य भगवान् से प्रार्थना करती है जिससे अर्घ दिया जा सके। गंगा माता और तुलसी माता का भी उल्लेख इन गीतों में मिलता है। गंगा और तुलसी का स्थान हमारे धार्मिक जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गंगा नहाना और तुलसी की पूजा करना स्त्रियों का प्रधान धार्मिक कृत्य है।

धार्मिक जीवन की झाँकी के साथ ही हिन्दू पुराण शास्त्र (माइथालोजी) का वर्णन भी इन गीतों में मिलता है। यहाँ केवल दो ही वस्तुओं का उल्लेख पर्याप्त होगा। गीतों में शिवजी के दूसरा विवाह करने का उल्लेख पाया जाता है और तुलसी जी के सपत्नी होने का। तुलसी और शिव के दूसरे विवाह का उल्लेख कहीं प्राप्त नहीं होता। अतः ये दोनों बातें हिन्दू पुराण शास्त्र के लिये मौलिक कल्पनायें हैं।

लोक-साहित्य में जिस नैतिक अवस्था का वर्णन मिलता है वह लोकोपम, लोकोत्तर और दिव्य है। सतीत्व का जो आदर्श इस साहित्य में उपलब्ध है वह सुन्दर है। भारत में सती धर्म का पालन किया गया है। सती शिरोमणि भगवती देवी ने किस प्रकार तालाब में डूबकर अपनी प्रतिष्ठा को दुष्ट मुगलों के हाथों से बचाया इसका उल्लेख आगे किया जायगा। इसी प्रकार चन्दादेवी ने अपने सतीत्व को प्रमाणित करने के लिये खौलते हुए तेल में अपने शरीर को स्थापित कर दिया था। सतीत्व की कसौटी पर स्त्रियाँ अत्यन्त खरी उतरती हैं। कोई पुरुष परदेस से लौट रहा है। रास्ते में वह अपनी स्त्री को पाता है और उससे हार, मोती एवं डालभर सोना देकर व्याह करने का प्रस्ताव करता है। इस प्रस्ताव पर वह स्त्री उत्तर देती है कि मैं तुम्हारे धन में आग लगा दूंगी। एक गीत में कोई देवर भावज से मज़ाक करता हुआ विवाह का अनुचित प्रस्ताव करता है इस पर वह सती भावज रोषपूर्ण होकर उत्तर देती है यदि तुम्हारा भाई परदेस से आगया तो तुम्हारी इन लम्बी बाहुओं को इस दुष्टता के कारण कटवा लूंगी।[1]

नैतिक

परन्तु लोक-साहित्य का सबसे अधिक महत्व भाषाशास्त्र की दृष्टि से है। यदि इस दृष्टि से हम ध्यानपूर्वक विचार करते हैं तो देखते हैं कि इस साहित्य में अमूल्य निधियाँ भरी पड़ी हैं। सर्वप्रथम लोक-गीतों और कथाओं के संग्रह से एक मौलिक साहित्य नष्ट होने से बच जायगा। लोक-गीतों और गाथाओं में आये हुए शब्दों की निरुक्ति का पता लगाने पर भाषाशास्त्र की अनेक गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं। इनमें व्यवहृत शब्दों के द्वारा हिन्दी के कुछ शब्दों के विकास की परम्परा को हम वैदिक संस्कृत से जोड़ सकते हैं। बहुत से ऐसे शब्द वैदिक संस्कृत में पाये जाते हैं जो संस्कृत में हैं, भोजपुरी साहित्य में हैं परन्तु हिन्दी में नहीं हैं। एक उदाहरण लीजिये। गाय के सद्योजात शिशु को वेद में 'धरुण' कहते हैं। भोजपुरी में यह 'लेरुआ' के नाम

भाषा-शास्त्र संबंधी महत्त्व

१. मो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१७।

से पुकारा जाता है। परन्तु हिन्दी में इस भाव का द्योतक कोई शब्द नहीं है। इसी प्रकार गर्भघातिनी गाय को 'वेहद्' और बाँझ गाय को वेद में 'वशा' कहते हैं। भोजपुरी में इनका नाम क्रम से 'लड़ायल' और बहिला है। भोजपुरी का 'बहिला' शब्द वैदिक 'वशा' से उत्पन्न हुआ है। परन्तु इन दोनों भावों को प्रकट करने के लिये हिन्दी में कोई शब्द नहीं है। यदि 'धरुण' और 'वशा' शब्दों की जीवनी लिखनी है तो लोक-साहित्य में प्रयुक्त इन शब्दों को जाने बिना हमारी गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती। यह एक विशेष बात है कि अनेक वैदिक शब्दों के अपभ्रंश रूपों की सत्ता लोक-साहित्य में विद्यमान है परन्तु हिन्दी में उनका सर्वथा अभाव है।

शब्दों की ऐतिहासिक परम्परा को जानने के लिये लोक-साहित्य का अध्ययन अत्यन्त उपादेय है। उदाहरण के लिये 'जुगवत' शब्द को ही लीजिये। लोक-गीतों में इस शब्द का प्रयोग खूब खबरदारी करने के अर्थ में हुआ है। परन्तु इसकी उत्पत्ति संस्कृत के 'गुपु-रक्षणे' धातु से है जिसका भूतकालिक रूप 'जुगोप' बनता है। इसी 'जुगोप' से 'जुगवत' शब्द की व्युत्पत्ति मानी जाती है। एक दूसरा शब्द लीजिये। लोकगीतों में सौभाग्यवती स्त्री के लिये 'सुइवा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह संस्कृत के 'सुभगा' शब्द से निकला है, यह बात भाषाशास्त्र वेत्ताओं से छिपी नहीं है।

लोक साहित्य के अध्ययन से हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि होगी। उसका भाषा भांडार समृद्ध होगा, नये-नये शब्दों, मुहावरों और लोकोक्तियों के ग्रहण से हिन्दी भाषा की भाव प्रकाशिका शक्ति बढ़ेगी। भारत की राष्ट्रभाषा के लिये वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है। हमारे घरों में, खेतों में, कारखानों में प्रतिदिन काम में आनेवाले कितनी ही वस्तुओं के नाम हिन्दी में नहीं हैं। कितने ही भावों को प्रकट करने के लिये उपयुक्त एवं उचित शब्द भी नहीं पाये जाते। एक उदाहरण लीजिये—भोजपुरी में 'बिराना' एक क्रिया है जिसका अर्थ हिन्दी में 'मुँह चिढ़ाना' है। परन्तु बिराना का भाव मुँह चिढ़ाने से कुछ भिन्न है। इसी प्रकार 'डाहना' शब्द है। भोजपुरी में कहते हैं "तू हमरा के बड़ा डाहत बाड़" अर्थात् तुम बड़ा दुःख दे रहे हो। डाहना के लिये हिन्दी में प्रायः जलाना, दुःख देना प्रयुक्त होता है। परन्तु 'डाहना' का भाव जलाने अथवा दुःख देने से कहीं अधिक व्यापक और गंभीर है। जलाने में केवल नीरसता है परन्तु 'डाहने' में क्रोध, प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उलाहने का भी भाव है। एक दूसरा शब्द 'बराना' है जिसके दो अर्थ हैं, बचकर चलना और चुनना। जैसे 'राह बरा कर चलो'। परन्तु 'राह बराने' का भाव बचकर चलने से कहीं अधिक व्यापक है। 'निहुरना' शब्द का अर्थ झुककर चलना है, जैसे 'निहुरकर' झाड़ू दो।

'झुकने' का प्रयोग किसी भी वस्तु के लिये किया जा सकता है परन्तु 'निहुरना' का प्रयोग एक विशिष्ट अर्थ कमर के झुक जाने में ही किया जाता है। भोजपुरी में 'बिसूरना' शब्द बड़ा भावव्यंजक है। इस एक ही शब्द में चिन्ता, दुःख और करुणा का भाव भरा है। हिन्दी में इस भाव का द्योतक कोई भी शब्द नहीं है।

भोजपुरी लोक-साहित्य में हजारों ऐसे शब्द विद्यमान हैं जो गंभीर भाव के द्योतक हैं परन्तु हिन्दी में उनका पर्यायवाची कोई शब्द नहीं है।[१] जैसे अगोरना, अदहन, अहकना, अहरा, अहारना, आँटी, उड़ासना, उबहन, उमी, ऐपन, ओबरी, ओरी, कचारना, कनिया, कजरौटा, कलोर, कुरिया, कोंचना, खोंइछा, गाँज, गेंडुरी, गोयड़, गौं, चकवड़, चटक, चिचोरना, जाउरि, टिकरी, निहोरा, परई, परीछना, पुरवट, बतिया, बिदोरना, बेआना, बोरसी, लिबिर, लूगा, लेरुआ, संकारना, हींडना, हूलना और हुमसाना आदि।

उपर्युक्त सूची में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनमें भाव व्यंजना इतनी अधिक है कि उन्हें समझाने के लिये अनेक वाक्यों का प्रयोग करना पड़ेगा।

भोजपुरी लोक-गीतों और कथाओं में मुहावरे और कहावतें भरी पड़ी हैं। इन मुहावरों एवं लोकोक्तियों में भावाभिव्यंजन की बड़ी शक्ति है। वाक्यों में इनका प्रयोग करने से शैली सुगठित एवं चुस्त बन जाती है। इनमें कुछ ऐसे भी मुहावरे हैं जिनका हिन्दी में नितान्त अभाव है। जैसे 'आग में मूतना'। अधिक अन्धेर या अत्याचार करने के लिये इस मुहावरे का प्रयोग होता है। दूसरा मुहावरा 'खराई मारना' है जिसका अर्थ प्रातःकाल अधिक देर तक जलपान या भोजन न करने से प्रकृति में विकार उत्पन्न होना है। इन दोनों मुहावरों के भाव को बोधित करने के लिये हिन्दी में कोई मुहावरा नहीं है। नीचे कुछ और उदाहरण दिये जाते हैं।

मुहावरा और लोकोक्तियाँ

पाताल खिलना	बहुत दूर जाना।
फिरहिरी होना	कार्य में नितान्त व्यग्र होना।
लग्गा लगाना	किसी काम को प्रारंभ करना।
हेठी दिखलाना	अपमान सूचित करना।
तरवा में आग लगना	क्रोध में आग बबूला होना।
हाथ में दही जमाना	मारने पर क्रुद्ध न होकर चुप रहना।
हांका बदना	स्पर्धा करना।
हाथ झुलावत आना	असफल होकर लौटना।

---

१. ऐसे शब्दों की लम्बी सूची के लिये देखिये।
त्रिपाठी : ग्राम गीत भूमिका पृ० ४८ ५६।

भोजपुरी लोकोक्तियों में प्रचूर भाव भरा पड़ा है। उनमें अर्थ प्रकाशन की विचित्र शक्ति है। जैसे 'बेटी चमारे के नाम रजरनिया' अर्थात् असुन्दर वस्तु को सुन्दर नाम प्रदान करना। एक दूसरा मुहावरा है 'अगिया लगाई छंउड़ी बर तर ठाढ़' अर्थात् दो मनुष्यों में झगड़ा लगाकर स्वयं तटस्थ बन जाना। भवभूति की यह उक्ति "तटस्थः स्वान् अर्थान् घटयति, च मौनं च भजते" इस लोकोक्ति से बहुत कुछ मिलती जुलती है। "जिन बिअइली तिन ललइली, बेटा ले पड़ोसिन भइली" अर्थात् जिसने बच्चा पैदा किया वह माता लालायित ही रही परन्तु पड़ोसिन पुत्रवती बन गई। इस कहावत का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ उचित व्यक्ति को लाभ न पहुँच कर दूसरे को उसका फल मिलता है। इसी प्रकार हजारों उदाहरण दिये जा सकते हैं।

पारिभाषिक शब्दों की सम्पत्ति में लोक-साहित्य नितान्त धनी है। यदि हिन्दी भाषा को पारिभाषिक शब्दों से परिपूर्ण करना है तो लोक-साहित्य का अध्ययन नितान्त अनिवार्य है। डा० ग्रियर्सन ने 'बिहार पीज़ेन्ट लाइफ' नामक अपनी पुस्तक में लोक-जीवन और लोक-साहित्य में व्यवहृत होनेवाले शब्दों का विशाल संग्रह किया है। खेती-बारी, कोल्हू, जात, लोहार, बढ़ई, कोंहार आदि के प्रयोग में आनेवाले हजारों पारिभाषिक शब्द हैं जिनका हिन्दी में अभाव है। जैसे खेती के काम में आनेवाले हल, फार, जुवाठ, पैना नाल, हरिस, पचखा, आदि शब्द पारिभाषिक हैं। बढ़ई का औजार बसुला, रुखानी, आरी आदि अनेक शब्द हैं। इन समस्त शब्दों का संग्रह, प्रकाशन और प्रयोग हिन्दी की साहित्य वृद्धि में सहायक सिद्ध होगा।

पारिभाषिक शब्दावली

कवीन्द्र रवीन्द्र ने बँगला के 'बाउल' गीतों का अनुकरण अपनी कविता में किया है एवं बँगला लोक-साहित्य के शब्दों और मुहावरों को अपने काव्य में स्थान दिया है। यदि हिन्दी के कविगण भी इस विषय में रवीन्द्रनाथ का अनुकरण करें तो हमारी राष्ट्रभाषा के कोष की वृद्धि होगी, उसमें भाव प्रकाशन की अधिक शक्ति आवेगी और वह जन-मन का अनुरंजन कर सकेगी।

प्रथम खण्ड

लोक-गीत

अध्याय १

अ. भोजपुरी लोक साहित्य का सामान्य परिचय

किसी देश का लोक-साहित्य उस देश की जनता के हृदय का उद्गार है। वह उनकी हार्दिक भावनाओं का सच्चा प्रतीक है। यदि किसी देश की सभ्यता का अध्ययन करना हो तो सर्वप्रथम उसके लोक-साहित्य का अध्ययन आवश्यक होगा। लोक-साहित्य जन-समाज की वस्तु है अतः उसमें जनता का हृदय लिपटा रहता है। यह साहित्य कृत्रिमता से कोसों दूर रहता है।

परिचय

गाँव के अशिक्षित कवि के हृदय में जो भाव उमड़ पड़ते हैं, उन्हें वह अपनी टूटी-फूटी पंक्तियों में गाने लगता है, वही लोक-गीत का रूप धारण कर लेते हैं। अतः इस कविता में एक अनूठी स्वाभाविकता और स्वच्छन्दता रहती है।

लोक-गीतों का एक मात्र उद्देश्य 'स्वान्तः सुखाय' होता है। फागुन के मादक मास में मस्त भोजपुरिया जवान जब मस्ती में आकर होली या फाग गाने लगता है तब वह कुछ समय के लिये अपनी सुध-बुध भी खो देता है और तन्मय होकर झूमता दिखाई पड़ता है। इसी प्रकार चैत्र के रमणीय दिनों में चैता गानेवाला व्यक्ति :

'अरे हमरी अटरिया हो रामा, सुगना बोले हो'

का मधुर राग अलापता हुआ अपने को भूल जाता है। सोहर, मुंडन, जनेऊ और विवाह के अवसर पर इन लोक-गीतों को मधुर राग से गाने वाली स्त्रियाँ अपनी गान-प्रियता का परिचय देती हैं।

कथा-साहित्य में भारतवर्ष संसार का गुरू रहा है। भारतीय कहानियों की छाप संसार के विभिन्न देशों की कथाओं पर पाई जाती हैं। कथा कहने की यह परम्परा चिरकाल से चली आती है। प्राचीन-काल में बूढ़ी दादियाँ अपने बालकों को को गोद में लेकर, कहानी सुनाकर उनका मनोरंजन किया करती थीं, छोटे बच्चों को पालने में सुलाकर लोरिक गा गाकर उन्हें प्रसन्न करती थीं। यह परम्परा आज भी जारी है। प्राचीन काल से चली आती हुई ये कहानियाँ 'लोक-कथा' के नाम से और लोरिक 'पालने के गीत' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

भारतवर्ष के हरएक प्रान्त में, हमारी प्रत्येक प्रादेशिक बोलियों में हजारों गीत, कथा, मुहावरे, लोकोक्तियाँ और पहेलियाँ अब भी प्रचलित मिलती हैं। परन्तु हमारी यह अमूल्य सम्पत्ति प्रतिदिन क्षीण होती जा रही है। आश्चर्य

नहीं कि यह एक दिन विलुप्त हो जाय। लोक-साहित्य हमारी राष्ट्रीय निधि है अतः इसे सुरक्षित रखना हमारा परम धर्म है।

भोजपुरी लोक साहित्य की व्यापकता

चिरकाल से अर्जित ज्ञान राशि का नाम साहित्य है। जो साहित्य साधारण जनता से संबंध रखता है उसे 'लोक-साहित्य' कहते हैं। जिस प्रकार साधारण जनता का जीवन नागरिक जीवन से भिन्न होता है उसी प्रकार उनका साहित्य भी आदर्श साहित्य से पृथक् होता है। भोजपुरी लोक-साहित्य की अभी विशेष उन्नति नहीं हुई है। इसमें जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह प्रायः मौखिक रूप में ही उपलब्ध होता है। इन बिखरे हुए रत्नों को बटोर कर पुस्तक रूपी मंजूषा में रखने का विनम्र प्रयत्न इन पंक्तियों के लेखक ने किया है। परन्तु अभी बहुत कार्य शेष है।

भोजपुरी लोक-साहित्य को हमने चार भागों में विभक्त किया है :—

१. लोक-गीत (लिरिक्स)
२. लोक-गाथा (बैलेड्स)
३. लोक-कथा (फोक टेल्स)
४. प्रकीर्ण साहित्य।

लोक-गीत वे गेय (लिरिकल) गीत हैं जिनमें गेयता ही प्रधान गुण है। उनमें कथानक बहुत थोड़ा होता है। लोक-गीतों के अन्तर्गत संस्कार-गीत, ऋतु-गीत, जाति-गीत आदि सभी प्रकार के गीत आते हैं। लोक-साहित्य में लोक-गीतों की ही प्रधानता है। सच तो यह है कि ये इसकी आत्मा हैं। लोक-गाथाओं में उन गीतों का समावेश किया गया है जो गेय होते हुए भी कथा प्रधान हैं। इनका कथानक बड़ा लम्बा होता है जैसे आल्हा और विजयमल। 'लोक-कथा' में उन देहाती कथाओं की विवेचना की गई है जिन्हें बूढ़ी दादियाँ और मातायें अपने बच्चों को सुनाती हैं। विभिन्न व्रत संबंधी कथाओं का भी इनमें समावेश किया गया है। इनके अतिरिक्त भोजपुरी में हजारों कहावतें, मुहावरे, पहेलियाँ, सूक्तियाँ, पालने के गीत, खेल के गीत विद्यमान हैं जिनका प्रयोग और गान आबाल-वृद्ध समान रूप से करते हैं। अतः इन सभी विषयों को 'प्रकीर्ण साहित्य' नामक चौथे खंड में स्थान दिया गया है। भोजपुरी लोक-साहित्य की विस्तृत समीक्षा के पूर्व यह आवश्यक है कि भोजपुरी भाषा—इसका नामकरण, क्षेत्र, विस्तार, व्याकरण आदि—का संक्षिप्त परिचय दिया जाय और तदनन्तर भोजपुरी साहित्य का पर्यालोचन हो। अतः अगले पृष्ठों में क्रमप्राप्त भोजपुरी भाषा का संक्षिप्त विवरण उपस्थित किया जा रहा है।

आ. भोजपुरी भाषा

भारत की आर्य भाषाओं में भोजपुरी हिन्दी की एक प्रमुख बोली है। इस सरस भाषा में साहित्य की रचना अभी विशेष नहीं हुई है। फिर भी जो कुछ रचनायें उपलब्ध हैं वे इसकी सरसता एवं मधुरता को प्रमाणित करने के लिये पर्याप्त हैं। भोजपुरी साहित्य की चर्चा के पूर्व इस भाषा के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। इस भाषा के नामकरण का क्या कारण है? यह भाषा कहाँ बोली जाती है? इसका सामान्य व्याकरण क्या है? इन विषयों पर संक्षेप में यहाँ प्रकाश डालना समीचीन होगा।

भोजपुरी भाषा को कुछ विद्वान् 'भोजपुरिया' के नाम से भी पुकारते हैं। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी ने अपन ग्रन्थ में इसी नाम का व्यवहार किया है।[1]

भोजपुरी या भोजपुरिया

'भोजपुरिया' शब्द प्रचलित 'भोजपुर' शब्द का विशेषण है। 'भोजपुर' शब्द से उस प्रदेश की भाषा का अर्थ द्योतित करने के लिए 'इया' प्रत्यय का प्रयोग उतना ही उचित है जितना 'ई' प्रत्यय का। 'ई' प्रत्यय 'इया' से आकार में लघु है और यह अन्य विशेषणों—यथा बंगाली, आसामी, नेपाली—से समता भी रखता है। अतः उपर्युक्त कारणों से इस निबन्ध में सर्वत्र 'भोजपुरी' शब्द का ही प्रयोग किया गया है 'भोजपुरिया' का नहीं। यद्यपि इस शब्द का प्रयोग भी कुछ अशुद्ध नहीं है। इसके अतिरिक्त बीम्स, ग्रियर्सन[2], हार्नली आदि विद्वानों ने 'भोजपुरी' शब्द का ही प्रयोग किया है। भोजपुरी प्रदेश के लोगों में इसी शब्द का अधिक प्रयोग तथा प्रचार है।

भाषा शास्त्र के विद्वानों ने समस्त भारतीय भाषाओं का अनुशीलन कर इनको कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर अंतरंग और बहिरंग इन विभागों में विभक्त किया है।

भारतीय भाषाओं में भोजपुरी का स्थान

अन्तरंग भाषा की दो प्रधान शाखायें हैं—१. पश्चिमी शाखा और २. उत्तरी शाखा। पश्चिमी शाखा के अन्तर्गत पश्चिमी हिन्दी (ब्रज आदि), राजस्थानी, गुजराती और पंजाबी हैं और उत्तरी शाखा में पश्चिमी पहाड़ी, मध्य पहाड़ी और पूर्वी पहाड़ी भाषायें परिगणित हैं। बहिरंग भाषाओं की तीन प्रधान शाखायें हैं : १. उत्तर पश्चिमी शाखा जिसमें काश्मीरी, कोहिस्तानी, पश्चिमी पंजाबी, और सिन्धी भाषायें आती है। २. दक्षिणी शाखा जिसमें मराठी भाषा की गणना है। ३. पूर्वी शाखा इसके अन्तर्गत उड़िया,

1. Origin and development of Bengali language.
2. Linguistic Servey of India, Part 4 P. 4-5.

बँगला, आसामी और बिहारी भाषायें आती हैं। इस अन्तिम भाषा—बिहारी—की तीन बोलियाँ (डाइलेक्ट्स) प्रसिद्ध हैं। १. मैथिली, २. मगही, ३. भोजपुरी। इस प्रकार भोजपुरी बहिरंग भाषाओं की पूर्वी शाखा के अन्तर्गत बिहारी भाषा की एक बोली है[1] जो क्षेत्र विस्तार और इस भाषा के बोलने वालों की संख्या के आधार पर अपनी बहनों—मैथिली एवं मगही—में सबसे बड़ी है। भोजपुरी के भी अनेक भेद हैं जिनका उल्लेख यथास्थान होगा।

भोजपुरी भारत की आर्य भाषाओं में पूर्वी अथवा मागध श्रेणी की भाषाओं में सबसे पश्चिमी भाषा है। डा० ग्रियर्सन ने इन मागध श्रेणी (मगधन-ग्रूप) की भाषाओं को 'बिहारी' नाम से अभिहित किया है। बिहारी भाषा से उनका तात्पर्य केवल उस एक मात्र भाषा से है जिसके अन्तर्गत तीन बोलियाँ—१. मैथिली २. मगही एवं ३. भोजपुरी—प्रचलित हैं। यद्यपि भाषाशास्त्र के दृष्टिकोण से देखने पर यह मत ठीक है फिर भी मैथिली एवं मगही बोली में बहुत कुछ अन्तर है। इसी प्रकार भोजपुरी के बोलने वाले अपनी पृथक् सत्ता स्वीकार करते हैं।

डा० चटर्जी ने मागध भाषाओं का वर्गीकरण तीन विभागों में किया है। उनके मतानुसार भोजपुरी का संबंध पश्चिमी समुदाय (ग्रूप) से है। मैथिली और मगही का संबंध केन्द्रीय मागध से और बँगला, आसामी और उड़िया भाषा का संबंध पूर्वी मागध समुदाय (ग्रूप) से है। इस प्रकार हम देखते हैं कि बँगला, आसामी और उड़िया भाषायें भोजपुरी की चचेरी बहिनें हैं जब कि मैथिली और मगही सगी बहिन होने का गौरव प्राप्त करती हैं।

उपर्युक्त तीनों बोलियों में विस्तार की दृष्टि से विचार करने पर भोजपुरी का स्थान सबसे बड़ा दिखाई पड़ता है। यह बहुत विस्तृत प्रदेश में फैली हुई है। उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर मध्यप्रान्त के सरगुजा रियासत तक सका विस्तार है। बिहार प्रान्त में यह शाहाबाद, सारन, चम्पारन, रांची, जशपुर रियासत, पालामू का कुछ हिस्सा और मुजफ्फरपुर जिले के उत्तरी पश्चिमी भाग में प्रचलित है। यू० पी० के पूर्वी जिलों—बनारस, गाजीपुर, बलिया—में जौनपुर और मिर्जापुर जिलों के आधे से अधिक भागों में तथा आजमगढ़ और बस्ती जिलों में भी फैली हुई है।

भोजपुरी नामकरण का कारण

भोजपुरी अथवा भोजपुरिया भाषा का नामकरण बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले में स्थित भोजपुर नामक गाँव के नाम पर हुआ है। शाहाबाद जिले में बक्सर सब-डिविजन में भोजपुर नाम का एक बड़ा परगना है। इसी परगने में 'नवका भोजपुर' और 'पुरनका भोजपुर' दो छोटे-छोटे गाँव है जो डुमरावँ राज्य की राजधानी डुमराँव नगर से दो, तीन मील

१. श्यामसुन्दर दास: भाषा विज्ञान पृ० १३३, १५०-५१

उत्तर गगा के निकट बसे हैं। ये दोनों गाँव आसपास हैं और भोजपुर नामक प्राचीन नगर के ही स्थान पर स्थित हैं। इन्हीं गाँवों के कारण इस बोली का नाम भोजपुरी पड़ गया है।[1]

प्राचीन काल में 'भोजपुर' बड़ा समृद्धिशाली नगर था। यह उज्जैन वंशी, पराक्रमी राजपूत राजाओं की राजधानी थी। इस वंश के प्रतिनिधि डुँमराँव राज्य के राजा आज भी विद्यमान हैं। डा० बुकानन ने सन् १८१२ ई० में शाहाबाद जिले में पूरा परिभ्रमण किया था। उसने अपने यात्रा विवरण में यहाँ के मूल निवासी चेदी नामक जाति को परास्त कर उज्जैन वंशी राजपूतों के द्वारा इस स्थान को जीतने की किम्बदन्ती का उल्लेख किया है। इन उज्जैनी राजपूतों की उत्पत्ति मालवा के सुप्रसिद्ध राजा भोज से मानी जाती है।

ब्लाखमैन[2] ने 'भोजपुर' नाम का उल्लेख किया है। उसने लिखा है कि "दक्षिणी बिहार और बंगाल के पश्चिमी सरहद के राजाओं ने दिल्ली के बादशाहों को बड़ा परेशान किया। अकबर के राज्यकाल में भोजपुर के राजा दलपति पराजित होकर पकड़े गये और जब अधिक नज़राना लेकर अकबर ने उन्हें मुक्त किया तो वे फिर सेना लेकर विद्रोह कर बैठे। जहाँगीर के समय तक उनका विद्रोह चलता रहा और शाहजहाँ ने उनके उत्तराधिकारी को फाँसी दिलवा दी।"

ब्लाखमैन ने अपने 'आईने अकबरी' के अनुवाद में 'भोजपुर' के संबंध में अनेक घटनाओं का वर्णन किया है।[3]

आईने अकबरी में राजा दलपति सम्बन्धी विवरण की एक टिप्पणी में राजा दलपति को उज्जैनिया कहा गया है। 'आईने अकबरी' से यह भी पता चलता है कि उज्जैनिया राजाओं की राजधानी 'भोजपुर' थी जो आरा से पश्चिम और सहस-राम से उत्तर थी। उन दिनों में यह स्थान बिहार प्रान्त के रोहतास सरकार के भीतर एक परगना था। शाहजहाँ के राज्यकाल के दसवें वर्ष में यहाँ के राजा प्रतापसिंह ने विद्रोह किया था। तब अब्दुल्ला खाँ ने भोजपुर पर आक्रमण कर इसे जीत लिया। प्रताप सिंह ने आत्म-समर्पण कर दिया और शाहजहाँ की आज्ञा से उसे फाँसी दे दी गई।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि प्राचीन काल में 'भोजपुर' एक प्रधान स्थान था जिसे मालवा के उज्जैनवंशी राजाओं की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। ये उज्जैनी राजा मालवा से यहाँ आये थे। इन राजपूतों का भारत के मध्यकालीन इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। पश्चिमी बिहार में इनकी महत्ता सन् १८५७ तक अक्षुण्ण रही है जबकि वीराग्रणी कुँअर सिंह ने

---

१. दुर्गाप्रसाद सिंह : लोकगीत भूमिका पृष्ठ १

२. एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल की पत्रिका सन् १८७१ पृष्ठ ३-१२६

३. आईने अकबरी भाग १ (१५१३)

अंगरेज़ों के विरुद्ध बगावत का झंडा ऊँचा किया था। इस युद्ध में कुँवर सिंह पराजित हुए और इस प्रकार भोजपुर की प्राचीन महत्ता का नाश हो गया। परन्तु डुमराँव राज्य पर आज भी एक उज्जैनी राजा राज्य करता है जो पुराने उज्जैनी राजाओं का एकमात्र प्रतिनिधि है।

उपर्युक्त वर्णन से यह स्पष्ट है कि 'भोजपुर' स्थान का नाम उन उज्जैनी भोज राजाओं के नाम के कारण हुआ है जो उज्जैन (मालवा) से आकर यहाँ बस गये थे। यह बात यहाँ विशेष उल्लेखनीय है कि 'भोज' नाम उपाधि रूप से सभी उज्जैनी राजाओं के द्वारा धारण किया जाता था। यह 'शृंगार प्रकाश' के रचयिता सुप्रसिद्ध दानी, राजा भोज का व्यक्तिगत नाम ही नहीं था बल्कि यह उपाधि भी थी।[1] ये राजा उज्जैन से आने के कारण उज्जैनी भोज कहलाते थे। अतः इन्होंने जिस नगर को बसाया उसका नाम इन्हीं के नाम पर भोज-पुर (भोज राजाओं का नगर) रखा गया। इनकी राजधानी 'भोजपुर' में थी जो आज भी बिहार प्रान्त के डुमराँव नामक नगर के पास स्थित है। प्राचीन किला का भग्नावशेष आज भी इस भोजपुर गाँव में विद्यमान है। इसी प्राचीन छोटे से नगर के कारण यह नाम आसपास के स्थानों में भी फैल गया। पहिले 'भोजपुर' नाम का जिला भी था जिसके अन्तर्गत वर्तमान शाहाबाद जिले का उत्तरी भाग सम्मिलित था। १८वीं शताब्दी के अन्त में 'भोजपुर' का क्षेत्रफल अत्यन्त विस्तृत था। शनैः शनैः 'भोजपुर' नाम से बना हुआ भोजपुरी अथवा भोजपुरिया यह विशेषण यहाँ के निवासियों तथा क्रमशः इस प्रदेश के आस-पास बोली जाने वाली भाषा के लिए भी प्रयुक्त होने लगा। चूंकि यह बोली भोजपुर जिले के उत्तर, दक्षिण और पश्चिमी भागों में भी फैली हुई थी अतः यहाँ के लोग तथा उनकी बोली भी इसी नाम से विख्यात हो गई।

इस प्रदेश के राजपूतों ने मुगल बादशाहों से लड़ने में बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की थी तथा आसपास के लोगों में अपनी पृथक् सत्ता एवं महत्ता बतलाने के लिए वे इसी नाम से अपने को अभिहित करते थे।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में मागध श्रेणी की इस भाषा के बोलने-वालों के लिये भोजपुरी अथवा भोजपुरिया शब्द का प्रयोग पाया जाता है। इस प्रदेश के निवासी अपने शौर्य, वीरता और युद्धप्रियता के लिये प्रसिद्ध रहे हैं और इसी कारण वे मुगलों की सेनाओं में अधिक संख्या में भरती किये जाते थे। यह परम्परा ब्रिटिश राज्य के समय में भी रही है। विशेषकर सिपाही विद्रोह के समय में भोजपुरियों ने जो वीरता दिखलाई वह किसी से

१. ऐतरेय ब्राह्मण ८ : १४।

छि ी नहीं है। निम्नांकित पद्य में—जो बिहार में अत्यधिक प्रसिद्ध है—"भोजपुरिया" शब्द का प्रयोग 'भोजपुर' प्रदेश में रहनेवाले लोगों के लिए किया गया है।

भागलपुर का भगेलुआ भैया
कहलगांव का ठग।
पटना के देवालिया,
तीनू नामजद्द।
सुनि पावै 'भोजपुरिया',
त तुरे तीनों का रग्ग।

इसी प्रकार से 'भोजपुरिया' शब्द का प्रयोग इस भाषा के लिये भी कई स्थानों में हुआ है। एक उदाहरण लीजिये।[1]

"कस कस कसमर, किना मगहिया,
का 'भोजपुरिया', की तिरहुतिया।"

इस पद्य में यह बतलाया गया है मगही भाषा में जहाँ 'किना' का प्रयोग होता है वहाँ भोजपुरी भाषा में 'का' और तिरहुती में 'की' का व्यवहार होता है।

भोजपुरी या भोजपुरिया शब्द का सर्वप्रथम लिखित प्रयोग सन् १७८९ ई० में पाया जाता है। डा० ग्रियर्सन ने रैमन का उद्धरण देते हुए लिखा है कि

भोजपुरी या भोजपुरिया का लिखित प्रयोग

"१७८९, दो दिनों के पश्चात् सिपाहियों की एक टुकड़ी जो चुनार घर (गढ़) की जा रही थी प्रातःकाल शहर से मार्च करती जा रही थी। मैं बाहर निकला, और सेना की मार्चिंग को देखने लगा। वह टुकड़ी खड़ी हो गई। उस टुकड़ी के मध्य से कुछ आदमी निकल कर एक अँधेरी गली में गये और एक मुर्गी को पकड़ लिया। इस पर लोग करुण क्रन्दन करने लगे। तब उनमें से एक आदमी ने **भोजपुरिया मुहावरे** में उनसे कहा, 'इतना मत चिल्लाओ', आज हमलोग फिरंगी के साथ जा रहे हैं परन्तु हमलोग चेतसिंह के ही नौकर (आसामी) हैं।"[2]

उपर्युक्त उद्धरण में सन् १७८९ ई० में 'भोजपुरिया' शब्द का उल्लेख पाया जाता है।

१. लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया भाग १ सप्लिमेण्ट २ पृ० २२। भाग ५ पार्ट २ पृ० ४७ की अतिरिक्त टिप्पणी।

२. रैमन—सेर मुतावेरिन का अनुवाद। द्वितीय संस्करण। अनुवादक की भूमिका पृ० ६।

जान बीम्स ने सन् १८६८ ई० में अपने एक लेख में सर्वप्रथम इस भाषा के लिय 'भोजपुरी' शब्द का प्रयोग किया है।[1] सभवतः उन्होंने उस समय में प्रचलित इस शब्द का व्यवहार किया है।

भोजपुरी लोगों के लिये अन्य शब्दों का प्रयोग

भोजपुरी लोग तथा उनकी भाषा के लिए दूसरे शब्दों का भी कहीं-कहीं प्रयोग पाया जाता है। मुगल काल में दिल्ली के आसपास के स्थानों में भोजपुरी लोगों के लिए 'बकसरिया' शब्द का भी प्रयोग किया जाता था। यह शब्द 'बक्सर' से बना हुआ है जो भोजपुर के पास ही एक बड़ा कस्बा है। 'बकसरिया' शब्द का व्यवहार विशेषकर उन सिपाहियों के लिए किया जाता था जो भोजपुरी प्रदेश से आते थे। उस समय में बक्सर एवं भोजपुर ये दोनों ही बड़े प्रसिद्ध भोजपुरी केन्द्र थे जहाँ से १७वीं एवं १८वीं शताब्दी में मुगल सेनाओं के लिये सिपाहियों की भर्ती की जाती थी। जब अंग्रेज लोगों ने १८वीं शताब्दी में बंगाल में अपनी सेना के लिये भर्ती शुरू की तब उन्होंने भी इसी शब्द को बक्सरीज़ (Buxeries) के रूप में अपनाया।[2]

उक्त विभिन्न नामों के अतिरिक्त छपरा (बिहार प्रान्त का एक जिला) की बोली को छपरहिया, बनारस की बोली को बनारसी और बाँगर की बोली को 'बँगरही' कहा जाता है। बाँगर वह भूमिखड (ट्रेक्ट) है जो बलिया के पश्चिम तथा आजमगढ़ के पूर्व में स्थित है और जो गंगा की बाढ़ से सिंचित नहीं होता है। इन बोलियों में स्थानीयता का बहुत कुछ पुट है तथा उच्चारण संबंधी एवं व्याकरण संबंधी इनकी निजी विशेषतायें भी हैं। इसीलिये भोजपुरी के अन्तर्गत होने पर भी अपनी विशेषताओं के कारण इनको पृथक नाम प्राप्त है।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भोजपुरी भाषा के लिये मल्ली शब्द का प्रयोग अधिक उचित स्वीकार किया है।[3] महात्मा बुद्ध के समय में षोड़श महाजनपदों में 'मल्ल' भी एक जनपद था, परन्तु उसकी निश्चित सीमायें क्या थीं यह कहना नितान्त कठिन है। यद्यपि मल्ल जनपद की सीमा वर्तमान गोरखपुर जिले से—जहाँ भोजपुरी बोली जाती है—संबंधित थी और इस कारण इस

1. General of Royal Asiatic Society Part 3, p. 483–508. Notes on the Bhojpuri dialects of Hindi spoken in western Bihar.
2. William Irvin ; The army of the Indian Mughuls (लन्दन १९०३) पृ० १६८–६९।
३. हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया; १३ अधिवेशन, सभापति का भाषण।

प्रदेश को मल्ल के नाम से पुकार सकते हैं परन्तु अब भोजपुरी के स्थान पर इस शब्द को चालू करना नितान्त अनुचित एवं अव्यावहारिक है क्योंकि भोजपुरी का प्रयोग कम से कम ३०० वर्षों से होता चला आ रहा है और यह नाम पूर्ण रूप से प्रचलित हो गया है।

भोजपुरी भाषा का व्यावहारिक एवं व्यापक प्रयोग तथा प्रेम

भोजपुरी एक जीवन्त भाषा है। जिस प्रकार इसके बोलने वालों में शौर्य, उत्साह एवं जीवट के गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार इस भाषा में भी जीवट है। यद्यपि प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा, इस क्षेत्र में, बालकों की मातृभाषा (भोजपुरी) में न देकर हिन्दी खड़ी बोली में दी जाती है और लिखने पढ़ने की साहित्यिक भाषा भी आधुनिक हिन्दी है फिर भी भोजपुरी भाषा भाषियों के हृदय में इस भाषा की प्रतिष्ठा एवं गौरव बहुत बड़ा है। भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक भाग में वहाँ के लोग राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक सभी प्रकार के विषयों की मीमांसा अपनी प्रिय मातृभाषा में ही करते हैं। सभी प्रकार की कथा, वार्तायें एवं उपदेश इसी भाषा में दिये जाते हैं। विवाह, यज्ञोपवीत एवं अन्य अवसरों पर हस्तलिखित निमन्त्रण-पत्र भोजपुरी में लिखकर भेजे जाते हैं। सभी मंगल कृत्यों के अवसर पर स्त्रियाँ भोजपुरी में गीत गाती हैं जिन्हें जनता बड़े रुचि से सुनती एवं पसन्द करती है। विवाह के अवसर पर आजकल जो विदेसिया नाटक खेला जाता है उसकी भाषा ठेठ भोजपुरी होती है। मिर्जापुर, बनारस एवं बलिया जिले में जो कजली गाई जाती है उसकी भाषा विशुद्ध भोजपुरी है। इस प्रकार भोजपुरी का प्रयोग सभी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अवसरों पर किया जाता है।

भोजपुरी में साहित्य सृजन के अभाव का कारण

भोजपुरी भाषा के प्रति इसके बोलने वालों का अगाध प्रेम होने पर भी यह बात अत्यन्त आश्चर्यजनक है कि इस भाषा में साहित्य की विशेष सृष्टि नहीं हुई। जिस प्रकार आजकल इसमें विशेष साहित्यिक रचना नहीं हुई है उसी प्रकार प्राचीन काल में भी इसमें ग्रन्थों का प्रणयन प्रायः नहीं हुआ। इसके अनेक कारण हैं। काशी—जो भोजपुरी प्रदेश में अवस्थित है—भारतीय संस्कृति का केन्द्र है। यहाँ संस्कृत के पठन-पाठन की सदा से प्रधानता रही है। धार्मिक एवं सांस्कृतिक केन्द्र होने के कारण यहाँ देववाणी (संस्कृत) की ही अभ्युन्नति हुई। अतः भोजपुरी प्रदेश के ब्राह्मणों ने जिनपर साहित्य सृष्टि का विशेष भार था अपनी मातृभाषा की उपेक्षा कर देववाणी संस्कृत को ही अपनाया और उसी की अभिवृद्धि में अपना

समय एवं शक्ति को लगाया। आज भी काशी में भोजपुरी प्रदेश के ही निवासी पंडितों की प्रधानता और बहुलता है। यदि इन पंडितों ने संस्कृत के अध्ययन में अपना समय न लगाया होता और भोजपुरी की उपेक्षा न की होती तो आज भोजपुरी का इतिहास कुछ दूसरा ही होता।

भोजपुरी में साहित्य सृष्टि के अभाव का दूसरा कारण इस भाषा का राजाश्रय प्राप्त नहीं करना है। प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय का मत है, "भोजपुरी साहित्य की अभिवृद्धि न होने का प्रधान कारण है राजाश्रय का अभाव। भोजपुर प्रदेश में किसी प्रभावशाली, व्यापक, प्रतापी नरेश का पता नहीं चलता। अधिकतर इसमें किसानों की ही बस्तियाँ हैं। किसी गुणग्राही नरेश का आश्रय न मिलने से इस भाषा का साहित्य समृद्ध न हो सका।"[1]

भोजपुरी ने किसी प्रतिभाशाली कवि की प्रतिभा का प्रसाद प्राप्त नहीं किया। व्रजभाषा को सूर और बिहारी का वैभव प्राप्त था, अवधी को जायसी और तुलसी ने अपनाया था। मैथिली को विद्यापति के रूप में 'कविता कामिनी कान्त' मिला था और बँगला को चंडीदास के रूप में 'मधुर कोमल कान्त पदावली' कहने वाला उपलब्ध हुआ था, परन्तु भोजपुरी को न तुलसी की ही प्रतिभा मिली और न बिहारी की वाग्विभूति, न विद्यापति का कोकिल कंठ और न चंडीदास का मधुर पद।

ऐसी दशा में इसका समृद्ध साहित्यिक भाषाओं में न पनपना स्वाभाविक ही है। भोजपुरी प्रदेश में कवि अवश्य हुए परन्तु उनमें से अधिकांश ने हिन्दी (खड़ी बोली) को अपनी प्रतिभा का माध्यम बनाया। इस कारण भी भोजपुरी साहित्य की वृद्धि न हो सकी।

भोजपुरी भाषा का अध्ययन

आधुनिक इंडो आर्यन भाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का इतिहास कुछ बहुत पुराना नहीं है। आज से लगभग ७०—८० वर्ष पूर्व सर रामकृष्ण भंडारकर और डा० बीम्स के अनुसन्धानों से इसका श्रीगणेश होता है। भोजपुरी के संबंध में सर्वप्रथम अनुसन्धानकर्ता डा० बीम्स थे जिन्होंने अपने 'नोट्स आन दि भोजपुरी डायलेक्ट्स आफ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार' शीर्षक एक लेख में इसका वैज्ञानिक विश्लेषण किया।[2] श्री जे० आर० रीड

१. भोजपुरी ग्राम गीत, भाग १, भूमिका पृ० १७।
इस मत के खण्डन के लिये देखिये।
दुर्गाशंकर सिंह भो० लो० गी० भूमिका पृ० ६६—६८।

२, जे० आर० ए० एस० वोल्यूम ३ (१८६८) पृष्ठ ४८६—५०८।

ने भी अपने 'नोट्स आन दि डायलेक्ट करेन्ट इन आजमगढ़' शीर्षक लेख में भोजपुरी भाषा के व्याकरण पर प्रचुर प्रकाश डाला है।[1] सन् १८८० ई० में डा० ए० एफ० रुडाल्फ हार्नली ने अपना सुप्रसिद्ध व्याकरण ग्रन्थ प्रकाशित किया जिसमें पूर्वी हिन्दी (Estern Hindi) के अन्तर्गत भोजपुरी व्याकरण की बहुमूल्य सामग्री उपस्थित की गई है।[2] डा० हार्नली ने बनारस की पश्चिमी भोजपुरी को पूर्वी हिन्दी का नाम दिया है। भाषा शास्त्र की दृष्टि से इस ग्रन्थ का मूल्य बहुत अधिक है क्योंकि यह ऐतिहासिक तथा तुलनात्मक दोनों शैलियों से युक्त है। डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरी भाषा के अध्ययन के लिये प्रचुर सामग्री उपस्थित की है जिनका विस्तृत वर्णन अग्रिम अध्याय (भोजपुरी साहित्य) में किया जायगा। यहाँ इतना जान लेना आवश्यक है कि इस विद्वान् ने भोजपुरी के अध्ययन के लिये सामग्री ही नहीं उपस्थित की बल्कि स्वयं इस विषय में प्रशंसनीय शोध कार्य किया है। डा० ग्रियर्सन द्वारा सम्पादित लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया भाग ५ खंड २ में भोजपुरी भाषा संबंधी पठनीय सामग्री प्रचुर परिमाण में दी गई है। इस विशालकाय ग्रन्थ में भोजपुरी नामकरण का कारण, इस भाषा के बोलने वालों की संख्या, इसका विस्तार तथा इसका व्याकरण दिया हुआ है। साथ ही भोजपुरी की विभिन्न बोलियों के उदाहरण भी उनकी विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए दिये गये हैं। अन्त में इस भाषा का स्थूल व्याकरण (स्केलेटन ग्रामर) भी प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार ग्रियर्सन ने इस ग्रन्थ में भोजपुरी भाषा संबंधी विपुल सामग्री उपस्थित की है। इनकी दूसरी पुस्तक 'सेवेन ग्रामर्स आफ दि डायलेक्ट्स एण्ड सबडायलेक्ट्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज' है, जिसमें भोजपुरी भाषा का व्याकरण विस्तृत रूप में दिया गया है। इसी ग्रन्थ में बिसेसरप्रसाद नामक किसी सज्जन के द्वारा संग्रहीत छपरा जिला की भोजपुरी के उदाहरण स्वरूप कुछ कथाओं और संभाषणों का अनुवाद भी दिया गया है। इन्होंने अपने 'बिहार पीजेण्ट लाइफ' नामक पुस्तक में हजारों भोजपुरी शब्दों का संग्रह विभिन्न वस्तुओं के नाम के रूप में किया है।

फेलेन की 'न्यू हिन्दुस्तानी इंगिलिश डिक्शनरी'—जो सन् १८७६ में प्रकाशित हुई थी—में भोजपुरी शब्दों, खेती के गीतों, मुहावरों और कहावतों का अच्छा संग्रह उपलब्ध होता है। परन्तु उपर्युक्त सभी विद्वानों का कार्य प्रशंसनीय होने पर अधूरा या आंशिक ही रहा है। किसी भी विद्वान् ने भोजपुरी भाषा के ऊपर सर्वांगीण गवेषणा नहीं की।

---

1. Settlement report for 1877 apendics No. 2.
2. Comparative grammer of the Gaudian languages.

प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी के अध्यापक डाक्टर उदयनारायण तिवारी एम. ए., डि. लिट् ने इस भाषा के समस्त अंगों पर वैज्ञानिक पद्धति से 'दि ओरिजिन एंड डेवलेपमेण्ट आफ भोजपुरी' नामक थीसिस में गंभीरतापूर्ण विचार किया है।

कृष्णदेव उपाध्याय ने भी अपने भोजपुरी ग्राम गीत भाग १ के अन्त में कुछ भोजपुरी शब्दों का संग्रह उपस्थित किया है तथा दूसरे भाग में उन्होंने पुस्तक के अन्त में दी गई टिप्पणियों में अनेक भोजपुरी शब्दों की भाषा शास्त्र-संबंधी निरुक्ति बतलाई है।

भोजपुरी भाषा का विस्तार

भोजपुरी भाषा लगभग ५० हजार वर्गमील में फैली हुई है। इसकी सीमान्त रेखायें किसी एक प्रान्त की राजनैतिक सीमा से संबद्ध नहीं है। भोजपुरी भाषा के प्रधान केन्द्र यू० पी० के पूर्वी जिले और बिहार प्रान्त के पश्चिमी जिले हैं। परन्तु इन जिलों के अतिरिक्त भी यह भाषा बोली जाती है।[1]

गंगा नदी से उत्तर इस भाषा (भोजपुरी) की सीमा मुजफ्फरपुर जिले के पश्चिमी भाग की मैथिली है। फिर इस नदी के दक्षिण इसकी सीमा गया और हजारीबाग की मगही से मिल जाती है। वहाँ से यह सीमान्त रेखा दक्षिण-पूर्व की ओर हजारीबाग की मगही भाषा के उत्तर घूमकर सम्पूर्ण रांची पठार और पलामू एवं रांची जिले के अधिकांश भागों में फैल जाती है। दक्षिण की ओर यह सिंहभूमि की उड़िया और गंगपुर स्टेट की तदेशीय भाषा से परिसीमित होती है। यहाँ से भोजपुरी की सीमा जसपुर रियासत के मध्य से होकर रांगी पठार के सरहद के साथ-साथ दक्षिण की ओर जाती है जिससे सरगुजा और पश्चिमीय जसपुर की छत्तीसगढ़ी भाषा से इसका विभेद होता है। पलामू के पश्चिमीय प्रदेश से गुजरने के बाद भोजपुरी भाषा की सीमा युक्तप्रान्त के मिर्जापुर जिले के दक्षिण प्रदेश में फैलकर गंगा तक पहुँचती है। यहाँ यह गंगा के बहाव के साथ-साथ पूर्व की ओर घूमती है और बनारस के निकट पहुँचकर गंगा पार कर जाती है। इस प्रकार मिर्जापुर जिले के गांगेय प्रदेश के केवल अल्प भाग में ही इसका प्रसार है। मिर्जापुर के दक्षिण में छत्तीसगढ़ी से इसकी भेंट होती है परन्तु उस जिले के पश्चिमी भाग के साथ-साथ उत्तर की ओर घूमने पर इसकी सीमा पश्चिम में पहले बघेलखंड की बघेली और फिर अवध की अवधी से जा लगती है।

१. भोजपुरी भाषा के विस्तार के लिये देखिये—
मानचित्र परिशिष्ट अन्तिम।

गंगा को पार करके भोजपुरी की सीमा फैजाबाद के जिले में सरयू नदी के निकट टाँडा तक सीधे उत्तर की ओर चली जाती है। इस प्रकार इसका विस्तार बनारस जिले की पश्चिमीय सीमा के साथ-साथ जौनपुर जिले के बीचो-बीच और आजमगढ़ जिले के पश्चिमीय भाग के साथ फैजाबाद जिले के आरपार फैल जाता है। टाँडा तहसील में इसका विस्तार सरयू नदी के साथ-साथ पश्चिम की ओर घूमता है और तब उत्तर की ओर हिमालय के नीचे की श्रेणियों तक बस्ती जिला को अपने में शामिल कर लेता है। इस विस्तृत भूभाग के अतिरिक्त—जिसके एक भाग में भोजपुरी बोली जाती है—भोजपुरी थारुकी जंगली जातियों द्वारा, जो गोंडा और बहराइच के जिलों में बसते हैं, मातृभाषा के रूप में व्यवहृत की जाती हैं।[१]

भोजपुरी भाषा भाषियों की संख्या

जिस भूभाग में भोजपुरी भाषा बोली जाती है उसका क्षेत्रफल लगभग ५० हजार वर्गमील है। मातृभाषा के रूप में भोजपुरी भाषाभाषियों की संख्या दो करोड़ २०,०००,००० है परन्तु मगही बोलने वालों की संख्या ६२,३५,७८२ है और मैथिली भाषियों की संख्या एक करोड़ १०,०००,००० है। इस प्रकार संख्या की दृष्टि से भी भोजपुरी बोलने वालों की संख्या बिहार की इन दोनों बोलियों के भाषियों की सम्मिलित संख्या से कहीं अधिक है।[२] सन् १९२१ ई० की जनमत गणना के अनुसार इसके बोलने वालों की संख्या २,०४,१२,६०८ है अर्थात् दो करोड़ से भी अधिक है।[३] नीचे हम हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों की संख्या दे रहे हैं जिसके देखने से यह स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी बिहारी भाषाओं में ही सबसे बड़ी नहीं है बल्कि हिन्दी की अन्य बोलियों के भाषियों से भी इसके बोलने वालों की संख्या कहीं अधिक है।[४] यह भोजपुरी का प्रचुर प्रचार व्यक्त करता है।

१. भोजपुरी भाषा के विस्तार के विवेचन के लिये देखिये।
   क. डा० ग्रियर्सन : लि० स० इ० भाग ५ खंड २ पृ० ४०–४१।
   ख. डा० तिवारी : दि ओरिजिन एण्ड डेवलेपमेण्ट आफ भोजपुरी अप्रकाशित पृ० २४–२६। इस विषय में डा० तिवारी का मत ग्रियर्सन के मत से थोड़ा भिन्न है।

2. 'See far, therefore, as regards the number of its speakers it is much more important than the other two Bihari dialects put together' L. S. I. Part 5, Book 2, p. 41.

३. बलदेव उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० १७।

४. लि० स० इ० भाग ५ खंड २

बोली	भाषियों की संख्या
१. अवधी	१४,१७०,७५०
२. ब्रज	७८, ३४,२७४
३. बघेली	१६,०००,०००
४. बुन्देलखंडी	४६, १२,७५६
५. छत्तीसगढ़ी	३३, ०१,७८०

यदि संख्या की दृष्टि से विचार करते हैं तो भोजपुरी हिन्दी भाषा की अन्य बोलियों से ही आगे नहीं बढ़ गई है बल्कि वह अत्यन्त समृद्ध मराठी भाषा से भी बढ़ी है। मराठी बोलने वालों की संख्या १,८७,६७,८३१ है अर्थात् दो करोड़ से भी कम है, यहाँ भोजपुरी भाषियों की संख्या दो करोड़ से कहीं बहुत ही अधिक है। "इस प्रकार भोजपुरी अपनी हमजोलियों से ही संख्या तथा विस्तार में बढ़कर नहीं है, प्रत्युत दूरस्थित अपनी बहनों ब्रज और मराठी से भी कहीं बढ़-चढ़ कर है।"[१]

सन् १९४१ में भारतवर्ष की आबादी ३८,८०,००,००० थी। इस अनुपात से भोजपुरी भाषियों की कुल संख्या २,६४,००,००० आती है। अर्थात् भारतवर्ष की कुल जन-संख्या का १४.५ प्रतिशत भोजपुरी भाषियों की संख्या है।

भोजपुरी लोग साहसी प्रकृति के होते हैं। वे अपनी जीविका के लिये कलकत्ता, रंगून और हांगकांग तक पहुँचे हुए हैं। इसके अतिरिक्त बम्बई, मद्रास आदि शहरों में भी वे गये हैं। परन्तु उनका प्रधान निकास पूरब की ही ओर है। भोजपुरी प्रदेश को छोड़कर भोजपुरी लोग कहाँ-कहाँ बिखरे पड़े हैं इसका पता लगाना बड़ा कठिन है। परन्तु डाक्टर ग्रियर्सन ने बंगाल के विभिन्न जिलों और आसाम प्रान्त के चाय के बगीचों में काम करने वाले लोगों की संख्या की तालिका प्रत्येक जिले के क्रम से दी है। इस तालिका के देखने से पता चलता है कि बंगाल प्रान्त के विभिन्न जिलों में रहने वाले भोजपुरियों की समस्त संख्या ३,४६,८७८ है। इसी प्रकार से आसाम के विभिन्न स्थानों के चाय बगानों में काम करने वाले भोजपुरियों की संख्या ६५,७३० है। इस प्रकार भोजपुरी प्रदेश में और उसके बाहर भोजपुरी भाषियों की कुल संख्या २,००,००,०००+३,४६,८७८+६५,७३० अर्थात् २,०४,१२,६०८ है। यह संख्या किसी भी भाषा के लिये गौरव एवं सम्मान की वस्तु हो सकती है।

पीछे हम कह आए हैं कि बिहारी भाषा के अन्तर्गत तीन भाषायें मानी जाती हैं—१. मैथिली, २,. मगही और ३. भोजपुरी। परन्तु प्रथम दोनों

१. बलदेव उपाध्याय भो० ग्रा० गी०, भाग १, भूमिका—पृष्ट १७।

भाषाओं—मैथिली और मगही—का आपस में इतना अधिक साम्य है कि बिहारी को दो भागों में ही विभक्त करना अधिक उचित प्रतीत होता है। पूर्वी बिहारी—जो मैथिली और मगही के भेद से द्विविध मानी गई है और पश्चिमी बिहारी (भोजपुरिया) इन दोनों में उच्चारण तथा रूपगत अनेक भेद दीख पड़ते हैं। मैथिली में विशेषतः और मगही में सामान्यतः 'अकार' का उच्चारण बँगला के उच्चारण से मिलता-जुलता है। क्योंकि 'अ' की ध्वनि ओकार के समान मुँह को गोलाकार बनाने से होती है। परन्तु भोजपुरी में अकार का उच्चारण पश्चिमी हिन्दी के समान नितान्त सुस्पष्ट अकार ही होता है। भोजपुरी में अकार की एक विभिन्न ध्वनि है जो 'हवे' (है) शब्द में वर्तमान है। यह कुछ विचित्र ध्वनि है और कुछ 'ओकार' के समान मुँह को अधिक गोल बनाने पर उच्चरित होती है।

भोजपुरी का अन्य बिहारी भाषाओं से पार्थक्य

मध्यम पुरुष के लिये मैथिली और मगही में आदरार्थ बोलते हैं 'अपने'। परन्तु भोजपुरी में इसके लिये 'रउरे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। यह 'रउरे' तथा 'राउर' (आपका) का प्रयोग भोजपुरी का स्पष्ट संकेत है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'मोहि लागत दुख रउरे लागा' और 'जो राउर अनुशासन पाऊँ' आदि चौपाइयों में इन्हीं भोजपुरी शब्दों का प्रयोग किया है। सहायक क्रिया के रूप में या सत्तार्थक धातु के लिये मैथिली में 'छइ' या 'अछि' का प्रयोग किया जाता है। मगही में 'हइ' प्रयुक्त होता है परन्तु भोजपुरी में 'बाटी', 'बाड़ी' या 'बानी' का प्रयोग होता है। भोजपुरी के इस 'बाटे' या 'बाटी' का उपर्युक्त दोनों बोलियों में नितान्त अभाव है। 'हेइ' (है) क्रिया—जो प्रायः तीनों बोलियों से समान रूप से पाई जाती है—का रूप भिन्न-भिन्न कालों में भोजपुरी में इतना विभिन्न होता है कि इसे पहिचानना भी कठिन है कि ये एकही क्रिया के विभिन्न रूप हैं। प्रधान क्रिया के रूप में भोजपुरी में वर्तमान काल में 'देखी ला' (मैं देखता हूँ) का प्रयोग पाया जाता है जो अपनी विशेषता रखता है। ऐसा प्रयोग अन्य बोलियों में उपलब्ध नहीं होता।

संज्ञाओं के रूपों में भी भेद दीख पड़ता है। भोजपुरी में षष्ठी कारक का प्रत्यय 'के' है परन्तु मैथिली और मगही में इसके लिये 'क', 'कर' या 'केर' का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त भोजपुरी के षष्ठीकारक की संज्ञा का रूप ओबलीक होता है। परन्तु अन्य दोनों बोलियों में इसका नितान्त अभाव है। अन्ततोगत्वा भोजपुरी का व्याकरण यहाँ के निवासियों के स्वभावानुसार व्यावहारिक तथा सीधा है यह मैथिली व्याकरण के समान जटिल तथा विषम

नहीं। डाक्टर ग्रियर्सन[1] ने इन बोलियों के पार्थक्य को स्पष्ट करते हुए एक प्राचीन पद्य को उद्धृत किया है :

कस कस कसमर, किना मगहिया,
का भोजपुरिया, की तिरहुतिया।

भोजपुरी का अन्य भाषाओं (ब्रज) से पार्थक्य

आजकल हिन्दी के सामान्य नाम से जो भाषा अभिहित की जाती है उसको भाषा-विज्ञान वेत्ताओं ने तीन बड़े भागों में बाँटा है। १. पश्चिमी हिन्दी (शौरसेन अपभ्रंश से उत्पन्न) २. बिहारी (मागध अपभ्रंश से उत्पन्न) तथा पूर्वी हिन्दी (अर्धमागधी प्राकृत से उत्पन्न)। मागधी से उत्पन्न होने के कारण भोजपुरी का संबंध बँगला के साथ जितना घनिष्ट है, उतना पश्चिमी हिन्दी ब्रजभाषा आदि से नहीं। ब्रजभाषा और बिहारी का भेद उनके क्रिया पद पर दृष्टि डालने से स्पष्ट हो जाता है। संस्कृत के 'क' प्रत्ययान्त भूतकालिक क्रिया पद 'मारितः' का परिवर्तन दोनों भाषाओं में देखने से पारस्परिक पार्थक्य साफ दीखता है। शौरसेनी भाषा में 'मारितः' का अपभ्रंश हुआ 'मारिदो' जो प्राकृत के नियमानुसार 'मारिदो' बन गया। इससे ब्रज भाषा का भूतकालिक पद 'मार्यो' तैयार होता है। यही कारण है कि शौरसेनी से उद्भूत समस्त भाषाओं तथा बोलियों में 'ह्यो' प्रत्यय भूतकाल की सूचना के लिये धातु के अन्त में प्रयुक्त होता है। इधर मागधी में तकार के स्थान पर लकार होने से 'मारितः' 'मारिलो' के रूप में परिवर्तित हो गया है। मागधी से संभूत भाषाओं का भूतकाल इसी प्रकार 'ल' प्रत्यय के योग से बनता है।

इस संबंध में एक बात और ध्यान देने योग्य है। ब्रज भाषा के भूतकालिक रूपों में पुरुष का निर्देश कथमपि नहीं होता। 'मार्यो' कहने से यह पता नहीं चलता कि किसने मारा। उसने, तूने या मैंने मारा। इस पुरुष संबंधी त्रुटि का मार्जन मागधी से उत्पन्न भाषाओं में स्पष्ट दीख पड़ता है। इनमें क्रिया के आगे पुरुष वाचक सर्वनाम का संक्षिप्त रूप भी जुटा हुआ मिलता है। बँगला में 'मारिलाम' (मैंने मारा) पद के आगे 'आमि' (मैंने) देने की कुछ भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि उत्तम पुरुष का द्योतक सर्वनाम पद 'आम' के रूप में उसमें पहले से जोड़ा गया है। इसी प्रकार भोजपुरी के भूतकालिक रूप 'मारलों' में भूतकालिक 'ल' प्रत्यय के साथ उत्तम पुरुष का सूचक 'ओं' भी विद्यमान है। 'मारिलसि' और 'मारिलन' में प्रथम पुरुष के एक वचन और बहुवचन सूचक सर्वनाम पद क्रमशः रखे गये हैं।

१. सेविन ग्रामर्स, पार्ट १, फस्ट पेज।

भविष्य काल में भी ठीक इसी प्रकार का विभेद है। व्रज भाषा में जहाँ 'ह्' प्रत्यय के योग से भविष्य कालिक रूप तैयार होता है, वहाँ बिहारी में 'ब' प्रत्यय ही उसका काम करता है। व्रंज भाषा का 'चलिहै' शब्द संस्कृत के 'चलिष्यति' से बना हुआ है और चलिस्सदि, चलिहइ के रूपान्तरों को पार कर वर्तमान रूप में आता है। किन्तु भोजपुरी का भविष्यकालिक रूप 'चलवि' चलिष्यति से न निकलकर कर्मकर्तृक 'चलितव्यम्' से निकला है। चलितब्यं चलितब्बं—चलिअब्बं—चलब्बं रूपों को तै कर यह शब्द 'चलब' के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है। परन्तु भोजपुरी में इस विषय में एक विचित्रता दीख पड़ती है। इसमें उत्तम और मध्यम पुरुष के रूपों में तो 'ब' ही लगता है परन्तु प्रथम पुरुष में व्रज तथा अवधी की भाँति 'ह्' प्रत्यय जोड़ा जाता है।

भोजपुरी की विभिन्न बोलियाँ

भोजपुरी के तीन प्रधान भेद माने गये हैं—१. आदर्श भोजपुरी (स्टैंडर्ड भोजपुरी) २. पश्चिमी भोजपुरी ३. नागपुरिया। इसके अतिरिक्त इसकी दो और उपबोलियाँ (Sub-dialects) भी हैं जो मधेसी और थारू के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन बोलियों का वर्णन क्रमशः प्रस्तुत किया जाता है।

विस्तार

आदर्श भोजपुरी प्रधानतया शाहाबाद, बलिया, गाजीपुर जिले के पूर्वी भाग, और घाघरा (सरयू) एवं गंडक के दोआब में बोली जाती है। यह एक लम्बे भूभाग में फैली हुई है। पश्चिमी भोजपुरी जैसा कि इसके नाम से विदित होता है। आजमगढ़, जौनपुर, बनारस, गाज़ीपुर का पश्चिमी भाग, तथा मिर्जापुर जिले के उस दक्षिणी भाग में बोली जाती है जो गंगा से संबद्ध है। नागपुरिया छोटा नागपुर में बोली जाती है। मधेसी चम्पारन जिले में प्रयुक्त होती है और थारू बोली गोंडा और बहराइच के जिलों के उस प्रदेश में बोली जाती है जो नेपाल की तराई से संबद्ध है। इस प्रकार भोजपुरी की विभिन्न बोलियों का विस्तार बहुत बड़ा है।

आदर्श भोजपुरी

आदर्श भोजपुरी भोजपुर गाँव के चारों ओर बोली जाती है। अतः इस स्थान के आसपास बोली जानेवाली बोली का आदर्श माना जाना स्वाभाविक ही है। आदर्श भोजपुरी एक विस्तृत भूभाग में फैली हुई है। इसमें अनेक स्थानीय विशेषतायें पाई जाती हैं। इसमें सबसे प्रधान एवं स्पष्ट प्रतीयमान पार्थक्य यह है कि जहाँ शाहाबाद, बलिया और गाज़ीपुर आदि दक्षिणी जिलों में सहायक क्रिया में 'ड' का प्रयोग किया जाता है वहाँ उत्तरी जिलों में 'ट' का प्रयोग होता है। इस प्रकार उत्तरी आदर्श भोजपुरी में जहाँ 'बाटे'का

प्रयोग किया जाता है वहाँ दक्षिणी आदर्श भोजपुरी में 'बाड़े' प्रयुक्त होता है। उदाहरणार्थ बलिया की आदर्श भोजपुरी में हम कहते हैं 'मोहन घर में बाड़े'। परन्तु गोरखपुर की भोजपुरी में 'मोहन घर में बाटें' कहा जाता है। सारन जिले के उत्तर और मध्य में क्रिया के भूतकाल का एक विचित्र रूप पाया जाता जाता है जिसमें 'ल' के स्थान पर 'उ' जोड़ा जाता है। परन्तु यह बात अन्यत्र नहीं पाई जाती है। उत्तरी गोरखपुर की भाषा में शाहाबाद की भाषा से अन्तर अवश्य है परन्तु विशेष नहीं। पश्चिमी गोरखपुर और बस्ती जिले की भाषा में आदर्श भोजपुरी से थोड़ा अन्तर है। और तो क्या, पूर्वी गोरखपुर––आधुनिक देवरिया जिला––और पश्चिमी गोरखपुर की भाषा में भी अन्तर है जो वहाँ की बोली सुनने पर तत्काल ही मालूम हो सकता है। पूर्वी गोरखपुर की भाषा को गोरखपुरी कहा जाता है और पश्चिमी गोरखपुर एवं बस्ती जिले की भाषा को 'सरवरिया' नाम दिया गया है।

'सरवरिया' शब्द 'सरुआर' से निकला हुआ है जो 'सरयूपार' का अपभ्रंश है। सरयूपार का अर्थ है वह देश या प्रदेश जो सरयू (घाघरा) के उस पार हो। इस प्रकार इस प्रदेश के अन्तर्गत बहराइच, गोंडा, बस्ती, गोरखपुर एवं सारन ये सभी जिले आते हैं। परन्तु स्थानीय परम्परा के अनुसार आजकल सरुआर उसी प्रदेश को कहते हैं जो फैजाबाद जिले के अयोध्या से लेकर देवरिया जिले के मझौली राज तक फैला हुआ है।

सरवरिया बोली समस्त बस्ती जिले में और गोरखपुर के पश्चिमी भाग में बोली जाती है। सरवरिया और गोरखपुरी में शब्दों––विशेषतः संज्ञा शब्दों––के प्रयोग में भिन्नता पाई जाती है।

बलिया और सारन दोनों जिलों में आदर्श भोजपुरी बोली जाती है परन्तु कुछ शब्दों के उच्चारण में दोनों में अन्तर है। बलिया या शाहाबाद के लोग 'ड' का उच्चारण 'ड़' ही करते हैं, परन्तु छपरा वाले 'र' उच्चारण करते हैं। उदाहरणार्थ जहाँ बलियानिवासी 'घोड़ा-गाड़ी आवत बा' कहता है, वहाँ छपरहिया जवान 'घोरा गारी आवत बा' बोलता है। इस प्रकार आदर्श भोजपुरी में भी स्थान विशेष के कारण थोड़ा अन्तर दीख पड़ता है। आदर्श भोजपुरी का नितान्त निखरा एवं विशुद्धतम रूप बलिया जिले में बोला जाता है जिसका केवल एक ही उदाहरण यहाँ देना पर्याप्त होगा। यह उद्धरण ठेठ आदर्श भोजपुरी का है :

"कपिलदेव आजु हम तोहरा के ढेर दिन पर देखत बानीं। अतना दिन तूं काँहा रहला हा। जब तब हम तोहरा बारे में तोहरा गाँव के लोगन से पूछत रहलीं हां, मगर केहू हाल साफ ना बतावत रहल हा। अब कह तोहरा घर के सभी बेकति अच्छी तरे बाड़ी नूं।

जीजोध भइया तूं का पूछत बाड़। जब हमरा हाल के सुनब त तोहरो दुःख बिआपी औ आंखिन में से लोर गिरावे लगब। जब हम एठां से घरे गइलीं तब से गिरहती के काम में बझलीं। दोसर केहू हमरा घर में अइसन नइखे जेकरा से हमके एको लेहजा के आराम मिली। काहे से कि हमरा बाप के अँखिये जबाब दे दिहलिस ओ हमरा जेठ जना भाई हमरा पहुँचला का पहिले ही परदेस चलि गइले अवर तब से एको चिठियो ना भेजले हा। हमार काकाजी अपना लरिका बाला समेत अलगे रहे ले। एही सब ओजह से हम राति दिन फिकिरि ओ तरदुत से पिसाइल रही ले। महराज के तहसीलदार मालगुजारी खातिर दुइ पियादा तनात कइले बाड़े। मामा से रुपया मँगलीं त ऊ साफे इनकार कइलें। खीसा है कि—

"घर के मारल बन में गइलीं
बन में लागल आगि।"[१]

पश्चिमी भोजपुरी फैजाबाद, जौनपुर, आजमगढ़, बनारस, गाजीपुर का पश्चिमी भाग और मिर्जापुर जिले के मध्यभाग में बोली जाती है। जैसा कि

पश्चिमी भोजपुरी

हमने पीछे कहा है, पश्चिमी भोजपुरी इंडोआर्यन भाषा परिवार के पूर्वी समुदाय की सबसे पश्चिमी सीमान्त बोली है जो अवधी आदि से कुछ समानता रखती है।[२] पश्चिमी भोजपुरी के व्याकरण का विस्तृत उल्लेख श्री जे० आर० रीड ने किया है परन्तु यह बहुमूल्य सामग्री कठिनाई से उपलब्ध सेटेलमेण्ट (बन्दोबस्त) रिपोर्ट की फाइलों में दबी पड़ी है।[३] डाक्टर हार्नली ने अपने सुप्रसिद्ध व्याकरण में 'पूर्वी' हिन्दी के नाम से इस बोली का सुन्दर तथा विद्वत्तापूर्ण व्याकरण लिखा है।[४] इस प्रकार भोजपुरी की इस बोली के व्याकरण के संबंध में प्रचुर सामग्री उपलब्ध होती है।

---

१. लिं० स० इ० भाग ५ खंड २ पृ० २१०।

2. Western Bhojpuri is, in fact, the most western outpost of the eastern group of the Indo-Aryan family of languages, and possesses some of the features of its cousins to its west. लिं० स० इ० भाग ५, खंड २ पृ० २४८।

3. J. R. Read report on the settlement operation in the district of Azamgarh. appendix 2 and 3, Allahabad 1881.

4. A. F. R. Hornley-A comparative grammar of the Gaurian languages London 1880.

आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी में बहुत अधिक अन्तर है। संभवतः आदर्श भोजपुरी का अन्य बोलियों से इतना अधिक पार्थक्य नहीं है जितना पश्चिमी भोजपुरी से। पश्चिमी भोजपुरी में करण कारक के लिये क्रिया के आगे 'अन' प्रत्यय का प्रयोग दीख पड़ता है, जो आदर्श भोजपुरी में बिल्कुल ही नहीं है। पश्चिमी भोजपुरी में आदरसूचक के लिये 'तुँह'का प्रयोग दीख पड़ता है परन्तु आदर्श भोजपुरी में इसके लिये 'रउरा' प्रयुक्त होता है। दोनों बोलियों में सहायक क्रिया के दो रूप पाये जाते हैं—'बानी' और 'हवीं'। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में हवीं का रूप 'होईं' पाया जाता है।

आदर्श भोजपुरी एवं पश्चिमी भोजपुरी में अन्तर

उच्चारण की विशेषता से भी अनेक प्रभेद दृष्टिगोचर होते हैं। बलिया जिले में उत्तम पुरुष के रूपों के साथ कुछ अनुस्वार सा मिला रहता है। अतः उसके उच्चारण के लिये नाक की सहायता अनिवार्य रूप से ली जाती है। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी में अनुनासिक का नाम तक नहीं है। 'मैंने काम किया' इसके लिये बलिया जिला के लोग सानुनासिक बोलेंगे 'हम काम कइलीं'। परन्तु पश्चिमी भोजपुरी बोलने वाले बनारसी लोग कहेंगे 'हम काम कइली'। उच्चारण का यह स्पष्ट भेद प्रत्येक मनुष्य को मालूम हो सकता है। अन्य पुरुष के बहुवचन के रूप में भी अन्तर है।

संज्ञा के रूपों में भी एक प्रसिद्ध विशेषता है। जहाँ आदर्श भोजपुरी में संबंध कारक में 'के' का प्रयोग करते हैं, वहाँ पश्चिमी भोजपुरी में 'का' या 'कई' प्रयुक्त होता है। 'के' का परिवर्तित रूप तो 'का' बन जाता है परन्तु 'क' का 'के' होता है। यह बात नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायगी।

आदर्श भोजपुरी	**पश्चिमी भोजपुरी**
१. ओह देस का एक सहर का रहवइया का पास	१. ओह देस के एक सहर के रहवैये के पास
२. कपटी का मरला के कुछुओ दोख नाहीं।	२. कपटी के मरले कई किछउ दोख नाहीं।
३. अपना बाप से कहलन	३. अपने बाप से कहलें।
४. ओह गाँव का कवनो आदमी।	४. ओह गाँव के कवनो आदमी।

सम्प्रदान कारक का परसर्ग (प्रत्यय) इन दोनों बोलियों में भिन्न-भिन्न पाया जाता है। आदर्श भोजपुरी में सम्प्रदान का परसर्ग 'लागि' है, परन्तु बनारस की पश्चिमी भोजपुरी में इसके लिये 'के बदे' या 'वास्ते' प्रयुक्त होता है। जहाँ

आदर्श भोजपुरी में 'तोहरा लागि उड़वों अकास' बोलते हैं वहाँ बनारसी बोली में 'किनली है रजा लाल दुसाला तोरे बदे' कहा जाता है। इन दोनों उदाहरणों से यह पार्थक्य स्पष्ट प्रतीत होता है। एक और उदाहरण लीजिये :—

आदर्श भोजपुरी :—

"तलवा झुरइले कंवल कुम्हलइले
हंस रोयेला बिरह वियोग।
रोवत बाड़ी सरवन के माता
के कांवर ढोइहें मोर।"

पश्चिमी भोजपुरी :—

"हम खरमिटाव कैलीहा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे 'बदे'।
अत्तर तू मल के रोज नहायल कर रजा।
बीसन भरल धयल बा कराबा तोरे 'बदे'।
जानीला आजकल में झनाझन चली रजा।
लाठी, लोहांगी, खंजर और बिछुआ तोरे 'बदे'।"

पश्चिमी भोजपुरी में हिन्दी भाषा के समान विशेषण विशेष्य के लिंग, वचन और कारक के अनुसार बदलता रहता है परन्तु आदर्श भोजपुरी में ऐसी बात नहीं पाई जाती। पश्चिमी भोजपुरी में कहते हैं "बड़े बेटे क इ घर; बड़ी बेटी; बीस बड़े-बड़े घर।" इस प्रकार विशेषण 'बड़ा' शब्द विशेष्य के लिंग और वचन के अनुसार बदलता रहता है। परन्तु आदर्श भोजपुरी में 'नीमन बेटा', 'नीमन बेटी' या 'सुन्नर लड़का', 'सुन्नर लड़की' में नीमन और सुन्नर का रूप परिवर्तित नहीं होता।

इस प्रकार नागपुरिया, मधेसी, सरवरिया और थरुई आदि का पारस्परिक विभेद उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना आदर्श भोजपुरी और पश्चिमी भोजपुरी का है। बलिया की बोली और बनारस की बोली—जो दोनों की प्रतिनिधि स्वरूप है—में उच्चारण तथा रूपगत इतनी विभिन्नता है कि एक बार सुनने पर ही भेद स्पष्ट मालूम पड़ जाता है। बलिया की आदर्श भोजपुरी का उदाहरण पीछे दिया जा चुका है। यहाँ बनारस जिले में बोली जाने वाली पश्चिमी भोजपुरी का नमूना प्रस्तुत किया जाता है[1]—

---

१. बनारसी बोली के विशेष विवरण के लिए देखिये—
वाचस्पति उपाध्याय—नागरी प्रचारिणी पत्रिका में "बनारसी बोली" शीर्षक लेख।

"एक ग्रदमी के दुइठे बेटवा रहलन। ग्रो में से छोटका ग्रपने बाप से कहलेस हे बाबू! जौन कुछ माल ग्रसबाब हमरे बखरा में पड़े तौन हमके दे द। तब ऊ ग्रापन कमाई दूनों के बांट दिहलेस। थोरिके दिन के बितले लहुरका बेटवा सब माल समेट के बड़ी दूर परदेस चल गएल ग्रौर उहाँ सब धन लुचपन में फूंक दिहलेस। जब सब गवाँय चुकल तब ग्रोहि देस में बड़ा काल पड़ल।"

नागपुरिया

नागपुरिया भोजपुरी की ही एक बोली है जो छोटा नागपुर में बोली जाती है। इस पर छत्तीसगढ़ी बोली का प्रभाव ग्रधिक पड़ा हुग्रा है। नागपुरिया को 'सदान' या 'सद्री' के नाम से भी पुकारते हैं ग्रौर मुंडा लोग इसे 'दिबकु काजी' कहते हैं। 'सद्री' का ग्रर्थ यहाँ की प्रादेशिक भाषा में 'बसे हुए' लोगों से है। ग्रतः इस भाषा का 'सद्री' नामकरण का कारण यही जान पड़ता है कि यह एक स्थान पर बसे हुए लोगों की भाषा है, खानाबदोशों की नहीं।

रेवेरेण्ड इ० एच० ह्विटली ने इस भाषा का बड़ा ही पांडित्यपूर्ण व्याकरण लिखा है।[1] नागपुरिया ग्रादर्श भोजपुरी से व्याकरण संबंधी ग्रनेक बातों में पार्थक्य रखती है। जैसा कि ऊपर लिखा गया है नागपुरिया के ग्रनेक शब्द ग्रौर धातु रूप छत्तीसगढ़ी से लिये गये हैं। इस बोली में संज्ञा में निश्चयात्मकता लाने के लिये 'हर' शब्द जोड़ा जाता है तथा किसी संज्ञा का बहुवचन बनाने के लिए उसमें 'मन' प्रत्यय प्रयोग में लाया जाता है। परन्तु यह बात ग्रादर्श भोजपुरी में नहीं पाई जाती है। इसी प्रकार दोनों के पार्थक्य के ग्रौर भी ग्रनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं।[2]

मधेसी

मधेसी शब्द संस्कृत के "मध्यदेश" से निकला है जिसका ग्रर्थ है बीच का देश। चूँकि यह बोली तिरहुत की मैथिली बोली ग्रौर गोरखपुर की भोजपुरी के बीच वाले स्थानों में बोली जाती है, ग्रतः इसका नाम 'मधेसी (ग्रर्थात् वह बोली जो इन दोनों प्रदेशों के बीच में बोली जाय) पड़ गया है। मधेसी चम्पारन जिले में बोली जाती है। यह प्रायः कैथी वर्णमाला में लिखी जाती है। मैथिली से इसमें ग्रनेक बातों में समानता उपलब्ध होती है।

नैपाल की तराई में जो थारू लोग बसते हैं उनकी कोई ग्रपनी भाषा नहीं है। जहाँ कहीं भी वे पाये जाते हैं वहाँ उन्होंने ग्रपने ग्रार्य पड़ोसियों की भाषा

---

१. रेवेरेन्ड ई० एच० ह्विटले—नोट्स आन दि गनवारी डाइलेक्ट आफ लोहरदगा (छोटा नागपुर) कलकत्ता १८९६.

२. लि. स. इ. भाग ५, खण्ड २, पृ० २७७-२८२.

को पूर्ण रूप से अपना लिया है। ये थारू लोग बहराइच से चम्पारन जिले तक पाये जाते हैं और ये भोजपुरी की विकृत रूप वाली बोली को बोलते हैं। यह एक विशेष उल्लेखनीय बात है कि गोंडा और बहराइच जिले के थारू लोग भोजपुरी बोलते हैं, जबकि वहां की भाषा पूर्वी हिन्दी है। हागसन (Hodgson) ने इनकी भाषा के ऊपर बड़ा ही अच्छा प्रकाश डाला है।[1]

थारू

यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि मधेसी और थारू भोजपुरी की उप-बोलियाँ हैं। भोजपुरी की प्रधान बोलियाँ तीन ही हैं, जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है।

भोजपुरी का स्थूल व्याकरण

भोजपुरी का व्याकरण मगही और मैथिली की भाँति जटिल नहीं है। कुछ विशेष अवस्थाओं को छोड़ कर इसकी क्रिया का रूप कर्ता पर अवलम्बित रहता है। कर्म के कारण क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। आदर्श भोजपुरी में उत्तम पुरुष के एकवचन (मैं) का प्रयोग बहुत ही कम होता है, इसके स्थान में सदा बहुवचन (हम) का ही प्रयोग होता है। लेकिन पश्चिमी भोजपुरी में ऐसी बात नहीं है। हाँ, आदर्श भोजपुरी में, पद्यों में एकवचन का प्रयोग अवश्य मिलता है परन्तु वह भी बहुत कम। इसी प्रकार मध्यम पुरुष के एक वचन का प्रयोग तिरस्कार सूचित करता है, जैसे 'तू बाड़'। इसलिए इसके लिए भी बहुवचन का प्रयोग किया जाता है। आदर्श भोजपुरी में आदरसूचन के लिये 'रउरा' या 'रौरा' शब्द का प्रयोग होता है जो अन्य उप-बोलियों में नहीं पाया जाता। इस आदरसूचक "रउरा" शब्द के साथ मध्यम-पुरुष के स्थान पर उत्तम पुरुष के बहुवचन का प्रयोग किया जाता है जैसे "रउरा आईं", परन्तु साधारण मध्यम पुरुष में "तू लोग आव" प्रयुक्त होता है।

भोजपुरी में वर्तमानकालिक रूप एक विशेष प्रकार का होता है, जो नैपाली के भविष्यकालिक रूप से समानता रखता है और जो स्वतः भविष्यकाल में प्रयुक्त भी होता है। यह वर्तमानकालीन धातु में "ला" जोड़ने से बनता है। डा० हार्नली के मतानुसार इस "ला" का अर्थ "गया" है, जो हिन्दी के भविष्य कालिक रूप "गा" की भाँति प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार हिन्दी में 'देखूंगा' और नैपाली में 'देखूला' बोलते हैं उसी प्रकार से भोजपुरी में 'देखीला' बोला जाता है। इसका व्यवहार प्रायः वर्तमानकाल में होता है।

१. हागसन—ज. ए. सो. बं. भाग २६ (१८५७) पृ० ३१७ और आगे।

भोजपुरी अपना निजी धातु-रूप रखती है। जिस प्रकार मगही में 'ही' और मैथिली में 'छी' का प्रयोग होता है उसी प्रकार से भोजपुरी में बाटी, बाड़ी या बानी का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं सहायक क्रियाओं को अन्य धातुओं में जोड़कर क्रियायें बनाई जाती हैं।

संज्ञा

भोजपुरी में प्रत्येक संज्ञा पद के तीन रूप होते हैं: १. लघु २. दीर्घ ३. दीर्घतम। जैसे—घोड़ा, घोड़वा, घोड़उवा; बेटा, बेटवा, बेटउवा; नाऊ, नउवा, नउअवा। इनमें मूल या लघु रूप शब्द-कोश में स्थान पाता है परन्तु दीर्घ और दीर्घतम जनता के मुख में निवास करता है। 'वा' स्वार्थिक प्रत्यय है, परन्तु कभी-कभी दूसरे योग से बने रूपों में अर्थभेद भी पाया जाता है। 'घोड़वा ले आव' इस वाक्य में हमारा अभिप्राय किसी खास घोड़े से है।

भोजपुरी में एकवचन से बहुवचन बनाने के लिये नि, न्ह, या न जोड़ते हैं। जैसे घोड़ा से घोड़नि, घोड़न्ह, या घोड़न रूप बनेंगे। इसी प्रकार घर से घरनि, घरन्ह या घरन बहुवचनान्त रूप बनेंगे। कभी-कभी समूहसूचक 'लोग' और 'सभ' शब्दों के योग से भी बहुवचन बनाया जाता है। जैसे, राजा से राजा लोग और राजा सभ। इसी प्रकार आदमी से 'आदमी लोग' और 'आदमी सभ'।

विभिन्न कारक रूपों को बनाने के लिये अनेक प्रत्यय जोड़ने की व्यवस्था है जिनका उदाहरण सहित उल्लेख नीचे किया जाता है:—

कारक	प्रत्यय	उदाहरण
१. कर्म	के	राम के आम दे द।
२. करण	से, ते, सन्ते, कर्त	कलम से चिट्ठी लिखऽ।
३. सम्प्रदान	लागि, ला	तोहरे लागि फल ले आइल बानी।
४. अपादान	से, ले	घर ले बन तक खोजि अइनीं, उ ना मिलले
५. संबंध	क, के, कई	इ राम के घोड़ा है।
६. अधिकरण	में, मों	घर में दिया बत्ती जलाव।

इनके अतिरिक्त करण और अधिकरण के लिये 'एँ' और 'ए' प्रत्यय शुद्ध कारक प्रत्यय है जिनके पहिले 'आ' का लोप हो जाता है। परन्तु अन्तिम 'ई' या 'ऊ' को ह्रस्व बना दिया जाता है। जैसे घोड़ा से घोड़ें, घोड़े और माली से मलिएँ, मलिए। संबंध कारक में 'क' पर-प्रत्यय जोड़ने के पूर्व, अन्तिम दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर देते हैं, जैसे घोड़ा से घोड़क। परन्तु यदि कोई संज्ञा शब्द

व्यंजनान्त होता है तो 'क' जोड़ने के पूर्व उसमें 'अ' जोड़ते हैं। जैसे घर से घरक। संबंधकारक बनाने के लिये कहीं कहीं 'का' प्रत्यय भी जोड़ते हैं। जैसे, राजा का मन्दिर में।

भोजपुरी में प्रायः सभी पुरुषों में सर्वनाम सूचक शब्द हैं परन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है उत्तमपुरुष के एकवचन का प्रयोग प्रायः नहीं होता। विभिन्न पुरुषों के सर्वनामों का रूप इस प्रकार है :—

सर्वनाम

	एकवचन		बहुवचन	
	साधारण रूप	आदरसूचक रूप	साधारण रूप	आदरसूचक रूप
उत्तम पुरुष	में	हम	हमनीका	हमरन
मध्यम पुरुष	तू या ते	तू या ते	तोहनीका	तोहरन
आदरार्थ	...	रउवाँ, रवाँ, रउरा	...	रउरन, रवन
अन्य पुरुष	उ, ओ	...	उन्हका	...

इन सर्वनामों के रूप भिन्न भिन्न कारकों में बदलते जाते हैं जो आसानी से समझे जा सकते हैं।

सहायक क्रिया के लिये और सत्ता सूचित करने के लिये भोजपुरी में दो धातु हैं—बाड़, बाड़ी या बानी और हवीं। मध्यम पुरुष अथवा अन्य पुरुष में बहुवचन अथवा आदर दिखलाने के लिये 'सा' जोड़ देते हैं। नीचे उपर्युक्त क्रियाओं के विभिन्न कालों तथा पुरुषों के रूप दिये जाते हैं जिससे स्पष्ट पता चलता है कि इन क्रियाओं का रूप किस प्रकार बदलता जाता है।

क्रिया

वर्तमान काल

	प्रथम रूप				द्वितीय रूप			
	एक वचन		बहुवचन		एकवचन		बहुवचन	
	पुलिंग	स्त्री०	पुलिंग	स्त्री०	पुलिंग	स्त्री०	पुलिंग	स्त्री०
उत्तम पुरुष	बाड़ी	...	ड़ीं या बानी	बाड़ू	हवीं	...	हवीं हईं	हऊ
मध्यम पुरुष	बाड़, बाड़े	बाड़िस	बाड़	बाड़ू	हवे	हविस	हव	हउ
अन्य पुरुष	बा, ब ाड़े	...	बाड़न	बाड़िन	हा हवे	...	हवन	हविन

भूत काल

उत्तम पुरुष	रहलीं	...	रहलीं	रहलू	रहीं	...	रहीं	रह्यूं
मध्यम पुरुष	रहले रहलस	रहलीं रहलिस	रहल	रहलू	रहे, रहलस	रह रहिस	रह	रहु
अन्य पुरुष	रहल, रहले	रहली	रहलन	रहलिन	रहे रहस रहसि	रही	रहन	रहिन

मुख्य क्रियाओं के रूप भी सीधे ढंग पर तैयार होते हैं। वर्तमानकालिक रूप दो प्रकार का होता है। एक तो साधारण धातु से बनता है, परन्तु दूसरे प्रकार के लिये 'ल' प्रत्यय का जोड़ना आवश्यक है। यदि 'देखना' क्रिया का अन्य पुरुष का साधारण रूप देखे, देखसि, देखसु या देखस (एकवचन); देखन या देखनि (बहुवचन) है तो दूसरा 'ल' प्रत्ययान्त रूप देखला, देखेला (ए० व०), देखले, देखलन, देखलनि या देखेले, देखेलन, देखेलनि (ब० व०) है। भोजपुरी में भूतकाल के लिये भी 'ल' प्रत्यय जोड़ा जाता है जैसे देखले, देखलस या देखलसि (उसने देखा); देखलन या देखलनि (उन्होंने देखा)। वर्तमानकालिक तथा भूतकालिक दोनों क्रियाओं में 'ल' प्रत्यय पाया जाता है परन्तु दोनों का पार्थक्य सहज में ही समझा जा सकता है, जैसे—

देखल, उ का कहत बाड़े=तुम देखते हो वह क्या कह रहे हैं ?

हम ताहार सब काम **देखले** बानी=मैंने तुम्हारा सब काम देखा है।

इसी प्रकार से भविष्य काल में 'ब' प्रत्यय लगाया जाता है। परन्तु यह उत्तम पुरुष और मध्यम पुरुष में ही प्रयुक्त होता है। अन्यपुरुष में 'ह' प्रत्यय जोड़ा जाता है। उदाहरण :—

हम घरे **जाइबि**=मैं घर जाऊँगा।

तू घरे **जइब** ?=तुम घर जाओगे।

उ हो घरे **जइहें**=वह भी घर जायगा।

क्रियाओं के परिवर्तन में कहीं कहीं विषमता भी दीख पड़ती है अर्थात् 'ल' प्रत्यय को जोड़ कर जो भूतकालिक रूप तैयार होता है उसके अतिरिक्त भी क्रिया के रूप पाये जाते हैं। जैसे :—

साधारण क्रिया	भूतकालीन रूप
करल (करना)	करल या कइल
धरल (रखना)	धरल या धइल
मरल (मरना)	मरल या मुअल
जाइल (जाना)	गइल

देल (देना)	दिहल या देल
लेल (लेना)	लिहल या लेल
होइल (होना)	भइल

इस प्रकार भोजपुरी का व्याकरण सरल और स्पष्ट है।[१]

——:०:——

१. भोजपुरी व्याकरण के विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—

(क) डा० ग्रियर्सन—लि० स० इ० भाग ५, खण्ड २
पृ० ४०,—५४ एवं १८६,—३२५.

(ख) डा० उदयनारायण तिवारी—दि ओरिजिन एन्ड डेभेलेपमेन्ट आफ भोजपुरी (अप्रकाशित)।

(ग) डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य (राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना)

(घ) प्रो० बलदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत भाग १, भूमिका पृ० १२–१७.

(ङ) लालजी सिंह—'हिन्दुस्तानी' पत्रिका, भाग १६, अङ्क २, पृ० १२०—१४४.

(च) डा ० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी और उसका साहित्य (राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सन् १९५७)

अध्याय २

भोजपुरी-साहित्य

क] पद्य

भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत करना बड़ा ही कठिन कार्य है। इस साहित्य के संबंध में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि भोजपुरी साहित्य प्रकाशित रूप में विशेष उपलब्ध नहीं है। यह प्रधानतया मौखिक रूप में ही प्राप्त होता है। गाँवों में सोहर तथा जतसार गाती हुई स्त्रियों के कलकंठ में, बिरहा तथा आल्हा गाने अहीरों और अल्हैतों के वीर गीतों में, एवं सारंगी बजा कर अपनी उदरपूर्ति की चिन्ता में संलग्न, भिक्षा का आयोजन करने वाले जोगियों तथा साधुओं के सरस, सुन्दर स्वरों में इसका साहित्य छिपा पड़ा है। भोजपुरी का यह मौखिक साहित्य इतना विस्तृत और विशाल है कि यदि इसका संग्रह किया जाय तो एक नहीं अनेक ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं।

भोजपुरी में आजकल जो साहित्य उपलब्ध होता है उसमें कुछ तो गीतों के संग्रह हैं और कुछ जनता के दैनिक जीवन तथा समाज का चित्रण करने वाले विभिन्न विषयों पर लिखे गये गीत हैं। जैसे—मेला घुमनी, गंगा नहवनीं इत्यादि। यद्यपि इन छोटो छोटी पुस्तिकाओं का मूल्य साहित्यिक दृष्टि से अधिक नहीं है फिर भी भोजपुरी भाषा के नमूने के रूप में इनका महत्त्व कुछ कम नहीं है।

भोजपुरी भाषा में विभिन्न विषयों पर लिखे गये साहित्य का आज भी अभाव है। डा० बीम्स ने अपने व्याकरण में लिखा है कि भोजपुरी का कोई साहित्य नहीं है।[१] भाषाशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर ग्रियर्सन ने लिखा है कि भोजपुरी का शायद ही कुछ स्थानीय साहित्य हो। भोजपुरी प्रान्त में प्रसिद्ध लोरिक का महाकाव्य और कुछ गीत इसमें हैं। इसमें कुछ पुस्तकें भी छपी हैं।[२] भोजपुरी साहित्य के संबंध में डाक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी का यह मत है कि कुछ लोकगीतों और बैलेड के अतिरिक्त—जो बहुत ही सुन्दर हैं तथा

---

१. डा० बीम्स—ए ग्रामार आफ दि गौडियन लेंग्वेज पृ०

1. Bhojapuri has hardly any indigenous literature. A few books have been printed in it.. .. ..Numerous songs are current over the Bhojapuri area, and the national epic of Lorik which is also current in the Magahi dialect is everywhere known.—Linguistic Survey of India, Vol. 5, Part II, Page 46.

देहातों में गाये जाते हैं भोजपुरी में प्रयत्न-पूर्वक किसी साहित्य की सृष्टि नहीं हुई है। इस बोली का सबसे प्राचीन नमूना सन्त कवि कबीर की कविता में मिलता है जो कुछ पद्यों में ही सीमित है।[1] प्रोफेसर बलदेव उपाध्याय नें इन्हीं उपर्युक्त मतों का समर्थन करते हुए लिखा है कि "इतना होने पर भी यह कम दुःख की बात नहीं है कि इसका साहित्य अभी तक समृद्ध रूप में नहीं दीख पड़ता। यह अभी तक लिखित अवस्था में भी नहीं है, बल्कि जीविका के लिये इधर-उधर भ्रमण करने वाले गायकों और अनपढ़ देहातियों की जिह्वा पर निवास कर रहा है।"[2] भोजपुरी भाषा के अधिकारी विद्वान् डाक्टर उदयनारायण तिवारी की सम्मति है—

"भोजपुरी में सबसे बड़ी कमी इसमें प्रकाशित उच्च श्रेणी के साहित्य का अभाव है।[3] भोजपुरियों को अपनी भाषा के प्रति इतना अनुराग होने पर भी यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस भाषा की श्रीवृद्धि नहीं हुई है और प्राचीन काल में भी इसकी बहनों बंगाली, मैथिली एवं कोशली के मुकाबिले में इसमें साहित्य रचना विशेष नहीं हुई। इसका प्रधान कारण ब्राह्मण पंडितों का संस्कृत भाषा के प्रति (मातृभाषा की उपेक्षा कर) विशेष अनुराग है।"[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भोजपुरी का साहित्य प्रधानतया मौखिक है और जो कुछ साहित्य उपलब्ध होता है वह अनेक स्फुट विषयों पर लिखा गया है।

भोजपुरी साहित्य का इतिहास लिखने में कठिनता

भोजपुरी साहित्य का इतिहास प्रस्तुत करने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसका अधिकांश साहित्य अभी तक मौखिक रूप में है। जो साहित्य लिखित रूप में विद्यमान है वह स्वल्प है और पद्य रूप में ही उपलब्ध होता है। भोजपुरी के पद्यात्मक साहित्य में लोक-गीतों की प्रधानता है। इन गीतों के न तो रचना-काल का पता चलता है और न इनके रचयिताओं का ही। इन की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति भी उपलब्ध नहीं होती जिससे इनके रचना-काल के ऊपर कुछ प्रकाश पड़

2. Barring the composition of a number of ballads and songs which are as beautiful specimens of folk-literature as any, and which still have a vigorous existence in the country-side, there is no conscious literary effort in Bhojpuria. The oldest specimens in this speech, that we possess, are probably a few poems written by the gteat religious reformer and mystic teacher of Northern India—Kabir—who flourished in the 15th. century.
Origin and development of the Bengali Language Vol.I. Page–15.

२. डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक गीत, भाग १ की भूमिका पृ० १७.
३. दि ओरिजिन एन्ड डेवेलेपमेन्ट आफ भोजपुरी (अप्रकाशित)
४. वही पृ० ११.

सके। इन उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण भोजपुरी साहित्य का क्रमबद्ध, वैज्ञानिक इतिहास लिखना कठिन है। अगले पृष्ठों में इसके इतिहास को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया जायगा। इस सम्बन्ध में, यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि भोजपुरी साहित्य का इतिहास लिखने का यह सर्वप्रथम प्रयास है। यहाँ जो कुछ सामग्री प्रस्तुत की जा रही है वह मौलिक है तथा प्रथम बार ही लिखी जा रही है। अगले पृष्ठों में निबद्ध सामग्री को भोजपुरी साहित्य का इतिहास न कह कर भोजपुरी साहित्य का परिचय कहना अधिक उपयुक्त होगा।

किसी साहित्य का इतिहास प्रधानतया दो प्रकार से लिखा जाता है। १. कालक्रम की दृष्टि से, २. विषय की दृष्टि से। आजकल कालक्रम से इतिहास लिखने की प्रथा ही अधिक है और वही वैज्ञानिक भी है। इसमें किसी साहित्य का उदय कब हुआ, पश्चात् उसमें कौन-कौन-सी काव्य की धारायें प्रवाहित हुई, उनका कालक्रम से वर्णन किया जाता है। पं० रामचन्द्र शुक्ल का हिन्दी साहित्य का इतिहास इसी क्रम से लिखा गया है। दूसरी प्रथा विषय-क्रम से इतिहास लिखने की है। इसमें साहित्य के विभिन्न अंग या विषय जैसे पद्य (महाकाव्य और गीतिकाव्य), गद्य और नाटक एवं अलंकार आदि का क्रमशः इतिहास लिखा जाता है। मेकडानल और कीथ का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इसका सुन्दर उदाहरण है। एक तीसरी प्रणाली भी इतिहास लिखने की चल पड़ी है, जिसमें किसी साहित्य के इतिहास को विशिष्ट कवियों या लेखकों के नाम से विभिन्न युगों में बाँट देते हैं; जैसे, एज आफ शेक्सपियर, मिल्टन, टेनिसन आदि। और उस युग में होने वाली समस्त साहित्यिक रचना गद्य, पद्य, नाटक का इतिहास एक साथ निबद्ध किया जाता है। हडसन ने अंगरेजी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास इसी प्रणाली से लिखा है।

परन्तु भोजपुरी के इतिहास को लिखने में हम उपर्युक्त तीन प्रणालियों में से किसी भी एक का निश्चित रूप से अनुगमन नहीं कर सकते। भोजपुरी में जो साहित्य उपलब्ध है उसकी रचना का समय निर्धारित करना अत्यन्त कठिन है। अतः प्रथम प्रणाली का नियमपूर्वक पालन नहीं किया जा सकता। दूसरी प्रणाली विषय की दृष्टि से इतिहास लिखने की है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि भोजपुरी का प्रायः समस्त साहित्य पद्यात्मक है, अतः लोक गीतों के पश्चात् गद्य और नाटक आदि का वर्णन नहीं के बराबर होगा। ऐसी दशा में इसका उपयोग भी हम नहीं कर सकते। तीसरी प्रणाली की यहाँ चर्चा ही व्यर्थ है। इसलिये हम अपने वर्णन में किसी विशेष पद्धति का अनुसरण न कर स्वतन्त्र रीति से विचार करेंगे।

आजकल भोजपुरी-सम्बन्धी जितना साहित्य उपलब्ध है उसको हमने अपनी सुविधा के अनुसार निम्नांकित पाँच भागों में विभक्त किया है :—

१. प्राचीन कवियों के द्वारा भोजपुरी शब्दों का प्रयोग तथा काव्य-रचना।
२. विभिन्न यूरोपियन विद्वानों के द्वारा लोक-गीतों का संग्रह, सम्पादन तथा प्रकाशन।
३. लोक-गीतों के आधुनिक संग्रह।
४. वर्तमान भोजपुरी कवियों की कविता।
५. फुटकल रचनायें।

इन पाँचों भागों में जिन जिन कवियों की कवितायें प्राप्त हैं उनका कुछ विस्तार से आगे वर्णन किया जायगा।

काल-विभाजन

भोजपुरी साहित्य के इतिहास के विभाजन का एक दूसरा भी प्रकार है और यह अधिक युक्तिसंगत दीख पड़ता है। जिस प्रकार से भारतीय दर्शनशास्त्र के इतिहासकारों ने अद्वैत वेदान्त के प्रधान आचार्य भगवान् शंकर को मध्यविन्दु मानकर उसके इतिहास को १. पूर्व शंकर-युग २, शंकर-युग और ३. पश्चात् शंकर-युग इन तीन विभागों में विभक्त किया है, उसी प्रकार हम भी डाक्टर ग्रियर्सन को भोजपुरी साहित्य का मध्यविन्दु मानकर इसके साहित्य को निम्न लिखित तीन भागों में बाँट सकते हैं :

१. पूर्व ग्रियर्सन काल।
२. ग्रियर्सन काल।
३. पश्चात् ग्रियर्सन काल।

इस काल-विभाजन के लिये हमारे पास पर्याप्त कारण भी हैं। भोजपुरी के उद्धार के लिये ग्रियर्सन ने श्लाघनीय प्रयत्न किया है। आज से लगभग ८० वर्ष पूर्व—जब कि पं० रामनरेश त्रिपाठी के ग्राम-गीत का पता भी नहीं था—डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरी के अनेक लोक-गीतों को खोजकर उनका संग्रह किया, और उनका समुचित रीति से सम्पादन कर, सभ्य जनता का ध्यान इन 'गँवारू' कहे जानेवाले गीतों की ओर आकर्षित किया। उन्होंने यह दिखलाया कि इन गीतों का भी एक विशेष महत्त्व है तथा इनकी उपेक्षा गर्हणीय है। डा० ग्रियर्सन ने अपने 'लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया' में भोजपुरी भाषा का विस्तृत विवेचन किया है तथा भोजपुरियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्होंने केवल स्वयं ही गीतों का संग्रह नहीं किया बल्कि अपने समकालीन अन्य अंग्रेजों—ग्राउस, फ़ेजर आदि—को भी इस कार्य की ओर आकृष्ट किया।

डा० ग्रियर्सन का 'सेवेन ग्रामर्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज' आज भी भोजपुरी व्याकरण का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है। इस प्रकार भोजपुरी साहित्य में, लेखक के रूप में नहीं प्रत्युत उद्धारकर्ता के रूप में, ग्रियर्सन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसीलिये उनको मध्यबिन्दु मानकर हम भोजपुरी साहित्य को उपर्युक्त तीन विभागों में बाँट सकते हैं।

प्राचीन कवियों के द्वारा भोजपुरी का प्रयोग

भोजपुरी का सर्वप्रथम प्रयोग सिद्धों की कविता में उपलब्ध होता है। यद्यपि सिद्धों के काव्य की भाषा में बड़ा विवाद है और विद्वान् अभी तक इस निर्णय पर नहीं पहुँचे हैं कि इनकी भाषा पुरानी बँगला है अथवा अन्य कुछ। फिर भी इनकी कविता की भाषा पर ध्यान दिया जाय तो उसमें अनेक भोजपुरी के क्रिया-पद मिलेंगे।

सिद्ध कवियों द्वारा प्रयोग

चौरासी सिद्धों में सिद्ध भुसुकु का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। ये नालन्दा (बिहार) के पास के प्रदेश में एक क्षत्रियवंश में पैदा हुए थे। इनका आविर्भाव काल नवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।[१] इन्होंने 'सहजगीति' नामक पुस्तक लिखी है जिसका एक पद्य यह है :

"आजि भुसु बंगाली **भइली**,
णिअ धरिणीं चंडाली लेलीं।

इस पद्य में 'भइली' क्रिया स्पष्ट ही भोजपुरी की है। आज भी भोजपुरी प्रान्त में अइली, गइली, खइली, भइली का निरन्तर प्रयोग होता है और सर्वसाधारण इसे समझते और बोलते हैं। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस 'भइली' शब्द के विषय में लिखा है कि "भइली शब्द बँगला में कहाँ व्यवहृत होता है? किन्तु वह काशी से मगह तक आज भी बहुत प्रचलित है।"[२] काशी से पूर्व और पटना के पश्चिम में जो भाषा बोली जाती है वह भोजपुरी है। अतः राहुल जी के मतानुसार भी 'भइली' शब्द के भोजपुरी होने में सन्देह नहीं। इसी प्रकार से सिद्ध डोम्भिपा[३] ने भी अपनी कविता में भोजपुरी का प्रयोग किया है :—

१. राहुल सांकृत्यायन—पुरातत्व निबन्धावली पृ० १७५-७६.

२. वही, पृ० १७७ का फुटनोट।
काशी और मगह के बीच का ही प्रदेश भोजपुरी प्रान्त है।

३. वही, पुरातत्व निबन्धावली पृ० १८२.

"वाहनु डोम्बी वाहलो डोम्बी बाटत भइल उछारा
सद्गुरु पाअ पए जाइब पुणु जिणधारा।"

इस पद्य में 'भइल' और 'जाइब' क्रिया पद स्पष्ट ही भोजपुरी के दीख पड़ते हैं। भोजपुरी भाषा से तनिक भी परिचय रखने वाला व्यक्ति इन्हें सहज ही में पहचान सकता है। आज भी लोग अपने दैनिक व्यवहार में 'भइल' और 'जाइब' का नित्य ही प्रयोग करते हैं—जैसे 'इ काम अभी भइल कि 'ना और रउरा आज काशी जाइब ?' इत्यादि।

सिद्ध कुक्कुरिया ने भी अपनी कविता में भोजपुरी की क्रिया का प्रयोग किया है।[1] उदाहरण के लिये यह पद्य लीजिये—

"दिवसइ बहुड़ी काड़इ डरे माअ,
राति 'भइले' कामरू जाय।"

इस पद्य में 'भइले' पद डंके की चोट से अपने भोजपुरीपन को उद्घोषित कर रहा है। आज भी भोजपुरी में 'राति भइले पर बाहर ना जाये के चाहीं' बोला जाता है और सभी इसे समझते हैं।

इसी प्रकार ध्यानपूर्वक अनुसन्धान करने से इन सिद्धों की कविता में भोजपुरी के अनेक संज्ञा और क्रिया पद मिल सकते हैं। राहुल जी ने इन सिद्धों की भाषा को मगही हिन्दी का नाम दिया है।[2] मगही और भोजपुरी की सीमायें एक दूसरी से मिली-जुली हैं। अतः इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि मगही में कविता लिखने वाले सिद्धों ने भोजपुरी के क्रिया-पदों का प्रयोग किया हो। सच तो यह है कि प्राचीन काल में मागधी की सन्तान होने के कारण मगही, मैथिली, भोजपुरी, बँगला और असमिया में उतना अधिक पार्थक्य न था। एसी दशा में सिद्धों की कविता में भोजपुरी का पुट होना असंभव नहीं समझना चाहिये।

(क) प्राचीन हिन्दी कवियों द्वारा भोजपुरी का प्रयोग

हिन्दी के अनेक कवियों ने भोजपुरी भाषा के शब्दों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग किया है। ऐसे कवियों में जायसी और तुलसीदास के नाम प्रसिद्ध हैं। मलिक मुहम्मद जायसी जायस (अवध) के रहने वाले थे। यह एक सिद्ध फकीर थे। रमते जोगियों और साधुओं के साथ सत्संग करने के कारण इनकी बोली में भोजपुरी शब्दों का मिलना कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। रही तुलसीदासजी की बात। उनके विषय में तो यह प्रसिद्ध ही है कि उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध

१. राहुल सांकृत्यायन—पु० नि० पृ० १८५.
२. वही, पृ० १६७.

ग्रन्थ रामचरितमानस का अधिकांश और विनयपत्रिका का सम्पूर्ण प्रणयन काशी में रहकर किया था। काशी भोजपुरी क्षेत्र के ही अन्तर्गत है। अतः तुलसी की 'भाखा' में भोजपुरी का गहरा पुट होना नितान्त स्वाभाविक है। हमारा यह निश्चित मत है कि रामायण के शब्दों की विशेष छानबीन की जाय तो उसमें भोजपुरी के हजारों शब्द मिलेंगे। इस प्रकार जायसी और तुलसी ने अपने ग्रन्थों में भोजपुरी शब्दों का प्रयोग कर इसे गौरव प्रदान किया है।

तुलसीदास जी ने अधिकतर भोजपुरी के संज्ञा शब्दों का ही प्रयोग किया है परन्तु जायसी ने संज्ञा शब्दों के साथ ही साथ भोजपुरी के क्रिया-पदों को भी निःसंकोच अपनाया है।

जायसी ने अनेक ठेठ भोजपुरी शब्दों का प्रयोग अपनी पुस्तक 'पद्मावत' में किया है। जब पद्मावती पालकी पर रतनसेन से मिलने जाती है तो कवि कहता हैं कि :

"साजि सबै चंडोल चलाये, सुरंग 'ओहार' मोति जनु लाये।

इसमें ओहार शब्द भोजपुरी है जिसका अर्थ पालकी का पर्दा होता है। आगे जायसी लिखते हैं :

"का पछिताव आउ जो पूजी"

अर्थात् आयु समाप्त हो जाने पर पश्चात्ताप करना व्यर्थ है। हिन्दी में "पूजना" का अर्थ आदर-सत्कार होता है परन्तु भोजपुरी में समाप्त होने के अर्थ में यह प्रयुक्त होता है।

यों तो भोजपुरी का प्रयोग तुलसीदासजी की कवितावली रामायण एवं विनयपत्रिका में भी कहीं कहीं मिलता है परन्तु रामचरितमानस में इसकी अधिकता पाई जाती है। भोजपुरी में 'आप' के लिए 'रउरे' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी का संबंध-कारक का रूप 'राउर' होता है। तुलसीदास जी ने इन दोनों रूपों का प्रयोग किया है। जैसे :

"जो 'राउर' अनुशासन पाऊँ,
कन्दुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ।
कहत बचन दुःख 'रउरे' लागा।"

भोजपुरी में 'अहिवात' शब्द का अर्थ सौभाग्य—स्त्री का सौभाग्य—के अर्थ में और 'पतिआना' का प्रयोग विश्वास करने के अर्थ में किया जाता है। गोस्वामी जीके द्वारा इनका यह प्रयोग देखिए।

"अचल होइ 'अहिवात' तुम्हारा,
जब लग गंग-जमुन जल धारा।"

"गुरु पितु मातु न मानौ काहू,
कहौं सुभाउ नाथ पतिग्राहू।"

"गवं" भोजपुरी का अटूट ठेठ शब्द है जिसका अर्थ ताक या अवसर होता है। गोस्वामी जी ने इस ठेठ शब्द का प्रयोग भी बड़ी सुन्दर रीति से किया है—

"जिमि गवं तकइ किरात किशोरी"

'जोहना' का प्रयोग खोजने के अर्थ में हुआ है। जैस :—

"बार बार मृदु मूरति जोही।"

कवितावली रामायण में भी भोजपुरी का प्रयोग हुआ है। भूभुरि (गर्म बालू) का यह प्रयोग देखिए।

"पोंछि पसेउ बयारि करों,
अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।"

(ख) सन्त कवियों द्वारा काव्य-रचना

यह कथन कुछ अत्युक्ति पूर्ण नहीं होगा कि अनेक सन्त कवियों ने भोजपुरी में कविता की है। इसका कारण यह है कि इन कवियों में अनेक कवि भोजपुरी प्रदेश के ही रहने वाले थे। शिवनारायण जिला गाजीपुर तथा धरणीदास बिहार राज्य के जिला सारन के निवासी थे। लक्ष्मी सखी भी इसी जिले के रहने वाले थे। अतः इनकी कविता का भोजपुरी भाषा में लिखा जाना स्वाभाविक ही है। कबीरदास जी काशी में पैदा हुए थे। अतः कबीर की कविता में भोजपुरी का प्रचुर पुट पाया जाता है। इन्होंने कुछ पद शुद्ध भोजपुरी में भी लिखे हैं। इसलिये कबीर को भोजपुरी का 'आदि कवि' माना जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के कुछ सन्त कवियों ने भी इस बोली को अपनी मधुर कविता का माध्यम बनाया है और इसे गौरवान्वित किया है। अगले पृष्ठों में इन्हीं कवियों की 'बानी' की बानगी उपस्थित की जायगी।

सिद्धों के पश्चात् हमें सन्त कबीर की साधु वाणी में भोजपुरी के पूर्ण रूप से दर्शन होते हैं। जैसा प्रसिद्ध है कि कबीर भोजपुरी प्रदेश के निवासी थे अतः

कबीर

उनकी कविता में भोजपुरी का गहरा पुट होना तथा भोजपुरी में उनकी काव्य-रचना स्वाभाविक है। कबीर की कविता में अन्य बोलियों का जो पुट पाया जाता है उसका कारण यह है कि उनकी सन्त वाणी का प्रचार जिस प्रान्त में हुआ उस प्रान्त के लोगों ने उसको अपनी भाषा में रँग दिया। उसे प्रान्तीय

चोला पहना दिया। कबीर की भाषा को 'सधुक्कड़ी'[1] अथवा 'खिचड़ी' भले ही कहा जाय परन्तु उसकी आत्मा भोजपुरी ही है।

सुप्रसिद्ध भाषा-शास्त्री डाक्टर सुनीति कुमार चटर्जी ने लिखा है कि भोजपुरी का सबसे पुराना नमूना कबीर के कतिपय पद्यों में पाया जाता है। यद्यपि उन्होंने तत्कालीन हिन्दी कवियों की प्रथा के अनुसार साधारणतया ब्रजभाषा और कभी-कभी अवधी में भी कविता की है परन्तु उसमें भोजपुरी का पुट लक्षित हो जाता है और जहाँ उन्होंने 'अपनी भोजपुरिया' का प्रयोग किया है वहाँ ब्रज भाषा भी प्रकट हो ही जाती है।[2]

डा० चटर्जी के द्वारा प्रयुक्त 'अपनी भोजपुरिया' शब्द ध्यान देने योग्य है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि कबीर की अपनी भाषा 'भोजपुरी' ही थी और विशेषकर इसी में उन्होंने अपनी कविता लिखी थी। चटर्जी ने कबीर की भोजपुरी कविता के उदाहरण में निम्नलिखित चार पद्यों को उद्धृत किया है।[3]

"कनवा फराइ जोगी जटवा बढ़ौले,
दाढ़ी बढ़ाइ जोगी होइ गैले वकरा।
कहहीं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बान्हल जइबे पकरा।१।

बाबा घर रहलू त बबुई कहवलू
सइयाँ घर चतुर सेयान।
चेतब घरवा आपन रे।२।

१. रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास।

२. "The oldest specimens in this speech that we possess are probably a few songs written by the great religious reformer and mystic teacher of northern India who flourished in the Fifteenth century. Kabir was an inhabitant of the Bhojapuri tract but following the practice of the Hindustani poets of the times, he generally used Brajbhasha and occassionally Awadhi. His Brajbhasha at times betrays an eastern Bhojapuri form here and there. And when he employs his own Bhojapuriya dialect, Brajabhasha and other western forms show themselves."

डा० चटर्जी – ओ० डे० बे० लैं० भाग १ पृ० १५

३. डा० चटर्जी – ओ० डे० बे० लै० पृ० १५–१६

का ले जैबो, प्रीतम घर एबो,
गाँव के लोग जब पूछन लगिहैं,
तब हम का रे बतैबों ।३।

सूतल रहलों मैं नींद भरि हो,
पिया दिहले जगाय ।
चरन कँवल के अंजन हो
नैना लेलू लगाय ।४।"

इन उपर्युक्त पदों के अतिरिक्त कबीर की कविता में अनेक शब्द ऐसे पाये जाते हैं जो ठेठ भोजपुरी के हैं :—

"दुलहिन अंगिया काहे न धोवाई,
बालपने की मैली अंगिया विषय दाग परिजाई ।
बिन धोये पिय रीझत नाहीं, सेज से देत गिराई,
सुमिरन ध्यान के साबुन करि ले सत्तनाम दरियाई ।
दुबिधा के भेद खोल बहुरिया मन के मैल धोवाई,
चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई ।"

उक्त पद्य में 'नगिचाई' पद ऐसा है जो ठेठ भोजपुरी का है। 'नगिचाना' का अर्थ नज़दीक या पास होना है जो विशुद्ध भोजपुरी शब्द है।

एक दूसरा पद लीजिये[१] :—

"कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ।१।

चन्दन काठ के बनल खटोलना,
तापर दुलहिन सूतल हो ।२।

उठो री सखी मोरी माँग सँवारो,
दुलहा मोसे रूसल हो ।३।

आई जमराज पलंग चढ़ि बइठे,
नैनन आँसू टूटल हो ।४।

चारि जने मिल खाट उठवले,
चहु दिस धू धू उठल हो ।५।

---

१. कबीर साहब की शब्दावली भाग १ पृष्ठ २३ शब्द ५, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

कहत कबीर सुनो भाई साधो
जग से नाता छूटल हो । ६ ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट प्रतीत है कि कबीर की भाषा भोजपुरी है और यही भोजपुरी के सर्वप्रथम कवि कहे जा सकते हैं । कबीर ने स्वयं अपनी बोली के विषय में लिखा है कि मेरी बोली पूर्व की है, हमें तो वही पहचान सकता है जो 'धुर पूरब' का रहने वाला है :—

"बोली हमरी पूर्व की, हमें लखै नहिं कोय
हमको तो सोई लखै, धुर पूरब का होय"

यह कहना अनावश्यक है कि 'धुर पूरब' का अर्थ यहाँ भोजपुरी प्रदेश से है ।

कबीर को ही भाँति धरमदास भी एक सन्त कवि थे जो उन्हीं की परम्परा में उत्पन्न हुए थे । कहा जाता है कि ये कबीर के शिष्य थे और उनके पन्द्रह वर्ष बाद तक जीवित रहे । इस घटना से कबीर के साथ इनका संबंध प्रमाणित होता है । सन् १९२३ ई० में बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से 'धरमदास जी की शब्दावली' प्रकाशित हुई थी । इस पुस्तक से धरमदास जी की कविता का एक उदाहरण लीजिये ।

धरमदास

"मितऊ मड़ैया सूनि करि गैलो । १ ।
अपन बलम परदेश निकरि गैलो ।
हमरा के कछुओ न गुन देइ गैलो । २ ।
जोगिन होइ के मैं बन बन ढूढ़ों ।
हमरा के विरह वैराग देइ गैलो । ३ ।
संग की सखी सब पार उतरि गैली ।
हम धन ठाढ़ी अकेलो रहि गैलो । ४ ।
'धरमदास' यह अरज करतु है ।
सार शब्द सुमिरन देइ गैलो । ५ ।"

उपर्युक्त पद में क्रियाओं का जो रूप दिखाई पड़ता है वह स्पष्ट ही भोजपुरी का है । इसी प्रकार से धरमदास जी की कविता के अन्य उदाहरण भी उपलब्ध होते हैं । उनकी यह दूसरी कविता है[1] जिसमें रहस्यवाद का दर्शन हमें मिलता है ।

कहवाँ से जीव आइल,
कहवाँ समाइल हो । १ ।

---

१. धरमदास जी की शब्दावली पृ० ६३, शब्द ३ ।

कहवाँ कइल मुकाम,
कहां लपटाइल हो । २ ।
निरगुन से जीव आइल,
सरगुन समाइल हो । ३ ।
कायागढ़ कइल मुकाम,
माया लपटाइल हो । ४ ।
एक बूंद से काया,
महल उठावल हो । ५ ।
बूंद परे गलि जाय,
पाछे पछिताइल हो । ६ ।
हंस कहै भाई सरवर,
हम उड़ि जाइबि हो । ७ ।
मोर तोर एतन दिदार,
बहुरि नहिं पाइबि हो । ८ ।
इहवाँ कोई नहिं आपन
केहि संग बोलइ हो । ९ ।
बिच तरवर मैदान
अकेला हंस डोलई हो । १० ।
लख चौरासी भरमि,
मानुख तन पाइल हो । ११ ।
मानुख जनम अमोल,
अपन सो खोइल हो । १२ ।
साहेब कबीर सोहर गावल
गाइ सुनावल हो । १३ ।
सुनहु हो धरमदास,
एहि चित चेतहु हो । १४ ।

यह एक सन्त कवि थे जिनका जन्म उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले के 'चन्द्रवार' नामक गाँव में हुआ था। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जो

शिवनारायण : हस्तलिखित रूप में उपलब्ध होते हैं। इनकी पुस्तकें अब तक प्रकाशित नहीं हुई हैं। इनके 'गुरु अन्यास' नामक ग्रन्थ का निर्माण सन् १७३४ ई० (सं० १७९१ वि०) में हुआ था।

सन्त कवि शिवनारायण ने अपने ग्रन्थों में दोहा और चौपाई छन्दों का प्रयोग किया है। ये वे ही सुप्रसिद्ध छन्द हैं जिनको मलिक मुहम्मद जायसी ने 'पद्मावत' लिखने में तथा गोस्वामी तुलसीदास जी ने 'रामचरित मानस' में प्रयुक्त किया है। इन्होंने प्रधानतया अवधी भाषा में अपने ग्रन्थ लिखे हैं परन्तु जहाँ इन्होंने जँतसार (जांत के गीत) और घाटों (चैता) लिखा है वहाँ भोजपुरी का प्रयोग किया है। इनकी कविता का एक उदाहरण लीजिये:—

"सूतल रहलों नींद भरी गुरु देले ही जगाई।
गुरु के सबद रंग आंजन हो ले लो नयना लगाई। १।
तब हो से नींदि नाहिं आवे हो, नाहीं मन अलसाई।
गुरु के चरन रज सागर हो, नित सबेरे नहाई। २।
जनम जनम के पातक हो, छन में देइल दहवाई।
पेन्हलों में सुमति कँगनवा हो, कुमति दिहलों उतारि। ३।
सब्द के मांग सवारों हो, दुरमति दहवाई।
पिअलों मैं प्रेम पियलवा हो, मन गइले बउराई। ४।
आगि लगहु तन जरि जाहु हो, मोरा कुछ ना सोहाई।
बइठलों मैं ऊँची चउरिया हो, जहाँ चोर न जाई। ५।
शिवनारायण गुरु समरथ हो, देखि काल डेराई। ६।"

धरनी दास : सन्त कवियों में बाबा धरनीदास का नाम प्रसिद्ध है। ये बिहार प्रान्त के सारन जिले के माँझी नामक गाँव के निवासी थे। ये स्वभाव से ही साधु थे। धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण ये अपना समय हरिभजन में अधिक बिताते थे। ये स्थानीय जमींदार के यहाँ मुन्शी थे। एक दिन अकस्मात् इन्होंने आफिस के कागज पत्रों पर एक घड़ा पानी डाल दिया। कारण पूछने पर इन्होंने बतलाया कि जगन्नाथपुरी में भगवान् के वस्त्र में आग लग गई थी, अतः उसे शीघ्र बुझा देने के लिये इन्होंने ऐसा किया। पता लगाने पर यह घटना सच्ची निकली। इस घटना के बाद इनको संसार से इतना वैराग्य हो गया कि इन्होंने नौकरी छोड़ दी और विरक्त हो गये। इन्होंने स्वयं लिखा है कि :—

"राम नाम सुधि आई।
लिखनी अब ना करबि ए भाई।"

अर्थात् अब मुझे राम, नाम का स्मरण हो गया है, अतः अब मैं लिखने का काम (मुन्शी का पेशा) न करूँगा। तब से ये विरक्त होकर भगवान् के भजन में ही समय बिताने लगे थे। इन्होंने अपने विरक्त होने का काल 'प्रेम प्रगास'

नामक ग्रन्थ में १६५६ ई० (१७१३ वि०) दिया है, जिससे पता चलता है कि इनका आविर्भाव काल सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। एक पद में औरंगजेब तथा उसके पिता शाहजहाँ का नाम आने से इनका वैराग्य काल निश्चित रूप से निर्णीत किया जा सकता है। इन्होंने लिखा है कि :—

"सम्वत् सत्रह सौ चलि गयऊ,
तेरह अधिक ताहि पर भयऊ।
शाहजहाँ छोड़ी दुनियाई,
पसरी औरंगजेब दुहाई।
सोच विचारि आतमा जागी,
धरनी धरेऊ भेस वैरागी।"

बाबा धरनीदास जी सन्त कवि थे। परन्तु ये प्रधानतया सन्त थे। कविता तो इनके हार्दिक भावों की वाहिका मात्र थी। इन्होंने दो ग्रन्थों की रचना की है: १. शब्द प्रकाश और २. प्रेम प्रगास। ये दोनों ग्रन्थ माँझी के पुस्तकालय में हस्त-लिखित रूप में सुरक्षित हैं। 'प्रेम प्रगास' की एक हस्तलिखित प्रति की समाप्ति सन् १८७३ ई० में हुई थी जिसे माँझी के महन्त रामदास ने वहीं की निवासिनी जानकी दासी उर्फ बरता कुंअर के लिये लिखा था। इस पुस्तक की भाषा भोजपुरी है जो अवधी से मिली-जुली है। इसमें 'पयार' छन्द का प्रयोग हुआ है जो बँगला में अधिकता से पाया जाता है। एक उदाहरण लीजिये :—

"सुमिरु, सुमिरु मन सिरजन हार,
जिन्ह केला सुर, नर, सरग, पताल।१।
रवि ससि अगिनि पवन कइला पानी,
जिआ जन्तु सनि सनि आनि आनि बानी।२।
धरती, समुद्र, बन, परबत, सुमेरु,
कमठ, फनीन्द्र, इन्द्र, बैकुंठ, कुबेरु।३।
गुरु के चरण रज सिरवा चढ़ाई,
जिन्ह लेला भव-जल बुड़त बचाई।४।
देवता पितर बिनवलों कर जोरी,
सेवा लेब मानि अल्प बुद्धि मोरी।५।
जहाँ लगि जगत् भगत अवतार,
मोरे त जीवन धन प्रान अधार।६।
तीरथ बरत चारों धाम शालिग्राम,
माथे हाथे परसि करीलों प्रनाम।७।"

छोट मोट जिया जन्तु जहाँ लगि झारी,
बकसि बकसि लेहु औगुन हमारी।" ।८।

इस पद्य में भोजपुरी की झाँकी देखने को मिलती है। इसमें तत्सम शब्दों का अधिकाधिक प्रयोग हुआ है। धरनीदास जी का दूसरा पद 'प्रेम प्रगास' से उद्धृत किया जाता है :—

"कि सुभ दिना आजु, सखी सुभ दीना। १।
बहुत दिनन्ह पिया बसल विदेस,
आजु सुनल निजु आवन संदेस। २।
चित्र चित्र सरिया में लिहल लिखाई,
हिरदय कवल धइली दियरा लेसाई। ३।
प्रेम-पराग तहाँ धइलां बिछाई,
नख-सिख सहज सिंगार बनाई। ४।
मन सेवकहि दिहु आगु चलाई,
नैन धइल दुई दुआरा बइसाई। ५।
धरनी सो धनी पलु पलु अकुलाई,
बिनु पिया जीवन अकारथ जाई। ६।

इसी प्रकार से धरनीदास के दोनों ग्रंथों में भोजपुरी भाषा का स्वरूप हमें देखने को मिलता है।[1]

लक्ष्मी सखी का पूरा नाम बाबा लक्ष्मीदास जी था परन्तु ये "लक्ष्मी सखी" के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं। ये भोजपुरी भाषा के एक प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इनका जन्म बिहार प्रान्त के सारन जिले के अमनौर नामक गाँव में हुआ था। इनका आविर्भावकाल १९वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। जैसा कि इनके नाम से विदित होता है ये सखी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके पिता का नाम मुन्शी जगमोहन दास था। इनके जीवन वृत्त के संबंध में विशेष कुछ भी ज्ञात नहीं है। लक्ष्मी सखी ने अपना परिचय एक स्थान पर इस प्रकार दिया है जिससे इनके जीवन वृत्त पर कुछ प्रकाश पड़ता है[2] :—

लक्ष्मी सखी:

"सुनु सखी सुनहु कहब कुछ अऊर।
सारन जिला तखत अमनऊर। १।
कायथ बनस में जनमेऊ बऊर।

१. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० पृ० १–१०
२. अमर सीढ़ी–झूमरा पृ० १०

राम, लखन फल फरिगइले दोऊर । २ ।
जन्म भूमि कबो पुजलीं गऊर ।
मीलि गइले सतगुरु माथे चढ़ल मऊर । ३ ।
जीयते मरि गइलीं लउकल ठऊर ।
सन्त समाज में चलि गइलीं दऊर । ४ ।
सतगुरु दिहले ग्यान के लऊर ।
झटपट मरलीं मैं माछर सऊर । ५ ।
पाकल ब्रह्म अगिनि कर भऊर ।
खइलों मैं साधु सन्त मिलि अऊर । ६ ।
मौजे 'टेरुआं' में अइलों दऊर ।
मीलि जुलि भगत बनावल ठऊर । ७ ।
'लछमि सखि' के सुन्दर गियवा ।
आरे तुम लगि मेरी दऊर । ८ ।"

इस वर्णन से ज्ञात होता है कि ये कायस्थ कुल में उत्पन्न हुए थे। इनका जीवन बड़ा ही सात्विक था। अपने जीवन की गोधूलि में इन्होंने संसार से नाता तोड़ भगवान् से संबंध जोड़ लिया था। बाल बच्चों से मुख मोड़, कामिनी और कांचन को छोड़, अपने गाँव अमनौर से थोड़ी दूरी पर 'टेरुआं' में एक आश्रम बनाया था जिसमें ये सदा रहा करते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में ये भजन बना कर तथा गाकर अपना समय बिताया करते थे। इन्होंने प्रधानतया चार ग्रन्थों की रचना की है जिनके नाम ये हैं :—१. अमर सीढ़ी, २. अमर कहानी, ३. अमर विलास, ४. अमर फराश। इनमें से प्रथम दो पुस्तकों के देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है परन्तु अन्तिम दो पुस्तकें बहुत प्रयत्न करने पर भी देखने को न मिल सकीं।

लक्ष्मी सखी का सबसे बड़ा, प्रधान तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अमर सीढ़ी' है जो इनके अन्य ग्रन्थों से परिमाण में भी अधिक है। इस ग्रन्थ में ३६० पृष्ठ हैं। इसमें भगवद्भक्ति के पद हैं। भिन्न-भिन्न रागों में भजन गाये गये हैं। कबीर की भाँति इनके पदों में कहीं तो योग-साधना का उल्लेख मिलता है तो कहीं रहस्यवाद की बाँकी झाँकी उपलब्ध होती है। रहस्यमयी यह उक्ति सुनिये[1]:—

"सखी तोरे पियवा देइ गइले एगो पतिया ।
बारहु दियवा जुड़ाइ लेहु हियवा,
समुझि समुझि के बतिया । १ ।

१. अमर सीढ़ी।

इहावाँ ना केहू साथी ना संघतिया,
कामिनी कंत तोरे जोहत बटिया । २ ।
सोने के खाटी रूपे के पटिया ।
करु मंजन चलु त्रिकुटी के घटिया । ३ ।
ओहि रे घाट पर सुन्दर पियवा,
निरखत रहु दिन रतिया । ४ ।
'लछमी सखी' के सुन्दर पियवा,
सूत रहू लगाई के छतिया । ५ ।"

इस पद में ईश्वर को पति मानकर उसके साथ प्रेम करने की व्यंजना कितनी मधुर बन पड़ी है। लक्ष्मी सखी "सखी सम्प्रदाय" के अनुयायी थे जिसमें परमात्मा को पति और आत्मा को स्त्री मानकर प्रेम किया जाता है। उपर्युक्त पद में इसी प्रेम-पद्धति का संकेत किया गया है।

लक्ष्मी सखी का दूसरा ग्रन्थ "अमर कहानी" है। इसमें भी विद्यापति का अनुकरण कर भक्ति के पद गाये गये हैं। झूमरा, विवाह, गारी और कजली इनके अन्य छोटे ग्रन्थ हैं। इनके शिष्य कामता सखी ने 'छुट्टा दोहा' नामक ग्रन्थ लिखा है। इन सभी ग्रन्थों को इनके शिष्य महेशप्रसाद वर्मा ने सन् १९१२ ई० में छपरा से प्रकाशित किया था।

लक्ष्मी सखी की कविता बड़ी ही सुन्दर, सरस, मधुर और हृदयस्पर्शी है। भोजपुरी की शुद्ध मिठास इसमें पाई जाती है। ये परम भक्त कवि थे और प्रेम मार्ग के अनुयायी थे। अतः इनकी कविता में प्रेम का पुट मिलना स्वाभाविक ही है। नीचे की इस सरस कविता का आस्वादन कीजिये :—

"मने मने करीले गुनावनि हो पिया परम कठोर,
पाहुनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर । १ ।
जे उठत विषय लहरिया हो, छने छने में घंघोर,
तनिको ना कनखि नजरिया हो, चितवत मोरे ओर । २ ।
भावे घरे, आंगन ना सेजरिया हो, नाहिं लहर पटोर,
बेंजन कवनो तरकरिया हो, जइसे गाहुर घोर । ३ ।
तलफीले आठो पहरिया हो, गति मति भइली भोर,
केहु ना चोन्हेला अजरिया हो, बिनु अवध किसोर । ४ ।
कइसे सहीं बारी रे उमिरिया हो, दुःख सहस कठोर,
'लछमी सखी' मोरा नाहिं भावेला हो, पथ भात परोर । ५ ।

इस गीत में शब्दों का माधुर्य जितना लुभावना है, भावों का चमत्कार भी

उसी प्रकार श्लाघनीय है। यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। 'पाहुनो पसीजि पसीजि के हो बहि चलत हिलोर' इस एक पद में प्रेम का समुद्र हिलोरें मार रहा है। 'तनिको ना कनखि नजरिया हो चितवत मोरे ओर' में कितनी करुणा और विवशता सिमटी पड़ी है। प्रियतम इतना कठोर है कि 'दृष्टिदान' की बात तो दूर रही वह आँख के कोने से भी नहीं देखता। 'तलफीले आठो पहरिया हो' में गूढ़ भाव भरा पड़ा है। संस्कृत शब्दों के सरस प्रयोग के द्वारा भोजपुरी को खालिस मिठास के साथ, हमें संस्कृत की मधुर चाशनी भी चखने को मिलती है। इस प्रकार यह कविता बड़ी सरस और मधुर बन पड़ी है।

लक्ष्मी सखी की कविता रहस्यवाद की ओर उन्मुख हुई है। इसमें सच्चे रहस्यवाद की झाँकी हमें देखने को मिलती है। भगवान् को प्रियतम मान कर यह रूपक बाँधा गया है[1] :—

"सुनि सुनि पिया के सनेस हमरो जियरा ललचे ना,
टपर टपर गिरे लोर सखिया चलते चलते ना। १।
काहे जे ओगुन भईल बहुत गलते गलते ना,
तेहि से चले के हाथ सखिया मलते मलते ना। २।
पिया बिना जिअवा हमरो हियवा कलपे ना,
जेकर तेज प्रताप घट घट नूर झलके ना। ३।
बेरि बेरि हेरीले बाट सखिया पलके पलके ना,
करि मंजन असनान सरजू जल जल जलके ना। ४।
राजा जनक के बेटि हम त दोसरा खलके ना,
'लक्ष्मी सखी' पिया धरबो बहियाँ छोरबो बलके ना। ५।"

नीचे के इस चौमासे में इसी तत्त्व का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है :—

"झमर झमर उजे बरसेला मेघवा, गगन घटा घनघोर हे।
खोलिले हे सखि कपट केवरिया, अपने जे होला अँजोर हे। १।
खासा खसम पिआ लोटेला सुन्दर, माया मोर भागेला चोर हे।
बारी वयस मोरा घरे रहु पिअउ, मिनती करी ले करजोर हे। २।
सकल भुवन कर करता धरता, जो कुछ करिए से थोर हे।
अपने सुजान पिआ का समुझाओ, मैं अबला मतिभोर हे। ३।
'लछमी सखी' के सुन्दर पिअवा पुरुष दुभुज किसोर हे।
भजब त भजिले आपन पिअवा, नात होखेला हाथी से घोर हे"। ४।

---

१. लक्ष्मी सखी : अमर सीढ़ी।

(ग) यूरोपियनों द्वारा लोक-गीतों का संग्रह

भोजपुरी लोक-गीतों के संग्रह तथा सम्पादन की ओर आज से लगभग अस्सी वर्ष पूर्व यूरोपीय विद्वानों का ध्यान सर्व प्रथम आकर्षित हुआ। इन विद्वानों ने इन लोक-गीतों का महत्व समझा और इनका संग्रह कर वैज्ञानिक पद्धति से सम्पादन किया। इनके द्वारा किया गया संग्रह आज भी हमारे लिये पथ-प्रदर्शन का काम करता है।

जिन यूरोपीय विद्वानों ने भोजपुरी लोक-गीतों का संग्रह तथा प्रकाशन किया है उनमें डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इन्होंने भारतीय तथा यूरोपीय अनुसंधान संबंधी अनेक पत्रिकाओं में भोजपुरी गीतों को प्रकाशित किया। ग्रियर्सन के अतिरिक्त विलियम क्रुक, ग्राउस, इरविन और फ्रेजर आदि सज्जनों ने भी लोक-गीतों का संग्रह किया है। इन यूरोपीय विद्वानों ने लोक गीतों का संग्रह कर कोई स्वतन्त्र पुस्तक नहीं छपवाई है बल्कि इनके लेख प्राचीन शोध संबंधी विभिन्न पत्रिकाओं में बिखरे पड़े हैं जिनका मिलना भी अब कठिन हो रहा है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने रायल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका मे कुछ 'बिहारी लोक गीतों' का संग्रह प्रकाशित किया है।[1] ये गीत बिहार प्रान्त के आरा और पटना जिलों से संग्रहीत हैं। अतः प्रधानतया ये भोजपुरी के ही गीत हैं। इनमें से कुछ गीतों में मगही का भी पुट दीख पड़ता है परन्तु उनकी आत्मा भोजपुरी ही है। इस लेख के प्रारम्भ में बिहार की तीन प्रधान बोलिओं मगही, मैथिली और भोजपुरी का थोड़ा विवेचन किया गया है। पश्चात् सोहर, जतसार, झूमर आदि के गीत दिये गये हैं। इन गीतों का अंग्रेजी में अनुवाद भी दिया गया है।

डाक्टर सर जी० ए० ग्रियर्सन

ग्रियर्सन का दूसरा लेख इसी पत्रिका में 'भोजपुरी लोक गीत' के नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] लेख के प्रारम्भिक आठ पृष्ठों में लेखक ने भोजपुरी भाषा की विशेषता, उसका साहित्य तथा संग्रहीत गीतों के छन्द आदि विषय पर सुन्दर प्रकाश डाला है।[3] इस लेख में कुल मिला कर ४९ गीतों का संग्रह किया गया

१. जे० आर० ए० एस० खण्ड १६ (१८८४) पेज १९६ सम बिहारी फोक सौन्ग्स।

२. जे० आर० ए० एस० खण्ड १८ (१८८६) पृ० २०७ सम भोजपुरी फोक सौन्ग्स।

३. वही पृ० २०७—२१४

है जिनमें केवल बिरहों की ही संख्या ४२ है। इसके पश्चात् घांटो या चैता और जतसार के भी गीत हैं। जहाँ तक हमें ज्ञात है भोजपुरी गीतों का यह सर्वप्रथम संग्रह है। इस लेख में गीतों का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता टिप्पणियाँ हैं। ग्रियर्सन ने गीतों में आये हुए प्राय: प्रत्येक शब्द की उत्पत्ति, उनका विभिन्न अर्थ, रूप निर्माण और गीतों के प्रसंग को लिखकर इस लेख के महत्त्व को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। स्थान-स्थान पर ऐतिहासिक तथा भौगोलिक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं जिनसे गीतों को समझने में बड़ी आसानी होती है। इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी 'भोजपुरी लोक-गीत' भाग २ में लगभग सौ पृष्ठों की जो टिप्पणियाँ लिखी हैं उसमें ग्रियर्सन की इन टिप्पणियों से बड़ी सहायता ली गई है।

डा० ग्रियर्सन ने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में 'विजयमल' के गीत को प्रकाशित किया है।[1] लेख के प्रारम्भ में विजयमल की अति संक्षिप्त कथा और इसके संग्रह-क्षेत्र का भी उल्लेख किया गया है। यह गीत बिहार के शाहाबाद जिले से संग्रह किया गया है। विजयमल भोजपुरी भाषा का महाकाव्य है जो ११३८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। विद्वान् लेखक ने इस समस्त गीत का अंग्रेजी में अनुवाद भी किया है और स्थान, स्थान पर पाद टिप्पणियाँ भी दी हैं जो बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। विजयमल का इतना प्रामाणिक संस्करण अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। दूधनाथ प्रेस, कलकत्ते से 'कुँअर विजयी' नामक एक पुस्तक अभी प्रकाशित हुई है परन्तु इसका विशेष महत्त्व नहीं है।

उक्त पत्रिका के एक दूसरे अंक में ग्रियर्सन ने 'राजा गोपीचन्द के गीत के दो विभिन्न पाठों' (versions) को संग्रहीत किया है।[2] राजा गोपीचन्द की कथा बड़ी प्रसिद्ध है और इसका प्रचार भोजपुरी प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी है। अत: सभी प्रान्तों में गोपीचन्द के गीत विभिन्न रूपों में पाये जाते हैं। डाक्टर ग्रियर्सन ने बिहार प्रान्त के मगध प्रदेश तथा भोजपुरी प्रदेश में प्रचलित इस गीत के विभिन्न पाठों को एक स्थान पर संग्रह किया है तथा इन पाठों के कथानक में जो अन्तर है उसे भी बतलाया है। गोपीचन्द के गीत की तुलनात्मक आलोचना करने वाले विद्वानों के लिये यह लेख उपयोगी ही नहीं

१. जे० ए० एस० बी० भाग ५३, (१८८४) खंड ३ पृ० ६४.
दि सांग आफ विजयमल।

२. जे० ए० एस० बी० भाग ५४, (१८८५) खंड १ पृ० ६४
टू वरशन्स आफ दि सौंग आफ गोपीचन्द।

अत्यन्त आवश्यक भी है। गीत के अन्त में उसका अंग्रेजी अनुवाद और पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। यह गीत गद्य-पद्यात्मक है।

इसी पत्रिका के एक अन्य अंक में डाक्टर ग्रियर्सन ने 'मानिकचन्द का गीत' शीर्षक एक लेख लिखा है।[१] यह लेख बड़ा विस्तृत है तथा १०४ पृष्ठों में समाप्त हुआ है। मानिकचन्द राजा गोपीचन्द के पिता थे अतः इस लेख में गोपीचन्द के जीवन आदि के संबंध में भी प्रचुर प्रकाश डाला गया है। लेखक ने प्रारम्भिक चौदह पृष्ठों में राजा मानिकचन्द की जन्मभूमि, आविर्भाव काल, कथा, गुरुपरम्परा आदि के संबंध में तथा इनकी स्त्री मयनावती और पुत्र गोपीचन्द के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें लिखी हैं। 'माणिकचन्द्र की कथा' बंगला भाषा में है जो नागरी अक्षरों में छापी गई है। गोपीचन्द से संबद्ध होने के कारण इस लेख का बड़ा ही महत्त्व है। इस गीत का अंग्रेजी अनुवाद और पाद टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

डाक्टर ग्रियर्सन ने 'इंडियन एंटिक्वेरी' नामक बम्बई से प्रकाशित होने वाली शोध संबंधी प्रसिद्ध पत्रिका में 'आल्हा के विवाह के गीत' को प्रकाशित किया है।[२] भोजपुरी प्रदेश में आल्हा के गीत बहुत ही प्रसिद्ध हैं तथा बड़े चाव से गाये और सुने जाते हैं। लेखक ने इन्हीं गीतों को संग्रह कर प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। यह गीत भी भोजपुरी महाकाव्य है जो ५५८ पंक्तियों में समाप्त हुआ है। इसमें आल्हा के केवल विवाह का ही वर्णन है। उसके प्रारंभिक जीवन का इसमें उल्लेख नहीं है। फिर भी यह संग्रह हमारे बड़े काम का है। ग्रियर्सन ने लेख के प्रारम्भ में 'आल्हा के गीत' के विभिन्न पाठों का उल्लेख किया है और आल्हा की ऐतिहासिकता पर भी संक्षेप में प्रकाश डाला है। इसी पत्रिका में अन्य स्थान पर लेखक ने 'आल्हा खंड' का पूर्ण कथानक संक्षेप में उपस्थित किया है[३] जिससे आल्हा के पूरे जीवन चरित को जानने में हमें बड़ी सहायता मिलती है। यह पूर्ण कथानक अंग्रेजी पद्य में अनूदित है। मूल गीत नहीं दिया गया है।

लन्दन की 'प्राच्य विद्या परिषद्' की पत्रिका में डाक्टर ग्रियर्सन ने 'उत्तरी

१. जे० ए० एस० बी० भाग ५३, (१८७८) खंड १ नं० ३
   दि सांग आफ मानिकचन्द।
२. इन्डियन एन्टिक्वेरी भाग १४, (१८८५) पृ० २०६
   दि सांग आफ आल्हाज़ मैरेज
३. वही, पृ० २५५
   ए समरी आफ दि आल्हा खंड।

भारत का लोक साहित्य' नामक एक लेख प्रकाशित किया है जिसमें भोजपुरी भाषा के भी अनेक गीत सम्मिलित हैं।[१] इस लेख में लेखक ने उत्तरी भारत में प्रचलित तुलसीदास जी का रामचरित मानस, बिहारी की सतसई, सूरदास के पद और विद्यापति की पदावली से उदाहरण देते हुए आल्हा के सुप्रसिद्ध गीत का कुछ अंश उद्धृत किया है। साथ ही भगवती देवी का अत्यन्त प्रसिद्ध गीत और बस्ती सिंह के गीत का संग्रह किया है। 'लाइट आफ एशिया' के ख्यातनामा कवि सर एडविन आरनाल्ड कृत भगवती देवी के गीत का अंग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

डाक्टर ग्रियर्सन ने जर्मन भाषा की एक सुप्रसिद्ध पत्रिका में 'नायका बनजरवा' नामक एक लेख लिखा है।[२] जिसमें उन्होंने 'नायका' नामक किसी बनजारा या सौदागर के गीत का संग्रह किया है जो ६२९ पंक्तियों में है। यह गीत बहुत बड़ा है तथा यह भोजपुरी महाकाव्य है। यह गीत शाहाबाद जिले से संग्रहीत है। लेखक ने प्रारम्भ के सोलह पृष्ठों में इसी गीत के आधार पर भोजपुरी भाषा का संक्षिप्त व्याकरण भी दिया है जो बहुत ही उपयोगी है। इन्होंने गीत की व्याकरण संबंधी विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला है। गीत में आये हुए कठिन शब्दों का अर्थ भी अंग्रेजी में दिया गया है। स्थान-स्थान पर टिप्पणियाँ भी हैं। भोजपुरी भाषा तथा लोकगीत के विद्वानों के लिये यह लेख अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

फ्रेजर एक अंग्रेज सिविलियन थे जो गोरखपुर जिले के डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट थे। इन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में गोरखपुर जिले में प्राप्त भोजपुरी गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[३]

ह्यूज फ्रेजर

इन गीतों की कुल संख्या तेरह है जिनमें छः गीत कजली के, एक जतसार और शेष विभिन्न विषयों के गीत हैं। इन गीतों को लेखक ने सरकारी आज्ञा से गजेटियर में उपयोग करने के लिये संग्रहीत किया था परन्तु किसी कारण इन गीतों का उसमें उपयोग न हो सका। इन गीतों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद भी प्रस्तुत किया गया है जिसे फ्रेजर ने

१. बुलेटिन आफ दि स्कूल आफ ओरियन्टल स्टडीज, लन्डन।
भाग १ खंड ३ (१९२०) पृ० ८७
दि पापुलर लिटरेचर आफ नार्दर्न इन्डिया।
२. जेड० डी० एम० जी० भाग ४३, (१८८९) पृ० ४६८
सेलेक्टेड स्पेसीमेन्स आफ दि बिहारी लैंग्वेज।
३. जे० ए० एस० बी० भाग ५२, (१८८३) पृ० १—३२
फोकलोर फ्राम ईस्टर्न गोरखपुर।

स्वयं किया है। परन्तु इनका सम्पादन डाक्टर ग्रियर्सन ने किया है। ग्रियर्सन ने अपनी टिप्पणियों में भोजपुरी भाषा की विभिन्न विशेषताओं पर प्रचुर प्रकाश डाला है। साथ ही इन गीतों के छन्द पर भी विचार किया गया है।

यह भी एक सिविलियन थे। इन्होंने बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की पत्रिका में 'भोजपुरी भाषा' पर टिप्पणियाँ लिखी हैं।[1] ये भोजपुरी व्याकरण के बड़े उत्कृष्ट विद्वान् थे। इनके द्वारा लिखा गया 'हिन्दी का व्याकरण' आज भी अत्यन्त प्रामाणिक माना जाता है। उपर्युक्त लेख में यद्यपि 'भोजपुरी बोली' के व्याकरण का ही विस्तृत विवेचन किया गया है परन्तु लेखक ने अनेक भोजपुरी गीतों को भी उदाहरण के रूप में उद्धृत किया है।

जे. बीम्स

आप भी अंग्रेज सिविलियन थे। आप कुछ दिनों तक जौनपुर जिले के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट थे। वहीं आपका परिचय पं० रामनरेश त्रिपाठी से हुआ और उन्हीं के सम्पर्क से संभवतः आपका ध्यान भोजपुरी लोकगीतों की ओर आकृष्ट हुआ। आप हैलेटशाही शासन में गवर्नर के सलाहकार थे और अभी हाल ही में नौकरी से रिटायर हुए हैं।

ए. जी. शिरेफ

इन्होंने "हिन्दी फोक सांग्स" नामक एक पुस्तक सम्पादित की है जिसमें भोजपुरी भाषा के उन्नीस गीतों का संग्रह है।[2] ये गीत विभिन्न प्रकार के हैं जिनमें सोहर और जतसार के गीतों की अधिकता है। इन गीतों का अंग्रेजी में पद्यात्मक अनुवाद भी उपस्थित किया गया है। इस पुस्तक में जो गीत संग्रहीत हैं उनमें से प्रायः सभी पं० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) से लिये गये हैं।

(घ) लोक गीतों के आधुनिक संग्रह

किसी देश की वास्तविक संस्कृति जानने के लिये वहाँ के लोक-गीतों का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में लोक-गीतों की रक्षा पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। वहाँ 'फोकलोर सोसाइटी' स्थापित हैं जो गाँव गाँव में योग्य विद्वानों को भेजकर स्थानीय लोक गीतों का संग्रह कराकर प्रकाशित करती हैं। विशप पर्सी तथा प्रोफेसर चाइल्ड ने इंगलैण्ड के लोक-गीतों का बड़ा प्रामा-

---

१. जे० ए० एस० बी० भाग ३, एन० एस० (१८६८) पृ० ४८३
नोट्स आन दि भोजपुरी डायलेक्ट आफ हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार।

२ हिन्दी फोक सांग्स।
हिन्दी मंदिर, प्रयाग, १९३६

णिक संग्रह किया है और उन्हें वैज्ञानिक रीति से सम्पादित किया है। परन्तु इस देश में लोक-गीतों के संरक्षण की ओर अभी ध्यान आकर्षित नहीं हुआ है। गत शताब्दी में सर्वप्रथम ग्रियर्सन आदि अंग्रेज विद्वानों का ध्यान इस दिशा की ओर आकर्षित हुआ था और उन्होंने इन गीत-रत्नों का संग्रह तथा प्रकाशन किया था जिसका उल्लेख गत पृष्ठों में किया जा चुका है।

लोक गीतों के संग्रह का सर्वप्रथम उद्योग पं० रामनरेश त्रिपाठी ने किया। त्रिपाठी जी का यह कार्य अनेक दृष्टियों से मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने गीतों का संग्रह कर न केवल हमारी संस्कृति की रक्षा की है प्रत्युत सभ्य समाज का ध्यान भी इन देहाती तथा उपेक्षित गीतों की ओर आकर्षित किया है। त्रिपाठी जी ने समस्त भारत की यात्रा कर, अपने समय, स्वास्थ्य और द्रव्य का प्रचुर व्यय कर कई हजार गीतों को एकत्रित किया है जिसका एक भाग उन्होंने अपनी कविता कौमुदी के भाग ५ में 'ग्राम गीत' के नाम से प्रकाशित किया है।[1]

इस पुस्तक में सोहर, जनेऊ, विवाह, जांत, सावन, निरवाही, हिंडोला, कोल्हू, मेला और बारहमासा इन दस प्रकार के गीतों का संग्रह है। पुस्तक के प्रारम्भ में त्रिपाठी जी ने १३८ पृष्ठों की 'ग्राम गीतों का परिचय' नाम से एक महत्त्वपूर्ण वृहत् भूमिका लिखी है जिसमें लोक-गीत संबंधी अनेक आवश्यक बातों का विस्तृत विवेचन किया गया है। लोक गीतों के रचयिता, इनका रचना काल, कवित्व, ऐतिहासिकता आदि विषयों का बड़ा ही सुन्दर विवेचन हुआ है। इन गीतों में निहित संस्कृति और सभ्यता के ऊपर प्रकाश डाला गया है। त्रिपाठी जी ने इस भूमिका में कुछ ऐसे शब्दों का संग्रह किया है जिनका प्रयोग हिन्दी में नहीं होता परन्तु जिनका ग्रहण हिन्दी की उन्नति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

कविता कौमुदी

त्रिपाठी जी ने अपने विस्तृत संग्रह में से चुने हुए गीतों को ही इस पुस्तक में स्थान दिया है। अतः जो गीत यहाँ प्रकाशित हैं वे बड़े ही महत्वपूर्ण हैं। विद्वान् संग्रहकर्त्ता ने उत्तर प्रदेश और बिहार प्रान्त में हिन्दी की विभिन्न बोलियों,—खड़ी बोली, ब्रज भाषा, अवधी, भोजपुरी, और बैसवाड़ी—में गाये जाने वाले गीतों का संग्रह कर अपनी व्याख्या के साथ इन गीतों का सम्पादन किया है। चूंकि इन गीतों के संग्रह का क्षेत्र प्रधान रूप से उत्तर प्रदेश का पूर्वी भाग और बिहार का पश्चिमी भाग रहा है अतः इस पुस्तक में भोजपुरी गीतों की संख्या प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। किसी एक विशिष्ट बोली के गीतों का संग्रह न होने के कारण त्रिपाठी जी की यह पुस्तक प्रकीर्ण संकलन है। इसलिए भाषा-शास्त्र की दृष्टि से इस पुस्तक का

१. हिन्दी मन्दिर, प्रेस, प्रयाग सन् १९२९ में प्रकाशित

विशेष मूल्य नहीं है। यदि हिन्दी की किसी एक बोली का शास्त्रीय अध्ययन हम इन गीतों के द्वारा करना चाहें तो हमें निराश ही होना पड़ेगा। लोक गीतों के संग्रह में त्रिपाठी जी की यह कृति हमारे लिए पथ-प्रदर्शक का काम करती है। इस पुस्तक में कुछ बड़े ही सुन्दर तथा मर्म-स्पर्शी गीतों का संकलन किया गया है।

सोहर

यह पुस्तक पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संग्रहीत और प्रकाशित की गई है।[1] इसमें पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का—जिन्हें सोहर कहते हैं,—संग्रह है। इस पुस्तक में कुछ गीत तो कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) में प्रकाशित गीतों से लिए गए हैं और कुछ नूतन भी हैं। साधारण जनता में लोक गीतों का प्रचार हो इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर यह सस्ती, छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की गई है। संभवतः सोहरों का इतना अधिक संग्रह अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। अच्छा होता यदि त्रिपाठी जी इस सोहर के समान जतसार, बारहमासा, कजली, चैता, होली आदि गीतों की भी छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित करते जिससे जनसाधारण के लिये सस्ते दामों में ये पुस्तकें उपलब्ध हो सकतीं।

हमारा ग्राम साहित्य

इस पुस्तक के भी संग्रहकर्त्ता और सम्पादक पं० राम नरेश त्रिपाठी ही हैं।[2] इस पुस्तक की रचना का कारण और उद्देश्य को बतलाते हुए विद्वान् लेखक ने अपनी भूमिका में लिखा है[3] कि "यह पुस्तक युक्तप्रान्त के शिक्षा विभाग के सेक्रेटरी श्रीयुत् एन० सी० मेहता आई० सी० एस० की प्रेरणा और एजुकेशन एक्सपैन्शन अफसर श्रीयुत् श्रीनारायण चतुर्वेदी के पत्र नं० ४५ ता० २२ जून, १९३६ के अनुसार प्रस्तुत की जा रही है। इससे इस सूबे के ग्राम साहित्य की एक रूप-रेखा तैयार कर दी गई है जिससे उसके स्वरूप और उसकी उपयोगिता की साधारण जानकारी पाठकों को हो जायगी।" उपर्युक्त उद्धरण से इस पुस्तक के लिखने का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। त्रिपाठी जी ने प्रारम्भ के ५६ पृष्ठों में जो 'ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त परिचय' दिया है वह बड़ा उपयोगी है। इस परिचय में उन्होंने ग्राम-साहित्य की महत्ता का बड़ी सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया है। देहाती कहावतों, मुहावरों, कहानियों तथा जातीय गीत एवं नृत्य पर प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में विविध प्रकार के गीतों के संकलन हैं जिनमें सोहर, अन्नप्राशन, मुंडन, जनेऊ, विवाह, चक्की, खेत, कोल्हू आदि के गीत हैं। विभिन्न जातियों

१. हिन्दी मन्दिर प्रेस, प्रयाग द्वारा प्रकाशित।

२. प्रकाशक : हिन्दी मन्दिर, प्रयाग, १९४० ई०। मूल्य २ रुपया।

३. हमारा ग्राम साहित्य भूमिका पृ० ३।

द्वारा गाये जाने वाले गीतों का भी संकलन है जिनमें मुख्य अहीर, कहाँर, तेली, गड़ेरिया, धोबी, चमार आदि के गीत हैं। इनके अतिरिक्त घाघ भड्डरी की कहावतें, खेती के विषय में प्रचलित कहावतें तथा निरोग रहने के चुटकुले भी दिये गये हैं। इन गीतों में भोजपुरी गीतों की संख्या अधिकता से पाई जाती है। यह पुस्तक क्या है देहाती साहित्य का ज्ञानकोष है।

इस ग्रंथ का संग्रह और सम्पादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है।[१] भोजपुरी लोक गीतों के संग्रह की यह सबसे प्रथम तथा मौलिक रचना है। इस पुस्तक में संग्रहीत गीतों का संग्रह लेखक ने बड़े परिश्रम से, भोजपुरी प्रदेश के गाँव गाँव में घूम कर किया है। प्रत्येक गीत के संग्रह की अपनी राम कहानी है। पुस्तक के प्रारम्भ में पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए०, साहित्याचार्य, प्रोफेसर, हिन्दू विश्व विद्यालय, बनारस, ने सौ पृष्ठों की अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है। इस भूमिका में भोजपुरी भाषा और साहित्य पर प्रचुर प्रकाश डाला गया है तथा लोक गीतों की पाश्चात्य और भारतीय परम्परा, उनका महत्त्व, उनके गाने के प्रकार एवं गीतों के ऐतिहासिक तथा भौगोलिक आधार का सम्यक् रीति से विवेचन किया गया है। अन्त में लोक गीतों में अलंकार और रस का परिपाक दिखला कर 'विरहा की बहार' का आनन्द पाठकों को दिया गया है।

भोजपुरी लोक गीत
(प्रथम भाग)

इस संग्रह में कुल २७१ गीतों का संकलन किया गया है। ये गीत संस्कार और ऋतु क्रम से निम्नांकित पन्द्रह भागों में विभक्त हैं:—सोहर, खेलवना, जनेऊ, विवाह, वैवाहिक परिहास, गवना, जांत, छठी माता, शीतला माता, झूमर, बारहमासा कजली, चैता, विरहा और भजन। पुस्तक का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से किया गया है। प्रत्येक गीत का प्रसंग या संदर्भ पहले लिखा गया है जिससे पाठकों को गीत समझने में सरलता हो। पुनः गीत लिखकर उसके प्रत्येक कठिन शब्द का अर्थ पाद टिप्पणियों में दिया गया है। गीत की प्रत्येक पंक्ति का अर्थ खड़ी बोली में प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के अन्त में २४ पृष्ठों में भोजपुरी शब्दकोष है। इस प्रकार भोजपुरी गीतों का यह सर्व प्रथम वैज्ञानिक संग्रह है।

इस पुस्तक का भी संग्रह और सम्पादन डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने किया है।[२] इसकी भूमिका हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस के तत्कालीन वाइस चान्सलर

१. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० २००० द्वारा प्रकाशित, मूल्य ५ रुपया।
२. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० २००५ द्वारा प्रकाशित, मूल्य ११ रुपया।

डाक्टर अमरनाथ झा ने लिखी है। अपनी भूमिका में डा० झा लिखते हैं कि "उपाध्याय जी ने एक सौ पृष्ठ की टिप्पणियाँ लिख कर पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ा दी है। इससे प्रान्तान्तर के निवासियों को गीतों को समझने में सहायता मिलेगी। आशा है कि साहित्य जगत् इस पुस्तक का आदर करेगा।"[1] इस पुस्तक में पचीस प्रकार के भोजपुरी गीतों का संग्रह किया गया है

भोजपुरी लोक गीत (द्वितीय भाग)

जिनकी कुल संख्या ४३० है। संग्रहीत गीतों का विभाजन प्रधानतया तीन भागों में किया गया है। १. संस्कार संबंधी २. ऋतु संबंधी और ३. पर्व संबंधी गीत। निम्नलिखित प्रकार के गीत इसमें संग्रहीत हैं:—सोहर, जोग, सेहला, विवाह, बहुरा, पिड़िया, गोधन, नागपंचमी, जतसार, झूमर, कजली, बारहमासा, होली, डफ, चैता, सोहनी, रोपनी, विरहा, कांहार, गोंड, पचरा, निरगुन, देशभक्ति, पूर्वी, पाराती और भजन। प्रत्येक गीत के संपादन का क्रम वही है जो प्रथम भाग का है। अपने वक्तव्य में लेखक ने गीत संग्रह संबंधी अपनी यात्राओं का बड़ा ही रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। पुस्तक के अन्त में लगभग सौ पृष्ठों की टिप्पणियाँ दी गई हैं जिसमें गीतों में आये हुए विषयों तथा शब्दों को लेकर भौगोलिक, ऐतिहासिक, भाषा-शास्त्र संबंधी विवेचन किया गया है। इस पुस्तक में भाषा-शास्त्र के विद्वानों के लिये अनुसंधान की सामग्री विद्यमान है।

भोजपुरी और उसका साहित्य

वर्तमान लेखक की यह पुस्तक राजकमल प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित हुई है। इसमें भोजपुरी साहित्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है। स्थान-स्थान पर उदाहरण के रूप में अनके गीतों को दिया गया है।

लोक साहिय की भूमिका[2]

इस ग्रन्थ में वर्तमान लेखक ने लोक साहित्य के मौलिक सिद्धान्तों की विशद मीमांसा की है। विषय को समझाने के लिए उदाहरण रूप में अनेक भोजपुरी के गीत उद्धृत है।

लेखक ने अपने गीत संग्रह के दौरे में कई हजार गीतों का संग्रह किया था जिनमें लगभग सात सौ चुने हुए गीतों का प्रकाशन भोजपुरी लोक गीत भाग १, २ में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से हो चुका है। लेखक के संग्रह में हजा ों ऐसे गीत सुरक्षित

---

१. भोजपुरी लोक गीत भाग २ भूमिका पृष्ठ ५, ६।

२. साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग।

हैं जिनका प्रकाशन अभी नहीं हुआ है। उन गीतों में भोजपुरी लोक-गाथाओं की प्रधानता है। इन गाथाओं में कुछ तो छोटे हैं जैसे भगवती देवी और कुंअर सिंह, परन्तु कुछ बहुत ही लम्बे हैं जैसे विजयमल, आल्हा, नयकवा, बनजारा, सोरठी, बिहुला और ढोलन के गीत। इन गीतों को भोजपुरी महाकाव्य कहें तो कुछ अनुचित न होगा। यह संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है परन्तु आशा है कि यह शीघ्र ही प्रकाश में आ जायगा।

भोजपुरी लोक-गाथा और लोक-कथायें

इन गीतों के संग्रह के अतिरिक्त लेखक ने लोक कथाओं का भी विशाल संग्रह किया है। ये लोक कथाएँ वे ही हैं जिन्हें बूढ़ी दादियाँ अपने बच्चों को सुलाने के समय रात को सुनाती हैं और खेत से आये हुये थके-माँदे किसान जाड़े के दिनों में जलती हुई आग के पास बैठ कर कहा करते हैं। इन कहानियों में मनो ंजन, उपदेश, रहस्य, रोमांच और कौतुक की मात्रा विशेष रहती है। लेखक ने इन गाथाओं और कथाओं के प्रकाशन की जो बृहत् योजना तैयार की है उसका उल्लेख भोजपुरी लोक गीत भाग २ के वक्तव्य में किया गया है।[1] इनके अतिरिक्त लेखक के पास भोजपुरी मुहावरों, कथाओं, और पहेलियों आदि का भी पर्याप्त संग्रह है जिनका प्रकाशन वांछनीय ही नहीं अत्यावश्यक भी है।

इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता और सम्पादक दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह हैं।[2] विद्वान सम्पादक ने बड़े परिश्रम से गीतों का संग्रह और सम्पादन किया है। इस पुस्तक में लगभग ६०० पृष्ठ हैं। इसमें करुण रस का अच्छा वर्णन है। पुस्तक के प्रारम्भ में अस्सी पृष्ठ की एक लम्बी भूमिका भी सम्पादक महोदय ने लिखी है जिसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य के विषय में अनेक ज्ञातव्य बातें दी गई हैं। भोजपुरी की व्युत्पत्ति, प्राचीनता, विस्तार, विशेषता तथा इसके साहित्य पर प्रकाश डालने का स्तुत्य प्रयत्न किया गया है। भोजपुरी गीतों में करुण रस के अतिरिक्त अन्य रसों की भी कवितायें मिलती हैं इसका सोदाहरण विवेचन इस पुस्तक में किया गया है। इसमें निम्नांकित पन्द्रह प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है :—

भोजपुरी लोक गीत में करुण रस

सोहर, जंतसार, झूमर, कहंरुआ, भजन, बारहमासा, अलचारी, खेलवना, विवाह, पूरबी, कजरी, रोपनी, और निराई, हिंडोले, देवी जी और मार्ग चलते समय के गीत।

---

१. देखिये पृष्ठ १७।

२. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग सं० २००१ द्वारा प्रकाशित, मूल्य ६ रुपया।

उक्त पुस्तक में दो खटकने वाली बातें हैं। पहिली बात तो करुण रस के अन्तर्गत इन गीतों का चुनाव है। जो गीत इस संग्रह में आये हैं वे सभी करुण रस के हों ऐसी बात नहीं है। परन्तु सम्पादक ने क्यों इन्हें इस श्रेणी में रक्खा है यह बात समझ में नहीं आती है। दूसरी बात यह है कि गीतों का प्रसंग नहीं देने से उनका विषय समझ में नहीं आता। गीतों के कठिन शब्दों का अर्थ भी नहीं दिया गया है। दुर्गाशंकर जी के पास शृंगार रस के गीतों का बृहत् संग्रह विद्यमान है जो अभी अप्रकाशित है।

भोजपुरी ग्राम्य गीत

इस पुस्तक के संग्रहकर्त्ता और सम्पादक श्री डब्लू० जी० आर्चर आइ० सी० एस० और श्री संकठा प्रसाद हैं[1]। डब्लू० जी० आर्चर का नाम लोक गीतों के क्षेत्र में बड़ा प्रसिद्ध है। ये एक सुयोग्य तथा अनुभवी शासक ही नहीं थे बल्कि लोक गीतों के उत्साही संग्रहकर्त्ता और मर्मज्ञ भी थे। इन्होंने छोटा नागपुर, बिहार की विभिन्न जातियों के लोक गीतों का संग्रह कर प्रकाशन किया है जिसका एक भाग हमारे सामने प्रस्तुत है। इस पुस्तक का नाम 'लील खो रआ खे खेल' है जो छोटा नागपुर में रहने वाली उरांव नामक जंगली जाति के गीतों का संग्रह है। इनकी दूसरी पुस्तक ब्ल्यू-ग्रोम के नाम से प्रसिद्ध है जो आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से निकली है। ये सज्जन रांची में कमिश्नर थे जहाँ इन्होंने उपर्युक्त गीतों का संग्रह किया।

हमारा संबंध इनकी 'भोजपुरी ग्राम्य-गीत' नामक पुस्तक से ही है। कुछ वर्ष पूर्व आर्चर ने बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना की पत्रिका के विभिन्न अंकों में भोजपुरी गीतों का प्रकाशन किया था। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं गीतों का संग्रह है। इसमें समस्त गीतों की संख्या ३७७ है। ये गीत बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के कायस्थ परिवार से संग्रह किये गये हैं। इनका संग्रह काल १९३९-४१ ई० है। इस पुस्तक में पचीस प्रकार के गीतों का संग्रह किया गया है जिनके नाम ये हैं — सगुन, तिलक, शिवविवाह, प्रातः काली, हलदी, सेहला, जोग, टोना, विवाह, मंगल, सोहाग, परीछन, कोहवर, जेवनार, अबटौनी, झूमर, टापा, सोहर, मुंडन, चैता, माता के गीत, कजरी, बरसाती, जतसार, रोपनी और सोहनी के गीत। इस संग्रह की सबसे बड़ी त्रुटि यह है कि न तो इसमें गीतों का अर्थ ही दिया गया है और न कठिन शब्दों की व्याख्या ही।

१. बिहार और उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, पटना १९४३ ई० से प्रकाशित और पटना ला प्रेस, पटना से मुद्रित। मूल्य ४ रुपया।

इस पुस्तक के लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं[1]। लोक गीतों के क्षेत्र में काम करनेवाला शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति हो जो सत्यार्थी जी के नाम और व्यक्तित्व से परिचित न हो। इन्होंने भारत के प्रत्येक प्रान्त में घूम-घूम कर विभिन्न भाषाओं के गीतों का प्रचुर संग्रह किया है। सत्य तो यह है कि सत्यार्थी जी ने अपने अमूल्य जीवन को ही इन लोक-गीतों के संग्रह में लगा दिया है। उन्होंने लोक-गीतों के संबंध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें "धरती गाती है" और 'गाये जा हिन्दुस्तान' मुख्य है।

धरती गाती है

"धरती गाती है" नामक पुस्तक में सत्यार्थी जी ने विभिन्न भाषाओं के गीतों का संग्रह किया है। ये संग्रह किसी विशेष क्रम के आधार पर नहीं किए गये हैं बल्कि लेखक को जो भी गीत सुन्दर जान पड़ा उसी का संग्रह कर लिया है। इस पुस्तक में भोजपुरी के भी कुछ गाने दिए गए हैं जिनमें सोहर का एक गीत बड़ा ही सुन्दर है।

इस पुस्तक में गीतों की स्वतन्त्र व्याख्या बड़ी सुन्दर रीति से की गई है। यद्यपि गीतों की संख्या इसमें अधिक नहीं है परन्तु जो गीत हैं वे बड़े महत्वपूर्ण हैं। "रेलवा न बैरी जहजिया ना बै ी" वाला अध्याय बड़ी मार्मिकता से लिखा गया है।

बेला फूले आधी रात

इसके भी लेखक श्री देवेन्द्र सत्यार्थी हैं।[2] इस पुस्तक में विभिन्न भाषाओं के गीतों का संग्रह है। 'बेला फूले आधी रात' वाले अध्याय में अनेक भोजपुरी गीतों का संग्रह किया गया है जिनमें बेला के फूलने का वर्णन पाया जाता है।

धरती के गीत

यह हिन्दी की विभिन्न बोलियों में रचे गए गीतों का संग्रह है।[3] प्रस्तुत पुस्तक बम्बई के कम्युनिस्टों का प्रकाशन है जिसके द्वारा जनता में विद्रोह की भावना भरने का प्रयत्न किया गया है। खड़ी बोली, अवधी और ब्रजभाषा के गीतों के अतिरिक्त इसमें भोजपुरी के भी कुछ गीत हैं जिनमें दो की रचना राहुल जी ने की है। ये गीत किसानों की समस्या से संबंध रखते हैं।

ङ : आधुनिक कविगण

भोजपु ी साहित्य की श्रीवृद्धि करने वालों सज्जनों में चौथी श्रेणी उन लोगों

१. राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली सन् १६४८ से प्रकाशित। मूल्य १० रू०

२. राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

३. बम्बई की कम्युनिस्ट पार्टी के द्वारा प्रकाशित।

की है जिन्होंने जनमत की उपेक्षा की अपेक्षा न कर, अपनी मातृभाषा की साहित्य वृद्धि में ही अपना जीवन खपा दिया। इन्होंने ग्रामीण गीतों की रचना कर अपने साहित्य की वृद्धि करना ही अपना एक मात्र लक्ष्य बनाया है और प्रतिष्ठा, धन तथा यश की प्राप्ति से विमुख हो अपनी काव्य-साधना में जुटे हुए हैं। इन आदरणीय कवियों में से कुछ तो पंचतत्व में विलीन हो गये हैं और कुछ अभी जीवित हैं। इन जीवित कवियों में से कुछ की कविताएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आ सकीं हैं। गुदड़ी में लाल की भाँति ये अनमोल काव्य-रत्न इन कवियों की हस्तलिखित प्रतियों में सुरक्षित और सुशोभित हो रहे हैं। इनका विवरण नीचे की पंक्तियों में दिया जाता है।

बिसराम

भोजपुरी के वर्तमान कवियों में बिसराम का महत्वपूर्ण स्थान है[1]। भोजपुरी के इस जन कवि ने अनपढ़ होने पर भी सरस तथा भावपूर्ण पद्य लिखे हैं जो किसी भी सभ्य देश के साहित्य में गौरव का स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

बिसराम का जन्म आजमगढ़ नगर से कुछ दूर सिरामपुर नामक गाँव में एक क्षत्रिय परिवार में हुआ था। यह गाँव टोन्स नदी के किनारे बसा हुआ है जिसका प्राचीन नाम तमसा था। बिसराम के माता पिता ने इसे स्कूल में पढ़ाने का बड़ा प्रयत्न किया परन्तु बिसराम का मन देहात की पाठशाला में न लगा। वह प्रकृति की पाठशाला में पढ़ने लगा। युवा होने पर कवि का विवाह हुआ परन्तु वह पारिवारिक सुख अधिक दिनों तक न भोग सका। कुछ ही दिनों के पश्चात् उसकी प्रियतमा ने पंचतत्व को प्राप्त किया। अपनी प्राणप्रिया के अकाल काल-कलवित होने से कवि के भावुक हृदय पर बड़ा आघात पहुँचा और उसका आन्तरिक शोक श्लोक-बिरहा-के रूप में प्रकट हुआ। शोकः श्लोकत्वमागतः।

बिसराम ने अपनी विरह वेदना को बिरहों के माध्यम से व्यक्त किया है। बिरहा भोजपुरी के कवियों का छन्द है। बिसराम के केवल पचास बिरहों का अब तक पता चला है। परन्तु केवल ये ही बिरहे इस कवि की प्रतिभा, काव्य कुशलता, प्रकृति निरीक्षण और भाव-चित्रण के अनुपम नमूने हैं। इसकी रचना में कोरी शाब्दिक कलाबाजी न होकर हृदय की वेदना की तीव्र अनुभूति है।

पत्नी का शव श्मशान जाते देखकर कवि की जो मनोदशा हुई थी उसका

१. यह प्रतिभाशाली कवि अज्ञात दशा में पड़ा हुआ था। इसकी कीर्ति को प्रकाश में लाने का श्रेय बाबू परमेश्वरी दयाल गुप्त को है।

वर्णन इन शब्दों में कितना सुन्दर हुआ है[1]:—

"आजु मोरी घरनी निकरली मोरे घर से,
मोरा फाटि गयल आल्हर करेज।
'राम नाम सत' ही सुनि मैं गइलों बउराई।
कवन रछसवा गइलें रानी के हो खाई।
सुखि गइले आँसू नाहीं खुलेले जबनियाँ।
कइस के निकारों मैं त दुःखिया बचनियाँ।"

कवि कहता है कि मेरी पत्नी आज घर से निकल गई। उसके जाने से मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है। कौन सा राक्षस मेरी प्रियतमा को उठा ले गया है। प्रिया के वियोग में आज मेरे मुंह से शब्द नहीं निकल रहे हैं। मेरे आँसू सूख गये हैं और जबान बन्द है। अतः हृदय के भाव कैसे व्यक्त करूँ। अपनी प्राणप्यारी वस्तु के खो जाने पर मनुष्य की कैसी दशा होती है इसका कितना सुन्दर चित्रण किया गया है।

पत्नी के वियोग से संतप्त बिसराम को देखकर घरवालों ने उससे दूसरा विवाह करने के लिये कहा परन्तु अपनी प्रियतमा के प्रेम में तल्लीन कवि के लिये यह बात असह्य हो गई और वह पुकार उठा:—

"तूंहूं हवै काम तिलकी में लेवे दाम,
हमरी दूसरी नियतिया हुई तात।
जनम गंवउबे उनके नऊंवां हम रटि-रटि,
दादा न हो करबे दूसरी के बात।"

इस गीत की तीसरी पंक्ति में कितनी वेदना भरी पड़ी है। प्रेम का स्वरूप अखंड है, अविभाज्य है, इस तथ्य का निरूपण कवि ने उपर्युक्त बिरहे में किया है।

कवि को रात दिन अपनी प्रियतमा की चिन्ता बनी रहती है। उसे प्रकृति में भी सर्वत्र उदासीनता दीख पड़ती है। एक समय रात में एक कौवे को अकेला बैठा देखकर कवि उसे समानधर्मा समझ कर कह उठता है कि—

तोरे जोड़वा के कौवनों मरले चिबिल्ला कउवा,
मोरे जोड़वाँ के मरले राम।
उनके मनवा छन भरवा बहलले कउवा,
हमनी के तड़पे नित प्रान।

---

१. परमेश्वरी दयालु गुप्त—भोजपुरी का जनकवि बिसराम.—'समाज' ३ जून १९४८ पृ० ११

बिसराम क्षणभर के लिये भी अपनी प्रियतमा को नहीं भुला सकता। क्या दिन और क्या रात, क्या गर्मी और क्या जाड़ा, सभी काल और सभी ऋतुओं में उसे अपनी प्राणप्यारी की स्मृति जागती रहती है। माघ के महीने में शीत का उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि :—

हथवा के साथे मोरा मनवा ठिठुरले,
हम होइ गइलीं है उकठल काठ।

अर्थात् जाड़े के मारे हाथ के साथ मेरा मन भी ठिठुर गया है। मेरे मन में उल्लास नहीं है और मैं ठूंठ—पत्रहीन—वृक्ष को तरह हो गया हूँ। अर्थात् जिस प्रकार स्थाणु का कुछ महत्व नहीं होता उसी प्रकार प्रिया से विरहित मेरे जीवन का कुछ मूल्य नहीं है। इन शब्दों में कितनी मानसिक वेदना छिपी हुई है। यह कितना कारुणिक उद्गार है।

कवि को सदा अपनी स्त्री की सुधि आती रहती है। वह श्मशान में पड़ी एक खोपड़ी को पड़ी देखकर पूछ बैठता है कि—

बिना अंखिया के तू त हऊ मोरी रानी।
जोहबू कइसे के बिछुड़लवा के बाट।

इन शब्दों में कितनी वेदना भरी है। प्रियतमा से मिलने की उसे कितनी चाह है। पपीहे को 'पी' 'पी' कहता सुनकर कवि उसे समझाते हुए कहता है कि ऐ पपीहा अब 'पी' के मिलने की आशा छोड़ो। वियोगी का जीवन विरह की आग में जलने के लिये ही होता है। विरह के बाद मिलन की आशा कहाँ ?

रोअल धोअल अब छोड़ऊ हो पपीहा
तनि सुनि मोरिउ लेव बात।
विरहिन के सुख नाहि मिलत मोर भइया,
उनके जरत बितेलें दिन-रात।

अन्त में कवि अपनी प्रियतमा से जीवित न सही, मरकर भी मिलने की आशा से प्रेरित होकर, अपनी प्यारी नदी तमसा से याचना करता है कि हे माता, मरने के बाद मेरी हड्डियों को वहीं बहाकर ले जाना जहाँ मेरी प्राणप्यारी की हड्डियों की चूर पड़ी हो :—

मोरी हडियन के माता उहवाँ ले जइह।
जहाँ उनकी हड़ियन के रहे चूर।

कितनी मर्मस्पर्शी अन्तिम अभिलाषा है। बिसराम ने जो कुछ लिखा है वह उसकी अपनी अनुभूति है। उसके बिरहे उत्कृष्ट काव्य के नमूने हैं। ये किसी भी साहित्य के लिये गौरव की वस्तु है।

तेग़ अली बनारस के रहने वाले मुसलमान थे। आपकी एकमात्र रचना 'बदमाश दर्पण' है जिसमें बनारसी बोली की झांकी हमें देखने को मिलती है।[1] आप बड़े ही मस्त जीव थे। काशी के गवैयों के अखाड़े के आप सरदार थे। होली के दिनों में आप अपना दल लेकर घूमते थे और आशु कविता करते हुए लोगों का मनोरंजन करते थे। आपकी रसाई बनारस के सभी समाज में थी। अतः आपने तत्कालीन समाज का सुन्दर चित्रण इन पद्यों में किया है। सुरमा लगाने के कारण की सफाई सुनिये:—

तेग़ अली

"हम उनसे पुछली, आंखि में सुरमा काहे बदे लगाइला।
ऊँ हँस के कहलन, छुरी पत्थर से चटाइला।"

उपर्युक्त पद्य में कटाक्ष की छूरी से और सुरमा की पत्थर से उपमा दी गई है। हिन्दी कवियों ने इस भाव को व्यक्त किया है परन्तु तेग़ अली के कहने का ढंग बिल्कुल नया है।

तेग़ अली की कविता के कुछ और उदाहरण लीजिये। इनकी भाषा कितनी सजीव, मुहावरेदार और चहकती हुई है।[2]

"हम खर मिटाव कइली हा रहिला चबाय के।
भेंवल धरल बा दूध में खाजा तोरे बदे।१।"
अत्तर तू रोज मल कर नहायल कर रजा।
बीसन भरल धयल बा कराबा तोरे बदे।२।
जानी ला आजकल में झनाझन चली रजा।
लाठी, लोहांगी, खंजर औ बिछुआ तोरे बदे।३।
कासी, पराग, द्वारिका, मथुरा औ वृन्दावन।
धावल करैलें 'तेग' कन्हैया, तोरे बदे।४।

बाबू रामकृष्ण वर्मा काशी के ही निवासी थे। ये बड़े ही साहित्यिक जीव थे। सरसता तथा मधुरता उनके जीवन में कूट कूट कर भरी थी। यही कारण है कि इनकी कविता में भी ये गुण विशेष रूप से पाये जाते हैं। इन्होंने 'बिरहा नायिका भेद' नामक पुस्तक लिखी है जो अल्पकाय होने पर भी साहित्यिक दृष्टि से बड़ी ही महत्वपूर्ण है।[3] इस पुस्तक में कुछ २६ पृष्ठ हैं तथा बिरहों की संख्या ५६ है।

बाबू रामकृष्ण वर्मा

---

१. लहरी प्रेस, काशी से प्रकाशित।

२. वाचस्पति उपाध्याय : ना० प्र० प०, वाराणसी बोली।

३. बिरहा नायिका भेद : भारत जीवन प्रेस काशी में, सन् १६०० ई० में मुद्रित। मूल्य १ आना।

इसका वर्ण्य विषय नायिका भेद है। भिन्न-भिन्न प्रकार की जैसे मुग्धा, ज्ञात यौवना, नवोढ़ा, मध्या, प्रौढ़ा आदि – नायिकाओं का वर्णन बिरहा छन्द में इस पुस्तक में बड़े ही मधुर शब्दों में किया गया है।

बाबू रामकृष्ण वर्मा कविता में अपना उपनाम 'बलबीर' रखा करते थे। इसका प्रयोग इन्होंने अनेक बिरहों में किया है, जैसे[1]:—

"भरली गगरिया उठौली जैसे गोइयां
तैसे बिछलल गोड़वा हमार।
जो पै बलबिरवा न बहियाँ धरत,
तो पै बहितीं जमुनवा के धार।"

इस पुस्तक में पहले विभिन्न नायिकाओं के लक्षण गद्य में दिए गये हैं पश्चात उनका पद्यात्मक उदाहरण इन बिरहों के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस 'नायिका भेद' में गद्य की भाषा खड़ी बोली है परन्तु बिरहों की भाषा भोजपुरी है जिसमें संस्कृत का गहरा पुट पाया जाता है। इन बिरहों की भाषा के संबंध में इतना और कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि इनकी भाषा भोजपुरी होने पर भी ठठ भोजपुरी नहीं है बल्कि उसमें संस्कृत के तत्सम शब्द भी यत्र-तत्र मिलते हैं। जिस प्रकार तुलसीदास जी ने अपने रामचरित मानस में संस्कृत मिश्रित साहित्यिक अवधी का प्रयोग किया है उसी प्रकार वर्मा जी ने संस्कृत मिश्रित साहित्यिक भोजपुरी को इन बिरहों का माध्यम बनाया है। यही कारण है कि इनमें मिठास है, माधुरी है। कहीं-कहीं इन बिरहों में भोजपुरी भाषा में अप्रयुक्त क्रिया पद भी पाये जाते हैं। जैसे रिसावें और मारें[2] और पड़िलयं।[3] फिर भी भाषा संयत और शिष्ट है। 'मध्या' नायिका का यह वर्णन देखिये :—[4]

लजिया की बतिया मैं कइसे कहूँ ए भउजी,
जे मोरें बूते कहलो ना जाय।
पर के फगुनवां की सियली चोलियवा में,
असों न जोबनवां अमाय।

नव यौवन के आगमन का कितना सुन्दर तथा संयत वर्णन उपर्युक्त बिरहे में किया गया है। नीचे के पद्य में प्रवत्स्यत्पतिका का कितना सुन्दर चित्रण है।[5]

१. बिरहा नायिका भेद : बिरहा संख्या २८ पृ० १३
२. बिरहा नायिका भेद : बिरहा २६ पृ० १२—१३
३. वही, „ २६ पृ० १३
४. वही.
५. वही. „ ५३ पृ० २३

दु:खवा के बतिया नगीचवो न आवै,
गुइयां हुंसी खुसी रहेला हमेस।
बजुआ सरकि कर कंगना भइल,
सुनि प्यारे का गवनवां विदेस।

कोई स्त्री—जिसका पति परदेश जाने वाला है–कहती है कि दु:ख है कि पति हमारे पास कभी आताही नहीं है। आज उसके विदेश जाने का समाचार सुनकर मैं इतनी कृश हो गई हूँ कि बांह में लगाने का आभूषण (बाजू) आज मेरी कृशता के कारण हाथ का कंगन बन गया है। हिन्दी के कवियों ने पति के वियोग में वर्षों तक घुल-घुलकर मरने वाली नायिका के 'कर की मुंदरी' को उसका कंगन बनाया है परन्तु इस बिरहे में पति के भावी वियोग की चिन्ता से ही पत्नी का इतना कृश हो जाना साहित्य जगत् में अपना सानी नहीं रखता।

खंडिता नायिका का यह वर्णन कितना सटीक हुआ है, यह कितना भाव पूर्ण है।[१]

ओठवा के छोरवा कजरवा, कपोलवा,
पै पिकवा के परली लकीर।
तोरी करनी समुझ के करेजवा फटत,
दरपनवां निहारो 'बलबीर'।

अपने पति का यह कुकृत्य देखकर किसी साध्वी स्त्री की छाती फटना नितान्त स्वाभाविक है। कवि ने इसी मनोवैज्ञानिक तथ्य को बड़ी सुन्दर रीति से निरूपण किया है। 'व' का अनुप्रास अपनी शोभा अलग दिखला रहा है।

ज्ञातयौवना का चित्रण देखिये:—[२]

हाथ गोड़वा क ललिया निरख कै छबिलिया,
मगन होली मनवा मझार।
हेरी हेरी जोबना निहारे दरपनवा में,
बेरी बेरी अँचरा उघार।

कुलटा[३] और अनुशयाना[४] के दो उदाहरण लीजिये:—

आधी जग भुंइयां, आधी नदी, नाल, कुंइयां,
आधा मरद से बुढ़वा बेराम।

१. बिरहा नायिका भेद पृ० १६ बिरहा ४२
२. वही. पृ० ६ बिरहा १०
३. वही. पृ० १५ बिरहा ३२
४. वही. पृ० १५ बिरहा ३३

ससुर भसुर छोड़ बचेले केतने,
मोहें नाहकै करैले बदनाम ॥
सनहू उजारे गोइवां उखियों उपारैं
इन किसनवन के तनियों न हेत ।
कवनों पुरनवां न बेदवा बखाने,
अरहरिया के काटो जनि खेत ।

पंडित दूधनाथ उपाध्याय का जन्म बलिया जिले के दयाछपरा नामक गाँव में हुआ था। आप घर के साधारण व्यक्ति थे। बाल्यावस्था बड़ी गरीबी में बितायी परन्तु अपने परिश्रम और बुद्धि से बाद में दाम और नाम दोनों ही पैदा किया। घर में धन का अभाव होने के कारण आप हिन्दी मिडिल से अधिक न पढ़ सके और बलिया डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मिडिल स्कूल में नौकरी करने लगे। धीरे-धीरे एक साधारण अध्यापक से आप मिडिल स्कूल, बैंरिया, जिला बलिया के हेडमास्टर हो गये। आपने बैंरिया, जिला बलिया में अनेक वर्षों तक हेडमास्टरी की। ये प्रबन्ध में बड़े पटु थे। बड़े ही सामाजिक व्यक्ति थे। अतः ये जहाँ भी जाते थे वहीं अपना रंग जमा लिया करते थे।

दूधनाथ उपाध्याय

पं० दूधनाथ उपाध्याय का नाम भोजपुरी साहित्य में चिरकाल तक जीवित रहेगा। आधुनिक कवियों में संभवतः सर्वप्रथम भोजपुरी में कविता करने के लिये आपने ही लेखनी उठाई थी। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ से ही जब जनपदीय बोलियों या भाषाओं के उद्धार की चर्चा भी नहीं थी और जब इन बोलियों में कविता लिखना गवाँरूपन समझा जाता था, तब आपने कविता करनी शुरू की थी। जनता ने आपकी कविता का बड़ा ही स्वागत किया तथा ये कविताएँ बड़ी लोकप्रिय होगई।

प्रथम महायुद्ध के अवसर पर सन् १९१४ ई०में स्थानीय जिला अधिकारियों ने युद्ध के प्रचार के लिये तथा लड़ाई में सैनिकों की भरती अधिक संख्या में कराने के लिये आपसे भोजपुरी में कविता लिखने का अनुरोध किया था। उस समय आपने ठेठ भोजपुरी में कविता लिखकर जो पुस्तिका प्रकाशित की थी उसका नाम 'भरती के गीत' है। इस छोटी सी पुस्तिका में जर्मनी के शासक कैसर को पछाड़ने के लिये भारतीयों को सेना में भरती होने के लिये जोर दिया गया है। साथ ही फड़कती हुई भाषा में भारतीयों को अपनी देश की रक्षा के लिये ललकारा गया है। नीचे का यह पद्य देखिये:—

हमनी का सब केहू बाम्हन छतिरि होके,
रन में चलबि नाहि तनिकों डेराइबि ।
अबले चूकलीं बड़ बाउर कइलिहांजा,
अज पुरुखनि केना नइयां हुंसाइबि ।।
जरमन दुहुट के नहट कईला बिना,
अब ना मानबि बलु मरि मिटि जाइबि ।
सगरे मुलुक ललकारि के चलबि अब,
"दूधनाथ" रन से ना पयर हटाइबि ।।[1]

इस पद्य में कवि ने भारतीयों को युद्ध में लड़ने के लिये ललकारा है । यह भारतीय जनता से तन, मन, धन देकर ब्रिटिश सरकार की सहायता करने की अपील करता है । साथ ही जर्मनी को रण में पराजित करने का संकल्प कितना दृढ़ है ।[2]

हमनी का सब जीव जान से मदति करि,
दुहुटि जरमनी के नहट कराइबि ।
जीव देइ, जान देइ, धनदेइ, अन देइ,
देह देइ, गेह देइ, मदति पठाइबि ।।
भरती होखे के मिलि जुलि अब फउजी में,
कुल खानदान सब घर के सिखाइबि ।
"दूधनाथ" हमनी का सब केहु जाइ अब,
जरमन फउजि के मांटी में मिलाइबि ।।

जर्मन युद्ध के अवसर पर कैसर के द्वारा किये गये घोर अत्याचारों का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि ऐ कैसर ! तुमने बेलजियम देश पर चढ़ाई कर असंख्य बाल-वृद्धों को मार डाला । कितने निपराधी मनुष्यों का नाश कर दिया, गिरजा घरों को तोड़ डाला फिर भी तुम वीर बनने का दावा करते हो :—

बेलजिम देश के उजार कर अब हाय,
बालक विरिध मारि मारि के सतावतारे ।
अबर दुबर से सताई डांड़ लेत बाड़,
उजुर करे त घरे आगि ते लगावतारे ।।
केतना गरीब बेकसूर के ते मारतारे
नाहके मुआवतारे गोला बरसावतारे ।

---

१. भरती के गीत, पृ० ६
२. वही, पृ० १

गिरिजा, मंदिर, मसजिद तोरि डारतारे,
"दूधनाथ" अपना के वीर तैं लगावतारे ।।[1]

अन्त में कवि अपनी मनोरम वाणी में जर्मनी की हार और ब्रिटिश सरकार की जीतके लिये ईश्वर से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि :—

सिरि भगवान् राज राम जी चरन परि, हाथ जोरि जोरि सब केहु कहतानी जा ।
हमनी के बुधि दिहीं, बल बउसाव दिहीं, लड़े के सकती दिहीं वर मांगतानी जा ।।
जरमन दुहुट के नहट कराइ दिहीं, पंचम जारज जी के जीति चाहतानी जा ।
"दूधनाथ" अपना चरन में परेम दिहीं, कीरिपा बनल रहे हाथ जोरतानी जा ।।[2]

उपाध्याय जी की दूसरी रचना "भूकम्प पचीसी" है[3] जिसमें १५ जनवरी सन् १९३४ के प्रलयंकारी भूकम्प का बड़ा ही सजीव चित्रण किया गया है। भूकम्प का यह रोमांचकारी वर्णन सुनिये:—

केहू के त सब परिवार दबि मरतबा, केहु के त बेटा नाती देखि ना परतबा ।
केहू मेहरारू बिना पूत परिवार बिना, छाती पीटि पीटि धाई धाई के गिरतबा ।।
केहू धन बिना, अन बिना, पानी बिना हाई, तड़पि तड़पि छपिटाई के मरतबा ।
केहू होई पागल बेहाल होई घूमताटे, "दूधनाथ" हाई बिना अगिये मरतबा ।।[4]

भूचाल का यह दृष्य कितना दर्दनाक है। भूकम्प पीड़ितों की सहायता के लिये जनता से अपील करता हुआ कवि कहता है कि:—

अन, धन, कपड़ा, ओढ़ना, लोटा, थारी, सब, जेकरा के जतना संपरे से जुटाईं जी।
बिना परिवार बिना घर के मरत बाटे, ओकरा के देइ देइ धरम बढ़ाईं जी ।।
गइला से बने त जल्दी वहाँ चलि जाईं, नाहीं त पारसल करके पठाईं जी ।
जेकरा जवने संपरे उहे देइ दिहीं, "दूधनाथ" एमें अब देर ना लगाईं जी ।।[5]

उपाध्याय जी की तीसरी पुस्तक "गोविलाप छन्दावली" है जिसमें गोरक्षा के महत्व का विशद वर्णन है। उपाध्याय जी ने सामयिक कवितायें भी बहुत सी लिखी हैं। आप अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे अतः कोई भी प्रधान सामाजिक एवं राजनैतिक घटना आपकी लेखनी के वर्ण्य विषय बनने से वंचित नहीं रही है। आपकी भाषा सरल और ठेठ भोजपुरी है। भोजपुरी की निखालिस

---

१. भरती के गीत, पृ० ७
२. भरती के गीत, पृ० ११
३. लेखक द्वारा प्रकाशित
४. भूकम्प पचीसी, पृ० १
५. वही, पृ० २, ३

मिठास हमें इनकी कविता में मिलती है। उपाध्याय जी भोजपुरी कवियों के अग्रणी हैं। ये ही रचनायें इनकी कविता के सौंदर्य का परिचय देने के लिये पर्याप्त हैं।[१]

आप बिहार प्रान्त के निवासी थे और आरा में बहुत दिनों तक मुख्तारी करते थे। आपने शान्तरस संबंधी बहुत से भोजपुरी गीतों की रचना की है।

बाबू अम्बिका प्रसाद

इनकी कविता में रहस्यवाद की झलक भी देखने को मिलती है। इनकी कविताओं का संग्रह तथा प्रकाशन अभी हुआ है। आप की शान्तरसमयी कविता का एक नमूना लीजिए :—

देखलीं मैं सखिया एक कल के खेलवना रे,
पाँच पचीस कलवा लागल रे की।
तीन सौ साठि तामें लगली लकड़िया रामा,
नव सव जोड़वा बाँधल रे की।
दुइ रे सहेलिया मिलि खेलेली खेलवना रामा,
तीनो रे खेलकवा तेही संगवा धावेला रे की।
नव रे महीनवा में बनेला खेलवना रामा
खेलवा मेटत देर ना लागेला रे की।
'अम्बिका' कहत बाड़े समुझि खेल, गोरिया रामा,
खेलवा के भेदवा गुरु से पावला रे की।

मानव का यह जीवन ही खेलवना है जिसको बनाने में तो नव महीना लगता है परन्तु जिसके नाश के लिये एक क्षण भी अधिक है। मनुष्य का शरीर ही वह यन्त्र है जिसमें पचीस ही क्यों अगणित पुर्जे लगे हुए प्रतिदिन काम कर रहे हैं।

इसी प्रकार बाबू अम्बिका प्रसाद जी ने अनेक कविताएँ लिखी हैं जो अभी अप्रकाशित हैं।[२]

भोजपुरी के जीवित कवियों में भिखारी ठाकुर का नाम यू० पी० के पूर्वी जिलों और बिहार के पश्चिमी जिलों में प्रसिद्ध है। वहाँ बच्चे से बूढ़े तक इनके

भिखारी ठाकुर

'विदेसिया नाटक' से पूर्णतया परिचित हैं। भिखारी ने नाटक मंडली स्थापित कर, 'विदेसिया नाटक' का अद्वितीय सफलता के साथ अभिनय कर, इस नाटक का

१. दुःख है इस कवि का देहान्त अभी कुछ वर्ष हुए हो गया।
२. दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह : लोकगीत पृ० ४६ भूमिका भाग।

एक नया सम्प्रदाय कायम कर दिया है। इनके विदेसिया नाटक की नकल पर अन्य विदेसिया नाटक तैयार हो गये हैं और इनके शिष्यों ने इस नाटक को खेलने के लिये अनेक मण्डलियाँ स्थापित कर ली हैं। इसी से भिखारी ठाकुर की जन प्रियता का कुछ अनुमान किया जा सकता है। इन्होंने अपना परिचय देते हुए स्वयं लिखा है कि :

"जाति के हजाम मोर कुतुबपुर ह मोकाम,
छपरा से तीन मील दियरा में बाबूजी।
पुरुब के कोना पर गंगा के किनारे पर,
जाति पेसा बाटे विद्या नाहीं बाटे बाबूजी ।।

जैसा कि इस आत्म-परिचय से विदित होता है, भिखारी ठाकुर जो गाँवों में भिखरिया के नाम से ही अधिक प्रसिद्ध हैं कुछ पढ़े-लिखे व्यक्ति नहीं हैं परन्तु वे प्रतिभावान् पुरुष अवश्य हैं। देहाती विषयों को लेकर जोरदार भाषा में कविता करना भिखारी का काम है। इनकी कविता का जादू लोक-हृदय पर पड़े बिना नहीं रहता। 'वि`सिया नाटक' आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना है जिसमें आपने परदेसी पति के वियोग में उसकी स्त्री की विरह वेदना की तीव्र व्यंजना की है। नीच लिखा गीत उसी से उद्धत है।

"दिनवा त बीते रामा तोरी इन्तजरिया में,
रतिया नयनवा ना नींद रे विदेसिया।
घरी राति गइलों राम पिछली पहरवा से,
लहरे क`जवा हमार रे विदेसिया।
आमवा मोजरि गइले लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराला रे विदेसिया।
एक दिन अइहैं रामा जुलुमी बयरिया से,
डार पात जइहैं भहराई रे विदेसिया।"

विरह का यह वर्णन कितना मार्मिक हुआ है। भिखारी ने 'प्यारी सुन्दरी वियोग' नामक एक पुस्तक लिखी है जिसका वर्ण्य विषय वही परदेसिया है। यहाँ गीत के अन्तिम चरण में विदेसिया की जगह विदेसिया कहा गया है।

"रंग महल बइठल सोचे प्यारी धनिया से,
बिरह सतावे जिया बीच परदेसिया।
चढ़ली जवनियाँ बइरिनि भइली हमरी से,
मदन सतावै जिय माँहि परदेसिया।"

भिखारी ने सामाजिक बुराइयों का बड़ा सुन्दर चित्रण अपनी कविता में किया है। वृद्ध विवाह का यह वर्णन सुनिये जिसमें पुत्री अपने पिता से कहती है कि :—

"आँखि से सूझत कम, हर दम घींचत दम,
मथवा के बारवा चंवरवा हटे बाबूजी।
मुंहवा में दाँत नाहीं, गाले मुंह लार चुए,
बोलले पर भीतर सड़ल बदबू बाबूजी।
पति कर देखि गति पागल भइल मति,
रोइ रोइ करीला बिहान मोर बाबूजी।"

इसी प्रकार उन्होंने अपने सुप्रसिद्ध 'बनवारी गीत' में बाल विवाह की बुराइयों का बड़ा सजीव चित्रण उपस्थित किया है। 'बेटी वियोग' और 'भिखारी बहार' में समाज की आलोचना की गई है। भिखारी ठाकुर का 'मकइया' वाला गीत (मकइया हो तोर गुनवा गांथबि माला) भोजपुरियों का राष्ट्रीय गीत है।

भिखारी ठाकुर वास्तविक अर्थ में हमारे जन-कवि हैं। भोजपुरी जनता की आत्मा ने इनकी कविता में अपना प्रकाशन प्राप्त किया है। वे जनता के सुख-दुःख को, उनकी बुराई-भलाई को प्रकाश में लाते हैं। इसीलिए वे इतने जन-प्रिय कवि, सफल नाटककर्त्ता एवं प्रसिद्ध गायक हो गये हैं, इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है।

नाम भिखारी काम भिखारी, रूप भिखारी मोर।
ठाट पलानि मकान भिखारी, चहुंदिसि भइल सोर॥

भोजपुरी के कवियों में मनोरंजन प्रसाद सिनहा का एक विशिष्ट स्थान है। असहयोग आन्दोलन के दिनों में आपकी 'फिरंगिआ' नामक कविता बड़ी लोकप्रिय थी। भोजपुरी प्रदेश में राष्ट्रीय जागति उत्पन्न करने में 'फिरंगिआ' का बहुत बड़ा हाथ है। राष्ट्रीयता के उस युग में यह कविता राष्ट्रगीत थी तथा ब्रिटिश शासन के प्रति विद्रोह की सूचक थी। मनोरंजन जी हमारे सामने इसी अमर कविता के रचयिता के रूप में आते हैं।

मनोरंजन प्रसाद सिनहा

मनोरंजन जी का जन्म बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के डुमराव नामक स्थान में एक संभ्रान्त कायस्थ कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम बाबू रामेश्वर प्रसाद था जो कुछ दिनों तक मुजफ्फरपुर एवं छपरा, (बिहार) में सदराला थे। सन् १९१९ में इन्होंने मुजफ्फरपुर के जे० बी० बी० कालेज से इंटर पास किया। पश्चात् पटना कालेज में नाम लिखाया। परन्तु असहयोग में कालेज

छोड़ दिया और राष्ट्रीय सेवा में जुट गये। आप अनेक वर्षों तक हिन्दू विश्व-विद्यालय, काशी, में अंग्रेजी के अध्यापक थे। आजकल आप राजेन्द्र कालेज, छपरा, बिहार में प्रिन्सिपल हैं।

यद्यपि प्रिन्सिपल मनोरंजन—आप इसी नाम से विख्यात हैं—अंग्रेजी के विद्वान् हैं परन्तु आपकी प्रतिभा ने हिन्दी का माध्यम लेकर विकास को प्राप्त किया है। आप खड़ी बोली और भोजपुरी में समान रूप से कविता करते हैं। आपका हृदय जितना सरल है, कविता भी उतनी ही मधुर है। आप सरल हिन्दी के गद्य लेखक भी हैं। 'उत्तराखंड के पथ पर' नामक आपकी प्रसिद्ध पुस्तक है जिसमें बद्रीनाथ की यात्रा का रोचक वर्णन किया गया है। इसमें बीच बीच में सरस कविताएँ भी की गई हैं। मनो ंजन जी के अनेक लेख और कवितायें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। परन्तु यहाँ हमारा संबंध आपकी 'फिरंगिआ' नामक कविता से है।

'फिरंगिआ' को रचना सन् १९२१ ई० के तूफानी दिनों में हुई थी। सका उद्देश्य देहाती लोगों में राष्ट्रीय जागृति फैलाना था। अतः इसकी रचना खड़ी बोली में न कर कवि ने लोकभाषा भोजपुरी में की है। उन दिनों में 'फिरंगिया' का कितना प्रचार था वह केवल इसी बात से समझा जा सकता है कि इस कविता को ब्रिटिश सरकार ने जब्त कर लिया था, फिर भी इसकी प्रतियाँ छापकर सुदूर भारत के बाहर फीजी तथा मारिशस द्वीपों में भेजी गईं और वहाँ के भारतीय, विशेषतः भोजपुरी लोग, बड़े प्रेम से उसे गाते थे। इस गीत की रचना का कारण, इसकी जनप्रियता तथा प्रसिद्धि की कथा स्वयं प्रिन्सिपल मनोरंजन जी ने बड़े विस्तार के साथ लिखी है।[१]

इस गीत की रचना रघुबीर बाबू की 'बटोहिया' नामक सुप्रसिद्ध कविता के आधार पर की गई है। इस 'बटोहिया' गीत की पहिली पंक्ति "सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से, मोर प्राण बसे हिम खोह रे बटोहिया" है। इसी पंक्ति को सामने रख कर मनोरंजन जी ने अपनी फिरंगिआ की पहिली पंक्ति की रचना इस प्रकार की है—

सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा,
आज उहे भइल मसान रे फिरंगिया।

फिर कवि भारत में व्यापक गरीबी तथा अन्न कष्ट को लक्षित कर लिखता है कि:—

---

१. देखिये: 'भोजपुरी' अंक १ वर्ष १ सं० २००५ पृ० १, १५

अन्न, धन, जन, बल, बुद्धि सब नाश भइल,
कौनों के ना रहल निशान रे फिरंगिश्रा।
जहवाँ थोड़ ही दिन पहिले ही होत रहे,
लाखों मन गल्ला श्रौर धान रे फिरंगिया।
उहवे पर श्राज रामा मथवा पर हाथ धके,
बिलखी के रोवेला, किसान रे फिरंगिया।

कवि की वाक् वैखरी स्खलित होती है श्रौर वह श्राततायी ब्रिटिश शासन को सावधान करते हुये चेतावनी देता है कि—

'चेत जाउ चेत जाउ भैया रे फिरंगिया ते,
छोड़ दे श्रधरम के पन्थ रे फिरंगिया।
छोड़ के कुनीतिया सुनीतिया के बांह गहु,
भला तोर करी भगवन्त रे फिरंगिया।
एको जो रोऊवां निरदोसिया के कलपी त,
तोर नास होइ जाई सुन रे फिरंगिया।
दुखिया के श्राह तोर देहिया के भसम क दी,
जरि भूनि होइ जइबे छार रे फिरंगिया।

उस समय कौन यह जानता था कि 'क्रान्तदर्शी' इस कवि की भविष्यवाणी इतनी शीघ्र सत्य होगी।

अंग्रेजी राज्य के कारण भारतीयों का जो नैतिक पतन हुश्रा है उसकी श्रोर संकेत करते हुए कवि कहता है कि—

मरदानापन श्रब तनिको रहल नाहीं,
ठकुर सुहाती बोले बात रे फिरंगिया।
रात दिन करेले खुसामद सहेबवा के,
सहेले विदेसिया के लात रे फिरंगिया।

वास्तव में हमारा नैतिक पतन कितना श्रधिक है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। पंजाब के निर्मम हत्याकाण्ड का कवि ने जिन दुःखद् शब्दों में वर्णन किया है उसे पढ़ कर किस पाषाण का हृदय न पसीज उठेगा।

श्राजु पंजाबवा के करि के सुरतिया से,
फाटला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरंगिया।

दुधमुंहा लाल सम बालक मदन सम,
तड़पि तड़पि देले जान रे फिरंगिया।

इस प्रकार प्रिन्सिपल मनोरंजन ने अपनी इस 'फिरंगिया' कविता द्वारा हमारी राष्ट्रीय चेतना के उद्‌बोधन में बड़ी सहायता की है। आशा है, इनकी वाणी अब स्वतन्त्र भारत का गान गायेंगी।

आप उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी हैं। आपने नागपुर विश्वविद्यालय से एम० ए० की परीक्षा पास की है तथा आजकल बलिया में वैद्यक करते हैं। कलकत्ते से आपने होमियोपैथी की भी परीक्षा पास की है। इस प्रकार आप आयुर्वेद तथा होमियोपैथी दोनों प्रणाली की चिकित्सा करने में निपुण हैं। आपका व्यवसाय वैद्यक होने पर भी आपकी रुचि प्रधानतः काव्य की ओर है।

रामविचार पांडेय

भोजपुरी के उदीयमान कवियों में आपका एक विशेष स्थान है। आपने अनेक सुन्दर भोजपुरी कविताओं की रचना की है जिसमें कुछ का प्रकाशन विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में हो चुका है। आपकी कविताओं का तीन संग्रह पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। आजकल आप भोजपुरी में कुंअर सिंह नामक नाटक लिख रहे हैं जिसका प्रकाशन शीघ्र ही होनेवाला है।

पाण्डेय जी की काव्य भाषा बड़ी प्रांजल है। आपने अपनी प्रतिभा के बल से भोजपुरी को जीवन प्रदान किया है और यह दिखलाया है कि यदि प्रतिभा सम्पन्न कवि इसको अपनी कविता का माध्यम बनावें तो यह किसी भी भाषा से टक्कर ले सकती है। आपकी 'अंजोरिया' नामक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है जिसमें सवैया छन्द में आपने भोजपुरी को ढालने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया है। यह पद्य सुनिये—

"टिसुना जागलि सिरि किसुना के देखे के त,
आधी रतिये खा उठि चललि गुजरिया।
चान का नियर मुंह चमकेला रधिका के,
चम चम चमकेले जरी के चुनरिया।
चकमक चकमक लहरि उठावे ओमें,
मधुर मधुर डोले कान के मुनरिया।
गोखुला के लोग ई त देखि चीहइले कि,
राति में अमावसा का ऊगलि अंजोरिया।

इस पद्य में श्रीकृष्ण से मिलने के लिये जाने वाली राधिका के अभिसार का वर्णन है। राधिका सुन्दर जरीदार साड़ी पहनकर कृष्ण से मिलने अमावस्या की

अंधेरी रात्रि में चली जा रही हैं परन्तु उसके शरीर की कान्ति इतनी अधिक है कि यह मालूम होता है कि अमावस्या के दिन चन्द्रोदय हो गया है। इस पद्य का भाव कितना सुन्दर है, साथ ही शब्दों का चुनाव भी देखते ही बनता है। एक दूसरा पद्य लीजिये:—

"फूल का सेजरिया पर सूतल कन्हैया जी,
सापाना देखेले कि जरत दूपहरिया।
ओकरे में हामरा के रधिका खोजत बाड़ी,
पेड़ नइखे, रुख नाहीं, जल बा कगरिया।
कहताड़ी, धाव कृष्ण, धाव कृष्ण आव राजा,
हमके देखाद तनि गोखुला नगरिया।
अइली राधे, अइली राधे, कहि के जे उठले त,
एने फूलले कमल ओने चढ़ली अंजोरिया।"

सूर्य को देखकर कमल विकसित होता है और चन्द्रमा को देख कर कुमुदिनी। यह एक प्राचीन कवि परम्परा है। परन्तु उपर्युक्त पद्य में पाण्डेय जी ने चन्द्रमा को देख कर कमल को खिलना लिखा है। राधिका चन्द्रमा के समान रूपवती हैं और कृष्ण का मुख कमल के समान है। जब वे राधिका को स्वप्न में देखते हैं तो वे प्रसन्न हो जाते हैं। इसी को कवि ने 'अंजोरिया' को देखकर कमल का खिलना लिखा है। इस कविता में इन दो विरोधी वस्तुओं का निर्वाह कवि ने बड़ी चातुरी से किया है। यह तीसरा पद्य लीजिये[1]

"हमके बोलालीतू तूं अइलू हा कइसे हो,
बड़ी भाकासा नी भइलि बा अन्हरिया।
कसबा के राकस घूमत बड़वार बाड़े,
गोखुला में कबे कबे होत बाड़े चोरिया।
सभ के ठगेल कृष्ण हमे के भोराव जनि,
हाथ हम जोरी के करी ले गोड़धरिया।
हिरदया में जेकरा त तूंही बहसल बाड़,
ओकारा खातिर ई अन्हरिये अंजोरिया।"

इस पद्य में कवि ने भोजपुरी के ठेठ मुहावरों का प्रयोग बड़ी सुन्दर रीति से किया है। 'गोड़धरिया करना' भोजपुरी मुहावरा है जिसका अर्थ विनती या प्रार्थना करना है। कवि ने रात्रि में अभिसार करने का जो उत्तर राधिका के

१. इन कविताओं के लिये देखिये। 'बिनिया बिछिया' प्रकाशक—साहित्य सदन, बलिया,

मुंह से दिलवाया है वह बड़ा ही मधुर और सुन्दर है। राधिका के पास स्वयं चले आने में कृष्ण का प्रेम परिलक्षित होता है। इस प्रकार पाण्डेय जी की कविता बड़ी सरस तथा मनोहर है।

आप जिला बलिया के निवासी हैं तथा आजकल बलिया के प्रमुख कांग्रेसी लीडरों में हैं। पहिले आप वहीं के मेस्टन हाई स्कूल—वर्तमान सतीशचन्द्र डिग्री कालेज—में क्लर्क थे। साहित्यिक प्रवृत्ति होने के कारण

प्रसिद्धनारायण सिंह

आपका मन स्कूल के काम में न लग सका और आपने वहाँ से पदत्याग कर मुख्तारी करना शुरू कर दिया। इन्हीं दिनों में आपने "बलिया जिले के कवि और लेखक" नामक पुस्तक लिखी जिसमें आपने अपने जिले के कवियों और लेखकों की कृतियों का परिचय बड़ी सुन्दर रीति से दिया है। मुख्तारी करते समय प्रसिद्ध नारायण जी राजनीति में भी भाग लेने लगे थे और सन् १९३० ई० के सत्याग्रह आन्दोलन में कारागार की प्राचीरों ने भी आपको अनेक बार अपना अतिथि बनाया था। पश्चात् आपने मुख्तारी को भी छोड़ दिया और आजकल तन, मन, धन से देश की सेवा कर रहे हैं।

राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता के अतिरिक्त प्रसिद्ध नारायण जी कवि भी हैं यदि आप राष्ट्र सेवा के कार्य में अपना जीवन न खपा देते तो आज हम उन्हें एक प्रसिद्ध कवि के रूप में देखते। प्रसिद्ध नारायण जी ने स्फुट कवितायें की हैं जो पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुकी हैं। आपकी कविता में भाव और भाषा का मंजुल सामंजस्य होता है। राष्ट्रीय विषयों पर लिखी होने के कारण आपकी कविता में ओज की मात्रा प्रचुर रूप में पाई जाती है। यहाँ हम आपकी एक कविता को उद्धृत करते हैं जो 'जवाहर स्वागत' के नाम से प्रसिद्ध है। पं० जवाहर लाल नेहरू सन् १९४५ ई० में बलिया गये थे। उसी समय उनके स्वागत में यह कविता पढ़ी गई थी। सन् १९४२ के आन्दोलन में बलिया निवासियों ने ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को मिटाकर जो स्वतन्त्रता प्राप्त की थी तथा इसके फलस्वरूप बाद में उन पर जो अत्याचार किये गए उसी का दिग्दर्शन कवि ने अपनी इस कविता में किया है।

भारतीय जनता के हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू का स्वागत करते हुये कवि बलिया जिले की विशेषता एवं महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहता है कि:—

---

१. रामविचार पांडेय: 'सरपंच' वर्ष १ अंक ४ पृ० २४

दु:खिया बलिया के वीरभूमि,
तोहरा चरनन के चूमि चूमि।
मानति बा आपन अहो भागि,
गावत नर नारी झूमि झूमि।
हमके दुरलभ दरसन तोहार।

निरबल, निरधन, निरगुन, गँवार,
अलगा आपन बोली विचार।
कन कन में जेकरा क्रान्ति बीज
अइसन भोजपुर तप्पा हमार।
इतिहास कहत पन्ना पसार।

राष्ट्रीय आन्दोलन में बलिया सदा अग्रणी रहा है उस बात की ओर संकेत करते हुए कवि लिखता है कि:—

जब जब बापू कइलन पुकार,
रन में बाजल बिगुल तोहार।
सिर बांधि बाधि कफनी आपन,
हम छोड़ि दउड़नी घर दुआर।

हरदम हमार अगिली कतार।

कवि की वाक्-धारा और आगे बढ़ती है और वह सन् ४२ में बलिया के बहादुरों द्वारा किये गये वीरतापूर्ण कार्यों को ओज भरे स्वर में गाता है।

आइल अगस्त के आन्दोलन,
फरके लागल सबके तन, मन।
बिजुली दौड़ल जागल बलिया,
चलले मुसिलम, हिन्दू, हरिजन।
मचि गइल लड़ाई बस जुझार।

थाना, डकखाना, रेल, तार,
सब पुलिस अदालत अहलकार।
हाकिम, हुकाम, गोली, गोला,
पड़ि गइल ठप्प सब कारबार।
बजि गइल विजय डंका हमार।

सड़कन डालिन से पाटि पाटि,
पूलन के दिहली काटि काटि।

तहसील खजाना लूट फूँकि,
अगवढ़ि दिहली तनखाह बाटि।
पर उठल कहाँ थप्पर हमार।

बलिया ने सन् ४२ के आन्दोलन में ब्रिटिश राज्य को हटाकर स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी जिसके फलस्वरूप उसे बड़ा कष्ट भुगतना पड़ा। अंग्रेज अधिकारियों ने यहाँ क्या क्या अत्याचार किया इसका रोमांचकारी वर्णन नीचे के पदों में सुनिये:—

बेपीर, पुलिस, बेरहम फौज,
डाका डललनि बेखौफ रोज।
गुंडाशाही के रहल राज,
रिसवत पर कइले सभे मौज।
उफ जुलुम बढ़ल जइसे पहार।
गांवन पर दगलनि गनमशीन,
बेंतन सन मरलन बीन बीन।
बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोकलन खच खच संगीन।
बहि चलल खून के तेज धार।
घर घर से निकललि आहि आहि,
कोना कोना से त्राहि त्राहि।
गांवन गांवन में लूट फूंक,
मारल, काटल, भागल, पराहि।
फिर कवन सुने केकर ुहार।

कवि ने ऊपर की पंक्तियों में बलिया के निवासियों के ऊपर किये गये निर्मम अत्याचारों का जो वर्णन किया है वह कितना सजीव है। यह आँखों के साम सन् ४२ के अत्याचारों का चित्र उपस्थित कर देता है। कवि ने अपनी प्रतिभा से कविता में ओज तथा बल डाल दिया है।

पं० महेन्द्र शास्त्री जी बिहार प्रान्त के छपरा जिले के निवासी हैं। आप बड़े ही उत्साही व्यक्ति हैं। आपने पटना से भोजपुरी नामक पत्रिका का सम्पादन तथा प्रकाशन किया था[1] आप भोजपुरी गद्य तथा पद्य ोनों के अच्छे लेखक हैं। यहाँ पर आपकी कविता का विवरण प्रस्तुत किया जाता है।

पं० महेन्द्र शास्त्री

१. कदमकुँआ, पटना से प्रकाशित।

श्री महेन्द्र शास्त्री जी की कविता बड़ी सरल और सुबोध होती है। आपको 'आज की आवाज' नामक पुस्तक अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है। इस पुस्तक में जैसा कि इसके नाम से प्रतीत होता है आजकल के सामयिक विषयों पर सुन्दर तथा सरल कविता की गई है[१]।

आप बिहार प्रान्त के बेतिया जिले के रहने वाले हैं। आप भोजपुरी में सुन्दर तथा सरल कविता करते हैं। आपकी 'देहाती दुलकी' भाग १, २, ३ नामक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं[२]। आप का उपनाम 'देहाती' है और आप इसी नाम से प्रसिद्ध हैं। 'देहाती दुलकी' भाग १ में आपकी चौदह चुनी हुई कविताओं का संग्रह है जिनमें देहाती विषयों को लेकर कविता की गई है। 'उठल मास मधुआइल' शीर्षक कविता में बसन्त ऋतु में प्रकृति के परिवर्तन का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। पलाश के फूलने का यह वर्णन देखिये[३]।

श्याम बिहारी तिवारी

'देखि ह हो परास के फूलल,
झूठहुं में भंवरा के भूलल।
जान त देवे पर बा तूलल,
भन भनात लरिआ ल।
उठल मास मधुआइल।

कवि ने पलाश के लाल होने तथा भंवरा के उस पर जान देने की जो उपमा दी है वह हिन्दी के कवियों की परम्परा के अन्तर्मुक्त है।

पति का भंवरा से रूपक बांधकर उसका कितना सुन्दर उपालम्भ नीचे के पद में किया गया है[४]।

"कइसे मानीं उनकर बतिया।
सुखले सूखल बीतल रतिया।
कहाँ जुड़ाइब आपन छतिया
छतवा तुरले जाय
भंवरा रसवा चुसले जाय।"

ऊपर के पद्य में स्त्री की गम्भीर विरह वेदना का कितनी सुन्दर रीति से

---

१. कदमकुँआ, पटना से प्रकाशित।
२. देहाती दुनिया, सागर प्रेस, बशबरिया, जिला बेतिया, बिहार।
३. देहाती दुलकी पृ० ११
४. वही० पृ० ६

चित्रण किया गया है। 'सुखले सूखल बीतल रतिया' में कितनी कसक भरी हुइ है। विरह का दूसरा वर्णन देखिये[1] —

"अबहीं से हम कांपतानीं,
पलकन पानी ढांपतानीं।
आग लगा के तापतानीं,
तेलवा डलले जाय।
भंवरा रसवा चुसले जाय।

यह पद्य बड़ा ही सुन्दर और सरस बन पड़ा है। नायिका कहती है कि नायक मेरे विरह रूपी आग में तेल रूपी व्यथा को डालता चला जाता है। मैं कितना भी चाहती हूँ कि अपने अश्रुरूवी जल से इसे बुझा दूँ परन्तु विरह की धधकती आग शान्त ही नहीं होती। विरह का वह कितना मार्मिक चित्रण है।

किसी देहाती स्त्री की मनोभिलाषा का वर्णन देखिये[2] :—

मनवां अइसन मोर करत बा,
हमहूँ नाची कजरी गाईं।
अपना सामसुनर का आगे,
उनका के मन भर लजवाईं।
जे रोगिया का भावे सइयां,
काहे ना बैदा फुरमावे।
नाच गुजरिया कजरी गावे।

जाड़े के दिनों में देहाती, गरीब किसान की दशा का यह चित्रण कितना सजीव है। उसे जाड़े में कितना कष्ट उठाना पड़ता है इसे भुक्तभोगी ही जान सकता है[3]।

गरमी त भरसक कटि जाला,
जाड़ हमनिए पर बउराला।
देह उघारे सिसकत पाला
कवन कहीं हम बात भइया।
सूख गइल बरसात भइया।

हास्य रस का यह सुन्दर उदाहरण लीजिये जिसमें शृंगार का पुट भी कम नहीं है।

१. देहाती दुलकी भाग १ पृ० १०
२. देहाती दुलकी भाग १ पृ० २१
३. वही० पृ० २६

सावन मास बहे पुरुआ,
जनि केहु के छूटे मिलावल जोड़ी।
का कहीं दोसर के बा इहां
अब जे इ सुतार में बांगर कोड़ी।
जाइब आजु जरूर मुनेसर,
भाई के मांग के हींछल घोड़ी।
ओच हईं हमहूं त पुरान नू
के ससुरार में मेहर छोड़ी।

होली का यह देहाती वर्णन कितना सुन्दर बन पड़ा है। इस पद्य में फाग खेलते समय कीचड़ उछालने को निन्दनीय प्रथा की ओर संकेत किया गया है[1]:—

जगह जगह पर रंग उड़ल बा,
गगरा गगरा रंग घोरल बा।
लाल पियर सब रंग परत बा,
साफ करा ल मोरी हो।
उठल फाग बा होरी हो।

इस प्रकार 'देहाती' जी की कविताएँ ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं। इनमें भोजपुरी भाषा की मधुरता पाई जाती है।

'देहाती' जी श्रृंगार रस के अतिरिक्त हास्य रस के भी विख्यात लेखक हैं। संभवतः उन्होंने भोजपुरी में हास्यरस संबंधी कविताओं के लिखने का बीड़ा उठा लिया है। एक वार बनैली राज्य के अधिकारियों ने आपको चाय-पार्टी दी थी। उस पार्टी में आपने क्या क्या देखा उसका वर्णन आपने अपनी 'का का देखनी' शीर्षक कविता में बड़ी सुन्दर रीति से किया है। कुछ पद सुनिए[2] :—

का कहीं केतना देखनी, का का देखनी।
भीतरी ना देखनी, बाहर के लिफाफा देखनी।१।

अरे भाई अइसन सत्कार कतहूं ना मिलल।
देहातियो के साथे खाये के तकाजा देखनी।२।

आगे टेबुल आइल बूझनी, यहीं पर नूध के पढबि।
आहि बाल, ई का, सामने छुरी अउरी कांटा देखनी।३।

१. देहाती दुलकी पृ० ३८.
२. दुर्गा शंकर सिंहः लोकगीत पृ० ४७ भूमिका.

जे जे आइल धइली गइले गोलक में।
पानी मिलबे ना कइल, इहे एगो घाटा देखनी ।४।
मन में आइल के खाउ, कांटा से देरी होई।
एक संसिये मार दिह्नी, ना आगा देखनी ना पाछा देखनी ।५।

उपर्युक्त पदों में एक 'देहाती' द्वारा चाय पार्टी का रोचक तथा हास्यरस पूर्ण वर्णन हुआ है। अन्तिम दो पंक्तियाँ विशुद्ध भोजपुरी स्वभाव की परिचायिका हैं।

आपकी एक अन्य हास्यपूर्ण कविता 'छपले बा' शीर्षक से विख्यात हैं जिसमें इस मुहावरे का बड़ा सुन्दर प्रयोग किया गया है[1]।—

बात कइसे बुझब, अरे कुछ ऊ त पढ़।
मकई कइसे होई संउसे खेत त जनेरा छपले बा ।१।
केहु का हुरकवला से, कहीं तितिर मिली।
उनका मन में त हर घड़ी, बटेर छपले बा ।२।
अपने में काटा कुटी करी, नोमने नु बा।
अरे अइसन नू हमरा घर में अन्हेर छपले बा ।३।
बाबा के ओझइओं पर छूत के भूत ना भागल।
बभन झोंझ होते रहे, दोसर बभन फेर छपले बा ।४।

इस प्रकार देहाती जी की हास्यरसमयी कवितायें बड़ी सुन्दर बन पड़ीं हैं।

कविवर 'चंचरीक'

कविवर 'चंचरीकजी' भोजपुरी के लब्ध प्रतिष्ठ कवियों में हैं। आप गोरखपुर जिले के निवासी हैं। आप मौजी जीव हैं तथा स्वच्छन्द प्रकृति के व्यक्ति हैं। साहित्य सेवा ही आपके जीवन का उद्देश्य है और आप उसी धुन में मस्त होकर विचरते रहते हैं। आपकी सर्वश्रेष्ठ रचना 'ग्राम गीतांजलि' है जो गोरखपुर से प्रकाशित हुई है[2]। भोजपुरी जनता में यह पुस्तक कितनी लोकप्रिय हो गई है इसका पता केवल इसी बात से लगाया जा सकता है कि कुछ ही वर्षों के भीतर इस पुस्तक के चार संस्करण हो गये हैं।

इस पुस्तक में कुल २४० पृष्ठ हैं जिनमें चंचरीक जी ने राष्ट्रीय तथा सामाजिक विषयों को लेकर अपनी काव्य रचना की है। यह पुस्तक दो भागों में विभक्त है। १. राष्ट्रीय सोपान, २. सामाजिक सोपान। राष्ट्रीय सोपान में चंचरीक जी ने राष्ट्रीय तथा देश भक्ति के विषयों को लेकर सोहर, विवाह गीत,

१. दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह पृ० ४६ भूमिका.
२. प्रकाशक: ठाकुर महातम राव, बुकसेलर, रेती चौक, गोरखपुर (चतुर्थ संस्करण) मूल्य ३ रुपया.

मेला, निरौनी, हिंडोला, जनेऊ, कहरवा आदि के गीत लिखे हैं। सामाजिक सोपान में आदर्श गारी, शिक्षाप्रद गीत, बेटी की बिदाई के समय के गीत लिखे गये हैं। देहातों में जो कहीं कहीं अशिष्ट गीतों का प्रचार है उनको दूर कर जनता के सामने नवीन, देशभक्ति से परिपूर्ण गीतों को रखना ही चंचरीक जी का प्रधान उद्देश्य है और वे इस उद्देश्य में सफल भी हुए हैं।

ग्राम गीतांजलि की भाषा बड़ी सरल, सरस और मधुर है। भोजपुरी बोली में इन गीतों को लिखकर चंचरीक जी ने यह प्रत्यक्ष प्रमाणित कर दिया है कि भोजपुरी में भी कितनी सुन्दर कविता की जा सकती है। शब्दावली इतनी सरल है कि अर्थावबोध में कहीं क्लिष्टता नहीं होती। पं० मोती लाल नेहरू की असामयिक मृत्यु पर कवि कहता है कि[1] :—

भारत के नइया के डारि मझधरवा में,
असमय चलि गइले मोतीलाल नेहरू।
कइसे के पार होईहैं देसवा के नइया रे,
पतवार रहले रे मोतीलाल नेहरू।

यह उपर्युक्त कथन कितना सत्य और समीचीन है। आगे कवि भावावेश में आकर लखनऊ शहर से पूछता है कि तू ने हमारी अमूल्य निधि कहाँ गवाँ दी[2] :—

हम तोसे पूछीला लखनऊ भइया रे
कहंवां गंववले ते मोतीलाल नेहरू।
लिखले के जोग नाहीं बाटे विपतिया रे,
भुलिहैं भुलवले न मोतीलाल नेहरू।

चंचरीक जी ने ग्राम गीतों में देशसेवा की भावनाओं को लाकर हमारी राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया है। गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने के लिये किसी स्त्री का अपने पति को यह उपदेश देना कितना उत्साहवर्धक है[3] :—

"जाहु जाहु जाहु पिया देश के लड़इया हो,
छोड़ि देहु अब कदरइया।
हां सियाराम से बनी। टेक।

१. ग्रामगीतांजलि: परिचय पृ० १८७.
२. वही. पृ० १८५.
३. ग्रामगीतांजलि पृ० ५३.

होके मरद मरदुमी अब देखलाऊ,
देसवा में होइहैं लड़इया। सियाराम। टेक।

लागे सरम लाजि घर में बइठि जाहु,
मरद से बनिके लुगइया। सियाराम। टेक।
पहिरि केसरिया सारी हम चलि जइबै हो
राखि लेवें तुहरो पगड़िया। सियाराम। टेक।

नारी की यह उत्तेजना मुर्दों में भी जान डालने में समर्थ है।

कवि ने पुराने भावों को नवीन जामा पहनाया है और वह उसमें वह सफल भी हुआ है। यह नवीन जतसार देखिये[1] :—

झुरझुर बहति बयरिया ननदिया हो,
फर फर डोले मोर चरखवा हो जी।
सुनु सुनु हमरो बचनिया भउजिया हो,
हमहू सथवा कतबै चरखवा हो जी।

श्री रघुवीर शरण जो 'बटोहिया' नामक अमर गीत के अमर रचयिता हैं। संभवतः यही एक गीत इनकी एकमात्र रचना है जो इन्हें अमर बनाने के लिये पर्याप्त है। आप बिहार प्रान्त के छपरा शहर के निवासी हैं। आपने अपनी संक्षिप्त आत्मकथा 'भोजपुरी' पत्रिका में प्रकाशित की है। अतः उनकी कहानी अब इन्हीं की जबानी सुनिए[2]।

श्री रघुवीरशरण

"हमार जन्म २० अक्टूबर सन् १८८४ ई० में बीफे के रोज आधा रात के छपरा शहर के मुहल्ला दहियावां के अपना मकान में भइल। .... हमार बाबू जी के वकालत अपना समय में बहुत जबर्दस्त रहे। छपरा के वकीलन के बीच में सबसे पहिला वकील अंग्रेजी आनेवाला ऊहे रहस। ऐह से उनकर नाम बहुत खिलल रहे। उनकर नाम जयदेव नारायण रहे।" आप तीन भाई थे। ज्येष्ठ भ्राता का नाम राय बहादुर सुखदेव नारायण था जो डिपुटी कलक्टर थे और जिनका देहावसान सन् १९३९ में हो गया। इस प्रकार श्री रघुवीर शरण जी का जन्म एक संभ्रान्त कायस्थ कुल में हुआ था जो आज भी लक्ष्मी तथा सरस्वती के एकत्र निवास के लिये प्रसिद्ध है। श्री रघुवीर जी की शिक्षा दीक्षा

१. ग्रामगीताञ्जलि पृ० १११.
२. भोजपरी पत्रिका वर्ष १, अंक १ पृ० ५२–५३.

छपरे में ही हुई जिसका बड़ा ही रोचक वर्णन आपने अपनी आत्मकथा में दिया है।[१]

श्री रघुवीर शरण जी का नाम 'बटोहिया' नामक लोकप्रिय कविता के रचयिता के रूप में प्रसिद्ध है। 'बटोहिया' कविता को सभी जानते हैं परन्तु इसके रचयिता को बहुत कम लोग ही जानते हैं।

'बटोहिया' भोजपुरी प्रदेश का राष्ट्रीय गीत है। खेतों में काम करने वाले किसानों के मुंह से, देहाती स्कूलों को जाने वाले विद्यार्थियों के स्वर में तथा नवयुवकों के मधुर रागों में 'बटोहिया' गाना सुनने को मिलता है। इस गीत में भारत का जो चित्र खींचा गया है वह बड़ा ही सुन्दर उतरा है। इस गीत की दूसरी विशेषता इसका मधुर राग है जो श्रोताओं के हृदय को बरबस अपनी ओर खींच लेता है। प्रारम्भ की ये पंक्तियाँ सुनिये :—

सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से,
मोरे प्रान बसे हिय खोह रे बटोहिया।
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से,
तीन द्वार सिन्धु घहरावे रे बटोहिया।

हिमालय सचमुच हमारा रक्षक है, हमारा सन्तरी है। महाकवि इकबाल ने इसी भाव को इन पदों में व्यक्त किया है :—

"पर्वत में सबसे ऊँचा हमसाया आसमां का
यह संतरी हमारा यह पासबां हमारा"

अखंड भारत का सुन्दर चित्रण करते हुए कवि मधुर राग में गाता है।

गंगा रे जमुनवा के झगमग पनिया से,
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया।
ब्रह्मपुत्र, पंचनद, घहरत निसिदिन,
सोनभद्र मीठे स्वर गावे रे बटोहिया।

भारत की वीर गाथा सुनाकर कवि हमारी सुप्त चेतना को जागरित करता हुआ गाता है :—

नानक, कबीरदास, शंकर, श्रीराम, कृष्ण,
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया।
विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव कवि,
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया।

१. 'भोजपुरी' पत्रिका वर्ष १, अंक १, पृ० ५४.

इस प्रकार कवि ने भारत के अतीत गौरव का जो गीत गाया है वह बड़ा ही सुन्दर है।

रणधीरलाल श्रीवास्तव

बाबू रणधीरलाल श्रीवास्तव भोजपुरी के उदीयमान कवियों में से एक हैं। आपका जन्म उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के सोनवर्सा नामक ग्राम में हुआ था। आपकी शिक्षा दीक्षा बलिया तथा प्रयाग में हुई है। आगरा विश्वविद्यालय से एम० ए० की उपाधि लेकर आजकल आप बलिया के मेस्टन हाई स्कूल में अध्यापन का काम अनेक वर्षों से कर रहे हैं। आप बड़े ही सरस व्यक्ति हैं तथा काव्य के मर्मज्ञ हैं। लड़कपन से ही आपकी अभिरुचि काव्य की ओर थी जिसकी क्रमिक वृद्धि बाद में हुई।

आप भोजपुरी में सुन्दर कविता करते हैं। इधर आप भोजपुरी में 'बरवै' छन्द में काव्य रचना करने में संलग्न हैं तथा 'बरवै शतक' नामक काव्य की रचना भी की है। यह ग्रंथ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। भोजपुरी में 'बरवै' की रचना कर रणधीरलाल जी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि इस देहाती 'भाखा' में कितनी सुन्दर कविता की जा सकती है। भोजपुरी भाषा इस छन्द के लिये बहुत अनुकूल है।

रणधीर लाल जी ने अब तक कुल १०० 'बरवै' की रचना की है। परन्तु वे ही इन्हें उदीयमान कवि घोषित करने में पर्याप्त हैं। आपकी भाषा सरल और सुबोध होती है जिसमें भोजपुरी मुहावरों और ठेठ शब्दावली का प्रचुर प्रयोग मिलता है। यह उदाहरण लीजिए[1] :—

टहटहि उगलि अजोरिया, ठहरे ना आंखि।
पहिरि चलेली लुगवा, बकला पांखि।।
बीतलि रात चुचुहिया, बोलन लागि।
फहवो फाटल पियवा, अब त जागि।

उपर्युक्त दोनों 'बरवों' में 'टहटह उगना', 'चुचुहिया बोलना' तथा 'फह फटना' भोजपुरी के मुहावरे हैं जिनके अर्थ की विशेषता इस भाषा के विशेषज्ञ ही जान सकते हैं।

पति के वियोग में किसी विरहिणी की यह दशा देखिए। विरहाग्नि के कारण उसका हृदय ही गल गल कर आखों के मार्ग से निकल रहा है। विरह की तीव्रता कितनी गंभीर है[2] :—

१. लेखक का निजी संग्रह.
२. वही.

बिरह अगिनिया छतिया धधके मोर।
गलि गलि बहेला करेजवा, अखियन कोर ।।

कवि आगे कहता है कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि पानी पड़ने से तो आग बुझ जाती है, शान्त हो जाती है परन्तु आंसुओं के जल से विरह की यह अग्नि और भी धधक उठती है[1] :—

इ कतहू ना देखनी सुनली माइ ।
विरह अगिनिया धधकेला पनिया पाइ ।।

सरस, प्रेमी घनानन्द ने भी विरहाग्नि की विशेषता का वर्णन करते हुए लिखा है कि[2] :—

"पौन सो जागत आगि सुनी, पर पानी सों लागत आंखिन देखी।"

गोपियों के कृष्ण को साथ क्रीड़ा का यह मधुर वर्णन सुनिये। कवि ने कितनी सुन्दर रीति से इस लोला का विवरण दिया है[3] :—

होत पराते गइलीं जमुना तीर,
जानि अकेले रोकेले बावन बीर।
मांगेला गोरस आइल कमरी ओढ़,
तापर राड़ वेसाहे ला गगरी फोड़।
काहे छीन झपट्टा करेल, दहिया चोर,
गोड़वा के धोवनवा, पइब न मोर।

भोजपुरी स्त्री, छेड़खानी करने वाले तथा उसके मटके को फोड़कर दही खाने वाले, श्री कृष्ण को किस प्रकार बना बता रही है। 'गोड़वा के धोवनवा' इस पद में कितनी व्यंजना भरी पड़ी है।

भक्ति को भावना में आकर कवि के द्वारा गाये गये इस पद को सुनिये[4] :-

लगतेहि नजरि इयरवा के हो,
मन छिदि गइल मोर।
रहि रहि कसकेले छतिया हो,
नयना ढरे ढरे लोर।
धरम, करम सब बिसेरेला हो,
भागेला लोक लाज।

१. वही.
२. घनानन्द कवित्त.
३. लेखक का निजी संग्रह. ४.

छुटि गइले कुल परिवरवा उ हो,
कवने रहे नाहि आज।
धधकेले विरह अगिनिया हो,
केहू टिटके ना पास।
दर दर अलख जगाइले हो,
एक दरसन आस।
चुभिकिले प्रेम की नदिया नू हो,
पर बुझेला ना पियास।
रटत रटत जिमि लटि गइल हो,
अब होस ना हवास।

उपर्युक्त पद कितना सुन्दर बन पड़ा है। भगवान् की सच्ची भक्ति में पग भक्त का उल्लेख कितना मनोरम है।

"अशान्त"

"अशान्त" जी अपने इसी उपनाम से काव्य रचना करते हैं। आपकी कविता सरल होती है। भाषा प्राञ्जल है और भाव उच्चकोटि के हैं। आपकी 'मसानवाँ' नामक कविता 'भोजपुरी' में प्रकाशित हुई है जो बड़ी सुन्दर है।[1] कवि के हृदय में श्मशान का दृश्य देख कर अनेक प्रकार की भावनायें उत्पन्न हो रही हैं। कवि कहता है कि श्मशान जीवन की अमर कहानी को गाता है। जलती लाश से जो धुंआ निकलता है, वह आकाश में छा जाता है। धूम्राच्छादित आकाश मानों मुंह फेर कर यह कहता है कि श्मशान शव के व्याज से अपने भाग्य को जला रहा हो।

"हहरी जमुनियां के झगमग पनियाँ,
अमर जिनिगिया के गावेला कहनियाँ।
कहैला धुंआइल मुंह फेरि आसमानवां,
अपने करमवा जलावेला मसानवाँ।"

नीचे के पद्य में कवि ने सूर्य की उपमा लाल पगड़ी से दी है जो बड़ी ही सटीक है। सूर्यास्त होते ही समस्त संसार में अन्धकार छा जाता है और झोपड़ी सूनी पड़ जाती है:—

"काहे दोनी दिनवाँ के ललकी पगड़िया,
धीरे-धीरे झुकि गईल पछिम कगरिया।

१. विशेष वर्णन के लिए देखिए : दुर्गाशंकर सिंह : भोजपुरी के कवि और काव्य।

रसे-रसे पसरल आइल अन्हरिया,
सून भइल सब टुटही झोपड़िया।"

श्मशान में कितने वीर पुरुषों की लाशें जलती हैं जिन्होंने संसार में अलौकिक कार्य किये थे। कितनों ने यमराज के आसन को भी हिला दिया था परन्तु आज वे भी 'मसान' में जल रहे हैं।

"जवने जिनिगिया के सँसरी पवनवां,
दिहले हिलाई यमराज के आसनवाँ।
ओहिला भइले करवटिया जमानवाँ,
अमर परानवां जलावेला मसानवाँ१।"

(च) फुटकर पुस्तकें

भोजपुरी में बहुत सी फुटकल छोटी छोटी कविता की पुस्तकें इधर छपी हैं जिन्हें बाजारों अथवा मेलों में गवैये गा गा कर बेचा करते हैं। ये पुस्तिकायें बहुत छोटी हैं। इनमें से कुछ तो दो चार पृष्ठों से अधिक नहीं हैं। यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से इन पुस्तिकाओं का कुछ विशेष मूल्य नहीं है परन्तु अनेक दृष्टियों से इनका महत्व कुछ कम नहीं है। इनकी विशेषता सामाजिक दृष्टि से अंकित की जा सकती है। इन छोटी पुस्तिकाओं में वर्तमान भोजपुरी समाज का चित्रण बड़ी सुन्दर नीति से किया गया है। कहीं मेला में घूमने वाली स्त्रियों का चित्रण पाया जाता है तो कहीं गंगा नहाने जाने वाली महिलाओं का वर्णन उपलब्ध होता है। आजकल बलिया जिले के ददरी मेले में अथवा सोनपुर के हरिहर क्षेत्र के मेले में जहाँ भी चले जाइये, आपको 'मेलाघुमनी' और 'गंगा नहनवी' की सुन्दर कवितायें सुनने को मिलेंगी। 'झरेलवा' 'विदेशिया' और 'बनवारी' के गीत तो भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक गांव में सुनने को मिलेंगे। यदि 'झरेलवा' में आधुनिक नवयुवकों की फैशनपरस्ती की खिल्ली सुन्दर रीति से उड़ाई गई है तो 'विदेसिया' में पति का विदेश जाना, स्त्री का वियोग, पति की लापरवाही से स्त्री के कष्ट और नारकीय जीवन का वर्णन किया गया है। यदि 'बनवारी' वाले गीत में बाल विवाह का कारुणिक चित्रण है तो 'विदेशिया' में किसी स्त्री की आत्मा पुकार रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन पुस्तिकाओं में भोजपुरी समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण उपलब्ध होता है।

इनकी अन्य विशेषता साधारण, अनपढ़ जनता के मन का अनुरंजन करना है। गांवों में न तो सिनेमा घर होते हैं और न नाटकगृह। वहां न तो रेडियो का स्टेशन

है और न फोनोग्राफ सुनने का साधन। अतः देहाती लोगों का मनोरंजन हो तो कैसे हो। ये छोटी, नन्हीं पुस्तिकायें इसी उद्देश्य का सम्पादन करती हैं। गांवों में लड़के इन गीतों को गाते फिरते हैं और देहाती लोग इन्हें सुनकर आनन्द लेते हैं और अपना मनोरंजन करते हैं। एक बात और है। ये कवितायें बहुत सरल, मीठी तथा सरस हैं। अतः जनता का इनके द्वारा पर्याप्त मनोरंजन होता है।

इन पुस्तिकाओं के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। ये लेखक अधिकांश में जीवित व्यक्ति हैं परन्तु ये अपनी कृतियों पर अपना नाम देना लज्जाजनक समझते हैं। इन पुस्तिकाओं के एक प्रकाशक से जब हमने इसका कारण पूछा तो उसने सकुचाते हुए उत्तर दिया कि "बाबू जी ए छोट कितावन पर नाम का दिहल जाउ"। परन्तु लेखकों की इस लज्जाजनक प्रवृत्ति के कारण न तो हम इन पुस्तिकाओं के रचयिताओं तथा उनके जीवन वृत्त के संबंध में कुछ जान सकते हैं और न इनके रचना काल का ही हम निर्णय कर सकते हैं। काशी से भोजपुरी की जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें किसी के भी कर्त्ता का नाम ज्ञात नहीं है। हाँ कलकत्ते वाली पुस्तकों में कुछ लेखकों का नाम अवश्य पाया जाता है। अतः उपर्युक्त कारण से इन पुस्तिकाओं के लेखकों के काल, नाम तथा जीवन वृत्त बतलाने में हम नितान्त असमर्थ हैं।

भोजपुरी की आजकल जो अनेक — जिनकी संख्या सौ से कम न होगी, पुस्तिकायें देखने में आती है वे प्रधानतया दो स्थानों से प्रकाशित हुई हैं। १. काशी[1] और २. कलकत्ता[2]। इनमें काशी से प्रकाशित होने वाली पुस्तकों की संख्या अधिक है। इन पुस्तिकाओं के विवरण प्रस्तुत करने के लिये हमने अपनी सुविधा के अनुसार काशी के प्रकाशन को 'गुल्लू प्रसाद प्रकाशन' नाम दिया है और कलकत्ते वाली पुस्तकों का नाम 'दूधनाथ प्रेस प्रकाशन' रखा है। अतः अगले पृष्ठों में क्रम प्राप्त 'गुल्लू प्रसाद प्रकाशन' का वर्णन किया जायगा। इन दोनों स्थानों के अतिरिक्त बिहार प्रान्त के आरा और छपरा जिलों से भी कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं परन्तु इनकी संख्या बहुत कम है। इनका उल्लेख भी यथा स्थान होगा।

(क) गुल्लूप्रसाद प्रकाशन

काशी से प्रकाशित पुस्तकों में छपने की तिथि का भी निर्देश नहीं है अतः इनकी तुलनात्मक प्राचीनता का निश्चय नहीं हो सकता। इसलिये इन पुस्तकों के वर्णन में किसी क्रम का पालन करना असंभव है।

---

१. गुल्लूप्रसाद केदारनाथ बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस सिटी।

२. पं० रामनारायण त्रिवेदी, मैनेजर, दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवड़ा, कलकत्ता।

इस पुस्तिका में बारह पृष्ठ हैं। इसमें आजकल के फैशनेबुल नवयुवकों को 'झरेलवा' की संज्ञा दी गई है और कालेज में पढ़ने वाली और तितली बनकर 'सोसायटी' में घूमनेवाली लड़कियों को 'झरेलिया' कहा गया है। आजकल अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवक कोट, पैंट डटकर, विविध प्रकार का फैशन कर, जिस मस्ती के साथ घूमते फिरते हैं उसी का बड़ा ही सजीव चित्रण इस पुस्तिका में किया गया है। निम्नलिखित यह वर्णन कितना रोचक है[2]:—

झरेलवा झरेलिया बहार[1]

"सेनगुप्ता धोती, कुरुता सिलिक के सिलाई लेला,
इंगलिश काट जूता पेन्हीं लेला रे झरेलवा।१।
लीलरा में टीका लाइ मुखवा में पान खाई,
नारी लेखा मांग फारि लेला रे झरेलवा।२।
तेल व फूलेल लावे बेला औ चमेलिया के,
हाथवा में घड़ी बान्हीं लेला रे झरेलवा।३।
चलती डगरिया में अंगवा अंइठत चले,
जाहाँ ताहाँ राह पूछि लेला रे झरेलवा।४।"

यह वर्णन कितना सत्य है यह बतलाने की आवश्यकता नहीं, इससे सभी लोग परिचित हैं।

आगे चल कर कवि ने अजकल के नवयुवकों की कटु आलोचना की है और किस प्रकार आचरणहीनता के कारण वे विपत्ति में पड़ जाते हैं इसका सुन्दर वर्णन किया है।

जैसा कि इस पुस्तिका के नाम से विदित है इसमें दो खंड हैं, झरेलवा बहार तथा झरेलिया बहार। इन दोनों खंडों के लेखकों ने संक्षेप में अपना परिचय देने की कृपा की है। प्रथम खण्ड के लखक 'बिसुन महतो' हैं जो बिहार प्रान्त के छपरा जिले के मांझी थाना के अन्तर्गत नरपलिया बाजार के निवासी हैं[3]। दूसरे खण्ड के लेखक का नाम बिसुन प्रसाद है जो इसी जिले के नारायण पलिया गांव के निवासी हैं[4]। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में दोहा, चौपाई छन्द का प्रयोग किया गया है और शेष पुस्तक पूर्वी धुन में लिखी गई है।

१. मेवालाल गुप्त, बम्बई प्रिन्टिंग काटेज, बांस फाटक, काशी में मुद्रित.
२. मेवालाल गुप्त, बम्बई प्रिन्टिंग काटेज, बांसफाटक, काशी पृष्ठ १–२.
३. झरेलवा झरेलिया बहार पृ० ४.
४. वही. पृ. ५.

आजकल किस प्रकार स्त्रियाँ श्रृंगार करके मेला में घूमती हैं और अपने आचरण को नष्ट करती हैं उसका मनोरम चित्रण इस पद्य में देखिये[1] :-

"करिके सिंगार गोरी करे अभरनवां से,
गारवा में हरवा लगावे रे झरेलिया।
पोरे-पोरे अंगुरी में पेन्हेले मुंदरिया से,
कानवा में बलिया झुलावे रे झरेलिया।
सारी कासमीर पेन्हीं चोली बूंटादार पेन्हीं,
लिलरा में बुन्दा करी लेली रे झरेलिया।
कमर में सोभे तोरा बांकी करधनिया से,
दांतवा में मिसिया लगावे रे झरेलिया।
छन छम चाल चले देखत में मन ललचे।
चले लो डगरिया लचकत रे झरेलिया।"

कवि ने समाज सुधार की भावना से ही इस पुस्तक को लिखा है। वह अन्त में कहता है कि :—

"कहे बिसुन समझाय, यही कजरी बनाय,
रह अबहुं से चलिया सुधार के।"

इस पुस्तिका के लेखक का नाम महादेव सिंह है। इसमें बारह पृष्ठ हैं।

मैना की जातसारी[2]

पुस्तक में मैना नामक स्त्री की आदर्श, रोचक प्रेम कथा का वर्णन है जो संक्षेप में इस प्रकार है:—

मैना किसी अहीर की लड़की थी और गोविना गोविन्द कोइरी का बालक था। ये दोनों गाय चराने के लिये जाया करते थे। प्रकृति के स्वच्छन्द वातावरण में, इनके हृदय में प्रेम का अंकुर उत्पन्न हो गया जो क्रमशः पल्लवित होने लगा। एक दिन मैना स्नान करने के लिये किसी तालाब में गई थी। उसने अपना बहुमूल्य हार निकाल कर स्नान करना प्रारम्भ किया। इतने ही में कोई चील्ह पक्षी आकर उस हार को लेकर उड़ गया और तालाब सागर के बीच में स्थित चन्दन के वृक्ष पर रख दिया। मैना यह देख, अपने को असहाय पाकर तालाब के किनारे करुण स्वर में रोने लगी। गोबिना कहीं से उधर आ निकला और उस समाचार को सुनकर, अपनी जान को खतरे में डालकर उस वृक्ष से हार को उतार लाया। प्रसन्न होकर मैना उसके साथ जुआ खेलने लगी जिसमें उसका मोती का हार टूट गया। जब वह घर लौटी तब दुष्ट भावज ने

१. झरेलवा झरेलिया बहार, पृ० ६.

२. मेवालाल गुप्त, बम्बई प्रिन्टिंग काटेज, काशी में मुद्रित।

हार टूटने का कारण पूछा और मैना पर दुश्चरित्रता का लांछन लगाकर अपने पति से उसे ससुराल भेजने की प्रार्थना की। मैना को अपनी इच्छा के विरुद्ध ससुराल जाना पड़ा।

जब गोविना को यह हाल मालूम हुआ तो वह साधु के वेश में, बंशी बजाते हुए वहाँ पहुँचा और मैना के घर के आगे अलख जगाने लगा। मैना यह सुनकर जोगी को देखने के लिये आई। इतने में गोरखनाथ जी वहाँ आ गये और उनके आशीष से दोनों प्रेमी सुख पूर्वक जीवन बिताने लगे।

यह पुस्तिका यद्यपि बहुत छोटी है परन्तु शृंगार एवं करुण रस का बड़ा सुन्दर परिपाक इसमें बन पड़ा है। साथ ही कवि ने भावज की दुष्टता की ओर भी संकेत किया है। गोबिना हार लेने के लिये सागर को तैरकर चन्दन के पेड़ की पतली शाखा पर अपने प्राणों की बाजी लगा कर चढ़ रहा है। यह दृश्य देखकर मैना का प्रेम उमड़ पड़ता है और वह कहने लगती है कि[1]:–

"गछिया उपर गोबिना चढ़ले पलइया हो,
गोबिना सनेहिया मैना बोलेले हो राम ।१।

सुनु-सुनु गोबिना रे प्रान के पियरवा हो,
दिलवा के हरवा तुहु यरवा हो राम ।२।

आग लागों हरवा रामा फिर आव यरवा हो.
हमरी बचनवाँ मनवाँ धारहु हो राम ।३।

गिरबे सागर बिचवा, जइबै पतलवा हो,
तोहरी सुरतिया सपना होइहैं हो राम ।४।

इस गीत से मैना का प्रेम छलका पड़ता है। भला कौन स्त्री अपने प्रियतम के प्राणों को खतरे में डालने देगी। मैना अपनी ससुराल में गोबिना को आया जान उसके दर्शन के लिए व्याकुल हो उठती है और उसका दर्शन कर पूर्वस्मृति के जागृत होने से रोने लगती है[2] :–

"धइली सोना मोती, ऊपर धइली अंचरा हो,
जोगिया के दरसन करे चलली हो राम।
ना दुआर अइली एक पांव बाहर कइली,
मैना नयनवां निरवा ढरेला हो राम।"

१. मैना की जांतसारी पृ० ३।
२. वही. पृ० ६।

पूर्वी का परी[1] इस पुस्तिका के लेखक का नाम पन्नालाल है जिसका पता हमें इन गीतों में आये हुए नाम से चलता है।

'पन्नालाल' करे कबितइया, ज्ञान बताई देता ना।

इसमें कुल बारह पृष्ठ हैं जिनमें पूर्वी धुन में अनेक कवितायें लिखी गई हैं। इन कविताओं में फुटकर प्रसंगों का वर्णन किया गया है जैसे कृष्ण की बाल लीला, भजन, प्रियतम का परदेश चला जाना और विरहिणी स्त्री का वर्णन।

कृष्ण गोपियों से छेड़खानी करते हैं, उनकी दही खा लेते हैं और उनका मटका फोड़ देते हैं। इस कारण रुष्ट हुई गोपियों का कृष्ण के प्रति यशोदा से यह उपालम्भ कितना सुन्दर बन पड़ा है[1]। इसे पढ़ कर सूर की पंक्तियां अनायास याद आ जाती है।

"बरज जसुदा मइया नाहीं मानेले कन्हैया।
दहिया छिन छिन खाले ना। टेक।
छैकें नित हमहन कै रहिया, दहिया छिन २ खाले ना,
कइसे के जाऊँ, कइसे लजिया बचाऊँ, नहिं तनिक डेरालें ना।
अहिर के जतिया, हमसे करे खुरफतिया, गर में बहिया डालें ना।
जइसे दुलहा के नइयाँ गर में बहियाँ डाले ना।
फारेलें चुनरिया, हमरी फोरेलें अथरिया,
नाहीं तनिक लजाले ना।
लेके मसके नरम कलइया,
नाहीं तनिक लजाले ना।

भोजपुरी ग्वालिन का यह उपालम्भ कितना चित्ताकर्षक है। कृष्ण की 'दुष्टता' का वर्णन कितनी मार्मिकता के साथ किया गया है।[2]

कुछ पूर्वी गीतों में विरह का चित्रण बड़ा सुन्दर हुआ है। यह गीत सुनिये :-

"चढ़लो जवनिया विरहा करेला वेधनियां मोरी भऊजी हो,
मीलल मोके बुढ़वा भतार, मोरी भऊजी हो।
मदन सतावें नीद जरिको न आवे मोरी भऊजी हो,
राखी कइसे जोबना संभार, मोरी भऊजी हो।"

चम्पा चमेली की बात चीत इस पुस्तिका के लेखक का नाम कपूर है जैसा कि निम्न पद से पता चलता है[3]:-

१. पृष्ठ १२।
२. पृष्ठ ८।
३. चम्पा-चमेली की बातचीत, पृष्ठ ११।

"कजरी लिखलन 'कपूर', भइल पंच ले मंजूर,
और गाइ के सुनावत हर सवनवा में॥"

इसमें चम्पा और चमेली की प्रेम कथा का वर्णन है। लेखक ने इस पुस्तक की भूमिका में लिखा है कि मध्यप्रदेश के सूबे में चम्पालाल नामक अमीर का एक लड़का रहता था। उसके मकान के पास ही चमेली नामक एक लड़की रहती थी जो परम सुन्दरी थी। चम्पालाल इसके रूप माधुर्य पर मुग्ध था। एक दिन चमेली बगीचे में फूल तोड़ने के लिये गयी। चम्पालाल भी संयोग से वहाँ आ पहुँचा, फिर इन दोनों में आपस में जो बातचीत हुई उसका विस्तृत विवरण इस पुस्तिका में दिया गया है।

चम्पालाल दुष्ट तथा लम्पट नौजवान है। वह चमेली से बुरा प्रस्ताव करता है। इस पर सती, साध्वी चमेली उसे जो उत्तर देती है वह भारतीय ललना के आदर्श के सर्वथा अनुकूल है।[1] इस उत्तर में स्वाभिमान तथा वीरता का भाव छिपा पड़ा है।–

"बाड़ बांके तू जवान, काला भूत के समान,
बेंग मारत फिर जाइके, गड़हियां में।
बेसी करब जो बात, खइब जूता और लात,
जाइ मुंह देख आपन, तनि पनिया में।
देखि सूरत हमार, काहे होला तोहरा जार,
मान बतिया हमार, यह घरिया में।
लेबि इज्जत उतार, कर मन में विचार,
हम नाहीं भूलबि, तोहरे जबनियां में।"

इसके लेखक का नाम नित्यानन्द है। यद्यपि उन्होंने लेखक के रूप में अपने नाम का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं किया परन्तु अनेक गीतों के अन्त में इस नाम के आने के कारण यह सहज में ही अनुमान किया जा सकता है[2]।

गारी मनोरंजन

भोजपुरी प्रदेश में विवाह के अवसर पर जब वर पक्ष का समधी, कन्या के घर पर मंडप में भात खाने के लिये जाता है उस समय पर गारी गाने की बड़ी प्रथा है। यदि उस शुभ अवसर पर समधी को 'गारी' नहीं सुनाई गई तो इसे वह अपना अपमान समझता है और भात खाने की रसम पूरी नहीं समझी जाती। अतः उक्त अवसर पर गाली गाना अत्यावश्यक है।

१. पृष्ठ ४।
२. गारी मनोरंजन पृ० १०, ११।

इस पुस्तक में इसी प्रकार की गालियाँ गायी गई हैं। राजा दशरथ अपने पुत्रों के विवाह के लिये जनकपुर गये हैं। वहाँ वे बारातियों के साथ जनक के घर भोजन करने गये हैं। उसी समय ये गालियाँ गायी गई हैं। ये गालियाँ ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं। इनमें औचित्य की सीमा का उल्लघंन नहीं किया गया है। यह गीत लीजिये:—

"हरियर बइरिया के उलटल पात हो,
बताव फलाने राम आपन जात हो।
माई मोरी धोबिन बाबा चुरिहार हो,
बहिनी जेवाई कहली जाति भठियार हो।"

वर पक्ष की निन्दा करना ही इन गालियों का उद्देश्य होता है परन्तु इस निन्दा के मूल में प्रेम होता है, वैर भाव या बदला लेना नहीं।

बारहमासा

इस पुस्तिका के लेखक का नाम अज्ञात है। जैसा कि इसके नाम से विदित है इसमें बारह महीनों का बड़ा ही सरल वर्णन किया गया है। इसमें बारह सखियाँ हैं जो एक एक करके, प्रत्येक मास में होने वाले विरहिणी के कष्टों का वर्णन करती हैं। ग्रंथ के प्रारम्भ में प्रियतम के वियोग में विधुरा कोई विरहिणी अपनी दुर्दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि[१]:—

"अहे रतिया ना नींद दिन परे ना चैनवां,
विरहा सतावे जिया मोर हे।
चढ़ली जवानी मोर खिलेला जोबनवा,
मदन के ताप ना सहाय हे।
अरे राति अंधियारी मोरि भइले मुदइया,
पिया बिनु मोहि ना सुहाय हे।
ओही पियवे करनवे भइलीं बन की कोइलिया,
कुंहुकि कुंहुकि दिन जाय हे।"

इस पद में कवि ने विरहिणी की उपमा वन में 'कुहू' 'कुहू' बोलने वाली कोयल से देकर जिस गंभीर भाव की अभिव्यक्ति की है वह सहृदय-हृदय-संवेद्य है।

---

१. वही. पृ० ६।
२. बारहमासा पृ० १।
३. वही. पृ०

इस पुस्तक के प्रत्येक गीत में समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। वृद्ध विवाह[1], व्यभिचारी पति से विवाह[2], बाल विवाह, आदि अनेक सामाजिक कुरीतियों का वर्णन दुःखद शब्दों में किया गया है। कवि ने भिन्न-भिन्न सखियों द्वारा अपन दुःख-कथन के व्याज से कुरीतियों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित किया है।

प्यारी सुन्दरी वियोग

इस पुस्तिका में किसी स्त्री के वियोग की करुण कथा बड़े ही सुन्दर शब्दों में कही गई है। भोजपुरी प्रदेश के उत्साही नौजवान अपनी जीविका की खोज में कलकत्ता, आसाम और ब्रह्मप्रदेश (बर्मा) को चले जाते हैं और वर्षों तक वहाँ से लौटकर नहीं आते। उनकी स्त्रियाँ वियोग के दिनों को किसी प्रकार काटती हुई अपने प्रियतम के आगे के दिनों को गिना करती हैं। जब निर्दयी पति वर्षों तक पत्र नहीं भेजता तब वे अपना सन्देश किसी व्यक्ति विशेष के द्वारा भिजवा कर अपने दुःख की कहानी उसको सुनाती हैं।

उपर्युक्त पुस्तिका में किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है। जब वह अनेक वर्षों तक पत्र नहीं भेजता तो उसकी प्रियतमा एक बटोही के द्वारा अपने वियोग की कहानी लिख कर भेजती है। पति उस पत्र को पढ़कर रोने लगता है और अपने स्वामी से छुट्टी लेकर घर आता है। वह अपनी स्त्री के लिये वस्त्र और आभूषण लाता है और फिर दोनों सुख-पूर्वक रहने लगते हैं। पति परदेश में चला गया है अतः उसे 'परदेसिया' के नाम से संबोधित किया गया है और स्त्री का संदेश ले जाने वाले बटोही—यात्री—को बटोहिया की संज्ञा दी गई है।

इसी छोटे से कथानक के भीतर भोजपुरी कवि ने अपनी प्रतिभा के बल से सरस रचना प्रस्तुत की है। करुण रस में सराबोर होने के कारण विदेसिया, परदेसिया और बटोहिया के गीत भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कौन ऐसा पाषाण हृदय होगा जो करुणा से भरे इन गीतों को पढ़ कर द्रवित न हो जाय और उसके आँखों से आँसुओं की झड़ी न लग जाय।

पति के वियोग में विरहिणी की यह दशा देखिये। कवि ने कितनी मार्मिकता से उसका चित्रण किया है[3] :–

---

१. वही. पृ० ३–४।
२. वही. पृ० ४–५।
३. प्यारी सुन्दरी वियोग पृष्ठ २।

"हाय रे बेदरदा दरदिया नाँहि ग्रोवे तोहि,
पत्थर की छतिया तोहार परदेसिया ।१।
दिनवाँ तो बीते राजा तोरी इन्तजरिया में,
रतिया नयनवा न नींद परदेसिया ।२।
घरी राति गइली रामा पछिली पहरवा से,
लहरे करेजवा हमार परदेसिया ।३।
ग्रमवा बउरि गइलें लागल सरसइया से,
दिन दिन होला तइयार परदेसिया ।४।
एक दिन ग्रइहैं रामा जुलुमी बयरिया से,
डार पात जैहैं रे नसाई परदेसिया ।५।"

पति के पास किसी बटोही भाई के द्वारा सन्देश भेजती हुई वह स्त्री कह रही है कि तुम मेरे प्रियतम के पास जाकर उनसे कहना कि[1]:—

"तोरी धनी भइली रामा काली रे कोइलिया से
कुहुकेली ग्रमवां की बाग हो बटोहिया।"

पति इस सन्देश को सुनकर मूर्छित होकर गिर पड़ता है। जब वह घर लौटता है ग्रौर रात के समय घर का दरवाजा स्त्री से खोलने को कहता है तो वह उसे चोर समझ कर चिल्लाने लगती है। तब पति ग्रपना परिचय देते हुए कहता है कि[2]:—

"नाँहि हम ठगवा से नाँहि हम चोरवा से,
नाँहि हम हई बटमार प्यारी धनियां।
खोलहु केवड़िया रे पतरी तिरियवा से,
हम हउई प्रान ग्रधार प्यारी धनियां।"

इसी प्रकार से इस सुन्दर पुस्तक में ग्रनेक सरस वर्णन भरे पड़े हैं।

इस पुस्तिका के लेखक डाक्टर मोतीचन्द श्री वास्तव हैं[3] जो गांव सहजौली जिला (ग्रारा) के निवासी हैं। समें सोहर छन्द में गीत लिखे गये हैं जिनमें राम,

सोहर श्रृंगार

ग्रौर कृष्ण के जन्म का वर्णन है। इसमें एक दो झूमर ग्रौर जेवनार के गीत भी पाये जाते हैं। भाव ग्रौर भाषा ग्रत्यन्त साधारण है। इन सोहरों में राम ग्रौर कृष्ण के जन्म पर उनके पिता ग्रौर माता के द्वारा उत्सव मनाने ग्रौर दान देनें का वर्णन है।

१. प्यारी सुन्दरी वियोग पृष्ठ ३।
२. वही पृष्ठ ८।
३. खूब सब देव मनावहु हो।
ललना 'मोतीचन्द' पजि गइले ग्रास जनम फल पावहु हो। सोहर श्रृंगार ६।

इस पुस्तिका के लेखक का नाम गोरखनाथ शर्मा 'रंगजंग' है जो बिहार प्रान्त के शाहाबाद जिले के जगदीशपुर गांव के निवासी हैं[1]। इस गांव को सुप्रसिद्ध देशभक्त वीर कुंअर सिंह की जन्म भूमि होने का सौभाग्य प्राप्त है। इसमें सीताहरण की कथा कही गयी है परन्तु वह पूरी नहीं हो पाई है। पुस्तक के आदि में दो पृष्ठों का लम्बा 'सुमिरन' है जिसमें सभी देवताओं की स्तुति की गई है। पुनः रामायण के आरण्य काण्ड से कथा शुरू की गई है। पहले जयन्त की--जिसने सीता जी को चोंच से मारा था--कथा है। फिर राम का अत्रि मुनि के आश्रम में जाने का वर्णन है[2]। विराध वध के अनन्तर राम शरभंग मुनि का दर्शन करते हैं और यहीं यह पुस्तक समाप्त हो जाती है। पुस्तक सोरठी राग में लिखी गई है।

सीता हरण

इस पुस्तिका के लेखक प्यारेराम हैं जो बिहार प्रान्त के गया जिले के 'मरडा' गांव के निवासी हैं। जैसा कि इस पुस्तक के नाम से विदित होता है इसमें ननद और भावज का वार्तालाप है। लेखक ने संवाद प्रणाली का अनुसरण कर बाल-विवाह की बुराइयों को दिखलाने का प्रयत्न किया है।

ननदी भौजैया

किसी स्त्री का विवाह बालक पति से हो गया है। पति के बालक होने के कारण वरपक्ष वाले चार वर्ष तक गवना नहीं करा रहे हैं। इधर उसकी स्त्री युवावस्था के प्रभात में पदार्पण कर रही है। उसके अंग-प्रंग में कामदेव के चिह्न प्रकट हो रहे हैं। ऐसी दशा में वह अपनी दुःखद कहानी भावज से कहती है तथा गवना करवा देने के लिये उससे आग्रह करती है। भावज चतुर स्त्री है। वह अपनी ननद की इस बात से रंज होकर ऐसा कहने से मना करती है। अन्त में उसका गवना होता है परन्तु पति के 'अलप वयसवा' होने के कारण उसकी मनोकामना पूरी नहीं होती और वह अपने माता, पिता को बुरी तरह कोसती है।

इसी कथा को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से कहा है। वर्णन बड़ा ही रोचक है। स्त्री के शरीर में यौवन के आगमन का यह वर्णन देखिये :—

"चढ़ली जवानी मोरे अंग अंग फरकेसे,
पिया बिनु हिया नित फाटे रे भउजिया।
घेरेले बदरिया दामिनि घहराई उठे,
रगे रगे मदन सतावे रे भउजिया।
विरहा के आगि मोरा लागे ला सरिरवा में,
फर फर फरके जोबन रे भउजिया।"

१. सीताहरण पृष्ठ ३।
२. सीताहरण पृ० ३।

जैसा कि 'गारी मनोरंजन'' के विषय में लिखा गया है, यह पुस्तिका विवाह के अवसर पर गाई जाने वाली गालियों का संग्रह है। कृष्ण जी राधा से विवाह करने के लिये वृषभानु के यहाँ गये हैं। वहाँ वे जब भोजन करने के लिये बैठे हैं तब उनके पिता नन्द और माता यशोदा का नाम लेकर उन्हें गाली दी जा रही है। यह गाली प्रेम-पियारी होती है, अतः सुनने वालों को बुरी नहीं लगती। इस पुस्तिका के अन्तिम आठ पृष्ठों में रामचन्द्र जी के जन्म पर गाये जाने वाले नवीन सोहरों का संग्रह है।

बड़ी गोपाल गारी

इस पुस्तिका के लेखक का नाम अज्ञात है। इसके मुख पृष्ठ पर 'असली भिखारी नाटक' लिखा है जिससे ज्ञात होता है कि यह ग्रंथ 'असली' न होकर 'नकली' है। यदि यह वास्तव में भिखारी ठाकुर के द्वारा लिखा गया होता तो फिर 'असली' लिखने की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। जैसा कि इस ग्रंथ के नाम से विदित है इसमें मेला आदि के अवसर पर गंगा स्नान करने जाने वाली स्त्रियों का वर्णन है। भोजन के लिये सत्तू और नमक बांध कर जब भोजपुरी स्त्रियाँ झुंड बनाकर 'गंगा मइया' के गीत गाती हुई चलती हैं तब यह दृश्य सचमुच बड़ा सुहावना मालूम पड़ता है। यह वर्णन देखिये[1]:—

भिखारी नाटक उर्फ गंगास्नान

"चल गोरिया करे गंगा आसननवा।
सारी चोली पेन्ह कर सब अभरनवाँ।
तेहि पर सोभी सोना चांदी के गहनवां।
खाये खातिर बांध नून, सतुआ, पिसनवां।
बने त बनाल झट घर पकवनवां।"

यह ग्रंथ नाटक है अतः इसकी रचना गद्य पद्य दोनों में की गई है।

इस पुस्तिका के लेखक का नाम पं० राम एकबाल मिश्र 'रंगजंग' है जो आरा जिले के जगदीशपुर गाँव के निवासी हैं[2]। इसमें महात्मा गांधी की नृशंस हत्या का जो ३० जनवरी सन् १९४८ को हुई थी, वर्णन है। लेखक ने सोरठी राग में इस ग्रंथ को लिखा है। गांधीजी के गोली लगने से लेकर, श्मशान यात्रा तथा

बापू का हत्याकांड

१. भिखारी नाटक पृ० ३।
२. केदारनाथ मेवालाल बुकडिपो, बांस फाटक, बनारस, मूल्य ४ आना

शव दाह का वर्णन सुन्दर शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। गांधीजी को गोली लगने का यह वर्णन सुनिये:[१]—

"लोग रास्ता दिहले छोड़, बापू चले मंच की ओर,
आगे मरहट्ठा नाथू गोंडसे बभनवा।
रहे दुई गज के दूरी, ना मरलस भाला छूरी।
हत्यारा कइलस पिस्तौल निसनवा।
जब लगी पेट में गोलियाँ चिल्लाई बापू की पोतियाँ
हाहाकार मचल तब बिड़ला भवनवाँ।"

इसके बाद लाश की सजावट, श्मशान की तैयारी और दाह संस्कार का वर्णन है। भोजपुरी की काव्यधारा का श्रोत आज भी सूखा नहीं है यह इस पुस्तिका के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

इस पुस्तक के लेखक का नाम एस० पी० सिंह है। कवि ने इसे फ्वांरा का नाम दिया है। इस पुस्तक में अड़तालिस पृष्ठ हैं। सोरठी की कहानी बड़ी ही रोचक, मनोरंजक और रोमांचकारी है। इसके पढ़ने में उपन्यास का आनन्द आता है। सोरठी का संक्षिप्त कथानक, इसकी विशेषता तथा कविता का नमूना भोजपुरी लोक-गाथा के प्रसंग में अन्यत्र दिया जायगा। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि सोरठी की कहानी बड़ी सरस और काव्यमय है।

सोरठी का गीत

यह विशालकाय महाकाव्य है जिसमें चौसठ भाग हैं और पृष्ठों की संख्या ३३२ है। इसके लेखक का नाम बाबूलाल है जो गांव अमारुत बाजार, पोस्ट हरदौन, जिला यगा, बिहार के निवासी हैं। पुस्तक का प्रकाशन काल सन् १९४६ है। 'सोरठी का गीत' की भाँति इस पुस्तक में भी सोरठी की कहानी तथा बृजाभार की बंगाल और इन्द्रासन यात्रा विस्तार से वर्णित है। कवि ने कथानक को स्पष्ट करने के लिये बीच बीच में गद्य का भी प्रयोग किया है[२]। इस विषय का विस्तृत विवेचन अन्यत्र देखिये।

सोरठी बृजाभार

इस पुस्तक के लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें बिहुला की कथा बड़ी रोचक भाषा में लिखी गई है जो छत्तीस पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसकी कहानी

१. बापू का हत्याकांड पृ० १–६।
२. सोरठी बृजाभार पृ० ५३ आदि।

इतनी सरल और भाषा इतनी मर्मस्पर्शी है कि श्रोताओं का हृदय द्रवित हो जाता है। इस गीत का भोजपुरी प्रदेश में इतना प्रचार है कि इस विषय को लेकर अनेक कवियों ने कविता की है। बिहुला की कथा अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती है। बंगला भाषा में इस विषय को लेकर सैकड़ों ग्रन्थ लिखे गये हैं।

बिहुला गीत

इस पुस्तक के लेखक बाबूलाल हैं जिनका उल्लेख 'सोरठी बृजाभार' के संबंध में अभी हो चुका है। यह पुस्तक चौबीस भागों में लिखी गई हैं और १४६ पृष्ठों में समाप्त है। यह ग्रंथ भोजपुरी महाकाव्य है जिसमें 'शोभानयका' नामक किसी बनजारे या सौदागर की कथा विस्तार से कही गई है[1]। इसी प्रकार की दूसरी पुस्तक जिसका वर्णन अगले पृष्ठों में होगा कलकत्ते से भी प्रकाशित हुई है जिसका नाम 'नयका बनजारा' है।

शोभा नयका बनजारा

इस पुस्तिका के लेखक गोस्वामी चन्द्रशेखर भारती हैं जो बिहार प्रान्त के जिला छपरा, पोस्ट आफिस दरौंदा, गाँव कोड़ारी मठिया के निवासी हैं[2]। जैसा कि पुस्तक के नाम से विदित है इसमें महात्मा गांधी की हत्या का वर्णन है। पश्चात् भारत के द्वारा स्वतंत्रता की प्राप्ति और भारत विभाजन का भी उल्लेख है। इस पुस्तक के प्रारम्भ में तीन पृष्ठों में प्रत्येक पंक्ति में 'आई हो दादा' पद आया है। गांधी जी की हत्या का वर्णन करते समय इन पदों का बार-बार आना बड़ा ही हृदय द्रावक है।

गांधीजी का स्वर्गवास

इस पुस्तक के लेखक मुन्शी मुहम्मद हुसैन नामक कोई मुसलमान सज्जन हैं। ये जिला बलिया 'सरैयाँ' गांव के निवासी हैं और कलकत्ता में दुकान करते हैं जिसका उल्लेख उन्होंने पुस्तक के अन्त में किया है[3]। इस पुस्तक में कुल १६ पृष्ठ हैं। पुस्तक तीन भागों में विभक्त है।

नैहर खेलनी

१. नैहर खेलनी २. पानी भरनी ३. वियोग। पहले भाग में नैहर (मायका) में रहकर स्वच्छन्द गति से बिहार करने वाली स्त्रियों का वर्णन किया गया है। 'पानी भरनी' में पनघट पर जाकर पानी भरने वाली कुलटा स्त्रियों का चित्रण किया गया है और 'वियोग' में विरह का वर्णन है। यद्यपि इस पुस्तक का

१. इस विषय के विस्तृत विवेचन के लिये अन्यत्र देखिये।

२. लेखक द्वारा प्रकाशित।

३. नैहर खेलनी, पृ०१६।

रचयिता मुसलमान है परन्तु उसने बड़ी सुन्दर रीति से भोजपुरी भाषा का प्रयोग किया है। इस पुस्तक की भाषा शुद्ध भोजपुरी है। उर्दू अथवा फारसी के शब्द कहीं भी नहीं आये हैं। वर्णन रोचक और सजीव है। नैहर में घूमने वाली स्त्री का यह वर्णन देखिये[1] :—

"भइया भतीजवा के खोजे के बहाना करि
ढूंढ़े जाली टेमना ईयार नैहर खेलनी ।१।
देखि के इयरवा के मन मुसुकाई देलू
दंतवा बिहंसि बोले बात नैहर खेलनी ।२।"

पानी भरने के लिये जाने वाली कुलटा का यह सजीव चित्रण सुनिये[2]:—

"अइठी अइठी गोरी पानी भरे घड़वा में,
चमकि चमकि चले चाल पानी भरनी ।१।
छतिया उतान करि बटिया चलेली तुहू
कंखिया तर घड़वा दबाई पानी भरनी ।२।
झन झन बाजे तोर पांव के पैजनिया से,
चम चम चमके लिलार पानी भरनी ।३।
रसे रसे पनिया तू भरेलू घइलिया में,
गते गते काटेलू करेज पानी भरनी ।४।"

अन्तिम दो पंक्तियों का भाव कितना सुन्दर है। इस प्रकार से कवि ने नैहर में स्वच्छन्दता से बिहार करने वाली तथा कुयें पर आकर अनार्य आचरण करने वाली स्त्रियों की बुराइयों को दिखलाते हुए उन्हें शुद्ध आचरण से रहने का उचित उपदेश दिया है।

इस पुस्तक के रचयिता महादेव प्रसाद सिंह 'घनश्याम' हैं जिनका उल्लेख पहिले हो चुका है। इसमें दो गीत—बनवारी गीत और जालिमसिंह का गीत—दिये गये हैं। भोजपुरी प्रदेश में 'बनवारी का गीत'

बनवारी गीत

बड़ा ही जनप्रिय है। जहाँ भी कहीं देहात में चले जाइये 'बनवारी हो हमरा के लरिका भतार' का मधुर स्वर आपको सुनाई पड़ेगा। इस गीत में बालविवाह की बुराइयों का उल्लेख किया है। किस प्रकार मूर्ख माता पिता अल्पकाल में ही अपने दुधमुंहे बच्चों का विवाह तरुणी पत्नी से करके दोनों का जीवन संकटमय बना देते हैं इसी तथ्य का सुन्दर

१. नैहर खेलनी, पृ० २।
२. नैहर खेलनी, पृ० ६–७

चित्रण इस गीत में किया गया है। तरुणी स्त्री अपने बाल पति के दुःखों को रोती हुई कहती है[1] :—

"लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो जरि गइले एड़ि से कपार।
थपरा से मार, धइ बांह झहराई,
बनवारी हो माई माई करेले गोहार।
चुप होल चुप होल, हमरे बलमुंआ,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला हुंडार।
सोरह बरीस कर हमरी उमिरिया,
बनवारी हो आठ कर मैंयां हमार।

सास पतोहू का झगड़ा

इस पुस्तक[2] के लेखक डाक्टर मोतीचन्द श्रीवास्तव हैं जिनकी अनेक रचनाओं का विवरण पहिले दिया जा चुका है। इसमें—जैसा कि इसके नाम से विदित है—सास और पतोहू के शाश्वतिक विरोध का बड़ा ही रोचक वर्णन किया गया है। साथ ही ननद भौजाई, गोतिनी तथा पुरुष एवं स्त्री के पारस्परिक कलह का चित्रण भी कुछ कम मनोरंजक नहीं है। भोजपुरी समाज में सास और पतोहू का झगड़ा चिरकालीन एवं स्वाभाविक है। जिस पुत्र को माता ने जीवन भर लाड़ प्यार एवं निःस्वार्थ भाव से पाला हो उसपर यदि अन्य कोई अपना पूर्णरूपेण अधिकार जमाले तो इससे माता को दुःख पहुँचना स्वाभाविक और उचित ही है। सास इसी बात को लेकर पतोहू से कहती है[3] :—

"घरवा के सब के तू चं।पर चढ़ाई देलू,
हमरो जामल अपनवलू वपकटनी।
आगि लागु जाहु रामा तोरा नइहरवा में,
कतना ले जार अब सहीं बपकटनी।"

सास का उद्गार कितना सच्चा और प्राकृतिक है। इस पर पतोहू सास का निरादर करती हुई कहती है कि[4] :—

"हमरा से बोलबू त ठीक नाहीं होइ अब,
धरि झोंटा हम निहुरइबों बेलउवा।

---

१. बनवारी गीत पृ० २।
२. बाबू ठाकुर प्रसाद गुप्त बुकसेलर, कचौड़ी गली, बनारस।
३. सास पतोहू का झगड़ा पृ० ५।
४. वही पृ० ४।

सामी जी से लाइ जोरि घर से निकालि देबि ।
चिरकुट लुगरी पेन्हाई रे बेलउवा ।"

पतोहू की यह उक्ति कितनी उद्दंडतापूर्ण है । इसी प्रकार ननद-भौजाई और स्त्री-पुरुष के कलह का बड़ा मार्मिक चित्रण इस पुस्तक में किया गया है ।

(ख) दूधनाथ प्रेस प्रकाशन

भोजपुरी भाषा की अनेक पुस्तकें दूधनाथ प्रेस, सलकिया, हवड़ा, कलकत्ता से पं० रामगोविन्द त्रिवेदी के प्रयत्न से प्रकाशित हुई हैं । ये पुस्तकें प्रायः सभी बड़ी हैं तथा किसी लम्बे कथानक को लेकर विस्तार पूर्वक लिखी गई हैं । काव्य के सभी शास्त्रीय लक्षण इनमें न मिलने पर भी इन्हें भोजपुरी कथाकाव्य कहना कुछ अनुचित न होगा । गुल्लूप्रसाद प्रकाशन, काशी की पुस्तिकाओं की अपेक्षा ये पुस्तकें अधिक गम्भीर और महत्वपूर्ण हैं । इन पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जाता है ।

लोरिकायन

इस पुस्तक के लेखक का नाम बाबू महादेव प्रसाद सिंह है जो बिहार प्रान्त के आरा जिले के 'नाचाप' नामक गांव के निवासी हैं । देहात में इनका प्रचलित नाम खीझूसिंह है जिसका उल्लेख इन्होंने स्वयं किया है[1] । इस ग्रंथ में सुप्रसिद्ध भोजपुरी वीर लोरिक या लोरकी की वीर गाथा का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है । इसमें १६२ पृष्ठ हैं । पुस्तक दो खण्डों में समाप्त हुई है । कवि ने पुस्तक के अन्त में पूरबी राग में छः गीत लिखे हैं जिनका विषय प्रस्तुत पुस्तक से कुछ भी संबंध नहीं रखता ।

बिहुला बिषहरी

समें बिहुला की कथा विस्तार के साथ लिखी गई है । पुस्तक में नव खण्ड हैं तथा यह १६१ पृष्ठों में समाप्त हुई है । बिहुला की कथा प्रसिद्ध होने के कारण इस कथा को लेकर अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं । गुल्लूप्रसाद, काशी के यहाँ से भी 'बिहुला गीत' के नाम से एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है । इस ग्रंथ के रचयिता का नाम ज्ञात नहीं है । पुस्तक सीधी सादी भाषा में लिखी गई है । कहीं कहीं मगही और मैथिली के भी क्रिया पद इसमें देखने को मिलते हैं ।

१. लोरिकायन पृ० ४ ।

इस ग्रंथ के लेखक का नाम महादेव प्रसाद सिंह है। लेखक ने ग्रंथ के प्रारम्भ में बिहुला की कथा संक्षेप में दी है जो अत्यन्त उपयोगी है। ग्रन्थ के बीच में कथानक को स्पष्ट करने के लिये गद्यात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं। पुस्तक के अन्तिम छः पृष्ठों में गद्य में कथा की समाप्ति की गई है।

बाला लखन्दर अर्थात् बिहुला विषधरी

इस पुस्तक के भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। पुस्तक आठ भागों में लिखी गई हैं और ६५ पृष्ठों में समाप्त की गई हैं। 'शोभा नयका बनजारा' नाम की एक दूसरी पुस्तक काशी से प्रकाशित हुई है जिसका उल्लेख हो चुका है। बीच बीच में कथानक को स्पष्ट करने के लिये गद्यात्मक टिप्पणियाँ भी दी गई हैं।

नयका बनजारा

इस पुस्तक के भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। यह पुस्तक सोलह भागों में लिखी गई है और २२६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। अन्तिम छब्बीस पृष्ठों में मोहन चन्द गूजर की कथा चार भागों में वर्णित है जो विजय मल के राग के तर्ज पर निबद्ध है। कवि ने विस्तार के साथ कुंवर विजयी की कथा गाई है। यह पुस्तक एक महाकाव्य है जिसमें लेखक ने वीर कुंवर विजयी के चरित्र का वर्णन किया है। भोजपुरी प्रदेश में इस वीर की कहानियाँ बड़ी प्रसिद्ध तथा प्रचलित हैं। अतः इस कहानी को लेकर अनेक छोटी मोटी पुस्तकें पद्य में निबद्ध हुई हैं जिनमें प्रस्तुत पुस्तक संभवतः सबसे बड़ी और सुन्दर है।

कुंवर बिजई

इसके भी लेखक महादेव प्रसाद सिंह हैं। यह पुस्तक बारह भागों में निबद्ध है और २१४ पृष्ठों में समाप्त हुई है। राजा ढोलन राजा नल के पुत्र थे। इनका विवाह पिंगलगढ़ के राजा बुध की लड़की मारू के साथ हुआ था। ढोलन या ढोला परदेस चला जाता है और चौदह वर्ष के बाद घर लौटता है। मारू उसके विरह में पागल हो जाती है। ढोलन अपना दूसरा विवाह रेवा नामक स्त्री से कर लेता है। मारू अपना वियोग-सन्देश ढोलन के पास भेजती है परन्तु ढोलन पर उसका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। हरेवा और परेवा दो अन्य स्त्रियाँ ढोलन पर मोहित हो जाती हैं। अन्त में ढोलन अपनी पहिली स्त्री मारू के साथ सुख से निवास करता है। पुस्तक के आदि में राजा ढोलन के पिता राजा नल का विस्तृत जीवन चरित दिया गया है। यह पुस्तक प्रधानतया गद्य में लिखी गई

राजा ढोलन का गीत

है परन्तु बीच बीच में सुन्दर पद्य भी मिलता है। गद्य की भाषा खड़ी बोली है परन्तु पद्य भोजपुरी में लिखे गये हैं।

इस पुस्तिका के लेखक श्री सरयू प्रसाद ततवा हैं। यह कलकत्ते से प्रकाशित हुई है। इस पुस्तिका का वर्ण्य विषय वृद्ध विवाह, कलियुग में अनाचार का प्रचार, एवं संभोग शृंगार के अनेक प्रसंग हैं। कवि ने वर्त्तमान समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया है। वृद्ध विवाह की एक झाँकी देखिये:—

शायरों का बिरहा

"कलियुग की नारी एक झँखेले बेचारी,
ओकर बुढ़वा से हो गइले बियाह।
ए रुपिया के लालच बाबा बर ना खोजेले दइया,
आठ वर्ष के मोर उमिरिया साठ बरिस के सइयाँ।
ए माता के कोखी हम तो जमली मुदइया,
ए दिन राति रोवत मोरा बितेला समइया।"

वृद्ध विवाह के पश्चात् अब बाल विवाह का वर्णन सुनिए और स्त्री की वेदना का अनुभव कीजिए:—

"सभका के देल सिव जोड़ जुगुत भतरा,
से हमरा के लरिका नदान।
ए लरिका भतार लेके सुतलों अगनवां,
ए जारो ए जारो रोवें हमरो समनवां।
पैसा दे मनाई नाहीं माने मोर कहनवां,
ए मात मतारी मोर रहे बेइमनवां।
ए कइसे वो दिन मोर कटि भगवनवां,
ए चढ़ली जवानी मोरी चुवे रस जोबनवां।"

इसी प्रकार इस सारी पुस्तक में सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों को लेकर सुन्दर चित्र खींचा गया है। इस पुस्तिका में इसलाम धर्म संबंधी अनेक अन्तर्कथाओं का समावेश किया गया है। इस पुस्तक में 'रज्जब' नामक कवि की रचना भी शामिल है।

१. प्रकाशक: हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, हरिसन रोड, कलकत्ता।
२. शायरों का बिरहा पृ० ८।
३. वही. पृ० १२।

(ख) गद्य

संसार के प्रायः सभी साहित्यों में गद्य का आविर्भाव पद्य के अनन्तर हुआ है। संस्कृत साहित्य को ही लीजिए। इसमें काव्य रचना का उदय उसी समय मे माना जाता है जब आदि कवि वाल्मीकि का शोक श्लोक के रूप में परिणत होकर स्खलित हुआ था। परन्तु गद्य की रचना संस्कृत साहित्य में स्वतन्त्र रूप से बहुत पीछे प्रारम्भ हुई है। हिन्दी साहित्य की भी यही दशा है। इसका प्रारम्भ पृथ्वीराज रासो की रचना से माना जाता है परन्तु अनेक शताब्दियों तक इसमें गद्य रचना का नितान्त अभाव दीखता है। ठीक यही दशा भोजपुरी साहित्य की भी है। लोक गीतों के रूप में भोजपुरी कविता तो प्रचुर मात्रा में पाई जाती है जिसके कुछ संग्रह प्रकाशित भी हो चुके हैं। परन्तु इसमें गद्य रचना का प्रायः अभाव-सा ही है। आजकल भोजपुरी भाषा के जो कवि हैं वे भी पद्य रूप में ही अपनी प्रतिभा का प्रसाद हमें दे रहे हैं। गद्यात्मक काव्य लिखने की ओर उनका ध्यान अभी आकृष्ट नहीं हुआ है। इस प्रकार भोजपुरी गद्य उसके पद्य की अपेक्षा अभी अविकसित दशा में पड़ा हुआ है तथा इसका परिमाण भी बहुत थोड़ा है[1]।

भोजपुरी गद्य में कोई प्राचीन साहित्यिक पुस्तक अभी तक देखने को नहीं मिली है। फिर भी भोजपुरी भाषा के बोलने वाले अपने दैनिक जीवन में लिखा पढ़ी के कामों में भोजपुरी गद्य को ही शताब्दियों से माध्यम मानते और व्यवहृत करते चले जा रहे हैं। बड़े बड़े राज्यों के कागजपत्र, सनद, दस्तावेज, चिट्ठी-पत्री, पंचायतनामा, व्यवसाय के बीजक, खजाना के बीजक आदि जितने मानव जीवन के व्यवहार की चीजे हैं वे सब भोजपुरी गद्य में सम्पादित हुई हैं।

भोजपुरी गद्य का विवरण प्रस्तुत करने के लिये हम इसके गद्य को साधारणतया तीन भागों में बाँट सकते हैं:—

१. प्राचीन कागज पत्रों में सुरक्षित गद्य।

२. आधुनिक पुस्तिकों में प्रयुक्त गद्य।

३. भोजपुरी लोक कथाओं में उपलब्ध गद्य।

भोजपुरी गद्य को कोई प्राचीन पुस्तक अभी तक देखने को नहीं मिली है। अतः इसके प्राचीन रूप के दर्शन राजघरानों, रईसों एव प्रतिष्ठित व्यक्तियों के यहाँ सुरक्षित कागज पत्रों में ही देखने को मिलता है।

प्राचीन कागज पत्रों में गद्य का रूप

भोजपुरी प्रदेश में जो सुलहनामे, दस्तावेज, बीजक आदि लिखे जाते थे वे प्रायः गद्य ही में होते थे। परन्तु इन कागजपत्रों का कोई संग्रह अभी तक प्रकाशित

१. दुर्गा शंकर सिंह—भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस। भूमिका पृ० ३२।

नहीं हुआ है जिससे इनका सम्यक् स्वरूप जाना जा सके । ये कागज आज भी राजे, रजवाड़ों की सन्दूकों में बेठन में बंधे पड़े हैं । हाँ, डाक्टर उदयनारायण तिवारी और बाबू दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह के उद्योग से इन दो चार कागजों का प्रकाशन अवश्य हुआ है।

नीचे एक दानपत्र की प्रतिलिपि दी जाती है जो सम्वत् १७३५ की है[1]। अर्थात् इसकी रचना आज से २७५ वर्ष पहले हुई थी । इस दानपत्र से प्राचीन भोजपुरी के स्वरूप को जाना जा सकता है[2]।

"गंगा जी के तीर वशिनप्रीति शोश्ती श्री चक्रनारायणत्यादि विविध विरुदावली विराजमान मानोन्त श्री महाराज कुमार बाबू कनकशीघ्रदेवानां शदा शमरविजैना पित्रिदत्त श्री बुधीराम पांडे के दिहल मौजे चतर शिवार के दिहल धापमारी नाम बुधीरामपुर-शललशकठ शपथचतुर शीवा अवछिनके दिहल शकलप श्री............... कुशहस्त दिहल शवत १७३५ शमै फाल्गुन बदी १ बार शुभवासरे मोजन मैं रवा । दशखत हरीनन्दन दाश"

यह दानपत्र अनेक दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण है परन्तु यहाँ हमारा उद्देश्य केवल भाषा से है। इस दानपत्र के अनुशीलन से स्पष्ट ही पता चल जाता है कि इसकी भाषा प्रचुर रूप में संस्कृत मिश्रित है। साथ ही इसमें समस्त पदों का भी बहुल प्रयोग किया गया है। 'विविध विरुदावली विराजमान मानोन्त' इस पद से हमारे कथन की पुष्टि पूर्णतया होती है। इसके संस्कृत गर्भित होने के कारण यह जान पड़ता है कि भोजपुरी प्रान्त पर काशी मंडल का प्रचुर प्रभाव पड़ा है। काशी सदा से संस्कृत विद्या का केन्द्र रहा है। अतः इन दानपत्रों में संस्कृत भाषा का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

उपर्युक्त उद्धरण में विभक्तियों के चिह्न और क्रियापदों से इसके भोजपुरी होने का प्रमाण मिलता है। भोजपुरी 'दिहल' (दिया) क्रिया-पद का प्रयोग इस दानपत्र में भिन्न भिन्न स्थानों पर चार बार किया गया है। मुगलों के समय में तथा अंग्रेजों के समय में भी फारसी तथा उर्दू के कचहरी की भाषा होने पर भी इस दानपत्र की भाषा शुद्ध संस्कृत मिश्रित भोजपुरी है। केवल एक ही 'दशखत' शब्द ऐसा है जो फारसी भाषा का है। इस पत्र में 'स' को 'श' लिखने की प्रवृत्ति जान पड़ती है। इसीलिये 'स्वस्ति' शब्द को 'शोश्ती' तथा सदासमर

१. सम्मेलन पत्रिका राष्ट्रभाषा अंक भाग ३५ संख्या १०-११ । श्रावन आश्विन २००५, पृ० ३१७

२. यह दानपत्र डा० उदयनारायण तिवारी के पास आज भी बहुत जीर्ण शीर्ण अवस्था में सुरक्षित है। उसे कीड़ों ने कई स्थान पर नष्ट भी कर दिया है जिससे उसके पढ़ने में बड़ी कठिनाई होती है।

विजैना' को 'शदा शमरविजैना' लिखा गया है। 'कुशहस्त' को कुशहश्त का रूप मिला है। आज भी देहात के लोग स तथा श के प्रयोग में विशेष अन्तर नहीं करते।

एक दूसरी सनद लीजिये जो सम्वत् १७६६ की है। यह सनद उदवन्त सिह की है जो बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत जगदीशपुर राज्य के बड़े प्रतापी पुरुष हो गये हैं। इनका बसाया हुआ आरा के पास एक बहुत बड़ा गांव है जो 'उदवन्त नगर' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं के प्रपौत्र बाबू कुंवर सिंह ने सन् १८५७ में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह किया था। यह सनद इस प्रकार है[1] :—

"स्वस्ति श्री रिपुराज देत्य नारायणत्यादि विवध वीरुदावली विराजमान मानोन्नति श्री महराज कुमार श्री बाबू ....जीउ देव देवानां सदासमर-विजयीनां के सुवंस पांडे ब्राह्मण साकिन प्रयाग बदस्तूर पाछिल पुरोहिताई रजन्हि कै दिहल इन्हका के रहल है ते ही बमोजिब हमहूं दिहल। जे प्रयाग जाय से इन्हहीं माने। ता० २६ माह रवि बिसाख सन् ११३७ साल मुकाम जगदीशपुर प्रगने बिहिया सम्वत् १७६६ अगहन बदी अमावस गोत्र सबनुक मूल उज्जैन जाति पवार।"

उपर्युक्त उद्धरण में प्रयाग निवासी सुवंश पांडेय को पुरोहिताई प्रदान करने का वर्णन है। इस सनद की भाषा भी पूर्व दानपत्र की ही भाँति संस्कृत-बहुला है। समस्त पदावली का प्रयोग अधिक किया गया है। 'विविध वीरुदावली विराजमान मानोन्नति', 'देवदेवानां सदा समर विजयीनां' इत्यादि पद इसी बात की सूचना देते हैं। इस सनद की पदावली को पढ़कर गुप्त शिलालेखों का स्मरण हो जाता है जो अपनी समासबहुला संस्कृत भाषा के लिये प्रसिद्ध हैं।

इस सनद में 'दिहल' और 'रहल' भूतकालिक क्रिया पदों की उपलब्धि होती है जो २०० वर्षों के बाद भी आज इसी रूप में पाये जाते हैं। संबंध वाचक विशेषण 'जे' 'से' तथा विभक्तियों के चिह्न 'कै' या 'के' पाया जाता है। सम्बन्ध कारक विभक्ति का चिह्न आजकल 'के' पाया जाता है। परन्तु आज से दो शताब्दि पूर्व इसका रूप 'कै' था जैसा कि इस सनद में मिलता है। इसमें केवल दो शब्द फारसी भाषा के आये हैं जिनमें पहला 'साकिन' है और दूसरा 'बमोजिब' है। ये शब्द भी ऐसे हैं जो भोजपुरी प्रदेश में आम जनता द्वारा व्यवहार में लाये जाते हैं।

तीसरा कागज सम्वत् १८२३ का है। यह बैरिया गांव में—जो बलिया जिले में है मिला है—इस प्रकार है[2] :—

"श्री परमेश्वर प्रमेशर प्रम भटारके त्याधी राजा वलीवीक्रमा शाके शाली-वाहन गत १६८८ शंभलपुर पाती शाही श्री शाही गवहरजीन तखत दोली जलुशभोगरन

१. दुर्गा शंकर प्रसाद सिंह—लोकगीत पृ० ३३ भूमिका भाग।

२. डा० उदय नारायण तिवारी सम्मेलन पत्रिका भाग ३५, सं० १०–११, पृ० ३१८।

पाचत्यश मंडलै जमुदीपै भारतखण्डे वीहारनगरे त्यश अतरगोत शुबे अजीमाबाद नवाब धीरज नारयन वो शीताव राए शहर हाजीपुर शराय पटन अमल फिरंग करनैल शाहब देवदेवानाम शादा शमर वीजइ नाम राजा श्री विक्रमादित्य की लौ......"

इस अवतरण में भी संस्कृत शब्दों की बहुलता है। इसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग तो हुआ है परन्तु वह विकृत रूप में ही है जैसे परमेश्वर को 'प्रमेशर' और 'परम' को प्रम लिखा गया है। संस्कृत का पुट इसमें इतना अधिक हैं कि संज्ञा शब्दों में भी संस्कृत के विभक्ति चिह्न लगे हैं, जैसे 'नगर में' न लिखकर नगरे लिखा है।

भाषण

उपर्युक्त विवरण के अतिरिक्त कुछ भाषणों में भी भोजपुरी साहित्य के सम्बन्ध में सामग्री उपलब्ध होती है। ये भाषण आधुनिक समय के ही हैं। इस सम्बन्ध में हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत के प्रोफेसर पं० बलदेव उपाध्याय एम० ए० के दो भाषणों का उल्लेख आवश्यक है। इनमें से पहला भाषण हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया के प्रथम अधिवेशन के स्वागत समिति के अध्यक्ष के पद से सन् १९२९ ई० में दिया गया था[1]। उपाध्याय जी का यह भाषण अनेक दृष्टियों से उपयोगी है। इसमें भोजपुरी भाषा और साहित्य के ऊपर संक्षिप्त रूप में बड़ा ही सुन्दर प्रकाश डाला गया है। विद्वान् लेखक ने कुछ भोजपुरी बिरहों को तथा आल्हा के एक प्रसंग-सोना का शृंगार—को उदाहरण रूप से इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है। प्रारम्भ में भोजपुरी भाषा का साधारण परिचय तथा संक्षिप्त व्याकरण भी दिया गया है[2]। दूसरा भाषण बिहार के छपरा जिला अन्तर्गत सीवान नामक स्थान में भोजपुरी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (सन् १९४६) में सभापति के पद से दिया गया है[3]। इस भाषण में उपाध्याय जी ने भोजपुरी भाषा और साहित्य का विवरण प्रस्तुत करते हुए भोजपुरी की उन्नति के लिये कुछ नये सुझाव भी उपस्थित किये हैं। इसमें भोजपुरी कविता के अनेक उदाहरण दिये गये हैं। यद्यपि यह भाषण अल्पकाय है परन्तु इसमें बहुत कुछ ज्ञातव्य बातें भरी पड़ी हैं।

आधुनिक पुस्तिकाओं में गद्य

१. हिन्दी प्रचारिणी सभा, बलिया (१९२९) द्वारा प्रकाशित।
२. वही पृ० १३–२५।
३. प्रकाशक—स्वागत मन्त्री, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, सीवान १९४६।

राहुल सांकृत्यायन

राहुल जी का संक्षिप्त परिचय 'नाटकों' के प्रसंग में दिया जायगा। यहाँ पर उनकी आलोचना एक गद्य लेखक के रूप में की जायगी। राहुल जी ने भोजपुरी साहित्य सम्मेलन, गोपालगंज, छपरा में अध्यक्ष पद से जो भाषण सन् १६४७ में दिया था वह भोजपुरी गद्य का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस भाषण में उन्होंने भोजपुरी की गतिविधि की पूर्णरूप से समालोचना की है। राहुल जी का स्वभाव जितना सरल है उनकी भाषा भी उतनी ही सीधी और सादी है। उनकी भोजपुरी ठेठ भोजपुरी होती है। देहातियों के द्वारा दैनिक जीवन में जिस भोजपुरी का प्रयोग होता है राहुलजी ने उसी का प्रयोग अपने भाषण में किया है। उदाहरण के लिये यह अवतरण देखिये[1] :—

"हम ई नइखी कहत कि हिनुई ना पढ़ावल जाव। जेकरा महटर, ओकील, डाकदर, इंजियर चाहे बड़का अमला फइला बने के होखे ओकरा हिनुई पढ़े के चाहीं। बड़का बिदा खातिर हिनुई पढ़ल जरूरी बा। बाकी सब लोग त ई कुलि दरजा खातिर तइयार नानु कइल जाला.........जेकरा ओतना समरथ होई से ओतना पढ़ी। लेकिन देसवा के समूचा लोग घर अऊर गांव के एक एक बेकत ओतना ना पढ़ सकेला।"

ऊपर के उद्धरण की मीमांसा करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि राहुल जी ने ठेठ भोजपुरी का प्रयोग अपने भाषण में किया है और इसमें उन्होंने पूर्ण सफलता प्राप्त की है। ऊपर के गद्यांश में हिन्दी को हिनुई, मास्टर को 'महटर' डाक्टर को 'डाकदर' लिखा गया है। देहाती जनता इसी रूप में इन शब्दों का अभी भी प्रयोग करती है। अतः राहुल जी की भोजपुरी जनता की सर्वमान्य भोजपुरी है। इस अवतरण में कठिन शब्दों का नितान्त अभाव है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये[2] :—

"कतना लोग इ कहला से बिदकत बा। होने पछिमहा लोग कहत बा, कि दिली से देवरिया ले हमनी के हेतना बड़ी चुके राज छोट हो जाई। ऊहे बात एने बिहारो में कहल जात बा। लोग समझत बा कि ईहो एगो जिमदारी हवे। जो इ छोट भईल नेतागिरिअ छोट हो जाई। बाकी इ मन के भरमना ह।"

इस अवतरण में भी राहुल जी की ठेठ भोजपुरी भाषा का नमूना हमें देखने को मिलता है। 'बिदकना' तथा 'मन के भरमना' आदि भोजपुरी मुहावरों,

१. (भोजपुरी) पत्रिका वर्ष १ पृ० २०।
२. वही. पृ० २६।

का बड़ा ही सुन्दर प्रयोग हुआ है। 'नेतागिरिओ छोट हो जाई' इस पद में कितना व्यंग्य भरा पड़ा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राहुल जी की भाषा बड़ी प्रांजल, मुहावरेदार और मंजी हुई है।

अवध बिहारी सुमन

श्री अवध बिहारी 'सुमन' ने 'जेहल क सनदि' नामक कहानियों की एक सुन्दर पुस्तक लिखी है। जहाँ तक हमें ज्ञात है भोजपुरी में मौलिक कहानियों की यह सर्व प्रथम पुस्तक है। इसमें दस कहानियाँ हैं जिनमें समाज के विभिन्न पहलुओं का दिग्दर्शन बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। डा० उदय नारायण तिवारी इस पुस्तक के विषय में लिखते हैं कि "इन कहानियों में अपने जनपद की आत्मा भली भाँति अभिव्यक्त हुई है। सुमन जी के भोजपुरी गल्पों का यह संकलन निःसन्देह रुचिकर है। भोजपुरी जनता की ठसक, रोब दाब, राग द्वेष आदि को यह पहली बार अपनी वाणी का उचित परिधान मिला है"[1]। सुमन जी ने मलिकार, आतमघात, मवनी बाबा, कतवरू दादा, किसान भगवान्, चउर क पूजा, मनकी, दफा ३०२, जेहल क सनदि और कवि कयलास इन शीर्षकों से कुल दस कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में भोजपुरी समाज के विभिन्न अंगों का चित्रण किया गया है। 'मलिकार' नामक कहानी में तिलक की दूषित प्रथा का उल्लेख किया है। लड़की का पिता अपनी पुत्र के लिये प्रचुर धन तिलक में देने में असमर्थ है। वह इसी चिन्ता में मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

कहानी

'आतमघात' नामक कहानी में दुनियाँ के झंझटों से परेशान होकर बलराम नामक युवक अपनी आत्महत्या कर लेता है। आजकल के तथाकथित साधू, महात्मा कितने चरित्र भ्रष्ट हो गये हैं इसका चित्र 'मवनी बाबा' नामक कहानी में पाया जाता है। 'कतवारू दादा' में वृद्ध विवाह का नंगा चित्रण किया गया है। इसी प्रकार 'किसान भगवान्' में किसान की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। सुमन जी भोजपुरी समाज के विभिन्न दृश्यों को चित्रित करने में पूर्णतया सफल हुए हैं, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है।

'सुमन' की भाषा बड़ी सरल और सीधी सादी है। आपने अपनी कहानी की भाषा इतनी सरल रखी है कि अर्थ के समझने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। 'आतमघात' का यह अवतरणदे खिये:—

१. 'जेहल क सनद'। प्रकाशक अजित कुमार मित्र नया बिहार प्रेस लिमिटेड, कदम कुआं, पटना।

"जमुना घाट पर फूस का पलानी में बइठल बलराम आपन दुरदसा आ दुनियाँ क हाल देखि के झंखत रहलन। रहि रहि के उनका मन में उठे कि गरीब भइला ले बढ़ि के दूसर कवनो भारी पाप नइखे। बलिराम समाज का एह पाप क फल खुद भोगत रहलन। "आगा नाथ ना पाछा पगहा" वाली दसा भइलि चाहति रहे। चचेरा भाई गरीब जानि के उनके फरका कइ दिहले रहलन। घर में उनकर महतारी, मेहरारु, त आऊ तीन बेकति के पूंजी रहे। डेढ़ बिगहा खेत हीसा मिलल। ऊहो दुई बरिस का खाइल पोयल आ पढ़े का खेवा खरचा में रेहन धराई गइल।[1]"

उपर्युक्त उद्धरण में सीधी, सरल भाषा का प्रयोग पाया जाता है। इस कहानी का वर्ण्य विषय जितना सरल है, भाषा भी उतनी ही सीधी है। कठिन शब्दों को कहीं भी स्थान नहीं दिया गया है।

सुमन जी की कहानियों में भोजपुरी कहावतों का प्रयोग प्रचुर परिमाण में हुआ है। आपके प्रत्येक वाक्य में कोई न कोई कहावत पाई जाती है जिससे कथानक अत्यन्त रोचक और भावपूर्ण हो गया है। कुछ उदाहरण लीजिये:—

"अब्बार पर उनवास बयारि। विपति के झोंका एक ओर से ना आवे। बेल पर क मारल बबूर तर। एकही बेर माता क पूजा आ बहुरिया क नेवत। अनकर आटा अनकर घीव, साबस साबस बाबाजी। जवन रोगिया चाहे तवन बयदा बतावे[2]।"

इन उपर्युक्त मुहावरों का प्रयोग स्थान स्थान पर बड़ी सुन्दर रीति से हुआ है।

इनकी भाषा बड़ी मुहावरेदार है। भोजपुरी मुहावरों का आपने बड़ी सफाई से प्रयोग किया है जिससे शैली में जान आ गई है। आप की भाषा में पद पद पर मुहावरों की भरमार है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं[3]:—

"जिनगी से हाथ धोये के परेला। जिनिगी के नाई चकोह में परलि बा। केहू आंखि उठाइ के तिकवे वाला ना रहे। भोकास पारि के रोवे लगलन। एह घरी एक दम हाथ खाली बा और बुधि माटी होगइल।"

भोजपुरी लोककथाओं में गद्य

लोक कथाओं में भी भोजपुरी गद्य का स्वरूप देखने को मिलता है। ये लोक कथायें अभी तक प्रकाशित नहीं हुई हैं अतः हम उनकी भाषा और शैली

---

१. जेहलि क सनदि पृ० १२।

२. वही. पृ० १२, २७।

३. जेहल क सनदि पृ० १, ४०।

की विशेष विवेचना करने में असमर्थ हैं। प्रस्तुत लेखक ने कुछ कहानियों का संग्रह किया है उन्हीं के आधार पर यहाँ संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।

भोजपुरी लोक कथाओं का वर्ण्य विषय भोजपुरी समाज के जीवन से संबंध रखता है। इनमें से कुछ कहानियाँ मनोरंजक, कुछ उपदेशात्मक और कुछ धार्मिक एवं पौराणिक हैं। मनोरंजन वाली कहानियाँ परिमाण में छोटी हैं। ये प्रधानतया बालकों के विनोदार्थ कही जाती हैं। ढेला और पत्ती की कहानी ऐसी ही है[१]। दूसरी प्रकार की कहानियाँ वे हैं जिनमें कोई न कोई उपदेश दिया हुआ रहता है[२]। मानिक चन्दर की कथा ऐसी ही है जिसमें भाग्य के उलट फेर का सुन्दर वर्णन हुआ है।[३] इसमें जीवन की अस्थिरता का उपदेश दिया गया है। उदयभानु की कथा में हमें समाज का चित्रण उपलब्ध होता है।[४] इसी प्रकार राजाओं की कहानियों में पौराणिक कथाओं का सा आनन्द आता है।

इन लोक कथाओं की भाषा बड़ी सीधी-सादी एवं सरल है। जैसा इसका वर्ण्य विषय है उसी के अनुसार भाषा का प्रयोग किया गया है। मानिक चन्दर की यह कथा सुनिये[५]।

"कुसुमपुर में एगो राजा राज करत रहले। उनुकरा एगो लड़की रहे जेकर नाम मोहिनी रहे। राजा के घर में धन, दौलत के ठेकान ना रहे। उनुकरा इहे एगो बेटी रहे एसे ओकर बड़ा दुलार करसु। इ लड़की बड़ा सुन्दर रहे अवरु एकरा गोराई से अन्हार घर में भी अंजोर हो जात रहे। राजा अपना इ लड़की के बियाह बड़ा साध अवरु धूम धाम से मानिकचन्दर से कई दिहलन।"

उपर्युक्त कथा की भाषा कितनी सरल है। पूरे उद्धरण में एक भी कठिन शब्द नहीं आया है। अतः कथा का प्रवाह अविरल गति से चलता जा रहा है। पढ़ते ही सारी कथा मालूम हो जाती है।

इन कथाओं में कहावतों का प्रयोग बड़ी प्रचुरता से हुआ है इनके प्रयोग से भाषा में बल आ गया है और कथा का भाव अधिक स्पष्ट हो गया है। यहाँ कुछ उदाहरण दिये जाते हैं :—

१. लेखक की निजी संग्रह, पृ० २६।
२. वही. पृ० २०।
३. वही. पृ० २७।
४. लेखक का निजी संग्रह, पृ० १।
५. लेखक का निजी संग्रह, प० १०।

"बेटा अबरु घोड़ा घर में ना बान्हाला।
भलाई अबरु पूछि पूछि। विपत्ति में केहू साथ ना देला।
जिन बिअइली तिन ललइली, बेटा ले परोसिनी चइभली।
एक मंग मुड़नी का रे पटिया बन्हवनी।"

इन कथाओं में मुहावरों का भी प्रयोग पाया जाता है। कोई ऐसा परिच्छेद नहीं जिसमें एक, दो मुहावरे न मिलें। ये भोजपुरी जीवन से ही संबंध रखने वाले हैं और कथा को रोचक बनाने में सहायक होते हैं। मुहावरेदार भाषा का यह नमूना कितना सुन्दर है।

"हामार लाल। अभी साझि के बिहान ना भइल, अभी तोहार पियरी मइल ना भइल, अबरु तू जाए के कहत बाड़।........लछटकही ओकर जाति ना लिहलसि। लछटकही दिन रात हाड़ तोड़ि के घर के काम करे।.........उ ए गो आदमी से मिलल रहे।......उ मन मारिके घरे लौटि आवसु। न न पहरु बोले लागल।"

इस प्रकार इस उद्धरण में भोजपुरी मुहावरों का बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है। इनके प्रयोग से अर्थ में विशेषता आ गई है जो अन्यथा संभव नहीं।

लोक कथाओं का गद्य बड़ा ही प्रांजल है। इन कथाओं की मुहावरेदार भाषा में पहाड़ी नदी का सा प्रवाह है जो अत्यन्त निर्मल एवं स्वच्छ होता है। इस कथन की पुष्टि में यह उद्धरण लीजिए[1] :—

"रानी इ सोचिके मन मारिके उदास बइठलि रहली। तब संकर सुग्गा रानी से पूछलसि कि ए रानी! आजु का बात ह कि तू उदास बइठल बाड़ू। रानी आपन सब दुःख कहि सुनवली। सुग्गा कहलसि कि रानी, कह त हम उड़त उड़त राजा के पास जाइ के तोहार दुःख कहि सुनाई। रानी कहली कि ए हमार संकर सुग्गा, भलाई अबरू पूछि पूछि।"

(ग) नाटक

देवाक्षर चरित

इस नाटक के रचयिता पं० रविदत्त शुक्ल हैं जो उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी थे। रविदत्त जी की यह कृति संभवतः भोजपुरी नाटकों में सर्व प्रथम रचना है। इस नाटक की रचना सन् १८८४ ई० में हुई थी। यह हास्य रस प्रधान नाटक है[2]।

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० २८

२. आर्य देशोपकारिणी सभा, बलिया की अनुमति और सहायता द्वारा प्रकाशित तथा लाइट प्रेस काशी (सन् १८८४ ई०) में गोपीनाथ पाठक द्वारा मुद्रित।

डाक्टर सर ग्रियर्सन ने इस पुस्तक का संकेतमात्र अपनी लिंग्वस्टिक सर्वे आफ इंडिया नामक पुस्तक में किया है। परन्तु उनके उल्लेख से ज्ञात होता है कि संभवतः उन्हें यह पुस्तक देखने को नहीं मिली थी। इसकी जीर्ण शीर्ण प्रति नागरी प्रचारिणी सभा, काशी के 'आर्य भाषा पुस्तकालय' में संग्रहीत है उसी के आधार पर इस पुस्तक का परिचय उपस्थित किया जाता है।

रचना का अवसर

सन् १८८४ ई० में बलिया में डी० टी० राबर्ट्स नामक बड़े ही मिलनसार और जनप्रिय कलक्टर बलिया में आये थे जिन्हें भारतीय संस्कृति से बड़ा प्रेम था। इनके नाम से बलिया में एक पुस्तकालय आज भी विद्यमान है जो 'राबर्ट्स लाइब्रेरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इन कलक्टर साहब के प्रोत्साहन से बलिया में प्रति वर्ष रामलीला हुआ करती थी तथा नाटक खेले जाते थे। सन् १८८४ ई० में बाबू चतुर्भुज लाल डिपुटी कलक्टर के आग्रह तथा प्रेरणा से पं० रविदत्त जी ने इस नाटक को इसी राममलीला के अवसर पर खेलने के लिये बनाया। इस नाटक से जनता का मनोरंजन भी हो और कुछ शिक्षा भी मिले इन दोनों बातों का ध्यान इस रचना में रखा गया है।

बलिया उन्हीं दिनों में नया जिला बना हुआ था। इसके पहिले यह गाजीपुर जिले का एक भाग था। अतः अनता में काफी उत्साह था। इस नाटक को खेलने के लिये रंगमंच का प्रबन्ध करने के लिये दूर दूर से लोग बुलाये गये थे। जब यह नाटक रामलीला के अवसर पर खेला गया तब इसे देखने के लिये शहर के गण्य मान्य रइसों और प्रतिष्ठित जनता के अतिरिक्त स्वयम् भोजपुरी संस्कृति के प्रेमी राबर्ट्स साहब उपस्थित थे। यह नाटक बड़ी सफलता से खेला गया था जिसकी प्रशंसा सभी लोगों ने मुक्त कंठ से की थी[1]।

नाटक का नामकरण

इस नाटक का नाम 'देवाक्षर चरित' है जो संस्कृत के दो अक्षर से मिलकर बना हुआ है। इसमें पहला शब्द देव है जिसका अर्थ देवता है और दूसरा 'अक्षर' है जिसका तात्पर्य लिपि से है। अतः इसका पूर्ण अर्थ देवताओं की लिपि या 'देव नागरी' हुआ। इसी 'देवनागरी' लिपि का जीवन चरित इस नाटक में वर्णित है। किस प्रकार देवनागरी लिपि संस्कृत लिपि से उत्पन्न हुई है, इसका महत्व क्या है और आजकल इसकी अपेक्षा किस प्रकार हो रही है, इन्हीं विषयों का प्रतिपादन बड़ी सुन्दर रीति से इस नाटक में हुआ है। देवाक्षर जो इस नाटक का नेता है अपना परिचय देते हुए कहता है:—

---

१. देवाक्षर चरित भूमिका भाग

"संस्कृत देवन सुग्रन हम, देवाक्षर मम नाम।
बंग देश आदिक रमत, आइ गए एहि ठाम।
श्रवण सुन्यो या मगर को, हाकिम परम उदार।
जो पहुँचावहु तासुढ़िग, मनिहों बड़ उपकार।"

इस नाटक की रचना का प्रधान उद्देश्य नागरी लिपि के महत्व का प्रतिपादन करना तथा उसका प्रचार करना है। जिस समय यह नाटक लिखा गया था उस समय कचहरियों में उर्दू भाषा तथा फ़ारसी लिपि का बोलबाला था। हिन्दी भाषा एवं नागरी लिपि घृणा की दृष्टि से देखी जाती थी। अतः कचहरियों में नागरी को भी स्थान देने की अपील इस ग्रन्थ में की गई है। जनता में शिक्षा का प्रचार तभी होगा जब उनकी लिपि में शिक्षा दी जाय। लेखक कहता है कि :—

रचना का उद्देश्य

"इब्तदाई तालीम कभी कामयाब नहीं हो सकती जब तक नागरी अक्षर कचहरियों में न जारी किये जायँ।"[1]

फ़ारसी लिपि से क्या नुकसान है इसकी ओर संकेत करता हुआ नाटककार अपने एक पात्र के मुख से कहलवाता है कि :—

"दोहाई साहब के, सरकार हमनी के हाकिम और माँ बाप के बराबर हई। जो सरकार किहाँ से निआव ना होई तो उजड़ जाब। देखीं जवन ई फारसी में खाना पूरी होत बाय एमे बड़ा उपद्रव मची। हमरा सीर के सरहमेयून लिखल गइल बा।"[2]

इस प्रकार इस पुस्तक की रचना का उद्देश्य फ़ारसी लिपि की बुराइयों को दिखलाकर नागरी लिपि को कचहरी में स्थान दिलाना है।

यह नाटक छः अंकों में लिखा गया है जिसमें कुल ४७ पृष्ठ हैं। यह पुस्तक प्रहसन है परन्तु जन-मनोरंजन के साथ ही इसमें तत्कालीन सरकारी विभागों में की जाने वाली बुराइयों को दिखला कर जनता को शिक्षित बनाना भी है। जब यह प्रहसन लिखा गया था उस समय बलिया जिले में सर्वे का काम हो रहा था। सहकारी कर्मचारी मनमाना घूस लेते थे तथा एक आदमी की जमीन दूसरे के नाम लिख देते थे। इस नाटक के पूर्वार्द्ध में इसी घूसखोरी तथा सरकारी कर्मचारियों की बेईमानी का वर्णन है। एक सर्वेयर साहब सस्ते दाम पर अन्न न लाने के कारण एक तहसीलदार को नौकरी से अलग कर देते हैं। पुस्तक के उत्तरार्ध में देवनागरी को कचहरियों में स्थान देने की अपील की गई है।[3]

वर्ण्य विषय

यह नाटक खड़ी बोली में लिखा गया है परन्तु इसके तीसरे और चौथे दृश्य या अंक भोजपुरी में निबद्ध हैं। इसकी भाषा सरल और सुबोध है। भोजपुरी के शब्दों का प्रयोग इसमें प्रचुर मात्रा में किया गया है। बीच-बीच में भोजपुरी कविताओं का प्रयोग अँगूठी में नगीना का काम कर रहा है। एक देहाती की यह उक्ति सुनिये[4] :—

शैली एवं उदाहरण

१. देवाक्षर चरित पृ० ४। २. वही अंक ४, पृ० २१-२२।
३. वही. अंक ५, ६। ४. देवाक्षर चरित अंक ३, पृ० १९।

"रउवां रुपया वाला बाटीं अदालत लड़ब,
पे हमन पांच के तो एक जून पेट भर खहू
के ठिकाना नाहीं बाय, अदालत कहाँ से लड़ब।
पहिले 'एक कवर भीतर, तब देवता और पित्तर'
एक ओर भगवानों के कोप हमरन पर बा कि
कई साल से सूखे पड़ल जात बाय, उ कहावत
ठीक जान परेला कि "निबलन के देवो सतावे ले।"

उपर्युक्त उद्धरण में दो भोजपुरी कहावतों का प्रयोग बड़ा ही सटीक और समुचित हुआ है। एक दूसरा उदाहरण लीजिये[1] :—

"घबड़ो मत, मुनली है कि आजकल
एह जिला के हाकिम बड़ा दयावान और
इन्साफवर आइल बार्टे, रइयत के गोहार
सुनते निआब कै के 'दूध के दूध और पानी
के पानी' कय देलें, से हमतो आजु हुअई
के सपर के चलल बाटी।"

ऊपर के उदाहरण में ठेठ भोजपुरी के शब्दों के अतिरिक्त दो उर्दू के भी शब्द आये हैं परन्तु भोजपुरी ने उन्हें पचाकर आत्मसात् कर लिया है।

सर्वे के समय सहकारी नौकरों के अत्याचारों से परेशान होकर एक देहाती कहता है कि[2] :—

"का कहीं बाबू, आजकल हमरन के मौत हौ।
जब से एह जिलवा में बनोवस्त जारी भइल
है तब से हमन पांच अइसन जहुआइल
बाटीं कि कौनो अकिले काम नाहीं करत।"

भोजपुरी प्रदेश के लोग किस प्रकार अपना सब कुछ बेच कर भी मुकदमा लड़ने के लिये तैयार रहते हैं इसका वर्णन नीचे के अवतरण में देखिये[3] :—

"हाइकोरट, विलायत, जहाँ तक होई घर,
दुआर बेचिके, सतुआ नून खाइके, मुकदमा लड़ल जाई।"

कचहरियों में किस प्रकार घूस का बाज़ार गर्म है, उसकी ओर संकेत करता हुआ नाटककार लिखता है कि[4] :—

"कहो बुद्धन सिंह, हमरा के ना चीन्हत बाट न।
हम उहै हई जेन तोहरा के सोमार के दिन कोठिया
पर एक रुपया इनाम देहले रहलीं। भाई बिरादर
होय के रउवां के ऐसन बेमुरौवती ना चाही।
खातिर जमा रखी, हमार काम सिद्ध होय जाय तो फिर
रौआं के खुस कर देव।"

ऊपर लिखे अवतरणों से स्पष्ट प्रतीत होता है कि लेखक की शैली सीधी-सादी, सरल, सुबोध है। जहाँ तहाँ मुहावरों तथा कहावतों का सुन्दर प्रयोग

---

१. देवाक्षर चरित पृ० १६। २. वही० अंक ४, पृ० २१। ३. वही. पृ० २०। ४. वही. पृ० १६-१७।

हुआ है। उर्दू और अंग्रेजी भाषा के शब्द भी व्यवहृत हैं परन्तु उनके भोजपुरी में प्रचलित रूप का ही प्रयोग किया गया है।

अनेक दृष्टियों से इस अल्पकाय नाटक का बड़ा महत्व है। पहले तो यह भोजपुरी भाषा का सर्वप्रथम नाटक है, दूसरे इसमें तत्कालीन भोजपुरी समाज का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। परन्तु इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि आज से ७० वर्ष पूर्व इस नाटक के रचयिता ने नागरी लिपि का कचहरियों में प्रयोग तथा इसके प्रचार का प्रयास किया था।

नाटक का महत्व

२. भिखारी ठाकुर

भोजपुरी के नाटककारों में भिखारी ठाकुर का नाम प्रमुख है। वे कवि भी हैं तथा नाटककार भी। परन्तु आपकी प्रतिभा ने नाटक के क्षेत्र में अधिक विकास को प्राप्त किया है। आधुनिक कविगणों के परिचय के प्रसंग में आपके जीवनचरित्र एवं कविता का परिचय दिया जा चुका है। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है, आपका 'बिदेसिया नाटक' भोजपुरी समाज में अत्यन्त लोकप्रिय और प्रसिद्ध नाटक है। यह नाटक जनता को इतना पसन्द आया कि इसकी नकल पर अनेक बिदेसिया नाटक लिखे गये। इस प्रकार इनके बिदेसिया नाटक को आधुनिक बिदेसिया नाटकों का मूल स्रोत समझना चाहिए। भिखारी की नाटकीय भाषा बड़ी चुस्त एवं चलती है जिसमें भोजपुरी के ठेठ शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से किया गया है। आपकी भाषा में हास्य रस का पुट पाया जाता है। साथ ही बिरह के प्रसंग में करुण रस की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। भिखारी ठाकुर नाटकों के लेखक ही नहीं बल्कि एक सफल अभिनेता भी हैं। आप अपनी सफल लेखनी और सुन्दर नाट्यकला के द्वारा दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर लेते हैं।

३. राहुल नाटकावली

महापंडित, त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन का नाम कौन नहीं जानता। आप उत्तर प्रदेश के आजमगढ़ जिले के निवासी हैं। आपका जीवन बड़ा रहस्यमय है। पहले आप महन्त दामोदरदास के नाम से प्रसिद्ध थे परन्तु अब बौद्ध धर्म में दीक्षित हो जाने पर राहुल सांकृत्यायन के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप पाली भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् हैं। बौद्ध धर्म तथा दर्शन पर आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आप प्रतिभावान् पुरुष हैं। आपकी लेखनी अविरल गति से विभिन्न विषयों विज्ञान, धर्म, दर्शन, इतिहास, यात्रा, कहानी, नाटक तथा पुरातत्व आदि पर चला करती है और फलस्वरूप आपने पचासों ग्रन्थों की रचना की है। आप बम्बई में होने वाले साहित्य-सम्मेलन के सभापति भी रह चुके हैं।

भोजपुरी भाषा से आपको विशेष प्रेम है। आपकी मातृभाषा भोजपुरी ही है और आपस की बातचीत में इसका प्रयोग करना आप गौरव समझते हैं। आप भोजपुरी साहित्य सम्मेलन छपरा, बिहार के सभापति रह चुके हैं। आपने भोजपुरी में आठ नाटकों की रचना की है, जिनके नाम हैं :—१. नइकी दुनियाँ, २. जुनमुन नेता,

३. मेहरारुन के दुरदसा, ४. जोंक, ५. ई हमार लड़ाई, ६. देस रच्छक, ७. जपनिया राछछ, ८. जरमनवा के हार निहचय।

जैसा कि इस ग्रन्थ के नाम से विदित होता है इसमें वर्त्तमानकाल में जो नया संसार दिखाई पड़ रहा है उसी का उल्लेख है। राहुल जी ने इस नाटक में भोजपुरी समाज का अच्छा चित्रण किया है। किस प्रकार बूढ़ी सास बधू को गाली देती है और तंग करती है इसका वर्णन बड़ा सुन्दर हुआ है। समय के परिवर्तन के साथ ही परिस्थिति में कितना परिवर्तन हो जाता है इसकी भी झाँकी हमें इसमें देखने को मिलती है। पुराने समय में अन्न-वस्त्र का कितना कष्ट था और स्वराज्य हो जाने पर (यह नाटक भारत के स्वतंत्र होने के पहले लिखा गया था) कितना सुख होगा इसका वर्णन करते हुए नाटक का एक पात्र बटुक कहता है कि :[२]—"मुदा हमरा सुराज में भुइली में एको घर गरीब ना रहे पाई। केहू क लइका भूखा नंगा न रहे पइहें। केहू मसनद पर बैठल वैठल घिउ मलीदा खा खा मोटाके भइसा न होये पाई, आ ना केहू काम करत करत सिटुकि के लकड़ी होवे पाई।" लेखक ने देहातों में बिजली, सड़क, नहर, खेती के उत्तम साधनों के होने से गाँवों की सुख-समृद्धि का जो वर्णन किया है वह सुन्दर है। पुराने गांव का नाम बदल कर 'लेनिनपुर' रखना तथा ऊँच नीच सबको साथी, कामरेड कहकर पुकारने से ज्ञात होता है कि लेखक साम्यवाद का प्रचारक है। इस नाटक की भाषा ठेठ तथा मुहावरेदार भोजपुरी है। भोजपुरी कहावतों का प्रयोग बड़ा सुन्दर हुआ है।

नइकी दुनिया[१]

इस नाटक के भी लेखक राहुलजी हैं। जैसा कि इस पुस्तक के शीर्षक से ज्ञात होता है इसमें स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन है। भोजपुरी समाज में स्त्रियों की जैसी दशा है उसका सजीव चित्रण राहुलजी ने इस नाटक में किया है। लेखक ने साम्यवादी दृष्टिकोण से स्त्री एवं पुरुषों के समान अधिकार पर विचार किया है। युग युग से पुरुष जाति ने स्त्रियों पर कितना भयंकर अत्याचार कर उन्हें घर में बन्दी बना रखा है, उन्हें अधिकार से वंचित किया है, इसका सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। पुत्र-जन्म के अवसर पर आनन्द मनाया जाता है परन्तु बेटी का जन्म शोक का कारण होता है। जब दोनों एक ही माता के उदर से पैदा होते हैं तो दोनों में यह भेद क्यों ?

मेहरारुन के दुरदसा

"एकै माई बपवा से एकही उदरवा में
दूनो के जनमवां भइल, रे पुरुखवा।
पूत के जनमवा में नाच आ सोहर होला,
बेटि के जनम परे सोग, रे पुरुखवा।"

पुरुष किस प्रकार घर में वेश्याओं को रखकर अपनी स्त्री को मारते पीटते हैं इसका भी चित्रण कितना सुन्दर है—

१. किताब महल, जीरोरोड, इलाहाबाद से प्रकाशित। २. नइकी दुनिया, पृष्ठ २२।

"अँखिये के देखते पतुरिया रखले वा,
मार गाली देला दिन रात, रे पुरुखवा।
ओहि रे खसुरवा मरदवा के किछु नाहीं।
तिरिया के भकसी झोकावें रे पुरुखवा।"

इस नाटक की नायिका लक्ष्मी है जो अन्य स्त्रियों को पुरुषों के अत्याचार का वर्णन सुनाती है और उन्हें संगठित होकर अपने अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करने की सम्मति देती है। पुत्री होने पर किस प्रकार लोग उसका बध कर दिया करते थे इसके विषय में वह कहती है कि—"अ बहिनी केतना जाति में लड़किन के जनमते मुवा दिहल जाला, हाँ आगि में झोंकारि के ना। मरदा कसैवा के हाथ में रहित त उहै करित"[1] इस पुस्तक में सती प्रथा की घोर निन्दा की गई है। परदा प्रथा के कारण किस प्रकार स्त्रियों को घर में नज़रबन्द रखा जाता है, नव विवाहिता वधू किस प्रकार अपने पति को भी नहीं पहचानती और रास्ते में ही खो जाती है इसका बड़ा सच्चा चित्र उपस्थित किया गया है। कोई स्त्री गाती है कि—

"बारे से परदा घुँघठवा कढ़ौले
घरवै भइल हमनी के जेहलवा।"

लेखक ने कहीं-कहीं पर अनवसर मूर्तिपूजा की निन्दा की है।[2] पुस्तक में स्त्री-स्वच्छन्दता के लिए, जायदाद में उनके समान अधिकार के लिए वकालत की गई है और इस विषय में रूस का उदाहरण दिया गया है। स्त्री और पुरुषों में भेदभाव की भावना की ओर लक्षित करती हुई सीता (एक पात्र) कहती है कि :—

"आ मेहरारू के नीच नीच कहल जाला, जे
मेहरारू नीच होइत ओही से जनमल मरद
ऊँच कइसे हो जाला।[3]"

सारी पुस्तक में स्त्रियों की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक दुर्दशा का बहुत सुन्दर चित्रण है। भाषा सरल एवं शैली मुहावरेदार है।

इस नाटक को राहुलजी ने हजारीबाग जेल में जुलाई सन् १९४२ ई० में लिखा था। इसमें साम्यवादी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इस नाटक में समाज के जितने शोषण करने वाले लोग हैं, जैसे ज़मींदार, साहूकार, राजा, महाराजा, उनकी पोल खोली गई है और गरीब किसानों की नग्न दशा का चित्रण किया गया है। धनहीन कृषक की यह दयनीय दशा देखिये[4] :—

"सांझ बिहान के खरची नइखे, मेहरी मारे तान।
अन्न बिना मोरा लड़का रोवे का करी हे भगवान्।
करजा काढ़ि काढ़ि खेती कइली, खेतवे सूखल धान।
बैल बेंचि जिमदरवा के देलीं, सहुआ कहै बेइमान।"

---

१. मेहरारुन की दुरदसा पृष्ठ ७। २. वही पृष्ठ २२–२३। ३. मेहरारुन की दुरदसा पृष्ठ ३७। ४. जोंक पृ० ३।

देहाती किसान-साहूकार एवं मिल-मालिकों के चक्कर में पड़ कर किस प्रकार पीसा जाता है इसका सजीव चित्रण इस पद्य में किया गया है[1]—

"हाइ हो देहिया लगली जोंक ।
रात दिना हम कमवा में खटलीं, कपरा लेहली ठोंक ।
डढ़ा सवाई सहुआ कइले, देले करेजवा भोंक ।
खोलि दुकनिया सेठवा लूटे, दैवौ के नाहीं रोक ।
मिल में बइठि मजुरवा रोवे, भकसी देहले झोंक ।"

जपनिया राछछ

यह नाटक भी सन् १९४२ में ही लिखा गया था । इसमें जापानियों की निर्दयता एवं दुष्टता का वर्णन किया गया है । एक जापानी दलाल जापान की प्रशंसा करता है और किसान उसकी दलीलों का खंडन करता है । जापानियों ने कोरिया में जो अत्याचार किया था उसका भी वर्णन यहाँ किया गया है । जापान में वेश्या-वृत्ति की जो प्रथा है उसके व्यापक प्रभाव से बचने के लिए जुम्मन कहता है कि[2] "हाई छपरा आरा मोतिहारी हाइ कुलि शहर दिहात । सजग हो जा भइया । भगवाने बजार ना, कुलि छपरा के रंडीखाना बना दा । अपना तीर तरुआरिन पर सान ना धर ब ।"

जापानियों ने चीन पर आक्रमण कर वहाँ जो अत्याचार किया है उसका उल्लेख इस पद्य में पाया जाता है[2] :—

"अगिया लगौले लेले हाथ में लुकरिया
मोरा फूशन गांव ।
पट पट जरे घर लपटि अकसवा,
धुंवा उठे चारो ठांव ।"

इसी अत्याचार के कारण जापानियों को 'राछछ' कहा गया है । चीन में लाल सेना और राष्ट्रीय सरकार में जो लड़ाई उस समय हो रही थी उसकी ओर भी इसमें संकेत किया गया है ।

जरमनवा के हार निहिचय

यह नाटक सन् १९४२ ई० में लिखा गया था । विद्वान् लेखक ने जर्मनी के परास्त होने की भविष्यवाणी उस समय की थी जो अन्त में सत्य निकली । इस नाटक में प्रधान दो पात्र हैं : १. भसुंडी और दूसरा घरभरन । भसुंडी जर्मनी की प्रशंसा करता है और घरभरन उसके अत्याचारों का वर्णन । भसुंडी कहता है कि "हिटलर का आवते जरमनी में भूखा लंगा केहू ना रहि गइल ।' राम सुभग भी घरभरन के विचारों का पोषक है वह जर्मनों के अत्याचारों को बतलाता हुआ कहता है कि[3] 'मास्को का नगीचा नया पोलियाना गांव में पनरह से साठ बरिस तक के कुलि मरद मेहरारुन के माघ पूस का जाड़ा पाला में एगो घर टूंसि के ताला बन्द कर देहले"

१. वही. पृ० १४ । २. जपनिया राछछ पृ० १९ । ३. वही. पृ० १३ ।

जर्मनी के इन्हीं अत्याचारों के कारण राम सुभग आदि गाते हैं कि :[1]

"जितिया त होई हमार, रछछवा ना बचिहैं।
पांच पांच बरिस से मुड़िया पटकलस।
हिटलर बजवलसि गाल, जरमनवा ना बचिहैं।
लालो फउजिया रछछवन के मारत
दिहले बिताय एक साल, रछछवा ना बचिहैं।"

अन्त में इस लड़ाई से किसान मजदूरों को कितना कष्ट हो रहा उसका वर्णन कर नाटक समाप्त हो जाता है।

देस रच्छक

इस नाटक में देश की रक्षा करने वाले सिपाहियों का उल्लेख है। जापानियों की बम-वर्षा के कारण कुछ लोग बर्मा से भाग रहे हैं। वे लोग आपस में जापान के द्वारा चीन, शंघाई और हांकांग में किये गये अत्याचारों का वर्णन करते हैं। बर्मा से भागने में उन दिनों में लोगों को क्या क्या कष्ट उठाना पड़ा इसका भी विवरण पाया जाता है। मुसीबत के दिनों में एक व्यक्ति भी दूसरों की सहायता भी करता है और अपनी कठिनाइयों का ख्याल न कर दूसरों को सुख पहुँचाने का प्रयत्न करता है।

बर्मा में हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने जो बहादुरी का काम किया था उसका उल्लेख मिलता है। सोहन लाल जो सेना का आफिसर है, कहता है कि "जमदार सुखलाल सिंह से बढ़कर हमार बहादुरी नइखे बहिन। ऊ आपन परान देके हमरा पलटन के जिऊ बचौले।"[2] शान्ता सोहन लाल की प्रशंसा करती हुई कहती है :—"सुनतानीं तीनों हजार पलटन में बड़का अफसर कुली धराय मराय गइले, आ अपने ही कमान अपना हाथ में ले के समुचा पलटन के छिन्द बिन के एह पार निकालि ले अइनी।"[3] शान्ता आगे जापानी आततायियों की निन्दा करती है। कप्तान शान्ता से कहता है कि जहाँ देश की रक्षा का प्रश्न आयेगा वहाँ हमी सिपाही आगे दिखाई देंगे। जापानियों का हम लोगों ने बर्मा में मुकाबला किया। यदि इस देश में आयेंगे तो यहाँ भी उनसे लड़ेंगे।

ढुनमुन नेता

इस नाटक में एक ऐसे कांग्रेसी नेता का चरित्र-चित्रण किया गया है, जिनका कोई सिद्धान्त नहीं है और जो कभी कांग्रेस के पक्ष में व्याख्यान देते हैं और जमींदारों की सहायता के लिए तैयार हो जाते हैं। संभवतः इसीलिए इनका नाम 'ढुनमुन नेता' पड़ गया है। वे जमींदारों की निन्दा कर किसानों को कांग्रेस को वोट देने के लिए सलाह देते हैं। परन्तु जब जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का प्रश्न आता है तो स्वयं जमींदार न होने के कारण इस प्रथा के समर्थन में व्याख्यान देते हैं। सियार नारायण कहता है कि "हमरो जिमदारी में सौ बिगहा पर आंखि गड़ौले रहलन, मुदा कवनों तरह से गरह

१. जरमनवा के हार निहिचय पृ० ३१। २. देश रच्छक पृ० २०। ३. वही. पृ० २०।

टरल।"[1] ढुनमुन सिंह, जो अपने को नेता मानते हैं, महात्मा जी की सदा दुहाई देते रहते हैं। हरपाल उनका प्रतिद्वन्दी है और उनकी सदा आलोचना करता रहता है[2] हरपाल गांधीजी के गांव पर जो गांधी आश्रम और हरिजन आश्रम खुल रहे हैं उनकी पोल खोलता है। हरपाल साम्यवाद में विश्वास रखता है। वह कहता है कि : "जौना दिन रूस से ललका झंडा उतरि जाई, किसान मजदूर राज वहाँ से बरबाद हो जाई, ओही दिन दुनियाँ भर के किसान मजदूरन के गले तांत लगि जाई।"[3] अन्त में ढुनमुन का चरित्र चित्रण कर नाटक समाप्त हो जाता है।[4]

"एन कर ढुनमुन ह नांव, ई नेता हवे बड़ भारी।
कबहु चरखवा, खदरवा के गीत गावे मिलबो कवहु मंहतारी।
कबहु मजुरवा किसनवा के रजवा, सेठन के कवहुँ पुछारी।
छिप छिप के गावे जपनवो के गीतिया, एनकर इहै हुसियारी।"

ई हमार लड़ाई

इस नाटक में द्वितीय महासमर की चर्चा को गई है। साम्यवादियों का इस लड़ाई के विषय में यह कहना था कि यह महासमर जनता की लड़ाई थी और इसीलिए उन्होंने जनता को इसमें भाग लेने को प्रोत्साहित किया था। इस नाटक में संक्षिप्त रूपमें यह दिखलाने का प्रयत्न किया गया है कि यह लड़ाई जनता का युद्ध 'पीपुल्स वार' है अतः इसमें सभी लोगों को भाग लेना चाहिए। इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर यह नाटक लिखा गया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर राहुलजी ने आठ नाटक लिखे हैं जिनका संक्षिप्त वर्णन गत पृष्ठों में उपस्थित किया गया है।[5]

इन नाटकों की भाषा बड़ी, सरल, सीधीसादी और मुहावरेदार है जैसा कि ऊपर के उद्धरणों से विदित होता है। राहुलजी ठेठ भोजपुरी लिखने में सिद्धहस्त हैं। उन्होंने अंग्रेजी भाषा के जिन शब्दों का प्रयोग किया है उन्हें बिल्कुल भोजपुरी बना लिया है। जैसे बलिहटर (बैरिस्टर), मजिस्टर, (मजिस्ट्रेट)। आपका भोजपुरी गद्य नितान्त प्रांजल, प्रवाहपूर्ण एवं प्रसन्न है।

४. गोरखनाथ चौबे

उल्टा जमाना[6]

'उल्टा जमाना' नामक नाटक के लेखक पं० गोरखनाथ चौबे हैं। आप गोरखपुर जिले के निवासी हैं। कुछ दिनों तक आप हिन्दी-साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के रजिस्ट्रार भी थे। आपने नागरिकशास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखी हैं जो बड़ी लोकप्रिय हैं।

१. ढुनमुन नेता पृ० ११। २. वही. पृ० १५। ३. ढुनमुन नेता पृ० २३। ४. वही. पृ० ४४। नाटकों में से नइकी दुनिया, जोंक, हमार लड़ाई ये तीन नाटक किताब महल, जीरो रोड, इलाहाबाद सन् १९४२ ई० और शेष नाटक नइकी दुनिया, छपरा बिहार से सन् १९४२ ई० में प्रकाशित हुई हैं। ६. लेखक : गोरखनाथ चौबे, प्रकाशक : सतयुग आश्रम, बहादुरगंज, इलाहाबाद।

आपने इस छोटे से नाटक में आजकल के समाज का सुन्दर चित्रण किया है। सुधार के नाम पर किस प्रकार उत्साही सुधारकगण अन्धेर मचाते हैं इसका उल्लेख इसमें किया गया है। किस प्रकार आधुनिक पढ़ी लिखी स्त्रियाँ घर, गृहस्थी का काम ताक पर रख कर सभा सोसाइटी में अपना समय बरबाद करती हैं और घर की शान्ति को नष्ट कर देती हैं उसका सुन्दर चित्रण किया गया है। नाटक का एक पात्र स्त्रियों की परतन्त्रता की शिकायत करता है तो दूसरा उसका समर्थन करता है। कोई स्त्री कहती है कि "गरीबी जवन चाहे तवन करावे, नाहीं त हमरी देस के मरद मेहरारू के सोना अइसन जोगवे ले। बेटी बहिन खातिर तर के धरती उप्पर क दें।"[1] आजकल समाज में जो उच्छृंखलता दिखाई पड़ती है, लड़का पिता का कहना नहीं मानता, पतोहू सास की आज्ञा का उल्लंघन करती है और पत्नी पति का निरादर करती है, आदि बातों का मार्मिक चित्रण किया गया है। आजकल की शिक्षा की आलोचना करती हुई बुदुका (एक पात्र) कहती है कि "का आजुये काल्हि क पढ़ाई, पढ़ाई कहल जाला जे मेहरारू मरदे से बाजे, पतोहू सासू से लड़े आ घर दुआर छोड़ि के दुनियाँ में साभा करे। ई पढ़ाई क दिन चली बुधिया।"[2] यह उक्ति कितनी सटीक है। आजकल समाज में जो अनाहार फैला हुआ है उसकी बड़ी सुन्दर आलोचना निम्नांकित पंक्तियों में हुई है।

"जमाना बड़ा खराब बा। दूसरे के बहिन बेटी के आजु काल्हि क अदमियाँ आपन बहिन बेटी नइखे जानत...............अब त दिन ही आंखी अँगुरी क के पंच दूसरे के लूटि लेवे चाहता।"[3]

पुस्तक की भाषा बड़ी सरल और मुहावरेदार है। विद्वान् लेखक ने मुहावरों और कहावतों का पद-पद पर प्रयोग किया है। उदाहरण "एकर नतीजा ई हे मिलत कि 'धोबी क कुक्कुर न घर क न घाट क'।[4] उर्दी क भाव पूछे छ पसेरी बनउर।[5] सज्जी कुक्कुर गंगे नहइहें त हाँड़ी के ढूंढ़ी। सज्जी बात के एक्के बतक्का" आदि आदि। मुहावरों का प्रयोग भी बड़ा सुन्दर हुआ है। यथा :

"लइकनिओं के बनहा सुग्गा बना देत बाड़ी,
तोहूँ माहचे की तरे गुलरी क किरौने बाड़ी,
अइसन जहिया होई तहिया बदरे में फूल लागि जाई।
सासु, ससुर सब उनके हाथे हाथे ले ले बा"

आदि। इस प्रकार पुस्तक की शैली चुस्त और मंजी हुई है।

१. उल्टा जमाना पृ० २८। २. वही. पृ० २३। ३. वही. २०। ४. वही. पृ० ४। ५. वही. पृ० ५।

अध्याय ३

(अ) लोक गीतों की भारतीय परम्परा

लोक गीतों की परम्परा बहुत पुरानी है। भारतीय साहित्य में इनकी उत्पत्ति और विकास की कहानी बड़ी मनोरंजक है। किस प्रकार अत्यन्त प्राचीन काल में लोक गीतों का प्रथम प्रचार हुआ और वे किस प्रकार भिन्न-भिन्न शताब्दियों से होकर वर्तमान अवस्था में पहुँचे हैं। यह विषय नितान्त विचारणीय और मननीय हैं।

वेद

जिस प्रकार आजकल पुत्रजन्म, यज्ञोपवीत, और विवाह के अवसर पर गीत गाये जाते हैं उसी प्रकार वैदिक युग में भी इन उत्सवों पर मनोहर गीतों के गाने का निर्देश वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। ये गीत 'गाथाओं' के नाम से प्रसिद्ध हैं। प्राचीन वैदिक साहित्य में जिन गाथाओं का उल्लेख स्थान-स्थान पर पाया जाता है, वे ही लोक गीत की पूर्व प्रतिनिधि हैं। 'गाथा' शब्द का अर्थ है पद्य या गीत और इस अर्थ में इसका प्रयोग ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में पाया जाता है।

गाने वाले के अर्थ में 'गाथिन्' शब्द का व्यवहार ऋग्वेद में किया गया है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग एक प्रकार के विशिष्ट मन्त्र के अर्थ में ऋग्वेद में पाया जाता है। इसके साथ ही 'रेभी' और 'नाराशंसी' से गाथा की पृथकता का प्रतिपादन भी उपलब्ध होता है। सायण भाष्य के अनुशीलन करने से स्पष्ट पता चलता है कि विवाह के अवसर पर विभिन्न वैवाहिक विधियों के समय जो गीत गाये जाते थे वे रेभी, नाराशंसी और गाथा के नाम से प्रसिद्ध थे। जिस प्रसंग में यह ऋचा (१०, ८५, ६) कही गई है, उससे भी इसी बात की पुष्टि होती है।[१]

ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रन्थों में गाथाओं का विशिष्ट उल्लेख उपलब्ध होता

१. अकृता न्यृ जीविण : कण्वा इन्द्रस्य गाथया। मदे सौमस्य वोचते। ऋ० वे० ८-३२-१। ऋ० वे० ८, ७१ १४। वहीं ८-९८-९, वहीं ९-९९.४। २. इन्द्रमिद गाथिनो बृहत्। ऋ० वे० १-७-१। ३. रेभ्या सीदनुनेयी, नाराशंसी न्योचनी। सूर्याया भद्रमिद्वासी, गाथयेति परिष्कृतम्। ऋ० वे० १०-८५-६। ४. आभि: सूर्या स्वविवाह मस्तोदित्युक्तम। रेभीः रेभ्यः काश्चनर्चः रेभीः शंसति रेभन्ते। वै देवाश्चर्पयश्च स्वर्गं लोकमायन्। इत्यादि ब्राह्मण विहिता रेभ्यः सा रेभी अनुदेयी आसीत् दीयमान बूध विनोदनायानुदीयमाना वयस्यासीत्। तथा नाराशंसी 'प्राता रत्नम्' ऋ० वे० १-१२५-१ इत्यादिका मनुष्याणां स्तुतयो नाराशंस्यः। सा नाराशंसी न्योचनी। उचतिः सेवाकर्मा। सा बधूशुश्रुषार्थं दीयमाना दास्यभवत्। सूर्यायाः मम भद्रं वासः विचित्रं दुकूलादिकर्माच्छादन योग्यं वस्त्रं गाथया परिष्कृतम्। अलंकृतम् एति। गाथा गीयते। इत्यादि ब्राह्मणोंका गाथा। तया गाथया यत्परिष्कृतमस्ति तद्वासो भवदिति। ऋ० वे० १०-८५-६ पर सायण भाष्य।

है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऋक् और गाथा में पार्थक्य दिखलाया गया है जिससे पता चलता है कि ऋक् देवी होती है और गाथा मानुषी, अर्थात् गाथाओं की उत्पत्ति में मनुष्य का ही उद्योग प्रधान कारण होता था ? ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुशीलन से पता चलता है कि गाथायें ऋक्, यजु और साम से पृथक् होती थीं अर्थात् गाथाओं का व्यवहार मन्त्र रूप में नहीं किया जाता था। अतः प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के किसी अवदान, सत्कृत्य, को संक्षिप्त कर जो गीत लोक-समाज में प्रचुर रूप से गाये जाते थे वे ही 'गाथा' नाम से साहित्य का पृथक् अंग माने जाते थे। निरुक्त में दुर्गाचार्य ने गाथा का यह अर्थ स्पष्ट रूप से प्रतिपादित किया है। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक सूक्तों में कहीं-कहीं जो इतिहास उपलब्ध होता है, वह कहीं ऋचाओं के द्वारा और कहीं गाथाओं के द्वारा निबद्ध होता है। ऋचाओं के समान गाथायें भी छन्दोबद्ध होती थीं।

दैविक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं जिनमें अश्वमेध याग करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ये गाथायें कहीं केवल श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं और कहीं 'यज्ञ गाथायें' कही गई हैं। राजा जनमेजय के विषय में यह गाथा देखिये :—

"आसन्दी वति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रुजम्।
अश्वं बबन्ध सारंग देवेभ्यो जनमेजयः।"

दुष्यन्त पुत्र भरत के विषय में ये गाथायें कही गई हैं :—

"हिरण्येन परीवृतान् शुक्लान् कृष्णदतो मृगान्।
मष्णारे भरतो ददाच्छतं बद्धानि सप्त च।
अष्टा सप्तति भरतो दौष्यन्तिर्यमुनामनु।
गंगायां वृत्रघ्ने बध्नात् पंच पंचाशतं हयान्।
महाकर्म भारतस्य न पूर्वे नापरे जनाः
दिवं मर्त्य इव हस्ताभ्यां नोदायुः पंचमानवाः"

इन ऐतिहासिक गाथाओं की परम्परा महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दीख पड़ती है। इसी दुष्यन्त पुत्र भरत के सम्बन्ध में महाभारत में अनेक अन्य गाथायें दी गई है जो नितान्तप्राचीन प्रतीत होती हैं। ऐतरेय ब्राह्मण की गाथायें ठीक उसी रूप में श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध में भी उपलब्ध होती हैं।

ये गाथायें राजसूय यज्ञ के अवसर पर गाई जाती थीं परन्तु विवाह के अवसर पर भी गाथाओं के गाने का विधान मैत्रायणी संहिता में दिया गया है। इसी नियम के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्र में विवाह-विषयक दो गाथायें उपलब्ध होती हैं। उदाहरण :—

१. ऐतरेय ब्राह्मण ७ १८। २. स पुनरितिहास, ऋग्बद्धो गाथाबद्धश्च। ऋक् प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते। गाथाः शंसति, नाराशंसीः शंसत इति उक्तं गाथानां कुर्वीतेति। निरुक्त ४–६ पर दुर्गाचार्य की टीका। ३. श० ब्रा० १३-५-४, १३-४-३-८। ४. ऐ० ब्रा० ८-४। ५. म० भा० आदिपर्व, अ० ७४ श्लो० ११०-११३। ६. मै० सं० ३-७-३। ७. पा० गृ० सू० १-७।

"अथ गाथां गायतिः ।
सरस्वति प्रेदमव सुभगे वाजिनीवति ।
यां त्वा विश्वस्य भूतस्य प्रजायामस्याग्रतः ।
यस्यां भूतं समभवत् यस्यां विश्वमिदं जगत् ।
तामथ गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः ।"

आश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोन्नयन के समय वीणा पर गाथा गीत गाने की प्रथा का उल्लेख पाया जाता है[१] । इसी गृह्यसूत्र में सोम की प्रशंसा में यह गाथा दी गई है :

"सोमो नु राजा अवतु मानषीः प्रजा निविष्ट चक्रासौ ।"

इन समस्त उल्लेखों से यही प्रतीत होता है कि राजसूय यज्ञ, विवाह और सीमन्तोन्नयन के शुभ अवसर पर ऐसी गाथायें गाई जाती थीं जो प्राचीन काल से परम्परागत रूप में चली आती थीं । राजसूय यज्ञ में ऐतिहासिक गाथाओं तथा विवाहादि के समय देवता-विषयक प्रचलित गाथाओं में गाने का नियम था, यह बात उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट ज्ञात होती है ।

पाली जातकों के अनुशीलन से पाली भाषा में उपनिबद्ध गाथाओं का पता चलता है जो प्राचीन काल से प्रचलित थीं और जिनमें उस काल की विख्यात लौकिक कहानियों का सारांश उपस्थित किया गया है । गौतम बुद्ध के पूर्व जीवन से संबद्ध कथायें जिन्हें 'जातक' के नाम से पुकारते हैं इन्हीं गाथाओं के पल्लवीकरण से आविर्भूत हुई हैं । ये गाथायें बुद्ध भगवान् की समसामयिक प्रतीत होती हैं । सुप्रसिद्ध सिंहचर्म जातक में, जिसमें व्याघ्र चर्म से आच्छादित गर्दभ की मनोरंजक कहानी है, ये दो गाथायें दी गई हैं जिनसे कथा की मूल घटना की पर्याप्त सूचना मिलती है ।

पाली

"नेतं सोहस्स नदितं न व्यग्घस्य न दीपिनो ।
पारुतो सीहचम्मेन जम्मो नदति गद्रभो"
चिरं पि खो तं खादेय्य गद्रभं हरितं यवं
पारुतो सीहचम्मेन र वमानो च दूसयी ।"

जिस प्रकार भोजपुरी कहानियों के बीच-बीच में गीतों का भी प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार जातक की कहानियों के बीच में इन गाथाओं का व्यवहार हुआ है । अतः हम इन गाथाओं को लोकगीतों का पूर्व प्रतिनिधि कह सकते हैं ।

वैदिक युग एवं बौद्ध युग के अनन्तर महाकाव्य और पौराणिक युग में भी हम लोक गीतों के उल्लेखों को पाते हैं । आदिकवि वाल्मीकि ने अपने रामायण में भगवान् राम के जन्म के अवसर पर गन्धर्वों के द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है[२] । व्यासजी ने भी श्रीमद्भागवत में कृष्ण जन्म के समय स्त्रियों के द्वारा एकत्र होकर मनोरंजक,

महाकाव्य

---

१. आ० गृ० सू० १-१२ । २. जगुः कलं च गन्धर्वाः ननृतुश्चाप्सरो गणाः देवाः दुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् । गायनैश्च विराविण्यो, वादनश्च तथापरे । विरेजुः विपुलास्तत्र सर्वरत्न-समन्विताः । बाल्मीकि रामायण बालकांड श्लो० कुम्भकोणम् । मद्रास संस्करण १८ १६ १७ ।

सामयिक गीतों के गाने का स्पष्ट वर्णन किया है[1]। महाभारतकार के उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृष्ण जन्म के अवसर पर स्त्रियों ने एकत्रित होकर जो गीत गाया होगा वह उस समय में प्रचलित लोकगीत ही होगा।

विक्रम सम्वत् की तृतीय शताब्दि में जब प्राकृत भाषा का बोलबाला था, लोकगीतों की उन्नति बड़े जोरों से हुई। राजा हाल या शालिवाहन के द्वारा संग्रहीत 'गाथा सप्तशती' से पता चलता है कि उस समय लोक गीतों के बनाने और गाने की धुन बहुत अधिक थी। हजारों गाथाओं में से केवल सात सौ ७०० गाथाएँ चुनकर इस कोश गाथा सप्तशती में संग्रह की गईं और इस प्रकार काल के गाल से बचा ली गईं। ये गाथायें सरल गीतिकाव्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। रस से सनी इन गाथाओं को पढ़कर लोक-साहित्य की माधुरी का थोड़ा परिचय प्राप्त किया जा सकता है। रसोई बनाते हुए कोई सुन्दरी फूंक मार कर आग जलाना चाहती है परन्तु आग जलती नहीं। इसका कितना रसमय हेतु इस गाथा में दिया गया है।

"रन्धरा कम्मरिए उरिगए मा जरमु रत्तपाड़लसुअन्धम्।
मुहमारुअं पिअन्तो धूमाइ सिहीए पज्जलइ।"

किसी विरहिणी की भावना का कितना सुन्दर चित्र इस निम्न गाथा में अंकित किया गया है[2]।

"अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति अज्जं गओत्ति गणिरीए।
पढम च्चिअअ दिअहद्धे कुड्डो रेहाहि चित्तलियो।"

संस्कृत साहित्य के अन्य अनेक कवियों ने भी लोक गीतों के गाये जाने का उल्लेख किया है। पुत्र-जन्म के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गीत गाने का उल्लेख पहिले किया जा चुका है। इतना ही नहीं, मेहनत मजदूरी करने के, जैसे चक्की पीसना, धान कूटना, ढेंकी चलाना और खेत निराना आदि के समय जिस प्रकार आजकल स्त्रियां भुन्ड बांध कर या अकेले गीत गाकर अपनी थकावट को हल्का किया करती हैं, प्राचीन काल में भी ठीक वैसे ही होता था। प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका (१२वीं शताब्दी) ने धान कूटने वाली स्त्रियों के द्वारा गीत गाने का जो वर्णन किया है, वह बड़ा ही रोचक है। स्त्रियां धान कूट रही हैं और साथ-साथ गाना भी गा रही हैं। मूसल के उठाने और गिराने के कारण उनकी चूड़ियाँ झनझना रही हैं, उर स्थल हिल रहा है और मीठी हुँकार की आवाज़ तथा चूड़ियों के शब्द से मिलकर उनका गाना विचित्र आनन्द पैदा कर रहा है। यह श्लोक सुनिए।

"विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली,
परस्परपरिस्खलद्वलय – निःस्वनोद्बन्धुराः

---

१. कदाचिदौत्थानिक कौतुकाप्लवे, जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम्। वादित्र गीत द्विज मन्त्र वाचकैश्चकार सूनोरभिषेचनं सती। भागवत दशम स्कन्ध। जगुः किन्नर-गन्धर्वास्तुष्टुवः सिद्धचारणाः विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा। वही. १० ३ ६ लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस बंबई से प्रकाशित। २. गाथा सप्तशती ३–८। ३. त्रिपाठीः ग्रा० गी० पृ० १३ [भूमिका]

लसन्ति कलहुँकृतिप्रसभ – कम्पितोरःस्थल
त्रुटद्गमकसंकुलाः कलम – कंडनीगीतयः''

महाकवि श्री हर्ष ने नैषधीय चरित में स्त्रियों द्वारा जाँत चलाने का उल्लेख किया है। ये स्त्रियाँ जाँत चलाते समय गीत भी गाती थीं।

अपभ्रंश काल में भी लोक गीतों का प्रचार था। उस समय के अनेक कथा ग्रंथों में नाना प्रकार की गाथाओं का उद्धरण दिया गया है। ''भविस्सस्थ कहा''[२] में ऐसी अनेक गाथायें उपलब्ध होती हैं।

आज से लगभग ३५० वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी स्त्रियों के द्वारा गीत गाने का उल्लेख किया है।[४]

''चली संग लइ सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी।''

इतना ही नहीं उन्होंने रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर भोजन करते समय गाली गाने का भी वर्णन किया है। यह प्रथा भोजपुरी प्रदेश में आज भी पाई जाती है। तुलसीदास कहते हैः—

''नारि वृन्द सुर जेंवत जानी।
लगीं देन गारी मृदुबानी।''

आजकल भी भोजपुरी प्रदेश में कोई बारात आती है और जब समधी, वर का पिता, भोजन करने बैठता है, उस समय स्त्रियाँ उसे मुक्त कंठ से गालियाँ देती हैं, परन्तु यह सुनने में सुन्दर और मनोरंजक होती हैं।

'ढोला मारू रा दूहा' राजस्थानी भाषा का एक प्राचीन लोक गीत है जिसमें ढोला और मारू की कहानी बड़े सुन्दर रूप से वर्णित है। लोकगीतों की भारतीय परम्परा के विषय में पं० रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं किः—

''बाल्मीकि भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास इनमें से किसी ने यह नहीं बतलाया कि वे गीत कौन से थे। अवश्य ही वे वही कंठस्थ गीत होंगे, जो आज भी हैं। समय के अनुसार उन्होंने भाषा का जामा बदल लिया है। जैसे हिन्दू लोग पहले पीताम्बर ओढ़ते थे, मुसलमानी राज में कुरते पहिनने लगे और अब अंग्रेजी राज में कोट पहिनते हैं। पर कपड़ों के अन्दर शरीर है हिन्दू का ही। इसी प्रकार गीतों का सिलसिला प्राचीन काल से ही एक सा चला आ रहा है। भाव पुराने हैं। भाषा नई है।''

इन उल्लेखों से स्पष्ट पता चलता है कि इन लोक गीतों की भारतीय परम्परा बड़ी प्राचीन है। हम सर्वप्रथम इनका उल्लेख गाथा रूप में वैदिक संहिताओं में पाते हैं। पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थों एवं गृह्यसूत्रों में इनका वर्णन हुआ है। संस्कृत, पाली और प्राकृत एवं अपभ्रंश भाषाओं में इनकी सत्ता उपलब्ध होती है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदासजी ने तो गीत और गाली दोनों के गाने का प्रत्यक्ष उल्लेख

---

१. प्रतिहट्टपथे घरट्टजात्पथिकाह्वानदसक्तुसौरभैः। कलहान्न धनान्युदुत्थितादधुनाप्युज्झति घर्घरस्वनः॥ नै च० २-८५। २. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित। ३. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० १४ [भूमिका] ४. रामायणः बालकांड। ५. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० १४ [भूमिका]

किया है। इस प्रकार वैदिक काल से लोक गीतों की जो धारा वही वह आज भी अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है।

(आ) भारतीय भाषाओं में लोक-गीतों का संग्रह

लोक गीतों में हमारी पुरानी सभ्यता और संस्कृति निहित है। इस कारण इनका संग्रह तथा प्रकाशन वांछनीय ही नहीं अत्यन्त आवश्यक भी है। भारत में इन लोक गीतों की बहुत उपेक्षा हुई है। विदेशों में इन जनप्रिय लोक गीतों के संग्रह के लिये 'फोक सांग सोसायटी' स्थापित है जिनके तत्वावधान में विद्वान् संग्रहकर्ता गीतों का संग्रह करते हैं। डॉ० चाइल्ड ने इंगलैंड के गीतों का संग्रह जिस लगन तथा परिश्रम के साथ किया है वह अत्यन्त प्रशंसनीय है। अब भारतीय विद्वानों का ध्यान भी इस ओर आकर्षित हो रहा है और वे भी अपनी-अपनी भाषाओं में बिखरे हुए लोकगीतों का संग्रह कर रहे हैं। यों तो भारत की सभी भाषाओं में इस दिशा में कुछ न कुछ कार्य हो रहा है परन्तु बंगला तथा गुजराती भाषा में बहुत अधिक संग्रह हुआ है। परन्तु अभी हिन्दी के विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से इधर आकृष्ट नहीं हुआ है।

बंगला

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इस दिशा में बंगला में गीतों के संग्रह का कार्य बहुत अधिक हुआ है। डाक्टर दिनेशचन्द्र सेन के तत्वावधान में कलकत्ता विश्वविद्यालय ने पूर्वी बंगाल के विशेषकर मैमनसिंह जिले के गीतों का संकलन करवाया है। इन गीतों का प्रकाशन 'पूर्व बंग गीतिका' के नाम से वृहदाकार चार भागों में कलकत्ता विश्वविद्यालय से हुआ है। इन गीतों का अनुवाद भी चार भागों में 'ईस्टर्न बंगाल बैलेड्स' के नाम से वहीं से प्रकाशित हुआ है।[1] डॉ० सेन ने इन गीतों का सम्पादन बड़ी वैज्ञानिक पद्धति से किया है। प्रत्येक गीत के आरम्भ में एक छोटी सी भूमिका दी गई है जिसमें उस गीत की विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। कठिन शब्दों का अर्थ भी पाद-टिप्पणियों में दिया गया है। गीतों के भावद्योतक चित्र भी स्थान-स्थान पर दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त 'हारामणि' नामक एक अन्य लोक गीतों का प्रकाशन इसी विश्वविद्यालय से हुआ है। इस गीत में दार्शनिक तत्वों का बड़ी ही सुन्दर रीति से प्रतिपादन किया गया है। इसमें जिन गीतों का संग्रह किया गया है उन्हें 'बाउल' कहते हैं। ये गीत अपनी दार्शनिकता के लिये प्रसिद्ध हैं।

गुजराती

गुजराती भाषा के लोक गीतों के संग्रह के लिये श्री झवेर चन्द्र मेघाणी ने प्रशंसनीय कार्य किया है। आपने लोक गीत संबंधी बीसियों पुस्तकें प्रकाशित की हैं।[2] आपका 'धरती नुं धावण' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जो दो भागों में प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ में आपने लोक साहित्य के

---

१. कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्रकाशित। २. मेघाणी की प्रायः सभी पुस्तकें नीचे के पते से प्राप्त हैं। गुर्जर ग्रन्थ कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद।

विभिन्न पहलुओं की गंभीर मीमांसा की है। यह ग्रन्थ आलोचनात्मक है। आपकी दूसरी पुस्तक का नाम 'लोक साहित्य नुँ विवेचन है।[१] यह ग्रन्थ आपके उन व्याख्यानों का संग्रह है जिन्हें आपने बम्बई विश्वविद्यालय में दिया था। यह ग्रन्थ आपकी गंभीर मननशीलता का परिणाम है। लोक साहित्य संबंधी जितनी समस्यायें हो सकती हैं उन सबका स्पष्टीकरण आपने इस ग्रन्थ में विभिन्न भाषाओं के लोक साहित्य की तुलना कर यह भी दिखलाया है कि सभी देशों में लोक गीतों की समान भावधारा प्रवाहित होती है। यह पुस्तक आपके लोक साहित्य संबंधी गंभीर अध्ययन का परिणाम है।

इन आलोचनात्मक ग्रन्थों के अतिरिक्त मेघाणी जी ने गुजराती भाषा के लोक गीतों का संग्रह भी प्रकाशित किया है। ये संग्रह ऋतु, संस्कार और उत्सव आदि के आधार पर पृथक्-पृथक् छापे गये हैं। 'सोरठ नु तीरे तीरे' नामक पुस्तक में सौराष्ट्र के लोक गीतों की आलोचना संक्षेप में दी गई है तथा नाविकों के गीतों का कुछ संग्रह भी किया गया है। 'ऋतु गीतों' आपकी एक दूसरी पुस्तक है जिसमें ऋतु संबंधी गीतों का संकलन किया गया है तथा इतर प्रान्त के बारहमासों का तुलनात्मक अध्ययन भी उपस्थित किया गया है। मेघाणी जी की सबसे प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय पुस्तक 'रढियाली रात'[५] है जिसे चार भागों में इन्होंने प्रकाशित किया है। इस ग्रन्थ में गुजराती लोक गीतों का संग्रह किया गया है। इस पुस्तक की लोकप्रियता का पता केवल इसी बात से लग सकता है कि इसके छः सात संस्करण अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। 'सौराष्ट्र ना खंडेरोमां'[६] नामक पुस्तक में पर्वतीय प्रदेशों में रहने वाली जातियों के गीतों का संग्रह आप ने किया है। इन पुस्तकों के अतिरिक्त मेघाणी ने लोक गीत संबंधी अन्य छोटी छोटी पुस्तकों की भी रचना की है। सच तो यह है कि डॉ० दिनेश चन्द्र सेन ने बंगला भाषा के लोक गीतों के उद्धार के लिये जो प्रयत्न किया है संभवतः उससे भी महान् उद्योग मेघाणी जी ने गुजराती लोक गीतों के लिये किया है।

श्री नर्मदाशंकर लाल 'शंकर' ने 'नागर स्त्रियोंमां गवातां गीत' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें गुजरात के नागर ब्राह्मणों की स्त्रियों में प्रचलित गीतों का संग्रह है। इस ग्रंथ में विभिन्न संस्कारों तथा उत्सवों पर गाये जाने वाले लगभग दो सौ गीतों का संकलन तथा सम्पादन किया गया है। यह संग्रह बड़ा ही सुन्दर तथा विस्तृत है।

लोक गीतों के परम उत्साही संग्रहकर्त्ता देवेन्द्र सत्यार्थी का उल्लेख किये बिना यह अध्याय अधूरा ही रह जायगा। सत्यार्थीजी ने समस्त

पंजाबी

भारतवर्ष का भ्रमण करके यहाँ के लोक गीतों का संग्रह किया है। आपके पंजाबी गीतों का संग्रह 'गिद्धा' नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपने लोक-गीतों के संबंध में अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिनमें गिद्धा १९३६, दीवा बले

---

१. एन० एच० त्रिपाठी एंड कम्पनी, बम्बई से प्रकाशित। ३, ४, ५, ६ ये पुस्तकें गुर्जर ग्रन्थ-रत्न कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित। गुजराती प्रिन्टिंग प्रेस, बम्बई से प्रकाशित।

सारी रात १६४१, मैं हूँ खाना बदोश १६४१, गाये जा हिन्दुस्तान १६४६, धरती गाती है १६४८, धीरे बहो गंगा १६४८, और मीट माई पीपुल १६४६ प्रसिद्ध हैं। अन्तिम पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई है।

आपकी एक रचना 'बेला फूले आधी रात'[1] अभी हाल ही में प्रकाशित हुई है जो आपके विभिन्न लोक गीत संबंधी लेखों का संग्रह है। सत्यार्थीजी ने जिस लगन एवं परिश्रम से इन गीतों का संग्रह किया है वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आपकी अन्तिम रचना में भोजपुरी के अनेक लोक गीतों का संकलन किया गया है। परन्तु जितनी गहराई में उतर कर इन पुस्तकों का सम्पादन करना चाहिए वह प्रयत्न इन पुस्तकों में नहीं दिखाई पड़ता है।

मैथिली

मैथिली लोकगीतों का संग्रह तथा सम्पादन श्री रामइकबाल सिंह 'राकेश' ने बड़े परिश्रम तथा लगन के साथ किया है[2]। आपने कई हजार लोक गीतों का संकलन किया है जिसका प्रस्तुत ग्रन्थ प्रथम संग्रह है। राकेशजी ने पुस्तक के आरम्भ में एक लम्बे प्राक्कथन में लोक गीतों की विशेषताओं का सुन्दर रीति से वर्णन किया है। उन्होंने १७ प्रकार के मैथिली गीतों का संग्रह इस ग्रन्थ में किया है। जिनमें सोहर, लग्न, गीत, नचारी आदि प्रसिद्ध हैं। पहले गीत दिये गये हैं, बाद में उनका अर्थ सरल भाषा में समझाया गया है। क्या ही अच्छा होता यदि कठिन शब्दों का अर्थ पाद-टिप्पणियों में दे दिया गया होता। गीतों का प्रसंग या संदर्भ भी नहीं दिया गया है। कौन गीत किस अवसर पर गाया जाता है तथा उसका वर्ण्य विषय क्या है इसका भी उल्लेख होना उचित था।

हिन्दी

बँगला, गुजराती, पंजाबी, एवं मैथिली भाषा के लोक गीतों की चर्चा के पश्चात् हिन्दी की विभिन्न बोलियों में किये गये लोक गीतों के संग्रह का वर्णन अनुपयुक्त न होगा। हिन्दी के अन्तर्गत ब्रज, अवधी, राजस्थानी, बुन्देलखंडी एवं भोजपुरी प्रधान बोलियाँ मानी जाती हैं। इन बोलियों में बिखरे हुए लोक गीतों के संग्रह की ओर हिन्दी विद्वानों की दृष्टि आकृष्ट हो रही है। यद्यपि यह संग्रह-कार्य अभी प्रारम्भिक दशा में है परन्तु आशा है कि शीघ्र ही सुदृढ़ आधार पर प्रतिष्ठित होकर सुचारु रूप से होगा।

ब्रज

हिन्दी भाषा के इतिहास में ब्रजभाषा का क्या महत्व है संभवतः इसके बतलाने की आवश्यकता नहीं। यदि यह कहें कि ब्रजभाषा के अभाव में हिन्दी साहित्य दरिद्र है तो यह कथन अत्युक्ति न होगा। ब्रज की भूमि राधाकृष्ण की सरस लीलाओं की रंगस्थली रही है। वहाँ राधा और कृष्ण संबन्धी गीत जनता के द्वारा गाये जाते हैं। इन सुन्दर गीतों का संग्रह एवं प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ था परन्तु अब ब्रज के कुछ उत्साही

१. राजकमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली। २. मैथिली लोक गीत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन १६६६ प्रयोग से प्रकाशित।

साहित्यिकों ने ब्रज की छिपी हुई गीत राशि को प्रकाश में लाने का प्रशंसनीय उद्योग किया है और इसके निमित्त मथुरा में ब्रज साहित्य मंडल की स्थापना की है। इस मंडल की ओर से 'ब्रज भारती' नामक पत्रिका प्रकाशित होती है जिसमें ब्रजमंडल की संस्कृति, लोक गीत, लोक कथा, लोक वार्ता, पुरातन काव्य आदि, को प्रकाश में लाने का कार्य हो रहा है। इस मंडल के तत्वावधान में अनेक अनुसन्धानकर्त्ता गाँव-गाँव में घूम-घूम कर लोक साहित्य का संग्रह कर रहे हैं। इस मंडल के द्वारा 'ब्रज ग्राम साहित्य का विवरण' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसमें ब्रज के गाँवों में शोध संबंधी जो कुछ कार्य हुआ है उसका विस्तृत विवरण उपस्थित किया गया है। श्री सत्येन्द्र एम० ए० पी० एच० डी० ने 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' नामक ग्रन्थ लिखा है[1]। इस अनुसन्धानपूर्ण ग्रन्थ में ब्रज के लोक साहित्य, लोक गीत, लोक कथाओं आदि का बड़ा ही मार्मिक विवेचन किया गया है। सत्येन्द्रजो ने ब्रज के लोकगीतों का विपुल संग्रह किया भी है जिसका प्रकाशन अभी तक नहीं हुआ है। ब्रज लोक संस्कृति में लोक साहित्य संबंधी प्रचुर सामग्री पढ़ने के लिये प्राप्य है।

राजस्थान में भी लोक साहित्य के संरक्षण तथा प्रकाशन का कार्य बड़ी लगन तथा उत्साह के साथ हो रहा है। यहाँ के उत्साही तथा विद्वान् कार्यकर्त्ताओं में श्री सूर्यकरण

राजस्थानी

पारीक एम० ए० का नाम प्रधान है। आपने 'राजस्थानी लोक गीत' की रचना की है[2]। जिसमें राजस्थान के लोक गीतों की बड़ी सुन्दर आलोचना की गई है। पुस्तक पांडित्य-पूर्ण है और इस विषयके प्रेमियों के लिये संग्रहणीय है।

श्री पारीकजी ने ठाकुर रामसिंह एम० ए० तथा श्री नरोत्तम दास स्वामी के सहयोग से राजस्थान के लोक गीतों का प्रचुर संग्रह भी किया है जिसके दो संग्रह 'राजस्थान के लोक गीत' के नाम से दो भागों में प्रकाशित हुए हैं[3]। इन गीतों का सम्पादन वैज्ञानिक पद्धति से हुआ है। विद्वान् लेखकों ने प्रारम्भ की प्रस्तावना में लोक गीतों के संबंध में अनेक ज्ञातव्य विषयों का वर्णन किया है। प्रथम मूल गीत देकर पुनः उसका सरल भाषा में अनुवाद भी उपस्थित किया गया है। ऐतिहासिक गीतों के संबंध में उनका थोड़ा परिचय भी दिया गया है। अच्छा होता यदि प्रत्येक गीत के प्रारम्भ में उसका प्रसंग या सन्दर्भ दिया गया होता। पुस्तक के अन्त में गीतों में प्रयुक्त कठिन राजस्थानी शब्दों का अर्थ भी दे दिया गया है जिससे पढ़ने वालों को सुविधा हो। गीतों से संबंध रखने वाले कुछ चित्र भी इसमें दिये गये हैं जिससे पुस्तक का महत्व बढ़ गया है।

इन लोक गीतों के संग्रह के अतिरिक्त इन तीनों विद्वानों ने 'ढोला मारुरा दूहा' नामक ग्रन्थ का सम्पादन विद्वत्तापूर्ण रीति से किया है[4]। राजस्थान में ढोला

---

१. साहित्य रत्न भंडार, आगरा १९४९ से प्रकाशित। २. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से संवत् १९९९ में प्रकाशित। ३. राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता से सन् १९३८ में प्रकाशित। ४. नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से प्रकाशित।

और मारु इन दो प्रेमियों की कथा प्रसिद्ध है जो काल के प्रभाव से विस्मृति के गर्त में गिरती जाती थी। विद्वान् सम्पादकों ने इसी सुप्रसिद्ध लोक गाथा का पुनरुद्धार किया है। यह ग्रन्थ लोक साहित्य का अनमोल रत्न है। 'कृष्ण रुक्मिणी री बेलि' में कृष्ण और रुक्मिणि की कथा विस्तार से कही गई है[1]। इनके अतिरिक्त नरोत्तम दास स्वामी ने 'राजस्थान रा दूहा' नामक ग्रन्थ दो भागों में लिखा है जिसका पहला भाग प्रकाशित हो चुका है[2]। 'राजिये रा दूहा' का सम्पादन तथा प्रकाशन स्वामी जी ने बड़े परिश्रम के साथ किया है[3]। इसके साथ ही इन्होंने 'बीकानेर के गीत', 'देश के गीत', बालकों के गीत' नामक पुस्तकों का सम्पादन कर राजस्थान के लोक गीतों को जनता के सामने लाने का प्रशंसनीय उद्योग किया है। उन पुस्तकों में राजस्थान की सच्ची संस्कृति हमें देखने को मिलती है। राजस्थानी जनता का सच्चा प्रतिबिम्ब इनमें उपलब्ध होता है।

इन प्रकाशित लोक गीतों के संग्रह के अतिरिक्त श्री स्वामीजी और पारीकजी ने जिनका देहावसान अभी कुछ वर्ष हुए हो गया, सैकड़ों चारणी और ऐतिहासिक लोकगीतों का संग्रह किया है जो अभी अप्रकाशित हैं। यदि इन गीतों का प्रकाशन हो जाय तो लोक साहित्य के प्रेमियों का बड़ा उपकार हो।

अभी हाल ही में राजस्थान के उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने 'राजस्थान रिसर्च सोसाइटी' की स्थापना की है जिसका उद्देश्य राजस्थान की संस्कृति का प्रचार है। इस सोसाइटी के द्वारा 'राजस्थान भारती' नामक एक शोधसंबंधी पत्रिका भी प्रकाशित होती है जिसमें राजस्थानी साहित्य में अनुसंधानात्मक कार्य का विवरण रहता है। राजस्थान की संस्कृति की जानकारी प्राप्त करने वाले विद्वानों के लिये यह पत्रिका नितान्त उपयोगी है।

बुन्देलखण्ड में लोक साहित्य संग्रह संबंधी कार्य बड़े उत्साह तथा लगन के साथ हो रहा है। वहाँ के विद्वानों ने 'लोक वार्ता परिषद्' नामक संस्था की स्थापना की है जिसका प्रधान स्थान ओरछा राज्य का टीकमगढ़ स्थान है। इस संस्था के पीछे पं० बनारसीदास चतुर्वेदी तथा श्री कृष्णानन्द गुप्त का विशेष हाथ है। इस परिषद् के द्वारा 'लोकवार्ता'[7] नामक खोज संबंधी त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन होता था जिसमें लोक गीत, लोक कथा, रहन-सहन, रीति रिवाज संस्कार और उत्सव आदि सभी विषयों पर अधिकारी विद्वानों के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित होते थे। यह पत्रिका विशेषकर बुन्देलखण्ड की संस्कृति को प्रकाश में लाने को प्रकाशित की गई थी। यद्यपि इस पत्रिका में बुन्देलखण्डी गीतों और कथाओं का प्रचुर प्रकाशन हुआ था परन्तु इन गीतों का पुस्तकाकार संग्रह अभी देखने में नहीं आया।

बुन्देलखंडी

हिन्दी की अवधी बोली में लोक साहित्य का संग्रह (जहाँ तक हमें ज्ञात है) अभी तक नहीं हुआ है। प्रयाग विश्वविद्यालय में संस्कृत के अध्यापक डाक्टर बाबूराम

---

१. हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग से प्रकाशित। २. राजस्थानी सीरीज, पिलाणी, जयपुर से प्रकाशित। ३. सस्ती राजस्थानी ग्रन्थमाला, बीकानेर। ४, ५, ६, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित। ७. इस पत्रिका का प्रकाशन कुछ ही अंकों के निकलने के पश्चात् बन्द हो गया।

अवधी सक्सेना ने अपनी पुस्तक 'अवधी भाषा का विकास' एवोलूशन आफ अवधी, लिखते समय अवधी के कुछ लोक गीतों का संग्रह अवश्य किया था परन्तु वह संग्रह अभी प्रकाशित नहीं हुआ है। पं० रामनरेश त्रिपाठी की कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत) में अवश्य अवधी के कुछ गीतों का संग्रह है परन्तु वह परिमाण में बहुत कम है। मिश्रबन्धु परिवार के एक सज्जन अवधी लोकगीतों का संग्रह लखनऊ विश्वविद्यालय के रिसर्च विद्यार्थी के रूप में कर रहे थे परन्तु उनका संग्रह अभी अपूर्ण ही है।

अवधी के समान खड़ी बोली में भी लोक साहित्य का संग्रह अभी बिल्कुल नहीं हुआ है। मेरठ और बिजनौर के जिलों में खड़ी बोली के गीत प्रचुर मात्रा में गाये

खड़ी बोली जाते हैं। यदि इन गीतों का संग्रह कर प्रकाशन किया जाय तो बड़ा लाभ हो। त्रिपाठीजी के ग्रामगीतों में खड़ी बोली के गीत अवश्य पाये जाते हैं। भाषा शास्त्र की दृष्टि से भी खड़ी बोली के गीतों का संकलन आवश्यक है।

भोजपुरी में लोकसाहित्य के संग्रह का कार्य बहुत कुछ हुआ है परन्तु अभी इस दिशा में बहुत कार्य करना शेष है। आजकल भोजपुरी के विद्वान् अपनी बोली की

भोजपुरी निधियों को प्रकाश में लाने के लिये परिश्रम कर रहे हैं। आज तक भोजपुरी में जो लोक गीतों के संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं उनकी विस्तृत चर्चा 'भोजपुरी साहित्य' वाले प्रकरण में पीछे की जा चुकी है। यहाँ उनके पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं। अतः पुस्तक तथा लेखक का नामोल्लेख ही यहाँ पर्याप्त है।

१. भोजपुरी ग्राम्य गीत भाग १	कृष्णदेव उपाध्याय।
२. भोजपुरी ग्राम गीत भाग २	
३. भोजपुरी लोक गीतों में करुण रस	श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह।
४. भोजपुरी ग्राम्य गीत।	ए० जी० आर्चर।
५. ग्राम्य गीत स० क० भाग ५	रामनरेश त्रिपाठी।

त्रिपाठीजी के इस ग्रन्थ में भोजपुरी बोली के ही गीत सबसे अधिक हैं। यद्यपि इसमें अन्य बोलियों के भी गीत उपलब्ध हैं।

उत्साही भोजपुरियों ने भोजपुरी साहित्य सम्मेलन भी स्थापित किया है जिसका उद्देश्य इस साहित्य की वृद्धि करना है। पं० महेन्द्र शास्त्री के सम्पादकत्व में पटना से 'भोजपुरी' पत्रिका भी प्रकाशित होती है जो भोजपुरी में ही छपती है।

'बलिया की हिन्दी प्रचारिणी सभा भी इस कार्य में अग्रसर है।'

लोक गीतों का रचना काल

भोजपुरी लोक गीतों की रचना कब हुई इस विषय में कुछ निश्चित रूप से बतलाना बड़ा कठिन है। जब से मानव सृष्टि है तभी से इन गीतों की

रचना भी प्रारम्भ हुई होगी। पीछे यह दिखलाया गया है कि इन गीतों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। परन्तु इनकी कोई निश्चित तिथि बतलाना कठिन है। यहाँ भोजपुरी गीतों में से कुछ के रचनाकाल का अनुमान हम आसानी से कर सकते हैं।

किसी भी वस्तु की परीक्षा के लिये दो प्रकार के प्रमाणों की आवश्यकता होती है। १. बहिरंग तथा २. अन्तरंग। लोक गीतों के समय निर्धारण में हमें बहिरंग प्रमाणों की उपलब्धि नहीं होती। आजकल भोजपुरी लोक गीतों की कोई भी प्राचीन हस्तलिखित प्रति प्राप्त नहीं होती जिससे इनके समय का निर्धारण किया जा सके। डाक्टर चाइल्ड ने इंगलैण्ड और स्काटलैंड के गीतों का जो विराट संग्रह प्रकाशित किया है उसमें उन्हें गीतों के अनेक हस्तलिखित प्रतियों की उपलब्धि हुई थी जिससे उन गीतों के काल निर्णय में सहायता मिलती है परन्तु भोजपुरी में आजतक कोई भी ऐसी पुरानी प्रति उपलब्ध नहीं है। जगनिक कृत आल्ह खण्ड की भी कोई प्राचीन प्रति नहीं मिलती जिससे हम उसके निर्माणकाल का निर्णय कर सकें। आजकल जो लोक गीत प्राप्त हैं उनके उद्धरण या निर्देश भी किसी ग्रन्थ में नहीं मिलते। इन गीतों के लेखकों के नाम भी अज्ञात हैं जिनके काल निर्णय से इनके समय का कुछ पता चल सकता। इस प्रकार बहिरंग प्रमाणों के आधार पर हम इन गीतों का काल निर्णय करने में नितान्त असमर्थ हैं।

लोक गीतों में कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख है, ऐसे समाज का चित्रण है जिनके आधार पर हम इन गीतों के निर्माण काल का अनुमान कर सकते हैं। इनमें ऐतिहासिक घटनायें बहुत थोड़ी हैं।

बलिया के एक लोक गीत में स्थानीय इतिहास का पुट है यह पंक्ति इस प्रकार है :—

"राजा भइले रजुलो बहोरन भइले धुनिया।
मारेले दलगंजनदेव, हलकेले दुनिया।"

इस गीत में बलिया जिले के बैरिया नामक कस्बे के निवासी सुप्रसिद्ध बहोरन पांडे का, जिनके वंशज वहाँ आज भी मौजूद हैं और हलदी के राजा दलगंजनदेव का, दो नाम आये हैं। ये दोनों सज्जन आज से १०० वर्ष पूर्व विद्यमान थे। अतः इससे यह ज्ञात होता है कि यह गीत इस काल से पुराना नहीं है। हमारे पास ऐसे बहुत से गीत संग्रहीत हैं जिनमें सिपाही विद्रोह के समय अवध के नवाबों का लखनऊ छोड़कर भागने और इस कारण दुःख प्रकट करने का वर्णन पाया जाता है।

"महल में बैठी बेगम रोवे डेहरी पर रोवे खवास रे।
मोती महल के बैठक छूटल, छूटल मीना बाजार रे।
बाग जमनिया के घूमल छूटल छूटल मुलुक हमार रे।"

एक दूसरे गीत में सिपाही विद्रोह के समय की लूट का जीता जागता वर्णन किया गया है। तीसरे गीत में लार्ड लेक के नाम का भी उल्लेख हुआ है[1] :—

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ५०।

"मेरी जान कहीं देखा कम्पनी निशान।
लाट लेक मार ले ला आइके हिन्दुस्तान।"

अँग्रेजों से बगावत कर स्वतन्त्रता का झंडा ऊंचा करने वाले कुँवरसिंह के विषय में अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। इन उल्लेखों से पता चलता है कि ये गीत कम से कम लगभग एक सौ वर्ष प्राचीन हैं।

कुछ ऐसे गीत भी उपलब्ध हैं जिनमें मुगलों के अनाचार एवं व्यभिचार का वर्णन पाया जाता है[1]। हिन्दू स्त्रियों को बलात् पकड़ लेना, उनके साथ विवाह कर लेना, आदि का उल्लेख मिलता है : इन गीतों में कहीं पर बहन अपने भाई को गाय का दूध पीकर मुगल से लड़ने के लिये उत्तेजित करती है और कहीं वह उसकी लम्बी सूप जैसी दाढ़ी देख कर उससे घृणा करती है[2] :—

"सूप अइसन दाढ़ी मोगलवा के बरधा अइसन आंखि,
ओहि मुहें लिहलन मोगल चुमवा, रजलो के छूटि उकिलाई।"

एक अन्य गीत में मुगलों से लड़ने का वर्णन पाया जाता है। इस प्रकार इन गीतों का समय मुगलकाल समझा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त गीतों में कुछ ऐसी प्रथायें मिलती हैं जो प्राचीन काल में थी परन्तु आजकल नहीं हैं। जैसे कन्या का अपने लिये स्वयं वर पसन्द करना और किसी कुमारी से विवाह के लिये वर का स्वयं प्रस्ताव करना। ये दोनों प्रथायें इस देश में पहले थीं। परन्तु अब नहीं है। गीतों में पर्दे की प्रथा का अभाव भी पाया जाता है। इनमें स्त्रियों का समाज में नीचा स्थान दिखलाया गया है। वे पुरुषों के वश में पराधीन दिखलाई गई हैं। उक्त सामाजिक परिस्थिति मुगलों के पूर्व काल की सूचना देती है।

इन अनुमानों के आधार पर हम कह सकते हैं कि जिन गीतों के संग्रह को हमने प्रयोग किया है उनमें से कुछ लगभग ३०० वर्ष पुराने हैं और कुछ आधुनिक काल के हैं।

———

१. त्रिपाठी : ग्रामगीत परिचय पृ० १६२१। २. वही. पृ० २०।

अध्याय ४

(अ) लोक गीतों के वर्गीकरण की पद्धति

भोजपुरी लोकगीतों की संख्या प्रचुर है। जो भोजपुरी लोक गीत अद्यावधि उपलब्ध होते हैं उनके प्रकार इतने अधिक हैं कि किसी भी लोक गीतों के अनुसन्धानकर्ता को आश्चर्य सागर में डुबो देते हैं। लोक गीतों के भेदों अथवा प्रकारों की इतनी बहुलता है कि इनका किसी श्रेणी में विभाजन अथवा वर्गीकरण कठिन है। इनकी विविधता ही इस कठिनता का कारण है। अगले पृष्ठों में एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर इनके वर्गीकरण का प्रयत्न किया जायगा। परन्तु इन्हीं श्रेणियों के भीतर सभी लोक गीत अन्तर्भुक्त हो जाते हैं यह कहना उचित नहीं होगा।

अब तक जो लोक गीत उपलब्ध हुए है उनकी समष्टि पर पूर्णतया विचार करके हमने निम्नांकित दृष्टि से उन्हें पाँच प्रधान भागों में विभक्त किया है।

१. संस्कारों की दृष्टि से।

२. रसानुभूति की प्रणाली से।

३. ऋतुओं एवं व्रतों के क्रम से।

४. विभिन्न जातियों के प्रकार से।

५. क्रिया गीत के आधार पर। इन पर क्रमशः यहाँ विचार किया जायगा।

१. संस्कारों की दृष्टि से वर्गीकरण

भारतीय जीवन में धर्म का प्रमुख स्थान है। यदि यह कहा जाय कि धर्म ही भारतीयों का प्राण है तो इस कथन में कुछ अत्युक्ति न होगी। हमारे धार्मिक जीवन में विभिन्न संस्कारों का कितना महत्व है संभवतः यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। जन्म से लेकर मरण तक हमारा सारा जीवन संस्कारमय है। जन्म ही क्यों, जन्म होने के पूर्व भी कुछ ऐसे संस्कार हैं जो किये जाते हैं। ऐसे संस्कारों में गर्भाधान और पुंसवन मुख्य हैं। वैदिक साहित्य में पुंसवन संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले मन्त्रों का उल्लेख मिलता है।

आजकल उपलब्ध लोकगीतों में संस्कार संबंधी गीतों की संख्या अधिक है। भारतीय जनता गाँवों में रहती है। गाँवों में शहरों की अपेक्षा धार्मिक भावनायें अधिक प्रबल रूप में विद्यमान हैं। अतः इन गीतों में संस्कार के गीतों की अधिकता होना स्वभावसिद्ध है। दूसरी बात यह भी है कि ये गीत उछाह या उत्सव के अवसर पर गाये जाते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रियों ने षोडश संस्कार का विधान किया है। इनमें भी गर्भाधान, पुंसवन, पुत्रजन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह संस्कार ही प्रधान हैं। प्राचीन काल में गर्भाधान संस्कार किया जाता था परन्तु सम्भवतः परदे की प्रथा के कारण अथवा अनावश्यक समझ कर यह संस्कार आजकल नहीं किया जाता। पुंसवन संस्कार

की भी यही दशा है। गर्भ में जो संतति स्थित है वह पुत्र ही उत्पन्न हो पुत्री कदापि न हो इस हेतु पुंसवन संस्कार किया जाता था परन्तु यह संस्कार आजकल नितान्त अप्रचलित है। संभवतः मुसलमानी शासन में परदे की प्रथा की भयंकरता के कारण यह संस्कार त्याग दिया गया हो। वैदिक काल में इस संस्कार का विशेष प्रचलन था। समाज में इन पूर्वोक्त संस्कारों के अप्रचलित होने के कारण इन संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाले गीत भी उपलब्ध नहीं होते। लोक गीतों की कोई प्राचीन हस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं होती। अतः प्राचीन-काल में इन संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाले लोक गीतों का क्या स्वरूप था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

पुत्रजन्म

सबसे प्रथम तथा प्रधान संस्कार जिससे सम्बन्ध रखने वाले लोक गीत उपलब्ध होते हैं, पुत्र जन्म है। पुत्र का जन्म भारतीय समाज में तथा संसार के अन्य देशों में भी बड़े उछाह का अवसर माना जाता है। पुंसवन सस्कार का उद्देश्य ही यह है कि जो सन्तान उत्पन्न हो वह पुत्र ही हो। अतः ऐसी परिस्थिति में जब पुत्र का जन्म होता है तब कितना आनन्द और उत्सव मनाया जाता है इसका अनुमान सहज ही में किया जा सकता है। पुत्र जन्म के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'सोहर' कहते हैं। इन गीतों में भारतीय समाज के उछाह का वर्णन मिलता है। इस अवसर पर गाये जानेवाले इन 'सोहरों' का विस्तृत परिचय अन्यत्र दिया जायगा। लोक-गीतों में सोहरों की संख्या अत्यधिक है जिसका प्रधान कारण इनका समाज में अधिक प्रचार है।

पुत्र जन्म के बाद दूसरा संस्कार 'मुंडन' है। बालक के प्रथम बार केश कर्तन को मुंडन कहते हैं। प्राचीनकाल में इसे 'गोदानविधि' कहते थे। यह कार्य किसी नदी के किनारे अथवा किसी तीर्थ स्थान में किया जाता है। इस संस्कार के गीत कम संख्या में उपलब्ध होते हैं।

यज्ञोपवीत

यज्ञोपवीत संस्कार अपना विशेष महत्व रखता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत 'जनेऊ के गीत' कहलाते हैं। इन गीतों के अध्ययन से इस संस्कार पर किये जाने वाले विधि विधानों का अच्छा परिचय मिलता है। यह संस्कार आजकल प्रधानतया ब्राह्मण तथा क्षत्रियों तक ही सीमित रह गया है अतः जनेऊ के गीतों का प्रचार तथा इनकी संख्या बहुत अधिक नहीं है।

विवाह

विवाह संस्कार सम्भवतः सभी संस्कारों में सर्व प्रसिद्ध तथा सर्वाधिक प्रचलित है। भारत में सम्भवतः कोई भी जाति नहीं है जिसमें विवाह के गीत प्रचलित न हों। आर्य संस्कृति में पले हुए ब्राह्मण क्षत्रियों से लेकर आधुनिक सभ्यता के वातावरण से दूर रहने वाली मध्य प्रदेश की गोंड तथा छोटा नागपुर की सन्थाल जातियों में भी ये गीत समान रूप से प्रचलित हैं। मनुष्य के जीवन में विवाह एक प्रधान घटना है। इसलिये इसे सर्वप्रधान संस्कार माना जाता है। जिन जातियों में धार्मिक भावनाओं का अभाव है वे भी इस अवसर

पर धार्मिक रूप में नहीं अपितु सामाजिक रूप में गीतों को गाकर अपना अपना आनन्द प्रकट करती हैं। समस्त लोक गीतों में वैवाहिक गीतों की संख्या आधे से भी अधिक है। विवाह के अवसर पर अनेक विधि विधान सम्पादित किये जाते हैं। जिनमें संबन्ध रखने वाले अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। विवाह के पूर्व तिलक या फलदान की विधि बरती जाती है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत पृथक् हैं। इसी प्रकार हलदी, मंडप, जेवनार, भाँवर आदि अवसरों पर विभिन्न गीत गाये जाते हैं। कोहबर के समय हास्यरस संबन्धी गीत प्रयोग में आते हैं जिनमें कुछ अश्लीलता भी रहती है।

गवना

विवाह के पश्चात् जब कन्या प्रथम बार अपनी ससुराल जाती है उसे 'द्विरागमन' अथवा गवना कहते हैं। करुणरस की बहुलता होने के कारण ये गीत अपना विशेष महत्व रखते हैं। इन प्रधान संस्कारों के अतिरिक्त जब बालक बारह दिन का होता है उस समय 'बरही' नामक संस्कार तथा उसके छः मास के होने पर 'अन्नप्राशन' संस्कार किया जाता है। इन अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों की संख्या अधिक नहीं है। इस प्रकार संस्कार की दृष्टि से उपर्युक्त प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं।

२. रसानुभूति की प्रणाली से

लोक गीतों के अनेक रसों की अभिव्यक्ति बड़ी सुन्दर रीति से हुई है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इन ग्राम गीतों में रस है, अलंकार नहीं" यह कथन अक्षरशः सत्य है। इन लोकगीतों में भिन्न रसों की जो अविरल धारा प्रवाहित होती है उसका अन्तःश्रोत कदापि सूखता ही नहीं। करुणरस में ओतप्रोत इन लोक गीतों के सामने अनेक कवियों की उक्तियाँ भी फीकी जंचती हैं। कहीं ढोलक पर गाये जाते हुए आल्हा को सुनकर शरीर में रोमांच हो जाता है और अंग अंग फड़कने लगता है तो कहीं हास्य रस से परिपूर्ण झूमरों को पढ़कर बतीसी चमकने लगती है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिए जाने वाली स्त्रियों के कलकंठ से भक्ति का उद्रेक करने वाले भजनों को सुनकर किसका मन शान्त रस की धारा में प्रवाहित नहीं हो जाता। यों तो इन गीतों में सभी रसों की अवतारणा की गई है परन्तु निम्नांकित पाँच रसों में ही इन गीतों की अधिक रचना उपलब्ध होती है। इन रसों में भी करुणा का ही पुट सब से अधिक है। इन गीतों को रसों के अनुसार निम्न प्रकार से विभक्त कर सकते हैं :—

१. शृङ्गार रस।
२. करुण रस।
३. वीर रस।
४. हास्य रस।
५. शान्त रस।

शृङ्गार रस के गीतों के अन्तर्गत प्रधानतया सोहर, जनेऊ और विवाह के गीत आते हैं। सोहर के गीतों में गर्भिणी की शरीर यष्टि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया

शृंगार रस

जाता है। गर्भवती होने पर किस प्रकार स्त्रियों का शरीर पीला पड़ जाता है, पयोधर स्थूलता को प्राप्त हो जाते हैं, मुंह पियराने लगता है और पैर भारी मालूम पड़ता है। इन विषयों का वर्णन बड़ी सुन्दर रीति से इन गीतों में किया गया है। जनेऊ के गीतों में भी कहीं-कहीं शृङ्गार का पुट पाया जाता है। विवाह के गीत तो शृङ्गार रस से लबालब भरे पड़े हैं। इनमें संयोग तथा विप्रलम्भ, दोनों प्रकार के शृङ्गार का सुन्दर वर्णन है। शृङ्गार रस में ओतप्रोत ये गीत ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं हैं।

करुण रस

करुण रस के गीतों में गवना, जंतसार, निर्गुन, पूरबी, रोमनी तथा सोहनी के गीतों की गणना की जाती है। इन लोक गीतों की आत्मा करुण रस है यदि ऐसा कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। यद्यपि उपर्युक्त सभी गीतों में करुण रस का पुट पाया जाता है परन्तु गवना के गीतों में करुण रस बरसाती नदी की भांति उमड़ता हुआ दीख पड़ता है। लड़की के विदाई के समय जो गीत गाये जाते हैं वे बड़े ही हृदयद्रावक होते हैं। इन मर्मस्पर्शी गीतों को सुनकर कुछ देर के लिए स्रोता अपनी सुधबुध खो देता है। ये विदाई के गीत मानों करुण रस के महाकाव्य हैं जिनमें ग्रामीण कवि की आत्मा की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से हुई है।

इसी प्रकार से जंतसार, निर्गुन, पूरबी, रोपनी एवं सोहनी के गीतों में भी करुण रस की प्रधानता पाई जाती है। 'जंतसार' में स्त्री के दुःखदाई जीवन का वर्णन पाया जाता है। 'निर्गुन' में भी करुण रस की स्रोतस्विनी तीव्र वेग से बहती हुई दिखाई देती है। 'पूरबी' गाने उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में गाये जाते हैं। इन गीतों के गाने का लय इतना द्रावक होता है कि श्रोता का हृदय इसे सुनकर पिघलने लगता है। इन गीतों में भी वही पुरानी गाथा पाई गई है। वही विरह की कहानी, वही वियोगिनी की दुर्दशा। पति के वियोग में वही पुराना प्रलाप और वही रोना धोना। यद्यपि इन गीतों में कहीं-कहीं शृङ्गार का भी पुट पाया जाता है परन्तु इनमें करुण रस की प्रधानता है। रोपनी और सोहनी के भी गीतों में करुण रस की अभिव्यंजना हुई है।

वीर रस

भोजपुरी में गेय गीतों के अतिरिक्त कुछ प्रबन्धात्मक गीत भी पाये जाते हैं जिसमें किसी विशेष घटना को कथानक के रूप में विस्तृत रीति से कहा गया है। साथ ही उनमें गेयता भी है। इन प्रबन्धात्मक लोक गीतों को 'लोक गाथा' का नाम दिया गया है। इन्हें अंग्रेजी में 'बैलेड' कहते हैं। उदाहरण के लिए हम आल्हा, विजयमल, लोरकी, नयकवा, बनजारा, सोरठी और 'भगवती के गीत' को ले सकते हैं। आल्हा वीर रस का महाकाव्य है जिसके प्रत्येक पद में वीरता कूट कूट कर भरी पड़ी है। इसमें आल्हा का जीवन चरित बड़े विस्तार मे गाया गया है। आल्हा का विवाह, माड़ोगढ़ की लड़ाई, ऊदल के विवाह के समय का युद्ध, ये ऐसे वीर रस के प्रसंग हैं जिनको सुनकर मुर्दा दिल में भी जोश उत्पन्न हो जाता है। इसी प्रकार महबे पर आक्रमण करने वाले पृथ्वी राज के साथ आल्हा और ऊदल का युद्ध

भी अपना विशेष महत्व रखता है और वीर रस का उद्रेक करता है। कथावस्तु का विस्तार छोड़कर यदि हम छन्द की दृष्टि से न भी देखें तो आल्हा वीर रसात्मक महाकाव्य का उत्कृष्ट उदाहरण सिद्ध होता है। आल्हा जिस छन्द में लिखा गया है उसके पठन मात्र से ही अंग-अंग फड़कने लगते हैं। हमने आल्हा के कितने ऐसे गवैयों को देखा है जो जोश में ढोल पर आल्हा गाते-गाते अपना होश खो बैठते हैं और कुछ समय के लिये बेसुध हो जाते हैं।

सोरठी में रहस्य रोमांच की कथा बड़ी सुन्दर रीति से लिखी गई है। इसके बीच बीच में अद्‌भुत रस भी पाया जाता है। लोरकी भोजपुरियों का वीररसात्मक महाकाव्य है जिसमें लोरिकायन या लोरकी नामक वीर की कथा विस्तार से लिखी गई है। 'विजयमल' में कुंअर विजयी नामक वीर की वीर कथा का वर्णन किया गया है। किस प्रकार इसने शत्रु को रण में परास्त कर विजय प्राप्त किया इसका विस्तृत वर्णन पढ़ने को हमें यहाँ मिलता है। इस प्रकार से इन वर्णनात्मक गीतों में वीर रस का पुट प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

इन लोक गीतों में यद्यपि करुण रस की ही प्रधानता है फिर भी अन्य रसों का आनन्द लेने के लिये भी प्रचुर प्रसंग उपलब्ध होते हैं। विवाह के गीतों में

हास्य रस

(जैसा पहिले कहा जा चुका है) संभोग शृंगार उपलब्ध होता है परन्तु विवाह के अन्तर्गत एक विशिष्ट प्रकार के गीतों (कोहबर के गीत) में हास्य रस पाया जाता है। विवाह के पश्चात् वर एक सुसज्जित घर में बैठाया जाता है जहाँ कमरे के एक कोने में उसकी पत्नी भी बैठी रहती है। वहां गाँव की युवती तथा बूढ़ी स्त्रियाँ आती हैं और उस नये दूल्हे से अनेक प्रकार का हास परिहास-करती हैं। कोई तो उसे काला पहाड़ की उपमा से सुशोभित करती है तो कोई उसके कुल की उत्पत्ति रावण से बतलाती है। कोई उसे निरक्षर भट्टाचार्य कहकर सम्बोधित करती है तो कोई उसके माता पिता के चरित्र को दूषित बतलाती हैं। कहने का आशय यह है कि हास्य रस के जितने प्रसंग हो सकते हैं उन सब की अवतारणा वहाँ की जाती है। इसी प्रकार से झूमर के गीतों को झूम-झूमकर बड़े प्रेम से एक साथ स्त्रियाँ गाती हैं। ये 'झूमर' हास्य रस से लबालब भरे रहते हैं यद्यपि इनमें शृंगार रस का भी अभाव नहीं है। इनमें कहीं अपने प्रियतम पर कोई फबती कसी जाती है तो कहीं देवर से हँसी या मजाक का अवसर उपस्थित किया जाता है।

भजन, निर्गुन, तुलसी माता और गंगाजी के गीतों में शान्त रस पाया जाता है। संध्या समय तथा रात्रि के पिछले पहर में स्त्रियाँ भजन गाती हैं जिन्हें

शान्त रस

'सन्झा' और 'पराती' कहते हैं। इन गीतों में भगवान् की स्तुति होती है जिन्हें सुनकर भक्ति का उद्रेक होता है। प्रातःकाल गंगा स्नान के लिये झुंड में जाती हुई स्त्रियाँ गंगाजी का गीत गाती हैं जिनमें संसार के झंझटों से मन को हटाकर भगवान् में लगाने का वर्णन रहता है। तुलसीजी के गीतों में तुलसी माता की देवता के रूप में स्तुति की जाती है। बहुत से ऐसे निर्गुन गीत भी उपलब्ध

होते हैं जो कबीरदासजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन निर्गुनों में शान्त रस का सुन्दर प्रवाह पाया जाता है।

लोक गीतों का जब हम सूक्ष्म विश्लेषण करते हैं तो देखते हैं कि इनमें से अधिकांश किसी न किसी ऋतु अथवा व्रत या उत्सव से संबंध रखते हैं।

ऋतु गीत

विभिन्न ऋतुओं के आने पर हृदय में जो उल्लास उत्पन्न होता है, उसका प्रकाशन भोजपुरी कवियों ने इन गानों में किया है। चैत्र का महीना हमारे वर्ष के आरम्भ का मास है। इन दिनों में वसन्त अपने पूरे साज, समाज के साथ विराजमान रहता है। कहीं कोयल अपनी कूक सुनाती है तो कहीं अन्य पक्षी कलरव करते सुनाई पड़ते हैं। अतः चैत्र मास में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'चैता' कहते हैं। इनका बिस्तृत विवरण यथावसर अन्यत्र प्रस्तुत किया जायगा। इसके पूर्व मास अर्थात् फागुन मास में होली का त्योहार मनाया जाता है। यह भी ऋतु संबंधी उत्सव है। इस मास में जो गाने गाये जाते हैं उन्हें 'फगुआ' या होली कहते हैं। ये गीत बड़ा आनन्द प्रदान करते हैं। फागुन मास की मादकता इन गीतों में भी पाई जाती है। 'फगुआ' और चैता वसन्त ऋतु के गेय गीत हैं।

इसी प्रकार वर्षा ऋतु में सावन के महीने में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'कजली' कहते हैं। स्त्रियाँ भूलों पर बैठ कर इन गीतों को बड़े आनन्द से गाती हैं। इस ऋतु में 'आल्हा' भी गाया जाता है। इन्हीं दिनों में बारहमासा भी गाया जाता है जिसमें प्रत्येक मास का वर्णन बड़ा रुचिकर प्रतीत होता है।

ऋतु संबंधी गीतों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनका संबंध

व्रत गीत

स्त्रियों के व्रतों से है अर्थात् जो स्त्रियों द्वारा विशेष स्त्री व्रतों के अवसर पर गाये जाते हैं। इन गीतों में बहुत से गीत, पिड़िया के गीत, गोधन के गीत, नागपंचमी के गीत, षष्ठी माता के गीत, शीतला माता के गीत और तीज के गीत प्रसिद्ध हैं।

श्रावण शुक्ला पंचमी को नागपंचमी का त्योहार मनाया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ अनेक विधिविधानों को सम्पन्न करके नाग देवता की पूजा करती हैं और गीत गाती हैं। भादों, भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्थी को बहुला का व्रत और इसी मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया को तीज का व्रत स्त्रियाँ करती हैं और अपने कोमल कंठ से मधुर गीत गाती हैं। इसी प्रकार कार्तिक मास के शुक्ल प्रतिपदा को गोधन का व्रत और कार्तिक शुक्ल षष्ठी को छठी माता का व्रत किया जाता है। अगहन मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को पिड़िया के गीत गाये जाते हैं। चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के नवरात्र के दिनों में शीतला माता के गीत सुनने को मिलते हैं। इस तरह ऋतुओं के क्रम से तथा व्रतों और त्योहारों के आधार पर इन उपर्युक्त गीतों का विभाजन किया जा सकता है।

४. विभिन्न जातियों के प्रकार से

हम लोकगीतों का वर्गीकरण विभिन्न जातियों में विशेष रूप से उन गीतों के प्रचार के आधार पर भी कर सकते हैं। कुछ ऐसे गीत हैं जो केवल किसी जाति विशेष के द्वारा ही गाये जाते है, जैसे बिरहा। यह अहीरों के द्वारा ही विशेष रूप से गाया जाता है। यदि इसे हम अहीर जाति का राष्ट्रीय गान कहें तो इसमें कुछ अत्युक्ति न होगी। अहीर जाति में बिरहा गाने का इतना अधिक प्रचार है कि वे लोग जब कभी अवसर मिला, इसे गाते रहते हैं। खेतों में निराई करते समय अथवा हल चलाते समय या घास का गट्ठर सिर पर लाद कर घर जाते समय, अहीर सदा बिरहा के गान में मस्त रहता है। इस गीत का उसके यहाँ इतना महत्व है कि विवाह जैसे मांगलिक अवसर पर बिरहा का गाया जाना आवश्यक समझा जाता है। अहीरों की बारात में बिरहा की बहार सुनकर किसका मन मुग्ध नहीं हो जाता। कन्या पक्ष तथा वर पक्ष के अहीरों में दो दल बन जाते हैं। पहिले एक दल बिरहा सुनाता है फिर दूसरे दल का व्यक्ति इसका उत्तर देता है। यह क्रम बहुत देर तक चलता रहता है और जिसे अधिक बिरहा याद रहता है उसी की विजय मानी जाती है। बिरहा का अधिक संख्या में याद होना ही उनकी बिजय का मापदंड है।

इसी प्रकार पचरा गीत का प्रचार दुसाधों (एक प्रकार की अस्पृश्य जाति) में अधिक हैं। दुसाध जाति में जब कोई व्यक्ति बीमार हो जाता है अथवा भूत-प्रेतादि बाधा से पीड़ित होता है तब उस जाति में जो बूढ़ा दुसाध होता है उसे बुलाकर पचरा गवाया जाता है। वह पचरा गाकर कुछ तन्त्र मन्त्र भी करता है और इस प्रकार रोगी निरोग हो जाता है। पचरा गीत का प्रचार केवल दुसाधों में ही पाया जाता है।

तेली 'विजयमल' अधिक गाते हैं। विजयमल में कुंवर विजयी की वीरगाथा सुन्दर तथा वीररसमय शब्दों में गाई गई है जिसके गान का विशेष प्रकार तेलियों में उपलब्ध होता है। नेटुआ आदि जातियाँ लोरकी गाने में बड़ी दक्ष होती हैं। इसी प्रकार कहांर नामक जाति जिन गीतों को गाती हैं उन्हें 'कहरवां' कहते हैं। कहांर जाति के द्वारा अधिक गाये जाने के कारण ही इनका नाम 'कहरवां' पड़ गया है। धोबी भी एक विशेष प्रकार का गीत गाते हैं जिन्हें 'धोबियट' कहते हैं।

वर्षा ऋतु में एक विशेष जाति के लोग ढोल को गले में बाँध कर 'आल्हा' गाते फिरते हैं। इस गीत को गाकर भिक्षा का आयोजन करना इनका व्यवसाय हो गया है। ये बड़े ही उच्च स्वर से वीर रस में आल्हा का पाठ करते हैं जो बड़ा ही प्रभावोत्पादक होता है। इसी प्रकार गोपीचन्द तथा भरथरी के गीतों के गाने का प्रचलन 'साइयों' में अधिक है।

५. क्रिया गीत के आधार पर

कुछ ऐसे भी लोक गीत पाये जाते हैं जो काम करते समय गाये जाते हैं। काम करते समय गीत गाते रहने से थकान का अनुभव नहीं होता है और साथ ही मनोरंजन भी होता रहता है। ऐसे गीत को अंग्रेजी में 'एक्शन सांग' कहते

हैं। हमने इन गीतों का नाम 'काम करते समय के गीत' अथवा 'क्रिया गीत' रखा है। इन गीतों की श्रेणी में जंतसार, रोपनी, सोहनी, और कोल्हू आदि के गीत आते हैं। जांत में आटा पीसते समय जो गीत गाया जाता है उसे 'जंतसार' कहते हैं इसे दो स्त्रियाँ मिलकर एक साथ ही गाती हैं। सोहनी के गीत उस समय गाये जाते हैं जब स्त्रियाँ खेत में निराई का काम करती हैं। यह गीत स्त्री समूह कोरस के द्वारा गाया जाता है। इसी प्रकार धान रोपते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'रोपनी' के गीत कहते हैं। जब तेली तेल पेरने के लिए कोल्हू चलाता है उस समय भी गीत गाये जाते हैं जो कोल्हू के गीत के नाम से प्रसिद्ध हैं। ये गीत एक विशेष कार्य करते समय गाये जाते हैं अतः इन्हें पृथक् श्रेणी में रखा गया है।

प्रधान रूप से लोक गीतों के उपर्युक्त पांच प्रकार के वर्गीकरण के पश्चात् इनके वर्ण्य विषय के आधार पर भी इनका विभाजन किया जा सकता है। जिस प्रकार काव्य का विभाजन मुक्तक और महाकाव्य के रूप में किया गया है ठीक उसी प्रकार इन गीतों का विभाजन भी गीत और प्रबन्ध गीत के रूप में किया जा सकता है। गेय गीत वे छोटे-छोटे गीत हैं जिनका कथानक छोटा है और जिनमें गेयता की प्रधानता है। गेयता ही इनकी आत्मा है। इस श्रेणी के गीतों में संस्कार तथा ऋतु सम्बन्धी सभी गीत आ जाते हैं, प्रबन्ध गीतों में कथानक की प्रधानता रहती है। एक ही कथा का वर्णन विस्तार पूर्वक उसमें पाया जाता है। यद्यपि इन गानों में भी गेयता होती है, परन्तु उनमें कथानक की ही प्रधानता रहती है। अंग्रेजी शब्दों के द्वारा यदि इन दोनों का पार्थक्य प्रकट करना चाहें तो पहिले प्रकार के गीतों को 'लोरिक' और दूसरे प्रकार के गीतों को 'बैलेड' कह सकते हैं। इस द्वितीय श्रेणी के गीतों में आल्हा, लोरिक, विजयमल, नयकवा बनजारा आदि गीत हैं।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी गीत हैं जो उपर्युक्त पांच श्रेणियों में अन्तर्भुक्त नहीं होते जैसे चरखे के गीत, मेले के गीत, और अनुभव के वचन हैं। ना सभी गीतों को प्रकीर्णक श्रेणी में रखा जा सकता है।

त्रिपाठी जी तथा पारीक का वर्गीकरण

पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने ग्राम गीतों का वर्गीकरण निम्नांकित ग्यारह श्रेणियां किया है।[1] १. संस्कार संबंधी गीत। २. चक्की और चरखे के गीत। ३. धर्मगीत। ४. ऋतु संबंधी गीत। ५–७. खेती भिखमंगों तथा मेले के गीत। ७. जाति गीत। ६. वीरगाथा। १०. गीत कथा तथा ११. अनुभव के वचन।

इस उपर्युक्त वर्गीकरण पर सम्यक् दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट ही प्रतीत होता है कि यह श्रेणी विभाग वैज्ञानिक नहीं है। हमारे उपर्युक्त पांच विभागों में ही इन सभी गीतों का अन्तर्भाव हो जाता है। संस्कार और धर्मगीत एक ही श्रेणी में आ सकते हैं। भिखमंगे के गीत और मेले के गीतों की कोई पृथक श्रेणी नहीं है। अनुभव के वचन जैसे घाघ और भड्डरी की उक्तियाँ गीत कोटि में नहीं

१. कविता कौमुदी भाग ५ ग्राम गीत पृ० ४५।

आतीं। अतः त्रिपाठी जी का यह ग्यारह विभाग हमारे उपर्युक्त पाँच विभागों का बृहदीकरण मात्र है।

राजस्थानी लोक गीतों के विद्वान् पं० सूर्यकरण पारीक ने अपनी पुस्तक में राजस्थानी गीतों का क्षेत्र विस्तार दिखलाते समय इन गीतों को उनतीस विभागों में विभक्त किया है। इस वर्गीकरण के विषय में भी हमें वही बात कहनी है जो त्रिपाठी जी के विषय में कही गयी है। पारीकजी के वर्गीकरण में भी हमें कुछ क्रम नहीं दिखाई पड़ता। उन्होंने हास्य, शृङ्गार तथा वीर रस को तीन श्रेणियों में रखा है जिनको एक श्रेणी में रखा जा सकता है। उसी प्रकार से भाई-बहन तथा पति-पत्नी के गीतों का अन्तर्भाव संस्कार या ऋतु संबंधी गीतों में किया जा सकता है।

(आ) लोक गीतों के प्रकार

लोक गीतों के अनेक प्रकार पाये जाते हैं। कुछ गीत ऐसे हैं जो विभिन्न संस्कारों के अवसरों पर गाये जाते हैं। विभिन्न ऋतुओं में उनके अनुसार कुछ गीत गाये जाने की प्रथा है। भिन्न-भिन्न जातियाँ एक विशिष्ट प्रकार के गीतों को गाती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ गीत ऐसे भी उपलब्ध होते हैं जो किसी काम के करते समय गाये जाते हैं। यहाँ हम सर्वप्रथम संस्कार संबंधी गीतों का उसके समय के अनुसार वर्णन करेंगे। संस्कारों में सर्वप्रथम संस्कार (जो आजकल किया जाता है) पुत्र जन्म है।

(क) संस्कार सम्बन्धी गीत

सोहर

पुत्र जन्म के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों को 'सोहर' कहते हैं। किसी-किसी गीत में इस शब्द का प्रयोग भी पाया जाता है जैसे :—

बाजेला अनंद बधाय, महल उठे 'सोहर' हो।

'सोहिलो' अथवा 'मंगल' शब्द के अभियान से इन्हीं गीतों का संकेत किया गया है। कहीं-कहीं पर सोहर के स्थान पर 'मंगल' शब्द भी व्यवहृत हुआ है।[२]

गावहु ए सखि गावहु, गाइ के सुनावहु हो,
सब सखि मिलिजुलि गावहु, आजु मंगल गीत हो।

तुलसीदासजी ने भी रामचरित मानस में राम जन्म के अवसर पर मंगल गीत ही गवाया है।

"गाँवहि मंगल मंजुल बानी,
सुनि कलरव कलकंठ लजानी।"

सोहर शब्द की उत्पत्ति 'शोभन' से ज्ञात होती है। सोहर के गीत सोहिलो के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। संभवतः यही 'शोभन' शब्द शोभिलो सोहिलो सोहर के रूप

१. पारीक : राजस्थानी लोक गीत पृ० २२ २५। २. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १।

में परिवर्तित होता हुआ इस रूप में आ गया है। भोजपुरी में 'सोहल' का अर्थ अच्छा लगना या सुहाना है जो संस्कृत के 'शोभन' का अपभ्रंश है।

पुत्र जन्म के अवसर पर जो मंगल गीत गाये जाते हैं वे 'सोहल' छन्द में होते हैं। इस सोहर छन्द में निबद्ध होने के कारण ही इन गीतों का नाम भी 'सोहर' पड़ गया है। भोजपुरी गीतों में जो सोहर उपलब्ध होते हैं उनमें तुक नहीं होता और न वे पिंगल शास्त्र के नियमों से जकड़े ही रहते हैं। वे तो पहाड़ी नदी की भाँति स्वच्छन्द रूप से बहते चले जाते हैं। तुलसीदासजी ने 'रामलाल नहछू' में जो सोहर लिखे हैं उनमें तुक मिलाया है और प्रत्येक पद में मात्रायें भी बराबर रखी हैं। उन्होंने पिंगल के अनुसार शुद्ध करके सोहर छन्द लिखा है :—

बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहंसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो।
अहिरिनि हाथ दहेड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उभरत जोबन देखि नृपति मन भावइ हो।
रूप सलोनि तंबोलिनी वीरा हाथहि हो।
जाकी ओर विलोकहिं मन उनसाथहि हो।
दरजिनी गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगन्धन बोरा हो।
नैन विसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो।
देइ गारी रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो।[1]

पुत्र जन्म भारतीय ललनाओं की ललित कामनाओं की चरम परिणति है। मानी हुई मनौतियों का मनोरम परिणाम है। इस शुभ अवसर पर पास-पड़ोस की स्त्रियाँ (विशेषतः ग्राम गीतों की पंडिता वृद्धायें) एकत्र होकर नव प्रसूता स्त्री के 'सूतिकागृह' के दरवाजे पर बैठ जाती हैं और रमणीय गीतों को सुना सुनाकर घर भर की स्त्रियों का विशेषतः जच्चा का मनोरंजन किया करती हैं। यह गीत बारह दिन तक गाया जाता है और जब बालक का 'बरही' संस्कार समाप्त हो जाता है तभी इन गीतों की भी समाप्ति होती है।

पुत्र जन्म के समय विभिन्न विधि विधान

देहातों में न तो कोई बच्चा जनने का अस्पताल ही होता है और न शिशुपालन की शिक्षा में दीक्षित धाय ही उपलब्ध होती है। ऐसी दशा में देहाती का घर ही उसका अस्पताल है और गाँव की अनपढ़ एवं अशिक्षित चमाइन ही उसकी धाय है। जब स्त्री को प्रसव पीड़ा उत्पन्न होती है तो गाँव की बूढ़ी स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। वे समझ जाती हैं कि प्रसव-काल समीप आ गया है और वे स्त्री को धैर्य प्रदान करती हैं। जब बालक पैदा हो जाता है तो घर का कोई पुरुष गाँव की चमाइन (चमार की स्त्री) को जो धाय का काम परम्परा से करती आती है बुलाने जाता है। वह तुरन्त आती है और बालक के नाल को काटने के लिये छुरी माँगती है। यदि

१. रामलला नहछू

छुरी या कैंची कुछ उपलब्ध न हुई तो साग काटने की हँसिया-हँसुआ ही काम में लाया जाता है। धनी घरों में सुन्दर छुरी रखी जाती है। गीतों में कहीं न कहीं सोने की छुरी माँगने का वर्णन पाया जाता है। जिस छुरी से धाय नाल काटती है वह उपहार रूप में उसी को दे दी जाती है इसलिये चाँदी या सोने की छुरी लेने का वह विशेष आग्रह करती है। सूतिकागृह को भोजपुरी में 'सउरी' कहते हैं। इस सूतिकागृह के आगे, दरवाज़े पर, निरन्तर मिट्टी की अँगीठी में जिसे 'बोरसी' कहते हैं-आग जला करती है जिससे बुरी प्रेतात्मायें घर में प्रवेश कर नव-जात बालक को हानि न पहुँचावें। इस बोरसी में उपला (गोंउठा), लकड़ी या धान की भूसी जला करतो है जिससे आग कभी बुझने न पाये। आग में जलने के लिय जो चीज़ डाली जाती है उसे 'पासंग' कहते हैं। कहीं-कहीं गीतों में सोने की 'बोरसी' में चन्दन की लकड़ी जलने का वर्णन पाया जाता है। जच्चा बारह दिनों तक उसी घर में ही पड़ी रहती है। धाय सबेरे शाम आती है और जच्चा की परिचर्या कर चली जाती है। जच्चा को 'अलवांति' कहा जाता है और उसकी सेवा शुश्रूषा का बड़ा ध्यान रखा जाता हैं। उसके खाने के लिये हलुआ—जिसे 'काँची' कहते हैं और दूध दिया जाता है। गरीब लोग हल्दी में दूध मिलाकर पीने को देते हैं। संभवतः हल्दी पीने से देह का दर्द दूर हो जाता है और दूध पीने से शरीर की पुष्टि होती है। इस समय जच्चा को खट्टा, तीता आदि खाने को नहीं दिया जाता क्योंकि इसमे हानि हो सकती है।

सूतिका गृह के बाहर उसकी रक्षा के लिये कोई बूढ़ी औरत दिन रात निगरानी करती है। पहरेदार की भाँति वह चौबीस घंटा वहीं रहती है। इसे 'सउरी अगोरना' कहते हैं। बूढ़ी औरतों के द्वारा सदा चौकन्ने रहने एवं ध्यान-पूर्वक रक्षा के कारण ही 'सउरी अगोरना' भोजपुरी में एक मुहावरा हो गया है जिसका अर्थ है सतर्कता के साथ किसी वस्तु की रक्षा करना। सूतिका गृह में धाय के अतिरिक्त कोई भी स्त्री या पुरुष नहीं जा सकता। बच्चे भी इससे वंचित रखे जाते हैं। सूतिका गृह में बिल्ली न घुसने पाये इस बात का ध्यान रखा जाता है। क्योंकि डर रहता है कि बिल्ली के रूप में यमराज बालक को स्पर्श न कर दे जिसे 'जम छूना' कहते हैं। जच्चा जितने दिनों तक सूतिका गृह में रहती है उतने दिनों तक उसके शरीर का प्रसाधन एवं अलंकरण नहीं होता। उसके लम्बे बाल खुले रहते हैं। गाँव के पुरोहित या पंडित से कोई शुभ दिन जच्चा के स्नान के लिये पूछा जाता है। यह रविवार या मंगलवार ही होना चाहिये। उस दिन स्त्री सूतिका गृह से निकल कर, स्नान करती है, अपने शरीर का अलंकरण और प्रसाधन करती है और सास और जेठानी के पैर छूकर उसका आशीर्वाद प्राप्त करती है।

बालक जब छः दिन का होता है तो 'छठी' नामक संस्कार किया जाता है और बारह दिन का हो जाता है तो 'बरही' संस्कार संपादित किया जाता है। 'बरही' संस्कार स्त्री के सूतिकागृह से निकलने के पश्चात् ही होता है। इस दिन पिता नवजातक बालक का मुंह सर्वप्रथम देखता है उसे गोद में लेकर रुपया देता है। घर के अन्य पुरुष भी ऐसा ही करते हैं। इसी दिन ज्योतिषी को बुलाकर

बालक का नामकरण किया जाता है। भाई बन्धुओं को भोज (दावत) दिया जाता है। यह दिन बड़ी प्रसन्नता का होता है।

एक बात और। बालक जब पैदा होता है तो उसके जन्म की प्रसन्नता में थाली (छीपा) बजाई जाती है। देहातों में किसी अन्य वाद्य-यन्त्र के उपलब्ध न होने के कारण थाली ही बजाई जाती है। संभवतः यह उस प्रथा का प्रतीक है जो प्राचीन काल में इस अवसर पर गायन और वादन के रूप में किया जाता था। थाली के बजाने से बालक के कानों में शब्द प्रवेश करता है जिससे उसके सुनने की शक्ति दृढ़ होती है, इसी कारण थाली बजाने का यह वैज्ञानिक रहस्य भी है। 'थाली बजाना' आजकल भोजपुरी में एक मुहावरा भी है जिसका अर्थ किसी घटना का साक्षीभूत होना है।

बालक जब 'सतइसा' में पड़ जाता है तो यह बुरा माना जाता है। बालक का पिता उसका मुंह सत्ताइस दिनों तक नहीं देखता और अन्तिम दिन तेल में बालक का प्रतिबिम्ब देखकर ही उसे पुनः देखता है। उस दिन पूजा पाठ कर उस अशुभ नक्षत्र की शान्ति की जाती है।

पुत्र जन्म के अवसर पर धनी घरों में 'पौरिया' नचाने की भी प्रथा है। पौरिया प्रायः मुसलमान होते हैं जो पुत्र होने पर रामचन्द्र के जन्म लेने की कथा को गा-गाकर नाचते हैं। 'श्री रामचन्द्र जनम लिहले चइत रामनवमी' यह उनके गीतों की प्रधान टेक है। परन्तु यह प्रथा धीरे-धीरे अब उठती चली जा रही है। राम के जन्म के अवसर पर महर्षि वाल्मीकि ने भी गन्धर्वों के गाने और अप्सराओं के नाचने का वर्णन किया है।

जगुः कुलंच गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरो गणाः।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥

वा० रा० बालकाण्ड १८।१६.

संभवतः पौरियों की उपर्युक्त प्रथा इसी प्राचीन प्रथा का अवशेष मात्र है।

पुत्र जन्म के अवसर पर पिता घर से दूर कहीं परदेश में गया हो तो उसे सन्देश भेजने (जिसे 'लोचन' ले जाना कहते हैं') की भी प्रथा है। गाँव का नाई या बारी (एक जाति) इस शुभ सन्देश को पिता के पास तुरन्त पहुँचाता है। गीतों में वाल्मीकि के आश्रम में लव-कुश के पैदा होने का सन्देश राम के पास शीघ्र पहुंचाने का उल्लेख पाया जाता है। उस समय पिता सन्देशवाहक को मनोवांछित द्रव्य प्रदान करता है। अपने आनन्द को मूर्त रूप में प्रकट करने के लिये धन, धान्य, हाथी, घोड़ा आदि लुटाता है। कालिदास ने रघु के जन्म के अवसर पर पुत्र जन्म का सन्देश पहुँचाने एवं दान देने का वर्णन किया है।

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते, कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम्।
अदेयमासीत् त्रयमेव भूपतेः शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥

रघुवंश ३।१६

पुत्र जन्म के गीतों में आनन्द के उल्लास का विशद वर्णन होना स्वाभाविक है। इसमें जच्चा के हृदय में गुदगुदी पैदा करने वाली झाँकी भी देखने को मिलती है।

सोहर का वर्ण्य विषय कहीं-कहीं सन्तानहीन बाँझ स्त्रियों की करुण दशा का चित्र सहृदयों के हृदय में विशद सहानुभूति उत्पन्न करता है। कोई वन्ध्या स्त्री अपनी मनोव्यथा का वर्णन करती हुई कह रही है कि जिस प्रकार वन में कोयल कुहुकती है उसी प्रकार मेरा हृदय पुत्र के बिना दुःखी रहता है। जिस प्रकार अँगीठी (बोरसी) की आग धीरे-धीरे जलती है उसी प्रकार मेरा पुत्रहीन हृदय धीरे-धीरे कष्ट पाता हुआ जलता रहता है।

"जइसन बन में के कोइरिया, बने बने कुहुकेले हो।
ए राम ओइसन जियरा हमार कुहुकेला, एकरे बालक बिनु हो।
जइसन बोरसी आग हवे धीरे-धीरे सुनुगेला हो।
ओइसे जियरा हमार सुनुगेला, एकरे बालक बिनु हो।"

इस गीत में पुत्रहीन स्त्री का विलाप सचमुच पाषाण हृदय को भी पिघला देने वाला है।

सोहरों का प्रधान वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें स्त्री पुरुष की रतिक्रिया, गर्भाधान, गर्भिणी की शरीर-यष्टि, प्रसवपीड़ा, दोहद, उसकी पूर्ति, धाय का बुलाना और पुत्र जन्म का वर्णन पाया जाता है। भवभूति ने पुत्र या सन्तति को स्त्री और पुरुष दोनों के अभिन्न प्रेम की गाँठ कहा है[1]। वास्तव में जब दोनों का प्रेम मूर्त रूप ग्रहण करता है तब उसे सन्तति कहते हैं। जिस समय इन दोनों के प्रेम में गाँठ पड़ती है उसका वर्णन कितनी संयत भाषा में किया गया है। स्त्री कहती है[2] :—

"ए सजइत बुझि जाहु आपन अवगुनवा,
मुसुकि जनि बोलहु हो।
ए सजइत मिलि जुलि बन्हलो मोटरिया,
खोलत बेरियां अकसर हो।"

भवभूति ने जिसे ग्रन्थि कहा है, गीतों में इसी को 'गठरी' कहा गया है। गर्भवती होने पर गर्भिणी अनेक वस्तुओं को खाना चाहती है। इसे संस्कृत में 'दोहद' कहते हैं। कालिदास ने रघुवंश में इसका बड़ा सुन्दर वर्णन किया है[3]। गीतों में दोहद का उल्लेख अनेक स्थानों पर आया है तथा पति उस दोहद की पूर्ति करता हुआ प्रयत्नशील पाया जाता है। पति स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन सी वस्तु खाने में अच्छी लगती है।[4]

"आरे पातरि पातरि सुनर मुख दुरहरि हो।
कवन कवन फलवा मन भावे, कहिना समुझावहु हो।"

---

१. अन्तःकरण-तत्वस्य, दम्पत्योः स्नेह संश्रयात्। आनन्दग्रन्थिरेको य मपत्यमिति कथ्यते। २. उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भा० १ पृ० ६७-६८। ३. न मेऽहिया संशति किंचिदीप्सितं, स्पृहावती वस्तुषु केषु मागधी। इतिहस्य पृच्छत्यनुवेलमाहतं, प्रियासखीमुत्तरकोशलेश्वरः रघुवंश ३।५। ४. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५१-५२।

इस पर स्त्री उत्तर देती है :—

"भातावा त भावेला धानहि केरा,
दलिया रहरि केरा हो।
ए प्रभु रेहुश्रात भावेला मछरिया,
मासु तोतिले केरा हो।
ए प्रभु फलवा त भावेला निबुश्रा,
केरवा नरियर भावे हो।"

गर्भ का सांगोपांग तथा विस्तृत वर्णन इन गीतों में उपलब्ध होता है। गर्भिणी का शरीर पिराने लगता है, वह प्रसव वेदना से व्याकुल है।[1] ऐसी दशा में वह उस पुरुष (अपने पति) को बुलाने का आग्रह करती है जिसने उसे यह कष्ट दिया है।

"कापारा त हमरो टनकेला, ओदारा चीलीकेला ए।
राजा दुनियाँ भइले अनसुन, कवन कही कुसल ए।"

इतने में उसका पति धगड़िन (धाय) को बुलाने के लिए दौड़ पड़ता है और धगड़िन से अपने घर चलने के लिए कहता है। अब वह पूछती है किसलिए मुझे बुला रहे हो तब वह उत्तर देता है कि[2]:—

"ना मोरी माई बियाले, त बहिना आसापति ए।
ए धड़गिन मोरा घरे घरनी बेयाकुल, रउरा के चाहेले ए।"

गर्भिणी की शरीर यष्टि का कितना सहानुभूतिपूर्ण वर्णन इस मनोरम गीत में पाया जाता है[3]।

"दुवरा से अइले नंदलाला, नाजो के मुंहवा देखेले हो।
आमा दुलहिन के ओठवा भुरइले, हरदी मुंहवा पियर रे।
सासु मोरा मुंहवा निरेखे, ननद मुंहवा चूमेले हो।
बहुआ धीरे धीरे अंगव वेदनिया, होरिल तोहरा होइहै हो।

पुत्र जन्म के एक गीत में लव, कुश के जन्म का जब समाचार राम को मिलता है तब हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस आदि दान करते हैं। पुत्र जन्म के बाद सीता बाल्मीकि के आश्रम से, जब अयोध्या लौटती है तब वहाँ घोड़ा, हाथी कुछ भी नहीं पाती। इस पर जब वे प्रश्न करती हैं तो उत्तर मिलता है कि पुत्र जन्म के उत्सव पर रामचन्द्र ने घोड़ा, हाथी, गाय, भैंस को ब्राह्मण और भाटों को दान में दे दिया है[4]।

"हथिया ना देखो हथिसारावा, भँइसि डील डाबर हो।
लालाना गोऊना देखो गोऊसालावा, अजोध्या हमार लुटि गइलेहो।
हथिया त देखो बभन दान, भँइसि भटन दान हो।
ललना गइया भइल साधु दान, गोबिन का जनम भइले हो।"

---

१. वही पृ० ५६। २. वही पृ० ५७। ३. वही भूमिका पृ० ३०। ४. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ०६४।

किम्बहुना रामचन्द्र ने हीं नहीं, सीता की सास और ननद ने भी इस अवसर पर प्रचुर दान दिया :—

"काकाना ननद दान कइलि, दुलरी कइली सामु दान हो।
राम धन, धान लुटवले, उछाह सतति भइबे हो।"

जहाँ इन गीतों में पुत्र के पैदा होने पर महान् उत्सव मनाया जाता है वहाँ पुत्री के जन्म के कारण विषाद की गहरी रेखा माता के मुंह पर दिखाई पड़ती है। वह कहती है कि जैसे पुरैने का पत्ता हवा के कारण काँपता है वैसे ही मेरा हृदय पुत्री के जन्म होने से भावी दुःख के कारण थरथर काँप रहा है। पहिले पुत्र पैदा होने पर मुझे शाल ओढ़ने और बिछाने को मिलता था, मैं मेवा खाती और सुख पूर्वक सोती थी। परन्तु अब पुत्र जनने के कारण कुश ओढ़ने के लिये और कुश ही बिछाने के लिये मुझे दिया गया है। जंगली फल भोजन में मिलता है और खुखुड़ी मक्का की सूखी बाल या हल्की लकड़ी जो जल्दी जल जाती है —'पासंग' जलाने को मिली है। वस्त्र न मिलने के कारण रात को नींद भी नहीं आती। यह गीत सुनिये[1] :—

"साल ओढ़न साल डासन मेवा फल भोजन रे।
ए ललना चनन के जरेला पसंगिया, निनरि भल आवे ला रे।
जइसन दह में के पुरहन दहे बिके कांपेले रे।
ए ललना ओइसन कांपेले हमरो हियरा धिया कारे जनम रे।
कुस ओढ़न, कुस डासन, बन फल भोजन रे।
ए ललना खुखुड़ी के जरेला पसंगिया, निनरियो ना आवेला रे।

२. खेलवना

यह गीत भी सोहर के समान पुत्र जन्म सुखद अवसर पर गाया जाता है परन्तु सोहर से इसमें कुछ भिन्नता रहती है। सोहर में विशेषकर पुत्र जन्म की पूर्व पीठिका का वर्णन रहता है पर खेलवना के गीतों में उत्तरपीठिका का। पुत्र के लिये ललचने वाली स्त्री गर्भ की वेदना से व्याकुल तरुणी वधू के मंगल साधन में लगी सास, धाय को दौड़कर बुलाने वाला पति, बालक के उत्पन्न होने पर धन धान्य माँगने वाली धाय ये सब सोहर के प्रतिपाद्य विषय हैं। परन्तु सद्योजात शिशु का रोदन, माता का आनन्द, सास की प्रसन्नता, अपने कुलांकुर के पैदा होने के हेतु सर्वस्व लुटा देने वाले पिता का हर्ष 'खेलवना' के मुख्य विषय हैं। यद्यपि सोहर और खेलवना के गीतों के बीच में कोई निश्चित सीमान्त रेखा नहीं खींची जा सकती परन्तु स्थूल रूप से दोनों गीतों में यही पार्थक्य है। इन दोनों प्रकार के गीतों का वर्ण्य विषय समान होने के कारण 'सोहर' के भीतर ही 'खेलवना' का अन्तर्भाव माना जाता है। खेलवना के एक गीत में ननद अपनी भावज से कहती है कि मैं तुम्हारे पुत्र होने पर नथिया, झुलनी, हार, जोसन, हलका, हसुली, कंगना, कंठा और टीका आदि अनेक गहनों को उपहार (नेग) में लूंगी[2]—

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७१। २. वही पृ० १०४।

"जाहु तोरा ए भउजी होरिला होइले, तबे आइबि तोरा आंगनवा।
नथिया भी लेबो, झुलनी भी लेबो, लेबो जड़ाऊ कांगनवा।
कंठा भी लेबो, टीका भी लेबो, लेबो सब सोना के गाहानवा।"

'सोहर' प्रेम की मधुर कहानी कहते हैं अतः इनके प्रत्येक पद में रस कूट-कूट कर भरा रहता है। भोजपुरी सोहर सरसता और कोमलता के लिये प्रसिद्ध है।

मैथिली और भोजपुरी सोहर

मैथिली सोहरों की परम्परा बड़ी प्राचीन है। इनमें भी भोजपुरी सोहरों की भाँति दोहद, प्रसवपीड़ा, आनन्द, उछाह का वर्णन पाया जाता है। परन्तु शृङ्गार रस की अपेक्षा इनमें करुण रस का पुट अधिक है।

तलफि तलफि उठय जियरा कौना विधि बोधब हे।
ललना हमरो बलमु परदेश संदेश न पावल हे।"

इस गीत में[1] विरह की कितनी गंभीर व्यंजना हुई है। भोजपुरी सोहरों में तुक का नितान्त अभाव रहता है परन्तु मैथिली 'सोहर' तुकान्त होता है। लेकिन कोई कोई 'ब्लैंक वर्स' की तरह भी लिखा गया है[2]।" इनके वर्ण्य विषय के संबंध में 'राकेश' जी लिखते हैं कि "सोहर में माशूक, आशिकों और नायिकाएं नायकों की जुल्फें संवारने के लिये बेचैन नहीं दीखती। ... .सोहर सुखान्त होता है और इसमें आशा की निर्झरिणी टेढ़ी नागिन सी बल खाती बिजली सी दौड़ती चली गई है[3]।"

इस प्रकार हम भोजपुरी और मैथिली सोहरों में समानता पाते हैं। दोनों की भाव धारा का प्रवाह समान रूप मे पाया जाता है। दोनों की आत्मा समान है।

३. मुंडन के गीत

बालक जब कुछ बड़ा हो जाता है तब उसका मुंडन संस्कार किया जाता है। इसे संस्कृत में 'चूड़ाकर्म' कहते हैं। तुलसीदास ने वशिष्ट के द्वारा राम के चूड़ाकर्म संस्कार करने का उल्लेख 'रामचरित मानस' में किया है। यह हमारे षोड़श संस्कारों में से एक संस्कार है। इस संस्कार के पहले बालक के बालों को नहीं काटा जाता। देहातों में तो केशों को साफ रखने के लिये कंघी भी नहीं लगाते। फलस्वरूप बालों में जटायें पड़ जाती हैं। यह संस्कार बालक के तीसरे, पाँचवें या साँतवें वर्ष—विषम वर्ष—में किया जाता है। इससे अधिक दिनों तक बालक को बिना मुंडन संस्कार किये रखना अनुचित समझा जाता है।

कोई स्त्री जिसके पुत्र का मुंडन संस्कार बारह वर्ष तक नहीं हुआ है इस घटना के अनौचित्य की ओर अपने पति का ध्यान आकर्षित करती हुई कहती है कि :[4]

१. राम एकबाल सिंह राकेश, मैथिली लोकगीत पृ० ८०। २. वही पृ० ५०। ३. वही पृ० ५०। ४. आर्चर: भोजपुरी ग्राम्य गीत पृ० १६३।

'आरे आरे स्वामी कवन राजा कहल कुछ मानहु हो।
बारह बरस के लाल भये तुहु मुंडन करावहु हो।"

अर्थात् ऐ पति ! मेरा कहना मानो। बालक बारह वर्ष का हो गया है। अब तो इसका मुंडन करावो। स्त्रियाँ पुत्र की प्राप्ति के लिए भिन्न-भिन्न देवताओं की मनौती मानती हैं और कहती हैं कि यदि मुझे पुत्र होगा तो हे देव ! तुम्हारे स्थान पर उसका मुंडन करूँगी। इस प्रकार बालक का मुंडन संस्कार किसी पवित्र तीर्थ या देवस्थान में होता है। इस कार्य के लिए भोजपुरी प्रदेश के अधिकांश लोग मिर्जापुर जिले में स्थित विन्ध्याचल की देवी के पास जाते हैं और वहीं बालक का मुंडन संस्कार किया जाता है। जो लोग किसी विशिष्ट तीर्थ स्थान में मुंडन कराने का मनौती नहीं मानते वे गंगा या किसी समीपस्थ नदी के किनारे बालक का मुंडन कराते हैं।

यह अवसर बालक के घरवालों के लिए बड़े उत्सव का समय होता है। गाँव की बूढ़ी स्त्रियाँ बाजे के साथ गंगा के किनारे पहुँचती हैं। वहाँ बालक की माता स्नान करके गीले कपड़ों के साथ गंगा के इस पार बैठी रहती है, और दूसरी स्त्रियाँ बालक को नाव में बैठाकर उस पार ले जाती हैं। इस पार एक खूंटा गाड़ कर उसमें नई रस्सी बाँध देते हैं जिसमें आम के पत्ते लगे रहते हैं। इस रस्सी को नाव पर बैठी स्त्रियाँ अपने साथ उस पार तक लेती जाती हैं। इस प्रकार वे पूरी गंगा को रस्सी से नाप लेती हैं। इस प्रक्रिया को 'गंगा ओहारना' कहते हैं। जब स्त्रियाँ उस पार से लौट कर आती हैं तो नाई बालक के बाल को कैंची से काटता है। वह इसके लिए दक्षिणा भी माँगता है जिसके मिल जाने पर ही वह केश-कर्तन कार्य समाप्त करता है। जब नाई बाल काटने लगता है तब बालक की बहन अथवा उसकी फूआ उन बालों को अपने आंचल (फाड़) में रखती जाती है जिसे 'झालर परीछना' कहते हैं। इसके लिए वह अपना 'नेग' माँगती है और लड़के का पिता प्रसन्न होकर उसे रुपया या गहना देता है। घर लौट कर आने पर भाई बन्धुओं और ब्राह्मणों को 'भोज' दिया जाता है। ये लोग आकर आनन्द से भोजन करते हैं और बालक को आशीर्वाद देते हैं।

मुंडन के गीतों में कहीं तो कोई स्त्री इन्द्र भगवान् से जल न बरसाने की प्रार्थना करती है तो कहीं बालक की फूआ अपने भानजे के मुंडन में शामिल होने के लिए चली आ रही है। कहीं भाई अपनी बहन से 'झालर' परीछने की प्रार्थना करता है तो कहीं वह बहन अपने पिता से 'नेग' के रूप में आभूषण माँगती हुई दिखाई पड़ती है। नीचे के गीत में कोई बालक अपनी फूआ से 'नेग' मांगने के लिए आग्रह करता करता है तब वह विभिन्न गहनों की याचना करती है।[1]

"दादी के जनमल कवन फुआ, फुआ झालरि परीछहु हो
आज हमार मुंडन नेग रउरा माँगहु हो।

१. आर्चर भो० ग्रा० गी प० १६३।

लेबों मैं नाके के बेसर काने के तरिवन हो।
लेबों में हाथ के कंगनवां त झालर परीछबी हो।"

एक दूसरे गीत में बालक की फूआ अपने नेग के रूप में पाँच मुहर और एक कपड़ा (साड़ी) माँग रही है।[1]

"परिछब ए बाबू परिछन परिछि देखाइब हो।
पाँच मोहर एक चीर भतीजवा नेछावर हो॥"

बालक के मुंडन के लिए सारे गाँव में निमंत्रण देने का यह उल्लेख देखिए :[2]

"पांच ही पान के बिड़वा त लवंग डोभल हो।
नउवा सगरे नेवत देइ आव ललन जी के मुंडन हो॥"

मुंडन के दिन वर्षा न करने के लिये भगवान् से प्रार्थना करने वाली बालक के फूआ की यह विनती कितनी प्रेम पूर्ण है।[3]

"अंगना के ठाढ़ी कवनी फुआ देव मनावेली हो।
जनी देव गरीजहु जनी देव बरीसहु जनी झर लावहु हो।
आज भतीजवा के मुंडन हम झालर परीछब हो।"

५. जनेऊ के गीत

भोजपुरी-द्विजाति-समाज में जनेऊ तथा विवाह दो प्रधान संस्कार समझे जाते हैं। यद्यपि विवाह के समान जनेऊ के अवसर पर विशेष धूमधाम नहीं रहता परन्तु तो भी उच्च वर्ण के लोग ब्राह्मण और क्षत्रिय बड़े उत्साह के साथ अपने बालकों का यज्ञोपवीत संस्कार करते हैं।

जनेऊ शब्द यज्ञोपवीत का अपभ्रंश रूप है। इसे 'उपनयन' संस्कार भी कहते हैं। 'उपनयन' शब्द का अर्थ है वह संस्कार या विधि जिसके द्वारा विद्यार्थी गुरु के समीप लाया जाता है, उपनीयते गुरुसमीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्। प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् बालक गुरु के पास आश्रम या गुरुकुल में पढ़ने के लिये भेज दिया जाता था। इसलिये इस संस्कार को 'उपनयन' कहते थे। यज्ञोपवीत धारण करने के समय से ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों अर्थात् नियमों का पालन करना आवश्यक होता है इसलिये इसे 'व्रतबन्ध' भी कहते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के लिये यज्ञोपवीत धारण करना नितान्त अनिवार्य है। मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शूद्र होता है परन्तु संस्कार के पश्चात् ही द्विज कहलाता है :

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते"

प्राचीन काल में जो जनेऊ पहिना जाता था वह अपने हाथ के कते हुए सूत का ही बना हुआ होता था। कई गीतों में सूत कात कर जनेऊ बनाने का उल्लेख पाया जाता है। ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की अवस्था में होना चाहिये। क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य का बारहवें वर्ष में यज्ञोपवीत होना शास्त्र सम्मत है।[4]

१. वही पृ० १६३। २. आर्चरः भो० ग्राम्य गीत पृ० १६२। ३. वही पृ० १६२। ४. अष्टमें वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्, गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम्, द्वादशे वैश्यम्।

उपनयन संस्कार के समय के विषय में शतपथ ब्राह्मण का यह मत है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिये।[1] इसीलिये आजकल ब्राह्मणों के यहाँ जो यज्ञोपवीत होता है वह फागुन और चैत्र के महीनों में ही होता है।

धनी तथा प्रतिष्ठित लोग यज्ञोपवीत संस्कार को सम्पादित करने के लिए किसी विद्वान् कर्मकांडी अथवा काशी के वैदिक पंडित को—जिसे बेदुआ कहते हैं—बुलाते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार होने के एक दिन पहले बालक के अभ्यासार्थ उसे एक कच्चे सूत का धागा इसलिये पहना देते हैं कि वह शौचादि के समय जनेऊ को प्रयोग में लाना सीख जाय। भोजपुरी प्रदेश में इस कच्चे सूत के धागे को 'गोबर जनेऊ' कहते हैं। यज्ञोपवीत संस्कार की पूर्व रात्रि को बालक को व्रत रहना पड़ता है। दूसरे दिन वैदिक जी आते हैं। तथा संस्कार कार्य प्रारम्भ हो जाता है। यज्ञस्थान के पास वेदी बनती है। सोलह मिट्टी के कच्चे 'पुरवों' में चने की दाल भर कर उस पर जनेऊ रख दिया जाता है। अनेक प्रारंभिक विधि-विधानों के पश्चात् बालक के बाल प्रथम बार छुरे (उस्तरे) से काटे जाते हैं। इसके पूर्व बालक के बाल छुरे से नहीं काटे जाते। नाई इन बालों को काटने के लिये अपनी दक्षिणा माँगता है जो सवा रुपये से कम नहीं होती। नाई बाल काटता जाता है और बालक की बहन या फूआ उन बालों को अपने आँचल में रखती जाती है। इस कार्य के लिये वह अपनी दक्षिणा—जिसे नेग कहते हैं लेती है जो आभूषणों के रूप में उसे दिया जाता है। इस कार्य के पश्चात् बालक के शरीर में हलदी लगाकर उसे स्नान कराया जाता है। साथ ही गाँव की स्त्रियाँ अपने कलकंठ से यह गाती जाती हैं :

प्रथा

'पाँच सखी आही मीलिके,
हरदी चढ़ाव हमरा लाल के
बारहो बाजन बजाइके,
हरदी चढ़ाव हमरा लाल के।"

स्नान करने के पश्चात् बालक का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है। वह मूंज का डांड़ा, मृगचर्म का वस्त्र और पलास का दंड धारण करके ब्रह्मचारी बन जाता है। जहाँ मृगचर्म पहनने के लिये नहीं मिलता वहाँ मृगचर्म का बना यज्ञोपवीत ही पहना दिया जाता है। यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात् वह ब्रह्मचारी बालक गुरुकुल में विद्या पढ़ने जाने के लिये धन की याचना करता है जिसे 'भीख माँगना' कहते हैं। वह अपनी माता, कुटुम्ब की स्त्रियों तथा अन्य सम्बन्धियों के पास जाता है और भीख माँगता' है। यह भिक्षा तीन बार माँगी जाती है। पहली भिक्षा आचार्य को दी जाती है, दूसरी माता को और तीसरी पिता को। उच्च तथा धनी घरानों में ब्रह्मचारी को इस भिक्षा में हजारों रुपये मिलते हैं जो आदर और प्रतिष्ठा का सूचक समझा जाता है। यह प्रथा उस प्राचीन प्रथा की याद दिलाती है जब

---

१. वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम्। सर्वकालमेके। श० प० ब्रा०।

प्रत्येक गृहस्थ का पुत्र ब्रह्मचारी बनकर गुरुकुल में रहता था और भिक्षा की याचना कर अपना निर्वाह करता था। भिक्षा माँगने के पश्चात् ब्रह्मचारी खड़ांऊ पहने, कोपीन धारण किये और पलाश दंड लेकर काशी और काश्मीर विद्या पढ़ने के लिये चल पड़ता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि प्राचीन काल में काशी और काश्मीर ही विद्या के प्रधान केन्द्र थे और बिना वहाँ गये किसी की शिक्षा पूरी नहीं समझी जाती थी। वही पुरानी प्रथा आज भी चली आ रही है। काशी जाने के लिए ब्रह्मचारी ज्योंही प्रस्तुत होता है और अभी दो चार कदम भी नहीं चलने पाता कि घरवाले 'लौटि आव बबुआ' कह कर उसे बुला लेते हैं और इस प्रकार ब्रह्मचारी रहकर विद्याध्ययन करने का २०–२५ वर्षों का कार्य केवल पाँच सात मिनटों में ही समाप्त हो जाता है।

प्राचीन काल में गुरुकुल से लौटने के पश्चात् ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार होता था। वह अपने ब्रह्मचारी के वेष को त्याग कर गृहस्थ की वेशभूषा को धारण करता था। शरीर का अलंकरण और प्रसाधन करता था। ठीक इसी प्रकार (भोजपुरी) ब्रह्मचारी के काशी से पढ़कर लौटने के पश्चात् उसका समावर्तन संस्कार किया जाता है। उसकी पादुका, कौपीन और मृगचर्म को हटाकर नूतन वस्त्रों से उसे सुसज्जित किया जाता है। उसके शरीर पर अंगराग लगाया जाता है और उसको आभूषण पहिनाया जाता है। वैदिक जी तथा अन्य गुरुजनों के आशीर्वाद के पश्चात् यह कार्य समाप्त होता है। प्राचीन भारत में चूडाकर्म, यज्ञोपवीत और समावर्तन ये तीन पृथक्-पृथक् संस्कार थे और भिन्न-भिन्न समयों पर किये जाते थे परन्तु आजकल ये तीनों संस्कार केवल चौबीस घंटे के भीतर समाप्त कर दिये जाते हैं; फिर भी इस प्रथा से चाहे यह विकृत ही क्यों न हो, प्राचीन भारतीय संस्कृति की झलक हमें देखने को मिलती है। अतः इस दृष्टि से इस प्रथा का मूल्य कुछ कम नहीं है।

जनेऊ के जो गीत गाये जाते हैं उनमें इस संस्कार में किये जाने वाले प्रायः विभिन्न कृत्यों का वर्णन पाया जाता है। कहीं पर ब्रह्मचारी किसी स्त्री को माता कहकर सम्बोधित करता हुआ भिक्षा देने की प्रार्थना करता है तो कहीं वह विद्या पढ़ने के लिये काशी और काश्मीर जाने के लिये प्रस्तुत है। नीचे के गीत में ब्रह्मचारी किसी स्त्री से भिक्षा की याचना कर रहा है। गृहस्वामिनी उससे पूछती है कि तुम क्या लोगे ?

वर्ण्य विषयः

"किया लेवे बरुआ रे धोती रे पोथी, किया लेबे पीयर जनेव।
किया लेबे बरुआ रे सोवरन भिखिया, जाही धरे कान्हर जनेव।"

भिक्षा माँगने का यह दूसरा दृश्य देखिये। ब्रह्मचारी काशी से आकर किसी के घर भिक्षा माँगने गया है। वह कहता है कि ऐ माता! मुझे भिक्षा दो, हम दूर देश के रहने वाले हैं। परन्तु भिक्षा देने में विलम्ब होने के कारण

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १०७।

वह चला जाता है और पुनः भिक्षा देने पर भी नहीं लेता है। तब गृहस्वामिनी कहती है कि तुम भिक्षा माँगकर चले जाते हो और देने पर भी नहीं लेते।[1]

"काशी जी से उजे अइली रे बरुआ ठाढ़ भइले।
कवन बाना दुआर भीखि देहु भिखि देहु।
मायरी कवनी देई हम दूर देसी हो लोग।
दीहल भीखियो ना लेला रे बरुआ।
माँगी घरे चलि जाई।"

प्राचीन काल में घर में चर्खे से सूत कात कर उसका जनेऊ बनाकर पहना जाता था। एक गीत में बहन द्वारा काते गये सूत के जनेऊ का भाई द्वारा पहनने का उल्लेख पाया जाता है:

"कवनी मुहइया सूत कातेली भल ओटैली।
पूरेले कवन राम जनेऊ, कवन बरुआ पहिरमु।"

बालक अपने पिता से पूछता है कि ऐ माना! मेरा जनेऊ कैसे होगा। इस पर वह उत्तर देती है कि पहिले 'मूंज-डांड़ा' (करधनी) पहिनना पड़ेगा, तब मृग चर्म धारण करना होगा फिर जनेऊ पहिनोगे[2]।

"माई हमरो जनेउवा रे बाबा कवन विधि होइहैं।
आरे पहिले परिहे मुंज के डाँड़ा, तब मिरिगछाला,
तब परिहे बरुआ रतन जनेउवा रे।"

यज्ञोपवीत में पलाश दंड धारण करना ब्रह्मचारी के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अतः एक गीत में पिता अपने पुत्र के जनेऊ के लिए पलाश का दंड काट रहा है और मृगछाला को ढूंढ़ रहा है। जनेऊ की सामग्री एकत्रित करने के लिए पिता की बेचैनी देखने योग्य है:[3]—

"ए जाहि बन सिकियो ना डोलेला,
बघवो ना गरजेला रे।
ए ताहि बने चलले कवन बाबा,
काटिले पारास डांड़ा खोजेले मिरिगछाला रे।
ए हमरा दुलरुआ के जनेव हवे,
काटिले पारास डांड़ा, खोजिले मिरिगछाला रे।"

मनु ने द्विजातियों के यज्ञोपवीत के लिए एक निश्चित काल निर्धारित किया है और उस अवधि को पार कर लेने पर उनको व्रात्य की संज्ञा दी है। एक गीत में उस माता की चिन्ता कितनी स्पष्ट झलकती है जिसका लड़का १२ वर्ष का हो गया है परन्तु जनेऊ से वंचित है। वह अपने पति से कहती है:[4]—

ओहारे पइसी जगावेली कवन देई।
सुनु पिया पंडित रे।
बरहो बरिसवा के लालाना
बरुआ देह घालहु रे।"

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १११। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० १ पृ० १०६। ३. वही पृ०१०८। ४. वही पृ० ११२।

इस पर चतुर पति उत्तर देता है कि:—

"आरे धनी छुलछनी बरुआ कुछु चाहेला रे।
अछत, चनन, मोतिया, ठोंठी बन्हन रे।
लाछ टका, लाछ धोती, मोतिया गेठी बन्हन रे।

इस प्रकार इन जनेऊ के गीतों में माता और पिता की प्रसन्नता, विविध विधि-विधानों एवं नियमों का उल्लेख पाया जाता है। जनेऊ के सभी गीतों में चाहे वे बुन्देलखंडी हों, चाहे मैथिली, चाहे राजस्थानी हों चाहे गुजराती—एक ही समान भावधारा पाई जाती है वही सामाजिक वर्णन उन्हीं प्रथाओं का उल्लेख, हमीरपुर जिले में प्रचलित यह बुन्देलखंडी गीत देखिये जिसमें जनेऊ के उछाह का वर्णन पाया जाता है।[1]

बुन्देलखंडी और मैथिली जनेऊ के गीत

"वंसवन धोतिया सुखत होइहैं,
बरुआ जेवत होइहैं।
देद उठे कवने रामा आंगना।
अंगना ढोल धमाके पंडित बेद बाचें, बेद उठे झनकार
मोरे आजा के अंगना।"

भोजपुरी गीतों में लड़की के विवाह में बांस का मंडप बनाने का वर्णन पाया जाता है परन्तु मैथिली लोकगीतों में जनेऊ में भी मंडप तैयार करने का उल्लेख किया गया है जो एक नई प्रथा है।[2]

हरिहर वंसवा कटाएब मारब छायव रे।
आजु मोर लाल के जनेऊवा केहि केहि नेवतब रे।"

"लापर परीछने" का वर्णन मैथिली गीतों में भी पाया जाता है। कोई बहन कहती है कि:[3]

"नये हम पहिनब पहिरन नये किछु ओढ़न हे।
पिअरि बस्तर हम पहिनव लापर परिछब हे।"

जनेऊ देने के लिए पलाश दंड, मृगछाला तथा मूंज के दंड का वर्णन भी इन गीतों में होता है।[4]

५. विवाह

विवाह हमारा सबसे प्रधान और प्रसिद्ध संस्कार है। हिंदुओं में जहाँ मुंडन और और यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता वहाँ भी विवाह संस्कार अवश्य ही सम्पादित होता है। यह इतना व्यापक और प्रधान संस्कार है जो संसार की सभी सभ्य अथवा असभ्य जातियों में समान रूप से पाया जाता है।

मनु ने आठ प्रकार के विवाहों का विधान किया है:—१. ब्राह्म २. देव ३. आर्ष ४. प्राजापत्य ५. आसुर ६. गान्धर्व ७. राक्षस और ८. पैशाच। आजकल जो विवाह प्रचलित हैं और जिसका उल्लेख लोकगीतों में पाया जाता है वह ब्राह्म और देव का मिश्रण

---

१. त्रिपाठी: हमारा ग्राम साहित्य पृ० ६२। २. राकेश: मै० लो० गी० पृ० ६७। ३. राकेश: मै० लो० गी० पृ० ६४। ४ वही पृ० ६२।

कहा जा सकता है। यों तो गान्धर्व विवाह आये दिन हुआ करते हैं परन्तु गीतों में इनका उल्लेख नहीं मिलता।

अन्य समाजों की भाँति भोजपुरी समाज में भी विवाह बड़ी धूमधाम से सम्पादित किया जाता है।

भोजपुरी समाज में लड़कियों का विवाह एक विषय समस्या बन गई है। इसका प्रधान कारण है तिलक और दहेज की कुत्सित प्रथा। स्त्रियाँ बहुधा कहती है कि लड़की के पैदा होने से पृथ्वी तीन अंगुल नीचे दब जाती है और पुत्र जन्म से तीन अंगुल ऊपर चली आती है। लड़के वाले के घर जब लड़की वाला विवाह का प्रस्ताव लेकर जाता है तब वह उससे अपने लड़के के लिये मनमाना तिलक मांगता है। धनी और प्रतिष्ठित लोगों की तो बात ही क्या, साधारण लोग भी हजार रुपये के नीचे बातें नहीं करते।

भोजपुरी वैवाहिक प्रथा

वर पक्ष वाले प्रायः यह कहते हुये सुने जाते हैं कि :—

"बिना हजार के बाजार ना लागी।"

अर्थात् बिना एक हजार रुपया तिलक लिये मैं अपने लड़के का विवाह नहीं करने का।

वर के चुनाव में लड़की का पिता स्वतंत्र होता है। वह अपनी कन्या से इस विषय में सलाह नहीं लेता। लोक लाज के मारे कन्या इस विषय में सलाह दे भी नहीं सकती। अतः अपनी सुविधा के अनुसार जो प्रायः आर्थिक हुआ करती है—पिता वर को चुनता है, और इस प्रकार कभी-कभी अवांछनीय वर के साथ भी लड़की का विवाह कर देता है। यह एक उल्लेखनीय बात है कि अपनी पुत्री के भावी पति के चुनाव में पिता वर की विद्या की ओर उतना ध्यान नहीं देता जितना उसकी कुलीनता और वैभव की ओर। इससे तिलक का 'भाव' बढ़ जाता है।

वर का चुनाव हो जाने पर लड़की का पिता वर के हाथों में कुछ रुपया और एक जोड़ा जनेऊ देता है। इस विधि को 'वररक्षा' कहते हैं। कहीं-कहीं इसे 'फलदान' भी कहा जाता है। इस 'वररक्षा' से अभिप्राय यह है कि आज से अमुक वर 'सुरक्षित' हो गया। अब दूसरे से उसके विवाह की चर्चा नहीं हो सकती। वररक्षा के पश्चात् तिलक की तिथि निश्चित की जाती है। उस दिन लड़की का पिता अथवा भाई अपने कुटुम्बियों के साथ तिलक चढ़ाने के लिये निश्चित रुपयों, बर्तन और कपड़ों को लेकर वर पक्ष के यहाँ जाता है। इस दिन वर पक्ष वाले के यहाँ बड़ा उत्सव मनाया जाता है। नाच, गान होता है। गाँव भर के लोगों को भोज (दावत) दिया जाता है। रात्रि के समय, शुभ मुहूर्त में लड़की का भाई वर के हाथों में रुपया और सुपारी देता है। बर्तन एवं वस्त्र प्रदान करता है और उसके सिर पर चन्दन का टीका (तिलक) लगाता है। इसी टीका लगाने के कारण ही इस प्रथा को 'तिलक चढ़ाना' कहते हैं जो उत्सव के अर्थ में आजकल मुहावरे के रूप में प्रयुक्त होता है। 'तिलक चढ़ते' समय स्त्रियाँ सुन्दर गीत गाती रहती हैं जिनमें आनन्द और उछाह का वर्णन रहता है। कन्यापक्ष वालों को सुस्वादु भोजन कराकर यह कृत्य समाप्त होता है।

अब कन्या पक्ष की ओर आइये। जिस दिन से तिलक चढ़ जाता है उसी दिन लड़की के घर में वर के यहाँ भी 'सगुन' गाया जाने लगता है। यह

'सगुन' शब्द शकुन का अपभ्रंश है जिसका अर्थ शुभ लक्षण है। विवाह की निश्चित तिथि के पूर्व मंडप की तैयारी होती है। यह मंडप कच्चे एवं हरे बाँसों से तैयार किया जाता है जिनकी संख्या ८ या ६ होती है। मंडप वर्गाकार तैयार किया जाता है, जिसकी लम्बाई कन्या के हाथों से ७ हाथ की होती है। मंडप को 'फूस' से छाते हैं जिससे धूप और वर्षा से रक्षा होती रहे। बाँसों के गाड़ने में भी प्राथमिकता का विचार किया जाता है और अनेक विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं। इस मंडप विधि को 'माड़ो गाड़ना' कहते हैं। 'मांड़ो' शब्द मंडप का ही अपभ्रंश है। इस समय के गीत 'मांड़ो के गीत' नाम से प्रसिद्ध हैं। मंडप के केन्द्र में पिता अपनी पुत्री को विवाह के समय लेकर बैठता है। इस मंडप के निर्माण में योग देना सारे गाँव के लोगों के लिये आवश्यक है।

भोजपुरी वर की वेश-भूषा भी बड़ी सुन्दर होती है। धोती के स्थान पर उसे जामा पहनाया जाता है। यह घाघरानुमा होता है जो कमर में ऊपर से बाँध लिया जाता है। शरीर में अँगरखा और पैर में जरीदार जूता होता है। उसके सिर पर 'सेहला' सुशोभित रहता है जिसे 'मउरी' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत मौलि (सिर) का अपभ्रंश रूप है। 'मउरी' को गाँव का माली बड़े प्रेम से तैयार करता है। 'सेहला' के जो गीत मिलते हैं उसमें मालिन द्वारा उनके बनाये जाने का उल्लेख पाया जाता है। गीतों में सोने के मउरि बनाने का भी वर्णन है जिसका अर्थ बहुमूल्य मउरि समझना चाहिये। आँखों में काजल और मुँह में पान का बीड़ा सुशोभित होता है। यदि वर की अवस्था छोटी हुई तो वह अलंकार भी धारण करता है ? वर को 'नौशा' भी कहते हैं जिसका अर्थ नया बादशाह है।

बारात जाने के एक दिन पहले ही सारे कुटुम्बियों को भात खिलाया जाता है जिसे 'भतवानि' कहते हैं। जो इस दावत में (खाने के लिये) उपस्थित होता है उसका बारात में चलना आवश्यक होता है। 'भतवानि' के गीतों में विभिन्न भोज वस्तुओं का उल्लेख रहता है। भतवानि के दूसरे दिन बारात जाने के थोड़ी देर पूर्व 'मातृपूजा' होती है जिसे 'मन्त्रिपूजा' कहा जाता है। इसमें गाँव की वृद्ध स्त्री-पुरुषों की पैर-पूजा वस्त्र और रुपये से की जाती है। मातृपूजा के पश्चात् माटी कोड़ाई, लावा भुजाई और इमली घोटाई आदि अनेक विधियाँ सम्पन्न की जाती हैं। इमली घोटाई के अवसर पर लड़के का मामा अपनी बहन को जल पिलाता है। इस समय मामा का उपस्थित रहना अत्यन्त आवश्यक होता है। इन सब विधि-विधानों के समाप्त होने पर वर पालकी में बैठकर विवाह के लिये चलता है। वर के घर चलने के पहिले घर तथा गाँव की स्त्रियाँ लोढ़ा लेकर उसे वर के सिर पर घुमाती हैं और अपने कलकंठ से 'परीछि ना लेहु मोरे राम रे ललनवा' गाती जाती हैं। इस विधि को 'परीछावन' कहते हैं। संभवतः यह वर की मंगल यात्रा के लिये किया जाता है। इस समय वर को दधि अक्षत का टीका भी लगाते हैं जो मंगल का सूचक है।

भोजपुरी बारात का दृश्य बड़ा सुन्दर होता है। बारात के आगे हाथियों

की पक्तियाँ चलती हैं जिन पर वर पक्ष के प्रतिष्ठित लोग बैठते हैं। हाथियों के पीछे घुड़ सवार चलते हैं जो अपने सिर पर पगड़ी मुरेठा बाँधे घोड़ों को 'कदम' चाल से बड़ी अदा के साथ 'जमाते' ले चलते हैं। घोड़ों के पीछे 'समधी' जी की 'पालकी' और उसके पीछे वर की 'नालकी' चलती है। वर की नालकी के साथ नाई (हजाम) चलता है जो समय-समय पर चँवर हिलाता जाता है। नालकी के पीछे साधारण बारातियों का समूह चलता है जो नए-नए वस्त्रों से सुसज्जित होने के कारण बड़ा ही सुन्दर लगता है। बारात के बीच में कहीं बैण्ड बजता है तो कहीं रोशन चौकी। 'सींगा' वाले-श्रृंग के आकार का एक विशेष बाजा—अपनी 'धूतू' 'धूतू' की मधुर ध्वनि सारे वायुमण्डल को गुंजित कर देते हैं। बारात के अन्त में भोजपुरी लठैत जवान चलते हैं जिनकी उपस्थिति बारात की रक्षा के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी जाती है। इस प्रकार बड़े सजधज के साथ भोजपुरी बारात चलती है।

लड़की वाले के घर बारात के पहुँचने पर उसके द्वार पर वर की पूजा होती है जिसे 'द्वारपूजा' कहते हैं। इस विधि के द्वारा वर का स्वागत किया जाता है। जिस समय द्वारपूजा होती रहती है उस समय इधर पण्डित लोग आपस में शास्त्रार्थ करते हैं और उधर स्त्रियाँ सुमधुर गीत गाती हैं। द्वार पूजा के पश्चात् कन्या पक्ष की ओर से बारातियों को भोजन का निमन्त्रण दिया जाता है जिसे 'अइगा' (आज्ञा) माँगना कहते हैं।

भोजन निमंन्त्रण के पश्चात् वर का बड़ा भाई, भावी वधू को मंडप में आकर गहना और वस्त्र देता है। वह इन समस्त चीजों का वधू के हाथ का स्पर्श करा कर रख देता है। इस विधि को 'कन्या निरीक्षण' कहते हैं जिसे भोजपुरी में 'गुरहत्थी' कहा जाता है। इस अवसर पर भी स्त्रियाँ गीत गाती हैं। गुरहत्थी के बाद वर मंडप में लाया जाता है जहाँ शास्त्रीय पद्धति से उसका कन्या के साथ विवाह कार्य प्रारम्भ होता है। विवाह के समय लड़की का पिता अपनी पुत्री को गोद में लेकर बैठता है। वह वर के पैर को पूजता है और शास्त्रीय रीति से अपनी पुत्री को वर के लिए दान रूप में दे देता है। इस प्रथा को कन्या दान कहते हैं। जो पिता या भाई 'कन्यादान' करता है वह अपनी पुत्री या बहिन के घर का अन्न-ग्रहण करना तो दूर रहा, उस गांव का पानी तक नहीं पीता। 'कन्यादान' के समय के गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं। दिन भर व्रत रहने वाला पिता अपनी पुत्री से कहता हैं कि :—

"दिनवा हरेलू ए बेटी भुखिया रे पिअसिया,
रतिया हरेलू सिर पगिया नू रे।"

अर्थात् दिन भर कन्यादान की चिन्ता से व्रत रहने के कारण मेरी भूख, प्यास भूल गयी है और रात को वर के पैरों पर गिरने के कारण मेरे सिर की पगड़ी भी नीची हो गई है। इसमें पिता के हृदय की कितनी गम्भीर वेदना भरी हुई है। कन्यादान के पश्चात् सप्तपदी होती है जिसे 'भाँवर घूमना कहते

हैं। यह महत्त्वपूर्ण विधि है क्योंकि इसके पश्चात् कन्या वर के गोत्र में चली जाती है। इसके बाद सुमंगली होता है जिसमें वर कन्या को सिन्दूर अर्पण करता है। इन सभी अवसरों पर गीत गाये जाते हैं जो भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं विवाह के पश्चात् वर को एक सजाये हुए घर जिसे 'कोहबर' कहते हैं—में ले जाते हैं जहाँ गाँव की युवती और बूढ़ी स्त्रियां एकत्रित हो कर वर से अनेक प्रकार का विनोद या परिहास करती हैं जो बहुत ही संयत और शिष्ट होता है। 'कोहबर' के गीतों को 'परिहास गीत' कहते हैं इस प्रकार विवाह कृत्य समाप्त होता है।

जब बारात वहाँ से विदा होकर लौटती है तब घर और गांव की स्त्रियां पुनः परीछनें के लिए तैयार होती हैं और

"हँसत खेलत मोर बाबू गइले,
मन बेदिल काहे अइले।"

गा-गाकर उसे परीछती हैं और पालकी से उतारती हैं विवाह के चौथे दिन वर एवं कन्या दोनों के यहाँ 'चौथारी' होती है। इस दिन वर और कन्या किसी नदी के किनारे जाते हैं और स्नान करके उस कंकण को जिसे उन्होंने विवाह में पहना था, त्याग देते हैं। वे ग्राम के देवी, देवताओं का दर्शन कर घर आते हैं। इस प्रकार वररक्षा से जो विवाह का कार्य प्रारम्भ हुआ था, वह अनेक विधि विधानों के पश्चात् विवाह के चौथे दिन (चौथारी) को समाप्त होता है।

विवाह के गीतों के भेद

विवाह के गीतों में दो प्रकार के गीत गाये जाते हैं। एक तो कन्या के घर गाये जाने वाले और दूसरे वर के घर में गाये जाने वाले। कन्या पक्ष के गीत वरपक्ष के गीतों से अधिक करुण और मधुर होते हैं। विशेषकर बेटी के विदा के गीत तो पत्थर को पिघला देने की क्षमता रखते हैं। वर पक्ष के गीतों में शोभा, सजावट और धूमधाम अधिक होती है। विवाह सम्बन्धी विभिन्न विधियों के समय गाये जाने वाले कन्या पक्ष के गीतों के भेद २२ हैं और वर पक्ष के गीत १६ प्रकार के हैं।

(क) कन्या पक्ष	(ख) वर पक्ष
१. तिलक के गीत	१. तिलक के गीत
२. सन्झा के गीत	२. सगुन
३. मांड़ों के गीत	३. भतवानि के गीत
४. माटी कोड़ाई के गीत	४. माटी कोड़ाई के गीत
५. कलसा धराई के गीत	५. लावा भुजाई के गीत
५. हरदी के गीत	६. इमली घोटाई के गीत
६. लावा भुजाई के गीत	७. हरदी के गीत
८. मन्त्रि पूजा के गीत	८. मन्त्रिपूजा के गीत
९. द्वारपूजा के गीत	९. वस्त्रधारण के गीत
१०. गुरहत्थी के गीत	१०. मउरि के गीत

११. विवाह के गीत
१२. भाँवर के गीत
१३. चूमने के गीत
१४. द्वार रोकने के गीत
१५. कोहबर के गीत
१६. परिहास के गीत
१७. भात के गीत
१८. वर उबटने के गीत
१९. मांडो खोलाई के गीत
२०. बारात बिदाई के गीत
२१. कंगन छुड़ाई के गीत
२२. चौथारी के गीत

११. परिछावन के गीत
१२. डोमकछ के गीत
१३. परिछावन के गीत
१४. गोड़भराई के गीत
१५. कोहबर के गीत
१६. कंगन छुड़ाई के गीत

इन गीतों के भेदों का अनुशीलन करने पर पता चलता है कि इनमें कुछ ऐसे हैं जो बारात आने या जाने के पूर्व गाये जाते हैं और कुछ उसके लौट जाने पर। वर पक्ष के गीतों में तिलक से लेकर परिछावन (नं० १ से ११ तक) तक के गीत बारात के जाने के पूर्व ही गाये जाते हैं। डोमकछ बारात के चले जाने पर रात को नाटक का अभिनय करते हुए गाया जाता है। परिछावन से लेकर कंगन छुड़ाई (नं० १३ से १५ तक) के गीत बारात से वर के लौट आने पर गाये जाते हैं। विवाह के लिये जाते समय वर के परिछावन के गीत और विवाह करके लौट कर आये हुये परिछावन के गीतों में बड़ा अन्तर है। पहिले में हर्ष है तो दूसरे में चिन्ता।

कन्या पक्ष के गीतों में तिलक से लेकर मातृ पूजा तक के गीत (नं० १ से ८) बारात से आने के पहले ही गाये जाते हैं। द्वार पूजा से लेकर परिहास (नं० ९ से १५ तक) के गीत बारात आने के पश्चात् पहिले दिन गाये जाते हैं। भात से बिदाई तक (नं० १७, २०) बारात के दूसरे दिन और कंगन छुड़ाई और चौथारी (नं० २१, २२) के गीत चौथे दिन गाये जाते हैं। इन दोनों पक्षों के गीतों में कुछ ऐसे भी गीत होते हैं जो दोनों में समान हैं जैसे माटी कोड़ाई, लावा भुजाई, मातृपूजा और हलदी आदि के गीत।

विवाह सम्बन्धी प्रधान-प्रधान प्रथाओं का वर्णन पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। प्रत्येक विधि के लिये सैकड़ों गाने उपलब्ध हैं जिससे भोजपुरी गीतों की बहुलता का कुछ अनुमान किया जा सकता है।

वर्ण्य विषय

विवाह के गीतों का वर्ण्यविषय बड़ा विस्तृत है। इसमें कहीं पुत्री अपने पिता से सुन्दर और योग्य वर खोजने की प्रार्थना करती है तो कहीं उसकी माता पति को पुत्री के वर खोजने के लिये प्रेरित करती है। कहीं पिता योग्य वर न मिलने की चिन्ता से व्याकुल दीख पड़ता है तो कहीं माता पुत्री जन्म के कारण अपने भाग्य को कोसती है। कहीं बारात के आने और बाजा बजने का उल्लेख है तो कहीं माता अपने जामाता से यह विनती करती है कि मेरी पुत्री को आराम से रखना।

इन गीतों में एक ऐसी प्रथा का वर्णन मिलता है जो आजकल यूरोप में प्रचलित है। वह है वर का कन्या के कुटुम्बियों से विवाह का प्रस्ताव करना। कुछ गीत ऐसे उपलब्ध हैं जिनमें वर कन्या के आँगन में जाकर बैठा है और आने का कारण पूछने पर कहता है कि इस घर में एक कुमारी कन्या है, मैं उससे विवाह करने आया हूँ। नीचे के गीत में यह दृश्य देखिये :[1]

"पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम कइले जाले।
कवन बाबा चौपरिया ए जोगी, बइसे आसन मारी।
हम त बिम्राहन अइली ए बाबा, तोहार बिटिया कुंवारी।"

कोई पूछता है कि ऐ जोगी ! तुम कहाँ से आये हो और यहाँ क्यों बैठे हो। इस पर वह उत्तर देता है कि इस घर में एक कुंवारी कन्या है। मैं उसी से विवाह करने के लिये यहाँ आया हूँ।

सयानी पुत्री अपने पिता से ऐसे सुन्दर एवं योग्य वर को खोजने के लिये कहती है जिसे देखकर घर के लोग हँसे नहीं। वह बार-बार इसके लिये प्रेरणा करती हुई कहती है कि :[2]

"वर खोजु, वर खोजु, वर खोजु रे बाबा।
अब भइलीं वियाहन जोग ए।
आरे हमारा के बाबा सुनर वर खोजेले,
हँसे जनि दुअरवा के लोग ए।"

वर के खोजने के लिये कन्या के पिता को परेशानी का जैसा जीता जागता चित्र इन गीतों में मिलता है वैसा अन्यत्र उपलब्ध नहीं। इस गीत में उसकी दुःखद कथा का हाल सुनिये। वह अपनी पुत्री से कहता है :[3]—

"पुरुब खोजलों बेटी पछिम रे खोजलों,
अवरु ओड़इसा जगन्नाथ ए।
आरे तीनों भुवन तुहें वर खोजलों,
कतहीं ना मिले सिरिराम ए।"

अर्थात् मैंने दुनिया की खाक छान डाली परन्तु तुम्हारे योग्य वर नहीं मिला।

इन गीतों में बाल-विवाह का वर्णन पाया जाता है। पुत्र विवाह करने के लिये जा रहा है। माता उसकी छोटी अवस्था देखकर चिन्तित होकर कहती है कि मेरा लाल व्याहने जा रहा है। दूध के बिना उसके होंठ सूख न जायें। इसी प्रकार से पुत्री की माता कहती है कि मेरी बेटी छोटी है दूध और पान के बिना उसका गला न सूख जाय।[4]

"ऊँच रे मन्दिल चढ़ि हेरेली कवन देई,
कवन गाँव नियरा कि दूर ए।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२०। २. वही पृ० १२४। ३. वही पृ० १२१। ४. वही पृ० १५३।

हमरा कवन दुलहा बियहन चलने
दूध बिनु ओठ सुखाई ए।
हमरा कवनी मुँहवा सासुर चलली,
दूध बिनु ओंठ सुखाई ए।"

इस गीत से पता चलता है कि दुधमुँहे बच्चों का विवाह भी हुआ करता था।

विवाह में दहेज देने की प्रथा है। परन्तु जहाँ जामाता को अभिलषित दहेज नहीं मिलता वहाँ वह रूठ जाता है और उसे दहेज दिये बिना पिता का पिंड नहीं छूटता।[1] 'शिवजी के विवाह' के गीतों में उनको वीभत्स आकृति और अलौकिक बारात का बड़ा सुन्दर चित्रण हुआ है। तुलसीदास जी ने रामायण में शिव-विवाह का जो वर्णन किया है उससे यह बहुत समानता रखता है।[2] कन्या के घर बारात आने का यह दृश्य कितना सुन्दर है।[3]

"काहांवां के हथिया सीगांरलि आवेले,
कांहावा के भीन लाहास।
काहांवा के राजा बिअहन आवेले
माथे मुकुट मुखो पान।"
गोरखपूर के हथिया सींगारलि आवेले
पटना के भीन लाहास।
कासी के राजा रे बियहन आवेले
माथे मुकुट, मुखे पान।"

विवाह में कोहबर के समय गाये जाने वाले गीतों में वर से मीठा मज़ाक किया गया है। ये परिहास बड़ी शिष्ट भाषा में है:

"ठीक दुपहरिया अइह मोरे राजा हो
हम रउरा से करबि लराई।
निचवा रजाई रे उपरा दोलाई।
ताहि बीचे होखेला लराई।"

यह ग्रामीण प्रेम की लड़ाई कितनी मधुर है। इस प्रकार इन गीतों में अनेक प्रसंगों की योजना बड़ी समुचित रीति से की गई है और वर्णन इतना सजीव है कि आँखों के आगे चित्र उपस्थित कर देता है।

मैथिली भाषा में विवाह के गीतों को 'लग्न गीत' कहते हैं। इस समय 'सम्मरि' नामक गीत भी गाये जाते हैं जो बड़े मधुर होते हैं। 'सम्मरि' शब्द

अन्य भाषाओं में विवाह गीत

स्वयम्बर का अपभ्रंश है। इन 'सम्मरि' के गीतों में सीता स्वयम्वर, रुक्मिणीहरण और उषा स्वयम्बर आदि के गीत प्रसिद्ध हैं। परन्तु 'सम्मरि' अन्य अवसरों पर भी गाये जाते हैं अतः इन्हें शुद्ध वैवाहिक गीतों के अन्तर्गत नहीं ले सकते। मैथिली 'लग्न गीतों का' विषय भी वही पुत्री जन्म

१. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ४०। २. वही भाग १ पृ० १६६। आगे। ४. वही पृ० १८४।

की निन्दा, सुयोग्य एवं सुन्दर वर खोजने के लिये पुत्री की पिता से प्रार्थना और पिता की परेशानियाँ हैं।[1]

"निरधन तपसिया हमें न बिआहब,
मरि जइबौं जहर चबाय हे।"

वर के चुनाव में राजस्थानी लड़की अपनी भोजपुरी और मैथिली बहनों से अधिक चतुर दीख पड़ती है। उसका चुनाव बड़ा संस्कृत है। वह पिता से कहती है, बाबाजी! देश के बजाय भले ही परदेश में मुझे देना पर वर मेरी जोड़ी का देखना। काला वर मत ढूंढ़ना जो कुल को लजावे। गोरा वर मत ढूंढ़ना कि थोड़ा सा परिश्रम करते ही पसीना आ जाय। लम्बा वर मत ढूंढ़ना जो खड़ा-खड़ा ही साँकर (शमी का फल) चूंट ले। ठिगना वर भी न ढूंढ़ना जिसे लोग बौना कहें। ऐसा वर खोजना जो काशीवास कर चुका हो अर्थात् पंडित हो। गीत सुनिये :[2]

"कालो मत हेरो, बाबाजी, कुल ने लजावे
गोरो मत हेरो बाबाजी, अंग पसीजे।
लाँबो मत हेरो बाबा, सांगर चूटे।
ओछो मत हेरो, बाबा बावन्यू बतावे।
ऐसो वर हेरो, कासी रो बासी
बाई रे मन भासी, हसती चढ़ आरसी।

राजस्थानी में विवाह के गीतों को 'बनड़े' अर्थात् दुल्हा-दुलहिन कहते हैं। यहाँ भी भिन्न-भिन्न अवसरों पर विशेष प्रकार के गीत गाये जाते हैं जो विवाह संबंधी विधियों से संबद्ध हैं।

रायबरेली जिले से प्राप्त इस अवधी गीत में दुष्टा सास की चिन्ता से दुःखी लड़की को समझाता हुआ उसका पिता कहता है कि चार दिन का राजा का राज है, तुम्हारी सास भी थोड़े ही दिन रहेगी। फिर घर में तुम्हारा ही राज होगा।[3]

"का तेरी बेटी रे दान दहेज थोर,
की रे सूधर वर छोट।
की तेरो बेटी सोना खराब भए
काहे तेरो मन दलगीर।
सुनत हौं बाबा सास दारुनियाँ
एही से मन दलगीर।
चार दिना बेटी राजा के रजई,
चार दिना फौजदारि।

---

१. राकेश: मै० लो० गी० पृ० १३२। २. पारीक: रा० लो० गी० भाग १ पृ० १६०-६१। ३. त्रिपाठी: हमारा ग्राम साहित्य पृ० ६७।

चार दिना बेटी सास हे दारुन,
आखिर राज तुम्हार।"

इस प्रकार भोजपुरी- मैथिली, ब्रज, बुन्देलखंडी, राजस्थानी और अवधी विवाह के गीतों का वर्ण्य विषय प्रायः समान ही है। भिन्न-भिन्न प्रथाओं के कारण कुछ साधारण भेद अवश्य हैं परन्तु इनमें मौलिक एकता विद्यमान है।

५. (अ) वैवाहिक परिहास

दुलहा (वर) जब विवाह के लिये अपनी ससुराल जाता है तब दुलहिन की सहेलियाँ, ननद और भौजाई दुलहे से हंसी, मज़ाक करती हैं। विवाह के पश्चात् जब वर कोहबर में लाया जाता है उसी समय ये हास्य के प्रसंग छेड़े जाते हैं। यह नितान्त स्वाभाविक भी है। जैसे विवाह के गीतों में आनन्द और उल्लास रहता है और गवने के गीतों में करुण रस का प्रवाह बहता हुआ दिखलाई देता है उसी प्रकार इन गीतों में विशुद्ध हास्य का फौवारा फूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इन गीतों के ग्रामीण होने पर भी इनका हास्य ग्राम्य न होकर नागर है, भद्दा या भोड़ा न होकर विशुद्ध और संयत है। हिन्दी के रीति-काल के कवियों की कविता की भाँति इन गीतों में अश्लीलता तथा उच्छृंखलता को कहीं स्थान नहीं दिया गया है। अनेक गीतों में हास्य की अभिव्यक्ति अभिधा के द्वारा न होकर व्यंजना के द्वारा की गई है। हँसी भी इतनी चुभती हुई है कि समझदार के दिल में गुदगुदी पैदा किये बिना नहीं रह सकती।

६. गवना

गवना शब्द संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ जाना है। इस दिन लड़की पिता के घर से चली जाती है—विदा हो जाती है—इसलिये इसे 'गवना' कहते हैं। कुछ लोग विवाह के दूसरे ही दिन बारात के साथ लड़की की विदाई कर देते हैं परन्तु जिनके यहाँ यह प्रथा नहीं है वे गवना करते हैं। गवना विवाह के पहले, तीसरे, पाँचवें अथवा सातवें वर्ष अर्थात् विषम वर्षोंमें होना चाहिये। पहिले जब छोटे-छोटे लड़के लड़कियों का विवाह होता था उस समय तीन, पाँच या सात वर्ष के बाद गवना कराना आवश्यक था जिससे वर कन्या वयस्क हो जायँ। परन्तु आजकल युवक युवतियों का विवाह होने के कारण गवना एक वर्ष के भीतर ही हो जाता है।

गवना भी विवाह के ही समान बड़े धूमधाम से किया जाता है। गवना के समय वर का पिता वधू को लाने नहीं जाता। अपनी पुत्र वधू का रोना सुनना उसके लिये निषिद्ध है। ऐसी दशा में वर, घर के अन्य लोग एवं कुटुम्बी ही जाते हैं। गवना के समय गाजा-बाजा पालकी-नालकी, हाथी-घोड़े सभी जाते हैं परन्तु इनकी संख्या थोड़ी होती है। निश्चित तिथि को वर पक्ष के लोग आते हैं और कन्या की बिदाई कराकर लेकर चले जाते हैं।

, प्रथा

कन्या की बिदाई का समय बड़ा ही कारुणिक होता है। जहाँ वर पक्ष वालों

में आनन्द और उल्लास छाया रहता है वहाँ कन्या पक्ष के लोगों में विषाद की अमिट रेखा दिखाई पड़ती है। इस समय पर माता, पिता, भाई, बहन, कुटुम्बी एवं गाँव की स्त्रियों का सामूहिक करुण क्रन्दन सुनकर बड़े-बड़े धैर्य शालियों का भी धीरज छूट जाता है। कहीं पुत्री की माता अपनी प्राण प्यारी पुत्री को गले से चिपटी कर रोती दीख पड़ती है तो कहीं पिता उदासीन दिखाई देता है। कहीं छोटे-छोटे भाई बहन "पूका फार फार कर रोते हैं तो कहीं गाँव की स्त्रियों की आँखों से आंसुओं की झड़ी झड़ती है। कहीं कुटुम्बियों के नेत्रों में आंसू छलक रहे हैं तो कहीं अन्य लोग शोकग्रस्त मुद्रा में खड़े हैं। माता का रोना तो पत्थर को भी पिघलाए देता है। जब बिदा के समय पुत्री को पालकी में बिठाकर भेजने का अवसर आता है तब वह दृश्य तो और भी हृदयविदारक होता है। इधर वर पक्ष वाले वधू को पालकी में चढ़ाने के लिए जल्दी मचाते रहते हैं उधर पुत्री की मां, भावज उससे चिपट कर रोती हैं और उसे छोड़ती ही नहीं, उस समय सभी के धैर्य का बाँध टूट जाता है और सब लोग फूट-फूट कर रोने लगते हैं। नाइन-नाई की स्त्री—किसी प्रकार पुत्री को पालकी में बिठाती है और बारात बिदा होती है। लड़की को अनजाने स्थान पर किसी प्रकार की उदासीनता न हो इसलिए उसके साथ छोटा भाई भी जाता है। जहाँ भाई नहीं होता वहाँ घर की नौकरानी या दासी जाती है।

गवना के समय दहेज देने की प्रथा है। मध्यम वित्त के लोग लड़की के प्रयोग के लिए पलंग, ओढ़ना, बिछौना, बर्तन, मिठाई, खाजा आदि देते हैं परन्तु धनी लोग गाय, बैल, भैंस, घोड़ा, हाथी एवं मोटर तक देते हैं। पिता जितना ही अधिक दहेज देता है उसकी उतनी ही अधिक प्रशंसा होती है।

पुत्री की बिदाई के अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों में वियोग की धारा अविच्छिन्न रूप से बहती है। विवाह के गीतों में जहाँ आनन्द, उल्लास एवं परिहास का वर्णन है वहां गवना के गीतों में विषाद का दृश्य दीख पड़ता है। कहीं भाई अपनी बहन की पालकी के पीछे-पीछे रोता जाता हुआ दिखाई पड़ता है तो कहीं बहिन अपने भाई, माता, एवं पिता, के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती, कलपती, बिलखती चली जाती है। कहीं पुत्री की माता अपने जामाता से प्राण प्यारी पुत्री को आदर के साथ रखने तथा उससे प्रेम करने का उपदेश देती है तो कहीं पुत्री के भावी वियोग जन्य में दुःख का अनुमान कर विलाप करती है। सारांश यह है कि इस अवसर पर जिन विषयों का वर्णन किया गया है वे सभी करुण रस में ओत-प्रोत हैं।

वर्ण्य विषय

पुत्री की बिदाई का यह दृश्य कितना करुण है। इसमें माता, पिता, भाई सभी विह्वल होकर रोते दिखाए गये हैं। परन्तु भावज की आंखों में आँसू की एक बूंद भी नहीं है।[1]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६६।

"केकरा ही रोवले गांगा बढ़ि अइली,
केकरा के रोवले अनोर।
केकरा ही रोवले चरण धोती भीजे,
केकरा नयनवा ना लोर।
बाबा के रोवले गांगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भऊजी नयनवाँ ना लोर।"

इन पंक्तियों में पुत्री के प्रति पिता की कितनी ममता भरी पड़ी है। कालिदास ने शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर कण्व को भी रुलाया है।

ससुराल जाते समय रोती हुई पुत्री को सान्त्वना देती हुई माता कहती है कि ऐ बेटी ! चुप रहो। मैं पीछे से तुम्हारे सहोदर जेठे भाई को भेजूंगी। अतः रोओ मत।[1]

"आरे रोवेली माइ रे धिया भीजेला रे बटुक।
आरे चुप होखु चुप ए बाचवा चुप होखु रे।
आरे पाछा से पठइबो रे बाचावा,
सहोदर जे भाई।"

पुत्री की माता अपने जेठे पुत्र से कहती है कि तुम मेरी समधिन से कह देना कि वह मेरी बेटी को गाली न देगी और न पैर से ठुकरायेगी। मेरी बेटी जब सोई हो तो उसे कच्ची नींद में न जगायेंगी।[2]

"सुन सुन लोकनी सुनहु जेठ भाई।
कहिह समधीनी आगे अरज हमारी।
लाते जनि मरिहैं, पाराते जनि गारी।
आरे काँच ही नीनीये जनि जगइहै मोरि दुलारी।"

इस गीत में माता की ममता छलकी पड़ती है।

बहन के प्रेम के कारण उसका भाई उसकी बिदाई के समय पालकी के दरवाजे को रोक लेता है जिससे वह ससुराल न जाय। संभवतः वह प्रेमी भाई यह समझता है कि मेरे दरवाजा रोक लेने से बहिन का जाना न हो सकेगा।

"आठहि काठकेरा डंडिया, नेतवे लागेला ओहार।
फानावेले कवन राम डंडिया, बहू चढ़ि चलु रे हमार।
छेकेले कवन भइया डंडिया, बहिना जाये ना देउ।"

इस प्रकार गवना के गीतों में करुण रस की नदी बल खाती, बिलखती अविच्छिन्न गति से चलती जाती है।

मिथिला में गवना के गीतों को 'समदाऊनि' कहते हैं। इसके विषय में

१. वही पृ० १६५। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १८६-६०। ३. राकेश: मै० लो० गी० पृ० १७०।

गवना के अन्य गीत

राकेश जी लिखते हैं कि[1] विवाह संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहिन डोली में बैठकर ससुराल जाने की तैयारी करती है, उस समय मिथिला में एक विशिष्ट शैली का गीत गाया जाता है जो 'समदाऊनि' के नाम से प्रसिद्ध है। 'समदाऊनि' का सबसे बड़ा गुण है स्वाभाविकता। इसका शृङ्गार प्रेम और करुणा के मोतियों से हुआ है। न 'समदाऊनि' के गीतों में पुत्री के प्रति माता और पिता का प्रेम उमड़ा पड़ता है और पुत्री के अश्रुपात से नदियों में बाढ़ तक आ जाती है। नीचे के गीत में कवि ने बेटी की जुदाई में बिसूरती हुई माँ और माँ की याद में तड़पती हुई बेटी—दोनोंके हृदय को निकाल कर रख दिया है। इस गीत के शब्द-शब्द से करुणा फूट कर बह पड़ी है।[2]

"गैया जे हुँकरय दुहान केर बेर।
बेटी क माए हुँकरय रसोइया केर बेर।
गैया के बांघितो मैं खुटा में लगाय।
बछिया के लेल जाय भागल जमाय।
धियवा के कनइत में गंगा बहिगेल।
दमदा के हंसहत में चादरि उड़ि गेल।"

"समदाऊनि' के इन करुणा भरे गीतों में पुत्री के बिदा के समय माँ, बाप ही नहीं रोते बल्कि पशु भी समवेदना में रोते दिखाई पड़ते हैं।

"रानी जे रोवे रामा रोवै रनिवसवा,
राजा जे रोवे दरवजवा रे सखिया।
हाथी जे रोवे रामा रोवे हथिसरवा,
घोड़ा जे रोवे घोड़सरवा हे सखिया।"

राजस्थानी भाषा में गवना के गीतों को 'ओलूं' कहते हैं। "इनके भाव इतने करुण होते हैं कि सुनकर हृदय थाम कर आँसू रोकना कठिन हो जाता है। स्त्रियाँ गाती हुई जोर-जोर रोने लगती हैं। पुरुषों की आँखें भी छलछला जाती हैं।" नीचे एक गीत में पुत्री की उपमा कोयल से दी गई है। कवि कहता है कि ऐ कोयल ! इस बन को छोड़कर कहाँ जा रही है। तुम्हारी माता उन्मना हो रही है, छोटी बहिन अकेली रो रही है। तेरा बड़ा भाई उदास फिरता है और तेरी भावज बिलखती है:—

"बनखंड की ऐ कोयल, बनखंड छोड़ कठे चली।
थारी माउजी थारे बिन उणमणा।
थारी छोटी बैनड़ रोवै अकेलड़ी।
थारो बीरो सा फिरे छै उदास।
बिलखत थारी भावजड़ी।
बनखंड की ऐ कोयल बनखंड छोड़ कठे चली।"

१. भो० ग्रा० गी० पृ० १७३-७४। २. राकेश: मै० लो० गी० पृ० १८४। ३. पारीक: रा० लो० गी० भाग १ पृ० १८८। ४. वही पृ० १९०।

(ख) ऋतु सम्बन्धी गीत

कजली

सावन के मन भावन महीने में भोजपुरी प्रदेश में जो गाने गाये जाते हैं उन्हें 'कजली कहते हैं।

सावन के महीने में प्रकृति सर्वत्र हरी दिखाई पड़ती है तथा मेघों के आगमन के साथ ही साथ प्रकृति में एक विचित्र प्रकार की मादकता संचरित होती है। महाकवि कालिदास ने 'मेघालोके भवति सुखिनोप्यन्यथावृत्तिचेत:'' लिखकर इसी मादकता या मस्तीपन की ओर संकेत किया है। प्रकृति की इसी पृष्ठभूमि में सावन मास में 'कजली' गायी जाती है।

'कजली' का नामकरण इस मास में घिरने वाले बादलों की कालिमा के कारण पड़ा है जो काजल के समान काले-काले आकाश में घूमते दिखाई पड़ते हैं। अत: काजल के समान रूप वाले बादलों की वर्ण समता के कारण ही 'कजली की व्युत्पत्ति है। परन्तु भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने इस नामकरण का कुछ दूसरा ही कारण दिया है। उनका कथन है कि मध्यभारत में दादू राय नामक एक राजा था जिसके राज्य में कोई भी मुसलमान गंगा को नहीं छू सकता था। एकबार उसके राज्य में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। उस समय उस राजा ने अपनी देशभक्ति के बल से पानी बरसाया। इससे वह बड़ा ही लोकप्रिय हो गया। कुछ दिनों के बाद जब इसका देहान्त हो गया तब इसकी स्त्री नागमती इसकी लाश के साथ सती हो गयी। उस राज्य की स्त्रियों ने अपने दुख को प्रकट करने के लिए एक नये राग को आविष्कृत किया जिसका नाम 'कजली' पड़ा। भारतेन्दु ने यह भी लिखा है कि इस नामकरण के अन्य भी दो कारण हैं।

१. दादू राय के राज्य में 'कजली' नामक बन था अत: उसी नाम पर उस गीत का नाम 'कजली पड़ा' है।

२. श्रावण भादों के शुक्ल पक्ष की तीज का नाम—जिस दिन यह गाना खूब गाया जाता है—ही कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।[1]

भारतेन्दु जी की दादूराय की कहानी में ऐतिहासिक अंश कितना है यह कहना तो कठिन है परन्तु कजली तीज के दिन गाये जाने के कारण इस गीत का नाम 'कजली' पड़ा है इसमें बहुत कुछ तथ्य है।

सावन के महीने में हरएक गाँव में, बाग में या तालाब के किनारे झूले लगाये जाते हैं जिनमें गांव के स्त्री पुरुष झूला झूलते हैं। इन झूलों को लगाने के लिए बड़ी तैयारी की जाती है। सुन्दर रंगीन रस्सी होती है और काठ के तख्ते में उसे बांध कर किसी पेड़ की शाखा से लटका देते है। इसी सुसज्जित झूले पर बैठ कर नर नारी झूले का आनन्द लेते हैं और 'कजली' गाते हैं। कोई पुरुष झूले पर खड़े होकर उसे झटका देकर जोर से चलाता रहता है। जिसे 'पेंग बढ़ाना' कहते हैं। उस प्रकार सावन में झूले का दृश्य बड़ा ही आनन्ददायक होता है।

सावन के महीने में भोजपुरी प्रदेश में कजली गाने की बड़ी प्रथा है। प्राय: प्रत्येक

१. डा० ग्रियर्सन ज. ए. सी. बं. भाग ५३ खंड १ [१८८४] पृ० २३७।

गाँव में झूले पड़ते हैं और वहां स्त्रियां झूला झूलती हुई गाना गाती जाती हैं। मिर्जापुर की कजली बहुत प्रसिद्ध है जैसा कि इस उक्ति से पता चलता है :

"लीला रामनगर की भारी,
कजली मिर्जापुर सरदार।"

अर्थात् रामनगर की रामलीला बहुत बड़ी होती है परन्तु मिर्जापुर की कजली श्रेष्ठ है। यहाँ कजली के दंगल भी हुआ करते हैं जहाँ गवैयों की दो पार्टियाँ रात-रात भर कजली गाती रहती हैं। इसमें दंगल जीतने वालों को पुरस्कार भी दिया जाता है। दोनों दलों के गवैये मधुर राग में अपनी कजली सुनाते हैं। ये प्रायः स्वरचित होती हैं जिनमें सामयिक विषयों पर रचना की गई रहती है।

वर्ण्य विषय

कजली का वर्ण्य विषय प्रेम है। इसमें शृंगार के उभयपक्ष की झाँकी में हमें देखने को मिलती है। परन्तु संभोग शृंगार का वर्णन अपनी प्रधानता रखता है जो स्वाभाविक ही है। एक गीत में राधा और कृष्ण के झूला झूलने का उल्लेख मिलता है। यह वर्णन कितना सुन्दर है।[1]

झूला झूले राधिका प्यारी,
संग में कृष्ण मुरारी ना। टेक
कथि के पलना कथि के डोरी,
कथि के गछिया ना। टेक
सोने के पालना रेसम की डोरी,
चनन के गछिया ना।" टेक

कहीं कहीं इन गीतों में पति-पत्नी की प्रेमलीला का बड़ा ही सुन्दर वर्णन बन पड़ा है। नीचे का यह गीत देखिए :[2]

"आरे बाबा बहेला पुरवैया,
अब पिया मोरे सोवे ए हरी। टेक
कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवली,
संइयाँ सुतेला आधी रात,
देवर बड़ी भोरे ए हरी। टेक
लवंग खिलि-खिलि बिरवा लगवली,
संइयाँ चाभेले आधि राति
देवर बड़े भोरे ए हरी।" टेक

कही झूला झूलने के लिए उत्सुका भावज अपनी ननद से पूछती है कि ए ननद ! बादल उमड़े चले आ रहे हैं, मैं सावन कजली खेलने कैसे जाऊँ ?

"कइसे खेले जाई हम सावन में कजरिया,
बदरिया घिरि अइले ननदी।[3]

इस पर ननद मना करती है कि आजकल का दिन मस्ती का है। कोई मनचला रास्ते में पकड़ लेगा अतः मत जाओ:

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १७६। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० १७५। ३. वही. पृ० १७४।

"तू तो चललू अकेली, तोरा संग ना सहेली
गुंडा घेरिलीहैं तोहि के डगरिया में।
बदरिया घिरि अइले ननदी।"[1]

संभोग शृंगार के साथ ही वियोग शृंगार की गंभीर अभिव्यंजना इन गीतों में हुई है। पति वियोग के कारण इनमें विरहिणी की वेदना मूक स्वर से बोल रही है। उनका करुण क्रन्दन श्रोताओं को करुण रस की धारा से भिगो देता है। डा० ग्रियर्सन ने इन गीतों के विषय में ठीक ही कहा है कि इन गीतों का वातावरण करुण रस से पूर्ण है यद्यपि इनमें विभिन्न भावनायें और भाव पाये जाते हैं।[2]

सावन के महीने में पति के आगमन की अवधि थी। परन्तु उसके न आने मे प्रोषितपतिका स्त्री की व्याकुलता का यह वर्णन कितना स्वाभाविक है। वह स्त्री अपनी सखी से कहती है कि पति ने आज आने को कहा था। सूर्य डूब चला, सन्ध्या हो गई परन्तु पति अभी तक नहीं आया। ए काग! शुभ शकुन सूचित करने वाली अपनी बोली बोलो। परन्तु अब तो काली घटायें घिर आईं, बादल बरसने लगे, बिजुली कौंधने लगीं। भला मेरा पति अब कैसे आयेगा।[3]

"सोने के थारी में जेवना परोसलो, जेवना ना जेवे हो,
सखिया साझे भइल बेरी बिसवे,
सामी घरे ना अइले हो।
बोलु बोलु कागवा सुलच्छन बोलिया।"
हरि घरे ना अइले हो।"

इसी प्रकार एक दूसरी कजरी में कोई विरह विधुरा नायिका सखियों के उल्लास को देखकर अपने भाग्य को कोसती पश्चाताप कर रही है।[4]

"बादर बरसे बिजुरो चमके,
जियरा ललचे मोर सखिया।
सइयाँ घर ना अइले पानी बरसे लागल,
मोर सखिया।"

कजरी भिन्न-भिन्न रागों में गाई जाती है जिसका स्वर युक्त उदाहरण 'स्वरलिपि' के अध्याय में दिया जायगा। हिन्दी के 'प्रेमघन' आदि अनेक कवियों ने भी कजरी लिखी है।[5]

१· भो० ग्रा० गी० पृ० १७५। २· दि एयर्स आफ दीज सांग्स आर रादर मेलंकली, दो दे आर ट्यून्ड टू एक्सप्रेस डिफ्रेन्ट फीलिंग्स एण्ड सेन्टीमेन्ट्स। ज. ए. सी. बं. भाग ५३ खंड १ (१८८४) पृ० २३७। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३३६-३७। ४. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३३४। ४. एक 'कजली संग्रह' काशी से प्रकाशित हुआ है।

फगुआ

होली के त्योहार के अवसर पर जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'फाग' या 'फगुआ' कहते हैं। होली का उत्सव फाल्गुन पूर्णिमा-परिवा को मनाया जाता है। अतः फाल्गुन मास में गाये जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'फाग' या 'फगुआ' पड़ गया है। होली के अवसर पर गेय होने के कारण इन्हें 'होली' या 'होरी' भी कहते हैं। माघ मास की शुक्ल पंचमी 'वसन्त पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी दिन से वसन्त का आगमन माना जाता है और आज से ही गाँव-गाँव में 'फाग' गाना प्रारम्भ हो जाता है जिसे ग्रामीण भाषा में 'ताल ठोकना' कहते हैं। गाँव के लोग आज से किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति के द्वार पर एकत्रित होकर फाग गाते हैं और श्रोताओं को आनन्दित करते हैं। परन्तु फाग का चरम उत्कर्ष होली के दिन देखने में आता है। जिस दिन होली होती है उसके एक दिन पूर्व की रात्रि में 'होलिका' जलाई जाती है जिसे भोजपुरी में 'संवत् जलाना' कहते हैं। चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से नया वर्ष प्रारम्भ होता है और पुराना वर्ष समाप्त हो जाता है। संभवतः इसी कारण इस प्रथा को 'संवत् जलाना' कहते हैं। संवत् जलाने के लिए गाँव का कोई चौराहा या मुख्य स्थान चुना जाता है। वहाँ पर गाँव के लड़के बीसों दिन पहले से ही लकड़ी, उपला, टूटा छप्पर, पुराना काठ, पत्ती, और सूखी घास आदि लाकर इकट्ठा करते रहते हैं। हिन्दी के किसी कवि ने होली जलाने के लिये काष्ठादि वस्तुओं के चुराने का संकेत अपने एक पद्य में किया है :

नामकरण एवं प्रथा

'चोरी करि होरी रची, भई तनक में छार।'

इस प्रकार होली जलाने के दिन तक काष्ठादि का बहुत बड़ा संग्रह हो जाता है।

होली जलाने का एक शुभ मुहूर्त होता है। इस समय गाँव के बालक, युवा और वृद्ध 'होली' के स्थान पर एकत्रित होते हैं। स्त्रियाँ अपने बालकों के शरीर में उबटन लगाकर उनकी मैल को इसी 'संवत्' में जलने के लिए डाल देती हैं। उनका यह विश्वास है कि ऐसा करने से बालक की सारी बीमारियाँ 'संवत्' के साथ ही जल जाती हैं और वह अग्रिम वर्ष में पूर्णतया नीरोग रहता है। शुभ मुहूर्त आने पर 'संवत्' में आग लगा दी जाती है। गाँव के लोग 'संवत्' की प्रदक्षिणा करते हैं, उसमें धूप, जौ आदि पदार्थ जलने के लिये डालते हैं जिससे उसकी सुगन्धि फैलती है। जब होली जलती रहती है उसी समय गाँव के लड़के सूखी पत्तियों को लाठी में बाँधकर के अथवा जलती लकड़ी को लेकर घुमाते हैं जिसे लुकाड़ी भाजना कहते हैं। इस पुरातन प्रथा का क्या रहस्य है यह कहना कठिन है। संभवतः यह वीरता प्रदर्शन के लिये किया जाता हो।

''संवत् जलने' के दूसरे दिन अर्थात् चैत्र कृष्ण परिवा को होली का महान् उत्सव मनाया जाता है। यों तो ब्रज की होली प्रसिद्ध है ही परन्तु भोजपुरी प्रदेश में भी यह उत्सव कुछ कम उत्साह एवं उमंग के साथ नहीं मनाया जाता। इस दिन आबाल-वृद्ध-बनिता सभी में मस्ती दिखाई पड़ती है। होली के दिन गाई जाने वाली गालियों में अश्लीलता की मात्रा अधिक होती है। मनोविज्ञान वेत्ताओं का कहना है कि मनुष्य के मस्तिष्क में जो भावनायें

सुषुप्त होती हैं—जिन्हें वह किसी कारण प्रकट करना नहीं चाहता—वे उचित अवसर आने पर स्वतः प्रकाश में आती हैं। अतः मनुष्य के मन में काम वासना की जो छिपी भावना है वह इसी होली के अवसर पर प्रकट होती है। इस अवसर पर गाली देना उसी सुषुप्त भावना का स्वाभाविक उद्गार है।

होली के अवसर पर जो गालियाँ गाई जाती हैं उन्हें 'कबीर' कहते है। इन सभी गालियों के साथ कबीर का नाम संबद्ध है। जैसे:—

"अ र र र र र र र र भइया सुन ल मोर कबीर।"

इन गालियों को 'कबीर' क्यों कहते हैं यह निश्चित रूप से बतलाना कठिन है। कबीर की अटपटी निर्गुन बानी तत्कालीन समाज के लिये लोकप्रिय नहीं हो सकी अतः कबीर के प्रति अपनी अस्वीकृति या आत्मक्षोभ दिखलाने के लिए ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया है।

इस प्रकार होली का हुरदंग—जिसमें गाली और गीत का अनुपात प्रायः बराबर होता है—सबेरे से दोपहर तक निरन्तर चलता रहता है। इस दिन भोजन के लिए विशिष्ट पकवान पकाया जाता है। स्नान और भोजन के पश्चात् रंग खेलने का समय आता है। गाँव के लोग एक दूसरे के गले मिलते हैं, उनके गाल में गुलाल मलते हैं। गुलाल जिसे 'अबीर' कहते हैं प्रायः सभी लोगों को लगाया जाता है। इस दिन ऊँच-नीच का विचार छोड़कर प्रायः सभी लोग आपस में मिलते हैं और निजी बैर भाव को गुलाल मल-मलकर भगा देते हैं।

गाँव का जो मुखिया या प्रतिष्ठित व्यक्ति होता है उसके यहाँ इस दिन 'फाग' गाया जाता है। आज के दिन फगुआ गाने का दृश्य बड़ा ही मनोहारी होता है। फाग के गवैये घर आते हैं और दो दलों में विभक्त होकर बैठ जाते हैं। एक व्यक्ति के हाथ में ढोलक होता है और अन्य सभी लोगों के हाथ में झांझ जिसे 'झाल' कहा जाता है। कुछ लोग 'जोड़ी' लेकर भी बजाते रहते हैं। फगुआ और ढोलक का अविच्छिन्न संबंध है। दोनों दलों में एक-एक अगुआ या सरदार होता है जो गीत की प्रथम कड़ी को गाकर प्रारम्भ करता है। हृदय के भीतर प्रेम का रंग भी लाल और गुलाल का रंग भी लाल। दोनों का समन्वय क्या ही अच्छा होता है? मस्त गवैयों का अगुआ फगुआ की एक कड़ी गाता है:—

फगुआ गाने की विधि

"आजु सदा सिव खेलत होरी।"

तब दूसरी पार्टी के लोग गाते हैं:—

"जटा जूट में गंग बिराजै, अंग में भसम रमोरी।"

फिर पहिले दल के सब लोग मिल कर गाते हैं:—

"आजु सदा सिव खेलत होरी।"

इस प्रकार यह सम्मिलित (कोरस) गान बढ़ता चलता है। गीत की गति के बढ़ाव के साथ गाने के स्वर में भी वृद्धि होती जाती है। इसके साथ ही ढोलक और झाल के स्वर मन्द एवं गम्भीर होने लगते हैं। धीरे-धीरे यह गति क्रमशः बढ़ती जाती है और गीत की समाप्ति के पास तो गीत और संगीत का स्वर अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच जाता

है। गवैये भावावेश में आकर घुटने के बल खड़े हो जाते हैं और दोनों हाथों से जोरों से झाल पीटते हुए :—

"ब्रज में हरि होरी मचाई।
इतते आवत नवल राधिका, उततें कुंवर कन्हाई।
हिलि मिलि फाग परसपर खेलत,
सोभा बरनी न जाई।
आरे घरे घरे बजत बधाई।"

गाता जाता है। गीत की ध्वनि जब अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है तब झट से यकायक गीत समाप्त हो जाता है। सचमुच होली गाने का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक होता है।

होली हमारा परम आनन्द और मस्ती का त्योहार है। अतः ऐसे मंगलमय अवसर पर गेय गीतों में उछाह एवं हर्ष का वर्णन होना स्वाभाविक है। इन गीतों में कहीं राधा

वर्ण्य विषय

और कृष्ण के होली खेलने का वर्णन है तो कहीं शिवजी 'होरी खेलते' हुए दिखाई पड़ते हैं। कहीं राम और सीता सोने की पिचकारी में रंग भर कर एक दूसरे पर डाल रहे हैं तो कहीं पवनसुत हनुमान जी लंका में होरी मचाते हुए पाये जाते हैं।

राम और सीता के होली खेलने का यह वर्णन देखिये :[1]—

"होरी खेले रघुबीरा अवध में होरी।
केहरा हाथ कनक पिचकारी,
केकरा हाथ अबीर।

राम के हाथ कनक पिचकारी,
सीता के हाथ अबीर।
होरी खेले रघुबीरा अवध में होरी।"

'फगुआ' के इस गीत में राम के बाल रूप का कितना मधुर वर्णन किया गया है :[2]

"प्रन एहि मेरो रघुबर जी से खेलबि होरी
जाके सिर पर मुकुट बिराजे,
साँवर गोर दुनो जोरी।
भाल विशाल तिलक बिच सोभे,
सोभा सिन्धु खरोरी।

जाके कर सर, धनुष बिराजे,
फिरत अवध के खोरी।
बालक रूप अनूप बनल बा,
ओढ़त पीत पटोरी।
प्रन एहि मेरो, रघुबर जी से खेलबि होरी।"

इस प्रकार होली के गीतों में सर्वत्र आनन्द ही आनन्द दिखाई पड़ता है।

१. भो० ग्रा० गो० भाग० २ पृ० १२६। २. वही० पृ० २२४।

राजस्थानी लोक गीतों में भी होली के गीतों में वही आनन्द और मस्ती की धारा प्रवाहित होती है जो हमें भोजपुरी गीतों में उपलब्ध होती है। हमारे प्रदेश में होली ढोलक पर गाई जाती है। परन्तु राजस्थान में इस गीत के साथ चंग—एक प्रकार का बाजा—अथवा 'डफ' बजाने की प्रथा है जो बहुत पुरानी है। चंग के बजने का यह वर्णन सुनिये :[1]

राजस्थानी लोक गीतों में होली

"रंगीली चंग बाजरणू
म्हारे गीरैजी मंढ़ायो चंग बाजरणू।
म्हारी रेगर मंढ़ के लायो जे।
रंगीली चंग बाजरणू।"

राजस्थान में होली के अवसर पर लड़कियाँ और स्त्रियाँ, गहनों और वस्त्रों से सजधज कर मिल-जुलकर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती हैं। इस समय एक विशेष प्रकार का नृत्य होता है जिसे 'लूर' कहते हैं जिसमें स्त्रियाँ हाथ बाँधकर चक्राकार नाचती हैं। इसको 'लूवर' या घूमर भी कहते हैं। कोई स्त्री अपनी सखी से कहती है कि अब होली आ गई, आओ मिलजुलकर 'लूर' खेलें।[2]

"होली आयी ए सहेल्यां,
मिल खेलां लूर होली आयी ए।
कोई कोई ओढ़्यां भीणी भीणी चूनड़,
कोई कोई ओढ़्या दिखणी चीर।
होली आयी ए सहेल्यां, मिल खेलां लूर।"

मैथिली होली

मैथिली होली के गीतों में भी शृङ्गार, आनन्द एवं उछाह का ही वर्णन उपलब्ध होता है। रति क्रीड़ा का यह वर्णन देखिए :[3]

"गोरी कहमा गोदउलू गोदना।
बहियाँ गोदउलीं छतिया गोदउलीं
बाकी रहल दुनु जोबना।
पिया के पलंग पर रोदना।
गोरी कहमा गोदउलू गोदना॥"

इसी प्रकार अन्य मैथिली 'फागों' में भी शृंगाररस का समुद्र लहराता दिखाई पड़ता है।

चैता

चैत्र के मनभावन मास में 'चैता' गाया जाता है। चैत्र के महीने में गेय होने के कारण ही इसका नाम 'चैता' पड़ गया है। बसन्त में चैता की बहार

१. पारीक, रा० लो० गी० भाग १ पृ० ६७। २. वही. पृ० ६६। ३. राकेश: मै० लो० पृ० २७६।

बड़ी आनन्ददायिनी होती है। नदी के किनारे, किसी मेले में, अमराई की शीतल छाया में, मन्दिर में जहाँ देखिये वहीं मस्त भोजपुरी चैता गाने में तल्लीन दिखाई पड़ता है। लोक गीतों के जितने भी प्रकार हैं उनमें मधुरता, सरसता एवं कोमलता में चैता अपना सानी नहीं रखता। यह सत्य है कि सोहर और जंतसार में भी करुण रस का संचार है परन्तु हृदय को प्रभावित करने की जो शक्ति 'चैता' में पाई जाती है वह अन्यत्र उपलब्ध नहीं। इस दृष्टि से चैता को लोक-गीतों में सर्वश्रेष्ठ स्थान मिलना चाहिए।

चैता दो प्रकार का होता है। १. झलकुटिया २. साधारण। झलकुटिया चैता उसे कहते हैं जो सामूहिक रूप में झाल कूट कर बजाकर गाया जाता है। साधारण 'चैता' यह है जिसे केवल एक आदमी गाता है। जब चैता सामूहिक रूप (कोरस) में गाया जाता है उस समय गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। पहिला दल एक पंक्ति कहता है तो दूसरा उसके टेक पद को जोरों से गाता है। उदाहरण लीजिये—

पहिला दल गायेगा
"रामा चइत की निंदियाँ बड़ी बइरिनियां"
तो दूसरा दल कहेगा
हो रामा, सुतलो बलमुआ
पहिला दल गायेगा
नाहीं जागे हो रामा
दूसरा दल गायेगा
सुतलो बलमुआ।

इस प्रकार से गाने का क्रम कभी नहीं टूटता और प्रत्येक दल वाले को गाते समय थोड़ा विश्राम भी मिल जाता है। पहला दल जिस स्वर में गायेगा दूसरा दल उससे उच्च स्वर में टेक पद को गायेगा। जब चैता गान पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचता है तो गाने वाले उच्चतम स्वर का प्रयोग करते है। दोनों ओर से लगातार झाल बजता रहता है। गवैये भावावेश में आकर घुटने के बल खड़े हो जाते हैं। 'आहो रामा' 'आहो रामा' 'आहो रामा' की गगनभेदी ध्वनि से आकाश गूँजने लगता है। श्रोतागण आनन्द में मग्न हो गवैयों का मुंह देखते रहते हैं और गवैये गाने के जोश में अपनी सुधबुध को थोड़ी देर के लिये सचमुच भूल जाते हैं। चैत्र का महीना, रात्रि का समय, चैता का राग और झाँझ की झनकार सब मिलकर एक अजीब समां बाँध देते हैं। यह है झलकुटिया चैता।

चैता के गाने का भी एक विशेष ढंग है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में पहिले 'आहो रामा' या 'रामा' और अन्त में 'हो रामा' शब्दों का प्रयोग किया जाता है। जैसे[1]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग० २ पृ० २३६।

'रामा नदिया के तीरवा चनन गाछि बिरवा हो रामा।'
अथवा— 'रामा मोर पिछुवरवा कोंहार भइया हितवा हो रामा।'

इसके गाने की दूसरी विशेषता यह है कि दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदों की पुनरावृत्ति उस पंक्ति के गायन समाप्त होने पर पुनः की जाती है। अर्थात् दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद टेक पद का काम करते हैं। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी :

'आहो राम सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा।
बाते बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।
बाते बाते

आहो रामा मुंहवा से निकलेला, केलिया कुबोलिया हो रामा।
ताहि बोलिये, पियवा भइले बयरगिया हो रामा।
ताहि बोलिये

उपर्युक्त गीत की दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पद 'बाते बाते' हैं। ये ही पद इस पंक्ति के गाने के बाद टेक रूप में पुनः गाये जाते हैं। चौथी पंक्ति में 'ताहि बोलिये' शुरू तथा अन्त में दोनों समय गाया जाता है। यही बात अन्य पंक्तियों में भी समझनी चाहिये।

इसकी तीसरी विशेषता यह है कि इसके गाने में प्रथम अवरोह, फिर आरोह और पुनः अवरोह होता है। अर्थात् प्रारम्भ में मन्द स्वर, बीच में उच्च स्वर और पुनः अन्त में मन्दस्वर का प्रयोग किया जाता है। चैता के गीतों की स्वर्रालपि देखने से यह बात स्पष्ट ज्ञात हो जायगी। बिन्दुओं के द्वारा इसे निम्नांकित प्रकार से प्रकट कर सकते हैं।

उच्चतम स्वर—आ हो रामा सूतल रहली पिया संगे सेजिया हो रामा बाते बाते।
उच्च स्वर— ....
मन्द स्वर—.........

इसी प्रकार आरोहावरोह के क्रम से यह गीत गाया जाता है। 'हो रामा' और 'बाते बाते' में विलम्बित स्वर का प्रयोग किया जाता है। जैसे आहो रामा बाते३ बाते३........

वर्ण्य विषय

चैता प्रेम के गीत हैं अतः इनमें संभोग श्रृंगार की कहानी रागों में लिखी गई है। इनमें कहीं आलसी पति को सूर्योदय के बाद तक सोने से जगाने का वर्णन है तो कहीं पति पत्नी के प्रणय कलह की झाँकी देखने को मिलती है। कहीं ननद और भावज के पनघट पर पानी भरते समय किसी मनचले की छेड़खानी का उल्लेख है तो कहीं सिर पर मटका रख कर दही बेचने वाली ग्वालिन से-कृष्ण जी के 'गोरस' माँगने का वर्णन है। कहीं जानकी के स्वयम्बर की रचना की गई है तो कहीं फूल चुनने के लिये गई हुई किसी नायिका के कोमल कर में चुभे काँटे को उसके प्रियतम द्वारा निकालने का विवरण है। प्रियतम के साथ सेज पर सोनेवाली स्त्री किसी बहेलिया से प्रार्थना करती है मेरे अखंड प्रेम में विघ्न पहुंचाने

वाली कोयल को मार डालो। आशय यह है कि संभोग शृंगार के विभिन्न पहलुओं का इनमें बड़ा सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।

कोई स्त्री बहेलिया से कहती है कि मैं जब पति के साथ सोती हूँ तभी यह कोयल शब्द सुनाकर जगा देती है, इस बैरिन को मार डालो :[1]

'आहो रामा सूतल रहलीं पिया संगे सेजिया हो रामा।
बिरही कोइलिया, सबद सुनावे हो रामा।
बिरही कोइलिया।

आहो रामा गोड़ तोर लागेनी बाबा के बहेलिया हो रामा।
बिरही कोइलिया, मारि ले आऊ हो रामा।
बिरही कोइलिया।

ननद के आचरण पर आशंका करनेवाली भावज की यह दुष्टता भरी उक्ति कितनी तथ्यपूर्ण है।[2]

"आहो रामा हम तोसे पूछेली ननदी सुलोचनी हो रामा।
तोहरो पिठिया, धूरिया कइसे लागल हो रामा।
तोहरो पिठिया।

आहो रामा बाबा के बुअरवा नाचेला नेटुअवा हो रामा।
भितिया सटल धूरि लागल हो रामा,
भितिया सटल।'

आलसी, दीर्घसूत्री एवं निष्क्रिय पति को बार बार जगाने वाली स्त्री की यह प्रेम उक्ति कितनी मर्मस्पर्शिनी है। जब उसका पति जगाने पर भी नहीं जागता तब वह अपनी ननद से उसे जगाने की प्रार्थना करती है।

ननद के अस्वीकार करने पर वह कहती है कि तुम्हारे लिये तो तेरा भाई सो रहा है परन्तु मेरे लिये इसका सोना सूर्य और चन्द्रमा के अस्त होने के समान है :[3]

"रामा साँझहि के सूतल फूटलि किरिनिया हो रामा।
तबो नाहीं जागेला हमरो बलमुआ हो रामा।
राम चुर घींची मरलीं पइरिया घींची मरली हो रामा।
तबो नाहीं जागेला सँइयाँ अभागा हो रामा।
रामा तोरा लेखे ननदी तोर भइया निंदिया के मातल हो रामा।
रामा मोरा लेखे चान सुरुज छपित भइल हो रामा।"

यमुना में क्रीड़ा करते समय कृष्ण जी के छिप जाने पर गोपियों की चिन्ता का कितना सुन्दर चित्रण नीचे लिखे चैते में हुआ है। यह चैता सरसता, मधुरता और हृदय की द्रविकता में अत्यन्त सुन्दर है। यहाँ कृष्ण की उपमा माणिक्य से दी गई है।[4]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २४८-४६। २. वही. पृ० २५०। ३. वही भाग १ पृ० ३४०-४१। ४. वही. भाग २ पृ० २४६-४७।

"आहो रामा मानिक हमरी हेरइले हो रामा ।
ओही यमुना में, केहु नाहीं खोजेला हमरो पदारथ हो रामा ।
ओही यमुना में ।

आहो रामा ओही रे जमुनवा के चीकटी मटिया,
चलत पाँव बिछिलइले हो रामा ।
ओहि यमुना में ।

आहो रामा ओहि रे जमुनवा के करिया मटिया,
देखत मन घबरइले हो रामा ।
ओहि जमुना में ।"

अधिकांश चैता गीतों के कर्ता का नाम प्राप्त होता है ! बुलाकी दास का नाम अनेक चैतों की अन्तिम पंक्ति में आता है। जैसे !

"दास बुलाकी चइत घाटो गावे हो रामा ।
गाई गाई बिरहिनि समुझावे हो रामा ।"

ये बुलाकीदास यू० पी० के बलिया जिले के रसड़ा कस्बा के पास के रहने वाले थे जहाँ पर इनका मठ आज भी विद्यमान है। इन्होंने सैकड़ों चैता गीतों का निर्माण किया है परन्तु ये गीत प्रकाशित न होने के कारण मौलिक रूप में ही चलते रहे हैं। कुछ लोग चैता और घाटों में अन्तर मानते हैं परन्तु हमारी सम्मति में चैता के गीतों को ही घाटों कहते हैं। बुलाकीदास का नाम 'घाटों' से संबद्ध हैं परन्तु इन 'घाटों' के देखने से पता चलता है कि चैता और घाटों में कुछ भी अन्तर नहीं है।

मैथिली में चैता को 'चैतावर' कहते हैं। इनमें वसन्त की मस्ती और रंगीन भावनाओं का अनोखा सौन्दर्य अंकित है। कोई स्त्री कहती है कि जब चैत (वसन्त) बीत जायगा तब मेरा मूर्ख पति आकर क्या करेगा। बौर में 'टिकोरे' निकल आये, टहनी-टहनी में रस का संचार हो गया परन्तु प्रिय नहीं आया।[1]

"चैत बीति जयतइ हो रामा ।
तब पिया की करे अयतइ ।
आरे अमुआ मोजर गेल,
फरि गल टिकोरवा ।
डारे पाते भेल मतवलवा हो रामा :"

कठोर पति के प्रति किसी विरहिणी का यह उपालम्भ कितना मार्मिक है।[2]
"आयल चैत उतपतिया ए रामा,
नई भेजे पतिया ।
बिरही कोइलिया शब्द सुनावे,
कल न पड़य अब रतिया हे रामा ।
बेली चमेली फुले बगिया में
जोबना भूलल मोर अंगिया हो रामा ।"

१. मै० लो० गी० २८५ । २. वही. २८६-८७ ।

बारहमासा

पावस ऋतु में जो आनन्दमय गीत गाये जाते हैं उन्हें बारहमासा कहते हैं। इन गीतों में विरहिणी की वेदना की अभिव्यक्ति पायी जाती है। वाणिज्य व्यवसाय के लिए पति परदेस चला गया है। बरसों से लौटकर नहीं आया। वर्षा का दिन है। छप्पर चू रहा है परन्तु छाने वाला कोई नहीं है : ऐसी दशा में विरहिणी का बिरह उत्कर्ष को प्राप्त करता है और उसकी वेदना 'बारहमासा' के रूप में प्रकट होती है। इन गीतों में वर्ष भर के समस्त मासों–बारह महीनों–में होने वाले दुखों का वर्णन पाया जाता है अतः उन्हें 'बारहमासा' कहते हैं। इन लोकगीतों में विरह की अधिकता होती है अतः इन्हें यदि 'विरहमासा' कहें तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। जिन गीतों में बारहों महीने का विरहजन्य प्रकृति चित्रण होता है उसे 'बारहमासा', जिनमें छः मासों का वर्णन होता है उन्हें 'छः मासा' और जिनमें केवल चार मास— आषाढ़, सावन, भादों, कुवार का प्रकृति चित्रण उपलब्ध होता है वह 'चौमासा' के नाम से पुकारा जाता है। भोजपुरी में विशेषकर बारहमासा ही पाये जाते हैं। 'छः-मासा' तो प्रायः होता ही नहीं, हाँ चौमासा दो चार अवश्य प्राप्त होते हैं।

हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध कवि जायसी ने भी अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक पद्मावत में 'बारहमासा' लिखा है। नागमती वियोग खंड में नागमती का विरह वर्णन इसी 'बारहमासे' में किया गया है। जायसी ने नागमती का वियोग वर्णन आसाढ़ मास से प्रारम्भ किया है और जेष्ठ मास में इसकी समाप्ति की है। प्रत्येक महीने में होने वाले प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने बड़ी ही खूबी के साथ किया है। प्रथम दो, तीन महीनों का यह वर्णन लीजिए।

'चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा विरह दुंद दल बाजा।
धूम, साम, धौरे घन धाये, सेत धजा बक पांति देखाए।
... ...
सावन बरस मेह अति पानी, भरनि परी, हौं विरह झुरानीं।
लाग पुनरवसु पीउ न देखा, भइ बाउरि, कंह कंत सरेखा।
रक्त के आँसु परहि भुंइ टूटी, रेंग चली जस वीर बहूटी।"

इसी प्रकार जायसी ने शेष महीनों के भी प्राकृतिक सौंदर्य का बड़ा ही सुन्दर वर्णन उपस्थित किया है। इससे पता चलता है कि बारहमासा लिखने की प्रथा आज से ३५० वर्ष पूर्व में प्रचलित थी। जायसी के बाद अन्य सन्त कवियों—विशेषकर भोजपुरी सन्त कवियों—ने भी बारहमासा लिखा है जिसमें विरहिणी के वियोग की बड़ी मार्मिक व्यंजना की गई है।

वर्ण्य विषय

बारहमासा प्रायः वर्षा ऋतु में गाया जाता है परन्तु अन्य ऋतुओं में गाने के लिए उसका निषेध नहीं है। मन में जब भी भावों की घटा छा जाय तभी इन्हें गाया जा सकता है। भोजपुरी प्रदेश में बारहमासा गाने का बहुत प्रचार है। देहात के लोग इन गीतों को गाना और सुनना बहुत पसन्द करते हैं क्योंकि उन्हें एक

साथ ही बारहों महीने के दुःख-सुख का दृश्य सामने दिखाई पड़ने लगता है। बारहमासा प्रायः आसाढ़ मास के वर्णन से ही प्रारम्भ होता है और जेष्ठ मास के वर्णन मे समाप्त होता है।

इन बारहमासों में विप्रलम्भ शृंगार का ही वर्णन प्रधान रूप से पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत भाषा में प्रवास कथन में मन्दाक्रान्ता का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार लोकगीतों में वियोग वर्णन में यह छन्द बहुधा प्रयुक्त हुआ है। बहुत सम्भव है कि जायसी ने लोक साहित्य में प्रचलित बारहमासों की लोकप्रियता को देखकर नागमती वियोग वर्णन के लिए इनका प्रयोग करना उचित समझा हो। कहीं तो इन गीतों में परदेश जाने के लिए पति को रोकने के लिए स्त्री की प्रार्थना सुनाई पड़ती है तो कहीं प्रोषितपतिका स्त्री अपनी सखी से विपम वियोग जन्य अपने दुखों का वर्णन करती हुई दृष्टिगोचर होती है।

नीचे के इस गीत में कोई विरहिणी प्रत्येक मास में अपने दुखों को गिनाती हुई कहती है कि :[1]

'प्रथम मास असाढ़ सखि हो, गरजि गरजि के सुनाई।
सामी के अइसन कठिन जियरा, मास असाढ़ नहिं आय।
सावन रिमझिम बुनवा बरिसे, पियवा 'भीजेला' परदेस,
पिया पिया कहि रटेले कामिनी, जंगल बोलेला मोर।'

विरहिणी को अपने उजड़े हुए जीवन के साथ प्रकृति के सौन्दर्य में सामंजस्य नहीं दीखता। उसे भादों की रात्रि भयावनी मालूम पड़ती है और माघ का महीना मतवाला दिखाई पड़ता है :[2]

''भादों भवन सोहावन न लागै,
आसिन मोहि न सोहाई।
कातिक कन्त विदेश गइले हो,
समुझि समुझि पछताई।
अगहन आवन कहि गइले ऊधो,
पूस बितल भरि मास।
माघ मास जोबन के मातल,
कैसे धरब जिय आस।'

एक दूसरी वियोगिनी पति के विरह से उत्पन्न अपनी हार्दिक वेदना को अपनी सखी से प्रकट करती हुई कहती है कि :[3]

'भादों मास भयावन ए सखि,
घन बहुत घहराई।
केकरा सरनवा हम जाई के बइठीं,
जीव मोरे बहुत डेराई।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३२३। २. वही पृ० ३२९। ३. वही भाग २ पृ० २०३।

कातिक में सखि, कतिकी लागे,
सभे सखि गंगा नहाई।
हमरो ललन परदेस ए सखि।
केकरा संगे गंगवा नहाई।'

मैथिली लोक-गीतों में बारहमासा का प्रधान स्थान है। इनका प्रचार भी मिथिला प्रान्त में बहुत है। 'राकेश' जी इन गीतों के विषय में लिखते हैं कि :[1] 'बारहमासा' मैथिल लोक साहित्य की अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना है। इसके नैसर्गिक सौन्दर्य के सामने कीट्स के हल्के पैर, गहरे नील रंग की बनफशा-सी आँखें...और मलाईदार वक्ष प्रदेश वाली नायिका भी फीकी पड़ जाती है। 'बारहमासा' की भाव धारा पुरानी शराब से चोखी और चित्र देवदास-सा स्वच्छ है। पद में शृङ्गार की रोचक सरसता है। जिस तरह ग्रामीण वधू की लज्जाभ आँखों में काले रंग का काजल उसके लावण्य में निखार ला देता है, उसी तरह वसन्त की पुष्प श्री-सी रंगीन ग्रामीण कलाकारों की सूक्ष्म वृत्तियों ने 'बारहमासा' के मुख मरकत पर पन्ने का पानी चढ़ा दिया है।

मैथिली लोक गीतों में बारहमासा

'राकेश' जी की उपर्युक्त उक्ति मैथिली बारहमासा के गीतों पर अक्षरशः चरितार्थ होती है। वियोग विधुरा नायिका की यह मनोवेदना सुनिये :[2]

"पूस लघु दिन राति बड़ि धिक
केहन सुन्दर जोग रे।
सुतलि रहितहूँ कंत संग सखि,
करम नहि मोर भोग रे।
कातिक सखि सब मुदित खेलय
श्याम चकवा खेल रे।
हम कतय बसि सेज पर सखि
नयन नीरस मेल रे।"

बँगला लोक-गीतों में भी बारहमासा की कुछ कमी नहीं है। बँगला में इसे 'बारमाशी' कहते हैं जो बारहमासा का ही रूपान्तर है। बँगला साहित्य में पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मंगल' में बेहुला की बारहमासी का वर्णन पाया जाता है। भारत चन्द्र के 'अन्नदामंगल' में भी यह बारहमासा मिलता है।

बँगला में बारहमासा

भोजपुरी एवं मैथिली बारहमासा की भाँति बँगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरहजन्य वेदना का वर्णन उपलब्ध होता है। इस 'बारमाशी' की यह विशेषता है कि इसमें प्रत्येक मास में होने वाले व्रतों का भी विवेचन है। यह 'बारमाशी' सुनिये जिसमें वियोगिनी के विरह ज्वाला की मार्मिक व्यंजना हुई है।[3]

१. मै० लो० गी० पृ० ३६०। २. मैथिली लोक गीत पृ० २६२। ३. हारामणि : मुहम्मद मन्सूरमउद्दीन द्वारा सम्पादित।

"यौवन ज्वाला बड़ुई ज्वाला शहिते ना पारि।
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिव दड़ि।
दुःख यौवन प्रानेर वैरी।

झाड़ेर बांश काट रे सादु बान्दिग्रो बांगेला।
तुम सादु बाणिज्य गेले के खाबे कमेला। टेक
हाटे जाग्रो बाजारे जाग्रो, गाछे पाका बेल।
तुम सादु बाणिज्य गेले, राखाले मारबे टेल।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में फागुन मास की असहनीयता का सुन्दर वर्णन हुआ है।[1]

"ए मास गल रे सादु लइल मोर मने।
फागुन मासेर दुप्क सहन के मने।"

उपर्युक्त गीतों के देखने से ज्ञात होगा कि भोजपुरी, मैथिली और बँगला 'बारहमासा' में समान भाव धारा प्रवाहित हो रही है।

(ग) व्रत संबंधी गीत

स्त्रियाँ विभिन्न मासों में बहुरा, तीज, पिड़िया और गोधन आदि का व्रत करती हैं और उस दिन गीत गाती हैं। इन सभी प्रकार के गीतों का वर्णन विभिन्न मासों के क्रम से प्रस्तुत किया जाता है। यों तो माता देवी की पूजा किसी समय भी की जा सकती है और की भी जाती है परन्तु चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की नवमी को 'माता देवी' की पूजा विशेष रूप से होती है। देहात में सात प्रकार की माता देवी मानी जाती हैं जैसे शीतला माता, गलसुग्रा माता, पनिसहा माता, बड़की माता एवं छोटकी माता आदि। परन्तु इन सबमें शीतला माता ही अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी पूजा एक विशेष अवसर पर होती है अतः इनका यहाँ उल्लेख किया गया है। इसके बाद अन्य मासों में होने वाले व्रतों के अवसर पर गाये जाने वाले गीतों की चर्चा की गई है। ये व्रत संबंधी गीत स्त्रियों द्वारा ही गाये जाते हैं।

१. शीतला माता के गीत

चेतक को शीतला माता के नाम से पुकारते हैं। यह कहना कठिन है कि ऐसी भयंकर बीमारी को जिसमें शारीरिक गर्मी की विशेष प्रधानता रहती है शीतला क्यों कहते हैं। डा० तारापूरवाला[2] ने लिखा है कि मनुष्य की यह प्रवृत्ति होती है कि वह नीच तथा भयंकर वस्तु को किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। जैसे रसोई बनाने वाले ब्राह्मणों को महाराज (बहुत बड़ा राजा) कहते हैं। इसी प्रकार से इस भयंकर बीमारी को शीतला कहने लगे हों तो कुछ आश्चर्य नहीं। कुछ काल के अनन्तर इसी शीतलादेवी को अधिक महत्व देने के लिये 'मातादेवी' के नाम से पुकारने लगे। सारी बीमारियों में संभवतः चेचक या शीतला ही ऐसी बीमारी है जो देवी या देवता के रूप में पूजी जाती है। इसका कारण संभवतः इसकी भयंकरता

---

१. हारामणिः मुहम्मद मन्सूरउद्दीद द्वारा सम्पादित। २. एलिमेन्ट्स आफ दि साइन्स आफ लैंग्वेज, कलकत्ता विश्वविद्यालय।

ही है। शीतला देवी का वाहन गधा है जो उनकी भयंकरता एवं वीभत्सता को सूचित करने के लिए पर्याप्त है।

भोजपुरी प्रदेश में जब किसी को शीतला की बीमारी होती है तो उसकी कुछ भी दवा नहीं की जाती। वह रोगी माता देवी की दया पर छोड़ दिया जाता है। उसकी बीमारी के अच्छा होने पर शीतला माता की प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं और उनसे प्रार्थना की जाती है कि ये रोगी को नीरोग कर दें। माली जाति विशेष देवी की भक्त और प्रिय पात्र समझी जाती है। अतः रोगी के झाड़-फूंक के लिए माली या मालिन बुलायी जाती है। शीतला माता का निवास-स्थान नीम का पेड़ समझा जाता है अतः वह नीम की टहनी से रोगी को झाड़ती है जिससे शीतला माता प्रसन्न होकर रोगी को आरोग्य प्रदान करें। मालिन देवी की प्रिय सेविका है अतः उसके द्वारा किया गया झाड़-फूंक नीरोग होने का साधन समझा जाता है। इसी कारण से इन गीतों में मालिन का बार-बार वर्णन आता है।

जब किसी पुरुष के ऊपर शीतला देवी का प्रकोप होता है तब उसके घर वालों को अनेक नियमों का पालन करना पड़ता है जैसे बालों का न कटाना, रोटी का न खाना, दाल में हल्दी न डालना, शाकभाजी को न छौंकना, जूता न पहिनना और किसी को प्रणाम न करना। ऐसा विश्वास है कि इन नियमों का पालन करने से देवी प्रसन्न होती हैं और रोगी शीघ्र आरोग्य लाभ कर लेता है। इसीलिए शीतला देवी की प्रार्थना करना और उपर्युक्त नियमों का पालम नितान्त आवश्यक समझा जाता है।

यद्यपि शीतला माता का वाहन गधा है परन्तु गीतों में उनके वाहन का उल्लेख घोड़ा किया गया है। सम्भवतः पूजनीय एवं पवित्र माता को ऐसा अपवित्र पशु वाहन रूप में देना भक्त को रुचिकर नहीं प्रतीत हुआ अतः उसने घोड़े का वर्णन किया है। शीतला माता को बंगालिन देवी भी कहा गया है। इसका प्रधान कारण यह है कि प्राचीन काल में बंगाल शक्ति उपासना का केन्द्र था अतः शक्ति की प्रतीक शीतला माता को बंगालिन देवी कहना स्वाभाविक ही है। एक गीत लीजिये जिसमें देवी को मूर्तिमान् स्वरूप प्रदान किया गया है :[1] ।—

"कवना बरने तोहरा घोड़वा ए सीतलि, कवना बरने असवार।
बांगालिन देवी हो, लीही ना पुजवा हमार।
लाल बरने मोरा घोड़वा ए सेवका, सुरुज बरने असवार।
मइया रंग रसिया रे हाथ लेले बंसिया,
तीतील ले ले जोड़िआई ॥"

इस गीत से यह पता चलता है कि शीतला देवी को तित्तिर (तीतर) पसन्द है और यह उन्हें भेंट चढ़ाया जाता है।

शीतला माता के विषय में अन्य जो गीत उपलब्ध होते हैं उनमें भावुक भक्त की प्रगाढ़ भक्ति का भलीभाँति परिचय मिलता है। इन गीतों में चेचक से पीड़ित बालक के लिए आरोग्य प्रदान की प्रार्थना की गई है। शीतला माता बड़ी दयालु हैं, थोड़े से उपकार के

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ शीतला माता के गीत।

लिए भक्त के मनोरथ की सद्यः पूर्त्ति कर देती हैं। वह नीम के पेड़ में हिंडोला लगाकर झूल रही हैं, इतने में उन्हें प्यास लगती है। रात का समय, गाँव है दूर। गाँव में आकर वे मालिन की लड़की को जगाती हैं और पीने के लिये पानी माँगती हैं। मालिन की बेटी कहती है कि ऐ माता ! मेरी गोद में लड़का सो रहा है, मैं कैसे उठूँ ? शीतला के आग्रह करने पर वह उठती है और पानी पिलाती है। तब शीतला माता प्रसन्न होकर उसकी अभिलाषा की पूर्ति कर देती हैं। वही इतनी दयालु हैं कि भक्त की आर्त प्रार्थना को अस्वीकार नहीं कर सकतीं[1] :

"निमिया की डाली मइया लावेली हिलोरवा
कि झुली झुली।
मइया गावेली गीत, कि झुली झुली॥
झुलत झुलत मइया का लगली पियसिया कि
चली भइली।
मलहोरिया अवास कि चलीं भइली॥
सुतलु बाड़ू कि जागलि ए मालिनि।
उठि के मोहीं के पनिया पिआऊ॥"

पानी पीकर प्रसन्न हुई माता आशीर्वाद देती है:—

"धियवा जुड़ामु मालिन आपन ससुरवा,
पतोहिया तोर जुड़ामु नइहरवा।"

एक दूसरे गीत में सेविका की प्रार्थना और नैराश्य का भाव इतने सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। एक बाँझ स्त्री अपनी 'डाली' लेकर माता शीतला के दरबार में उपस्थित होती है। सबकी पूजा की डाली माता ले लेती हैं परन्तु उस अभागिनी की डाली पड़ी रह जाती है। इस पर बन्ध्या स्त्री दुःखित होकर जल भरने के लिये जंगल में जाने को तैयार हो जाती हैं और कहती है कि ऐ माता ! आपकी पूजा के लिये पानी भरते-भरते मेरे सिर की चाँद घिस गई और देवघर मन्दिर लीपते-लीपते मेरे हाथ घिस गये। तो भी ऐ माता ! आपकी कृपा नहीं हुई, मेरे बाँझिन होने का कलंक नहीं हटा। इस पर माता आश्वासन देती हैं कि तुम्हें पुत्र देकर मैं तुम्हारे बन्ध्या के कलंक को धो दूँगी।[2]

"पनिया भरत ए मइया, चनिया मोर खिआइल हो।
आरे देवघर लिपत ए मइया, हाथवा खिआइल हो।
आरे तबहू ना छूटेला ए मइया,
बंझिनिया केरि नइयाँ हो।"

शीतला माता पुत्र ही नहीं देतीं, प्रत्युत यदि वह बालक बीमार पड़ जाता है तो उसकी रक्षा भी करती हैं। चेचक के निकलने से जब बालक का शरीर जलने लगता है, बेहद पीड़ा होती है, तब उसकी दयामयी जननी भक्ति भावना में झूमते-झूमते शीतला माता से प्रार्थना करती है कि मैं बालक की माता हूँ। मैं आँचर पसार कर भीख माँग रही हूँ। ऐ मेरी दुलारी माँ ! इस बालक को जीवन की भिक्षा दीजिये:[3]—

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६६-७०। त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा० पृ० २२७।
२. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २७१-७२। ३. वही पृ० २६१-६२।

"पटुका पसारि भीखि माँगेली बालकवा के भाई
हमरा के बालकवा भीखि दीं।
मोरी दुलारी हो मइया,
हमरा के बालकवा भीखि दीं।
मोरी मानावा राखनि मइया,
हमरा के बालकवा भीखि दीं।"

बालक की दर्द भरी आहों से व्याकुल होकर उसकी माँ जब इन गीतों को मस्ती में झूम-झूमकर गाती है, तो सुनने वालों के शरीर में रोमांच हो जाता है और जान पड़ता है कि नीम की डाल पर झूलने वाली शीतला माँ, अपने आनन्दमय झूले से उतरकर, जल्दी-जल्दी बालक की सेज के पास आकर खड़ी हो जाती हैं और अपना वरद हस्त फैलाकर नीरोग होने का आशीर्वाद देती है।

शीतला माता को लाल फूल विशेष कर अड़हुल का फूल परम प्रिय है। परन्तु कहीं कहीं उनकी पूजा के लिये चम्पा का फूल चुनने का भी उल्लेख पाया जाता है।[1]

बंगला लोक गीतों में भी शीतला माता के गान पाये जाते हैं। उनमें भी भोजपुरी गीतों के समान ही भाव उपलब्ध होते हैं। राजस्थानी लोक गीतों में शीतला देवी को 'सेड़ल माता' कहते हैं। बालक के चेचक निकलने पर माता से प्रार्थना की जाती है और उनकी ही कृपा से बालक को आरोग्य लाभ होता है। एक राजस्थानी गीत में शीतला के निकलने पर दादी, फूफी आदि संबंधियों के थर थर काँपने और माँ, बाप के डरने का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु 'सेड़ल माता' की दया से बालक चंगा हो जाता है।[2]

"दादी भूवा थर थर काँपी,
डरप्या माओ अर बाप,
बला ल्यूं सेड़ल माता ये
... ...
जब तेरी माता मान लियो ये,
सोयो सारी रात,
बला ल्यूं सेड़ल माता ये।"

२. नागपंचमी के गीत

श्रावण शुक्ला पचमी को 'नाग पंचमी' कहते हैं। इस दिन सर्प की पूजा होती है। इस दिन लड़कियाँ प्रातःकाल उठकर मकान की भित्ति पर गोबर से एक रेखा खींचती हैं तथा घर के प्रधान दरवाजे पर सर्प की दो मूर्तियाँ गोबर की बनाती हैं। शहरों में जहाँ गोबर का अभाव रहता है कागज पर बने नाग के चित्र को स्त्रियाँ दरवाजे पर चिपका देती हैं। नाग की मूर्ति बनाने के पश्चात् उसकी यथाविधि पूजा की जाती है। एक कटोरे मे दूध और धान की खील लावा भरकर एकान्त स्थान में रख दिया जाता है। लोगों का

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६७। २. पारीक : राजस्थान के लोक गीत भाग १ पूर्वार्द्ध पृ० १८-१९।

विश्वास है कि इस दिन नागराज आते हैं और दूध पीते हैं। जो इस दिन नाग की पूजा करते हैं उन्हें सर्प काटने का भय नहीं रहता। यदि काटे भी तो उसका कुछ असर नहीं होता। इस तिथि को 'नाग पचैयाँ' भी कहते हैं जो 'नाग पंचमी' का अपभ्रंश है।

नाग पूजा भारत में अत्यन्त प्राचीनकाल से चली आ रही है। आज भी बंगाल में सर्पों की अधिष्ठात्री देवी 'मनसा' की पूजा का प्रचुर प्रचार है तथा 'मनसा' की उपासना पूजा और स्तुति में सैकड़ों ग्रन्थों की रचना की गई है। वहाँ नागपूजा की परम्परा मनसा सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है।

नाग पंचमी के गीत अधिक नहीं उपलब्ध होते। इस दिन मदारी जीवित सर्पों को दिखलाते हैं और भिक्षा माँगते हैं। नीचे के गीत में यह वर्णन मिलता है कि जो सर्प को भिक्षा देगा उसे पुत्र पैदा होगा, वह सुखी होगा परन्तु जो भिक्षा नहीं देगा उसे पुत्र रत्न की प्राप्ति नहीं हो सकती।[1]

"जे मोरा नाग के भिखिया ना दीहैं
दुनो बेकति जरि जइहैं हो, मोरे नाग दुलरुआ।
जे मोरा नाग के भीखि उठि दीहैं
दुनो बेकति सुखी रहिहैं हो मोरे नाग दुलरुआ।"

३. बहुरा

बहुरा का व्रत भाद्र कृष्ण चतुर्थी को किया जाता है। उसे 'बहुला' भी कहते हैं। इस व्रत की कथा की नायिका बहुला है। इसीलिये इस व्रत का नाम बहुला या बहुरा पड़ गया है। इस दिन कन्यायें तथा युवतियाँ दिन भर व्रत रखती हैं। सायंकाल को नदी या जलाशय में स्नान कर बहुला नामक गाय, उसके बछड़े तथा सिंह की बालू की प्रतिमा बनाकर फल-पुष्प आदि से उनकी विधिवत् पूजन करती हैं। तदनन्तर बहुला की कथा सुनती हैं। स्त्रियाँ जौ के सत्तू तथा गुड़ शाम को खाती हैं। यह व्रत सन्तान का दाता और ऐश्वर्य को बढ़ाने वाला है।

किसी ब्राह्मण देवता के घर बहुला नामक गाय थी। एक दिन वह जंगल में चरने गयी जहाँ सिंह ने उसे पकड़ लिया। अपने प्यारे बछड़े को समझा-बुझाकर पुनः लौट आने का वादा करने पर सिंह ने बहुला को छोड़ दिया। वह अपने प्यारे पुत्र को संतोष देकर पुनः सिंह के पास लौट गई। उसकी दृढ़ प्रतिज्ञा एवं सत्य वचन से प्रसन्न होकर सिंह ने उसे मुक्त कर दिया। यही बहुला की संक्षेप कथा है।

इस कथा से पुत्र के प्रति माता के असीम प्रेम का पता चलता है। साथ ही सत्यवादिता के महत्व का दर्शन भी होता है।

बहुरा स्त्रियों के लिये पुत्र का व्रत माना जाता है। अतः बहुरा के गीतों में माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम स्नेह और सत्य प्रतिज्ञा की महिमा का उल्लेख होना चाहिए। परन्तु बहुरा के जो गीत हमें प्राप्त हुए

वर्ण्य विषय

हैं उनमें यह बात नहीं पाई जाती। प्रस्तुत लेखक ने बहुरा के जिन गीतों का संकलन किया है उनमें सास और बहू का शाश्वतिक विरोध, पति पत्नी का प्रेम और सौन्दर्य के कारण किसी

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८५।

व्यक्ति के मोहित होने का वर्णन ही अधिक पाया जाता है। सास की दुष्टता का यह वर्णन देखिये :

"कोरी नदियवे सासु दहिया जमवली,
रचि एक अमरित लावेली जोरनवा ए हरी।
अपने त बेचें सासु गाँव का गोयेड़वा,
हरि हरि हमरा के भेज जमुना पार ए हरी।"

रेशमी नामक किसी सुन्दरी के सौन्दर्य को देखकर किसी राजा के मुग्ध होने का यह वर्णन कितना मधुर है।[1]

"पहिरि ओहिरि रेशमी चलली बजरिया,
परिगइले राजावा के दीठी गोरिया रेसमी।
किया गोरी रेशमी रे साँचवा के डारल,
किया तोहरा के गढ़ेला सोनार गोरिया रेसमी।"

इसी प्रकार बहुरा के अन्य गीत भी शृङ्गार रस से ओतप्रोत हैं।

४. गोधन

प्रथा

कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को 'गोधन' व्रत मनाया जाता है। भोजपुरी प्रदेश में इस दिन गोबर से एक मनुष्य की प्रतिकृति बनाकर उसकी छाती पर ईंटें रखी जाती हैं और उसी को स्त्रियाँ मूसल से कूटती हैं। इस प्रक्रिया को 'गोधन कूटना' कहते हैं। गोधन कूटने के पूर्व कहानियाँ कही जाती हैं और स्त्रियाँ भटकटैया, रेंगनी और चना लेकर घर भर के समस्त व्यक्तियों को शाप देती हैं जिसे 'सरापना' कहते हैं। वे घर के प्रत्येक व्यक्ति का नाम लेकर कहती हैं कि "अमुक को खाँव, अमुक को चबाँव"। घर के ही लोगों को नहीं बल्कि पास-पड़ोस के लोगों को भी वे इसी तरह 'खाती और चबाती' हैं। फिर अपनी जीभ को भटकटैया के काँटे से दागती हैं। इसके पश्चात् खील लावा और मिठाई आदि चीजें गोधन बाबा के स्थान पर भेजी जाती हैं। वहाँ 'गोधन' को कूटते समय स्त्रियाँ कहती हैं कि जिनको खाया चबाया है उन सबको 'हनुमन्ते' का बल हो। इस प्रकार ये सभी 'मृत' व्यक्तियों को जिलाती हैं। यह सब पूजन मध्याह्न के पूर्व ही हो जाता है। इसके बाद बहन अपने भाई को मिठाई खिलाने के लिये जाती है। सर्वप्रथम वह उसे चना खिलाती है, पुनः विविध प्रकार के मिष्टान्न देती है। भाई प्रसन्न चित्त होकर उसे रुपया अथवा गहने देता है। इस प्रकार यह व्रत समाप्त हो जाता है।

"गोधन" शब्द 'गोवर्धन' का अपभ्रंश ज्ञात होता है। प्राचीन काल में गोवर्धन की पूजा का उल्लेख पाया जाता है। यही प्राचीन गोवर्धन पूजा इस विकृत 'गोधन' की पूजा के रूप में आज भी विद्यमान है। गोबर की बनी हुई मनुष्य की प्रतिमा वास्तव में इन्द्र की प्रतिकृति है। भगवान् कृष्ण ने इन्द्र के

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ५१।

गर्व को चूर्ण किया था। अतः यह 'गोधन कूटने' की प्रथा इन्द्र के मद चूर्ण करने का प्रतीक है। परन्तु इस दिन स्त्रियाँ अपने प्रिय व्यक्तियों को मृत्यु का अभिशाप क्यों देती हैं। इसका रहस्य सुलझाना एक विषम पहेली है।

वर्ण्य विषय

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य भाई और बहन में प्रेम भावना की वृद्धि है। इसी का वर्णन हम इन गीतों में भी पाते हैं। साथ ही गोधन के व्रत में जो विधि बरती जाती है जैसे प्रियजनों को अभिशाप देना, उसका भी उल्लेख पाया जाता है। भाई के लिए बहिन की यह शुभकामना कितनी सुन्दर है।[1]

"कवन भइया चलले अहेरिया,
कवन बहिन देलीं असीस हो ना।
जियसु रे मोर ए भइया,
मोरा भऊजी के बाढ़सु सिर सेन्दुर हो ना।

यह कितनी मंगलमयी कामना है। एवमस्तु।

९. पिड़िया

व्युत्पत्ति

पिड़िया का व्रत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से प्रारम्भ होकर अगहन शुक्ल प्रतिपदा पूरे एक मास तक रहता है। कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा के दिन जो गोधन की गोबर की मूर्ति बनाकर पूजा होती है, उसी गोबर में से थोड़ा सा अंश लेकर कुँवारी लड़कियाँ पिड़िया लगाती हैं। घर की किसी दीवार पर गोबर की छोटी-छोटी सैकड़ों मनुष्य की आकृतियाँ बनायी जाती हैं। इसके साथ ही उस पर आटे के द्वारा चित्र कर्म भी किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को 'पिड़िया लगाना' कहते हैं। पिड़िया शब्द 'पिंड' शब्द का अपभ्रंश रूप है जिसमें लघु अर्थ में 'इया' प्रत्यक्ष जोड़ा गया है। पिंड का अर्थ बड़ी गोली वस्तु है जैसे मृत्पिड। अतः 'पिड़िया' का अर्थ हुआ गोबर का छोटा गोला। दीवालों पर जो गोबर की आकृति बनाई जाती है वह गोली-गोली होती है इसी कारण इस व्रत का नाम पिड़िया है।

प्रथा

केवल कुंवारी कन्यायें ही अपने प्रिय भाइयों की मंगल कामना के लिये पिड़िया का व्रत करती हैं। वे प्रति दिन प्रातःकाल पिड़िया की कथा सुनती हैं और तभी किसी भोज्य पदार्थ को ग्रहण करती हैं। यदि किसी दिन किसी बालिका ने गलती से भोजन कर लिया तो दूसरे दिन उसे प्रायश्चित करना पड़ता है। इस प्रकार यह क्रम पूरे एक मास तक चलता रहता है। अगहन शुक्ल प्रतिपदा को पिड़िया की समाप्ति होती है। इस दिन लड़कियाँ नये चावल और नये गुड़ से बनी हुई खीर रसिआव खाती हैं। इस समय वे अपने कान में रूई ठूंस लेती हैं जिससे भोजन करते समय कोई शब्द सुनाई न पड़े। यदि भोजन के समय कोई शब्द कानों में पड़ गया तो वे भोजन छोड़ देती हैं।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८४।

इसीलिये इस समय छोटे-छोटे बच्चे घर से बाहर निकाल दिये जाते हैं। भोजनोपरान्त दूसरे दिन गोबर की मूर्तियों को नष्ट कर उन्हें किसी नदी में बहा देते हैं। इस क्रिया को 'पिड़िया दहवाना' कहते हैं। इस प्रकार यह एक मासिक व्रत समाप्त होता है।

वर्ण्य विषय

इन गीतों में भाई बहन का अटूट प्रेम वर्णित है : एक गीत में बहिन अपने भाई से कहती है कि मैं लड्डू और चिउड़ा से पिड़िया को पूजूँगी। ऐ भाई ! यह पिड़िया का व्रत मैं तुम्हारे ही उपलक्ष में कर रही हूँ।[1]

"लडुआ चिउरवा से हम पूजबि पिड़िया हो
तोहरी बधइया भइया पिड़िया बरतिया हो।"

पिड़िया के गीतों में कहीं-कहीं स्त्री पुरुषों के प्रेम का भी वर्णन पाया जाता है परन्तु इन गीतों में प्रधान पुट भाई और बहन के स्वाभाविक प्रेम का ही है। इन गीतों में कहीं-कहीं पिड़िया के व्रत में किये जाने वाले अनेक विधि विधानों का भी उल्लेख पाया जाता है।[2]

६. छठी माता के गीत

छठी का व्रत कार्तिक मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि को किया जाता है। यह व्रत केवल स्त्रियों का है परन्तु मिथिला में इसे स्त्री पुरुष दोनों करते हैं। इसे 'षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। छठीं शब्द इसी का अपभ्रंश रूप है।

नाम करण

इसे 'डाला छठ' के नाम से भी पुकारते हैं। क्योंकि इस दिन सारी पूजा की सामग्री को एक बड़े डाला (बाँस की बनी हुई बड़ी टोकरी) में रखकर नदी या तालाब के किनारे ले जाते हैं और इस डाला को देवता को चढ़ाते हैं। इस व्रत में सूर्य की पूजा प्रधान होने के कारण इसे 'सूर्य षष्ठी व्रत' भी कहते हैं। मिथिला में यह व्रत 'छठ' के नाम से प्रसिद्ध है।

उद्देश्य एवं विधि

इस व्रत का प्रधान उद्देश्य पुत्र की प्राप्ति और उसका दीर्घायु होना है। यह व्रत बड़ा ही कठिन होता है क्योंकि इसमें दो दिन तक उपवास करना पड़ता है। इस व्रत को करने वाली स्त्रियों को पंचमी के ही दिन एक बार बिना नमक का भोजन करना पड़ता है। दूसरे दिन षष्ठी को स्त्रियाँ बिना जल के दिन भर उपवास करती हैं। इस दिन सन्ध्या को अर्घ्य दिया जाता है।

देहातों में किसी नदी या तालाब के किनारे वे लड़के जिनकी मातायें और बहनें यह व्रत रखती हैं मिट्टी का एक छोटा सा चबूतरा एक दिन पहले जाकर बना देते हैं जिसे 'पाट बनाना' कहते हैं। जब यह चबूतरा सूख जाता है तब

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६५। २. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६१।

उसे गोबर मिट्टी से लीप देते हैं। दूसरे दिन उनकी माताएँ और बहिनें आकर इसी चबूतरे पर बैठती हैं और सूर्य नारायण को अर्घ्य देती हैं।

जब षष्ठी का व्रत समाप्त हो जाता है तब सप्तमी को सबेरे सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने के लिए स्त्रियाँ किसी जलाशय या नदी के किनारे जाती हैं और उन्हीं चबूतरों पर बैठती हैं जिनको उनके लड़कों अथवा संबंधियों ने पहले तैयार किया था वे एक बड़े 'डाला' में सूर्य को अर्घ्य देने के लिए केला, नींबू, नारंगी, ईख और अनेक प्रकार के पक्वान्न साथ लेकर जाती हैं। इस घाट पर मालिन फूल और फल एवं ग्वालिन दूध लाती है जिसका उपयोग सूर्य नारायण को अर्घ्य प्रदान करने में किया जाता है। इस दिन जो पकवान पूजा के निमित्त पकाया जाता है उसे 'अघरवटा' कहते हैं। इसमें सूर्य के चक्र का चिह्न अंकित रहता है। इससे ज्ञात होता है कि प्रधानतया यह व्रत सूर्य का ही है।

इस व्रत में स्त्रियाँ पंचमी और षष्ठी इन दोनों दिनों को उपवास रहती हैं तथा सप्तमी को सबेरे बहुत पहिले से उठकर सूर्य नारायण को अर्घ्य देने की तैयारी में संलग्न रहती हैं? कितनी वन्ध्या स्त्रियाँ सूर्योदय से घंटों पहले कमर भर जल में खड़े-खड़े सूर्य के उदय की प्रतीक्षा करती हैं। वे सूर्य के शीघ्र उदय न होने के कारण व्याकुल हो जाती हैं और उनसे बड़ी चतुरता से प्रार्थना करती हैं कि ऐ भगवन्! शीघ्र उदय लीजिये। छठी माता के गीतों में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें इस प्रकार की प्रार्थना की गई है:[1]

"दुधवा, चिउवा लेके गवालिनि बिटिया ठाढ़।
फालावा, फूलवा लेले मालिनि बिटिया ठाढ़।
धूपवा, जलवा रे लेके बाभानवा रे ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआव।"

कहीं-कहीं वह स्त्री यह प्रार्थना करती है कि ऐ भगवन्! खड़े-खड़े मेरे पैर दुखने लगे और कमर में पीड़ा होने लगी है। अतः कृपाकर अब तो शीघ्र उदय लीजिये:

"खड़े-खड़े गोड़वा दुखाइलि ए अदितमल, डांडवा पिराइल।
हाली देनी ऊग ए अदितमल, अरघ दिआउ।"

छठी माता का व्रत विशेष कर के सन्तान प्राप्ति की कामना से किया जाता है। कोई बन्ध्या स्त्री षष्ठी माता से पुत्र की प्राप्ति के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है कि ऐ माता! मेरा जीवन निरर्थक सा प्रतीत होता है। मेरी सास 'दुकारती' है, ननद गालियों की बौछार करती है और मेरा 'व्याहता पति' डंडों से मेरी खबर लेता है। मेरा दोष केवल यही है कि मेरी गोद पुत्र के बिना सूनी है। पुत्रहीन स्त्री की दशा का यह वर्णन कितना मार्मिक है।[2]

"सासू मारे हुदुका ए दीनानाथ ननदिया मारे गारी।
ए संठो लागल पुरुखवा ए दीनानाथ,
हमरा के डंडा से मारी।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५२। २. वही पृ० २५७।

आरे सबके डलियवा ए दीनानाथ लीहलीं उठाई।
आये बाँझि के डलियवा ए दीनानाथ, ठहरें तवांई।"

पुत्र और पति को कुशल पूर्वक रखने के लिए भी छठी माता से इन गीतों में प्रार्थना की गई है। कोई स्त्री कहती है कि ऐ माता! मैं आप के मन्दिर की गली को झाड़ू लगाऊँगी। मेरे पुत्र एवं पति को सकुशल रखिये :

"सोरिया रउरी बहारबि, पुतवा भीख दीं,
खोरिया रउरि बहारबि, पुरुखवा भीख दीं।"

मिथिला में षष्ठी व्रत

षष्ठी व्रत के विषय में 'राकेश' जी लिखते हैं कि "छठ के गीत" पूर्णतः धार्मिक गीत हैं। मिथिला के धार्मिक मनोभाव, धर्म के नाम पर प्रचलित वहम, पारिवारिक विचार और मान्यताएँ, घरेलू निष्ठा और आत्मसंयम में 'छठ' के प्रिय विषय हैं। किन्तु धर्म के रंगीन चोले में बन्द होते हुए भी छठ की गीत शैली अपनी सहज वर्णांकित अभिव्यक्ति के कारण अपनी परिधि में प्रायः पूर्ण है।[1]" इन गीतों में हार्दिक श्रद्धा, निष्ठा भरे उल्लास और आत्म लक्षी उच्चता भरी पड़ी है। मिथिला के इन गीतों में भी पुत्र प्राप्ति की कामना की गई है :[2]

"खोंइछा के लेल अछता गेरुलि सुध नीर।
चलि भेल कओन देइ पुत मांगे भीख।

बन्ध्या की करुण कथा इन पंक्तियों में पाई गई है :

"सब के डलियवा, दीनानाथ देलि अगुआय।
बांझन डलियवा दीनानाथ देलि पछुआय।"

घ. जाति संबंधी गीत

१. अहीरों के गीत

भोजपुरी लोकगीतों में बिरहा अपना विशेष स्थान रखता है। यह बड़ा ही लोकप्रिय गीत है। अहीर लोगों का तो यह जातीय गान (नेशनल सांग) ही है। उमंग भरा अहीर जवान जब ललकारते हुए बिरहा गाता है तो श्रोताओं के हृदय में एक विचित्र उत्साह पैदा हो जाता है। खेत में घास काटते हुए, गायों की चरवाही के समय, विवाह करने के लिए बारात में जाते हुए, एवं लाठी लेकर जाते हुए सर्वत्र अहीर लोग बिरहा को गा-गा अपनी थकावट को मिटाते रहते हैं। मंगलमय अवसरों पर जिस प्रकार उच्च जातियों में नाच, गान होता है उसी प्रकार अहीर लोगों में बिरहा गाया जाता है। विवाह के अवसर पर बिरहा गाने के लिए अहीरों में प्रति-द्वन्द्विता होती है। वे दो दलों में विभक्त हो जाते हैं। एक के बाद दूसरा दल बिरहा गाता है और जो बिरहा गाने में असमर्थता प्रकट करता है वह दल पराजित समझा जाता है। सच तो यह है कि अहीरों की योग्यता बिरहा गाने से ही समझी जाती है।

---

१. राकेश : मैथिली लोक गीत पृ० ३१६। २. वही. पृ० ३२१।

बिरहों के विषय में एक भोजपुरी कवि कहता है :[1]

"नाहीं बिरहा कर खेती भइया,
नाही बिरहा फरे डाल।
बिरहा बसेले हिरिदया में ए रामा,
जब उमगेले तब गाव।"

इन कवित्व पूर्ण बिरहों के उद्गम की कहानी कितने सुन्दर रूप में ऊपर के पद्य में कही गयी है। डा० ग्रियर्सन ने इन बिरहों के विषय में लिखा है कि यद्यपि इन बिरहों का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है परन्तु जनता के भीतरी विचारों और आकांक्षाओं के प्रतीक होने के कारण इनका महत्व बहुत अधिक है। वास्तव में बिरहा एक जंगली फूल के समान है।[2]

जिस प्रकार हिन्दी में बरवै और दोहा छन्द अल्पकाय होने पर भी अपनी चुस्त पदावली और सरस भावधारा से श्रोताओं को रस से आप्लावित कर देते हैं उसी प्रकार बिरहा लोकगीतों में सबसे छोटा छन्द है। परन्तु इसकी पदावली इतनी सुगठित और भाव इतने सुन्दर होते हैं कि लोगों के हृदय पर इसका असर हुए बिना नहीं रहता। बिहारी के दोहों के समान थोड़े शब्दों में इतना अधिक भाव भरना और सुनने वालों के हृदय पर सीधे चोट करना इन बिरहों का काम है। एक उदाहरण लोजिए :

रसवा के भेजली भंवरवा के संगिया
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटवों,
सगरी नगरी हित मोर।

कोई नायिका कहती है कि ऐ सखी ! मैंने भंवरा को रस लेने के लिए भेजा। लेकिन वह थोड़ा ही रस लाया। मेरे पास रस इतना थोड़ा है, कि मैं किसे-किसे इस रस में से बाँटूं क्योंकि गांव के रहने वाले सभी मित्र हैं। इस बिरहे में भँवरा और रस शब्द में श्लेष है जिससे इस बिरहे में सरसता आ गई है।

कोई स्त्री अपनी बिरहावस्था का वर्णन करती हुई कहती है कि "पी पी" रटते हुए मेरी देह पीली पड़ गई है परन्तु गांव के लोग कहते हैं कि इसे पांडु रोग हो गया है। वे मेरे हृदय के मर्म को नहीं जानते हैं। मेरा गवना अभी नहीं हुआ है अतः मेरी यह दुर्दशा है।[3]

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया,
लोगवा कहेला पिंडरोग।

१, डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४६। २. आई कान्ट से दैट दे पजेस मच लिटरेरी एक्सेलेन्स आन दि कान्ट्रेरी सम आफ देम आर दि मियरेस्ट डौगेरेल। बट दे आर वेल्युएबल ऐज बींग वन आफ दि फ्यू ट्रस्टवर्दी एक्सपोनेन्ट्स ह्विच वी हैव आफ दि इनर थाट्स ऐन्ड डीजायर्स आफ दि पीपुल। दि बिरहा इज एसेन्शियली एडवाइल्ड फ्लावर। ज० रा० ए० सो० भाग १८ [१८८६] पृ० २०। ३. डा० उपाध्यायभ० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४६।

गंउवा के लोगवा मरमियों ना जानेले
भइले गवना ना मोर ।"

इन बिरहों में विरह की दशा के वर्णन के अतिरिक्त सुन्दर अनुभवपूर्ण उपदेश भी भरे पड़े हैं। कोई बूढ़ी स्त्री नवयुवतियों को उपदेश देती हुई कहती है कि तुम लोग अपने यौवन को संभाल कर रखो क्योंकि दुष्ट लोग 'हुंड़ार' (भेड़िया) की भाँति तुम्हारे सतीत्व पर आक्रमण करने लिए छिपे बैठे हैं :[1]

"पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलार ।
आपन आपन जोबनवा संभरिहे रे बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुंड़ार ।"

काशी के बाबू रामकृष्ण वर्मा उपनाम बलवीर को ये बिरहे इतने प्रिय थे कि इन्होंने इन्हीं के रीति पर अपने 'बिरहा नायिका भेद' में साहित्यिक बिरहों की रचना की है।

बिरहे विरह के गीत हैं। बिरह वर्णन के माध्यम होने के कारण ही इन गीतों को 'बिरहा' कहते हैं। इनमें विप्रलम्भ शृंगार का सुन्दर चित्रण किया गया है। पति के वियोग में विरह से तड़पने वाली नायिका, प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा करने वाली स्त्री, प्राणवल्लभ के परदेश चले जाने के कारण शरीर का प्रसाधन न करने वाली पत्नी की दशाओं का मार्मिक चित्रण इन बिरहों में हुआ है। जहाँ इन बिरहों में हृदय की कोमल भावनाओं का वर्णन है वहाँ वीरता एवं साहस के कार्यों का भी उल्लेख है।

बिरहा दो प्रकार का होता है एक छोटा और दूसरा बड़ा। छोटा बिरहा 'चारकड़िया' के नाम से प्रसिद्ध है। अर्थात् जिसमें केवल चार चरण या पद हों वह 'चारकड़िया' बिरहा है। यही आज कल अत्यन्त लोकप्रिय एवं प्रसिद्ध है। लम्बा बिरहा गाथा रूप में होता है जिसमें रामायण और महाभारत की कथा गायी जाती है। यह गीत नहीं बल्कि गाथा है।

बिरहा के गाने का एक विशेष प्रकार है। अहीर लोग कान में उँगली डालकर बड़े जोरों से इसे गाते हैं। वे बड़े जोरों से आलाप लेते हैं और पूरा जोर लगाकर शब्दों का उच्चारण करते हैं। अन्त में 'बाजरबोई' भी कहते हैं जो निरर्थक पदावली है। इस प्रकार वे जन मन का अनुरंजन करते हैं।[2]

२. चमारों का गीत :

चमारों के जातीय गीत बड़े ही मनोरंजक होते हैं। विवाह आदि अवसरों पर वे अपने सगे सम्बन्धियों का झुंड लेकर अपने यजमान किसानों के घर दूल्हे की न्योछावर लेने जाते हैं। उस समय उनकी जाति के कोई दो छोकड़े लड़के जिनमें एक पुरुष बना रहता है और दूसरा स्त्री, और जो कई रंग के कपड़े

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्राम्य गीत भाग १ पृ० ४७ [पू० भाग]। २. लहरी बुकडिपो काशी से प्रकाशित। ३. बिरहा के विशेष वर्णन के लिए देखिए : डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४७-४८ [भूमिका]।

पहने रहते हैं नाचते और गाते चलते हैं। एक तीसरा पुरुष जो 'करिंगा' कहलाता है, हँसी मजाक करता है। इसका काम विदूषक का है। वह जब कोई दिल्लगी की बात कहता है तब उसे नाच मंडली का प्रधान व्यक्ति चमड़े के तल्ले से पीठ पर 'ठोकता' या पीटता है। चमारों का मुख्य बाजा 'डफरा' और पिपिहिरी' है। 'डफरा' एक छोटे नगाड़े की आकृति का होता है जो लकड़ी से धीरे-धीरे पीट कर हाथ से बजाया जाता है परन्तु 'पिपिहरी' मुँह से बजाई जाती है। चमारों का नाच सार्वजनिक होता है और प्रायः प्रत्येक श्रेणी के लोग इसको देखने के शौकीन होते हैं। करिंगा गाँव के जालिम जमींदार, कंजूस महाजन आदि की खरी आलोचना करता है निम्नलिखित गीत में छुआछूत का ढोंग करने वाले पंडितों पर कितना गहरा व्यंग किया गया है :[1]

"पंडित मुनि बड़ ज्ञानी, जल छानि के पीवत पानी।
वही सूत का बना जनेवा, उस कर पाग बनाई।
धोती पहिन के रोटी खावे पाग में छूत ओलिआई।"

३. कहारों के गीत :

कहार डोली या पालकी ढोने का काम करते हैं। दूल्हा को दुलहिन के घर और दुलहिन को दूल्हा के घर पहुँचाने का काम भी कहार करते हैं। डोली, खड़खड़िया, पालकी, नालकी या पीनस उठाकर जब ये चलते हैं तब शृङ्गार रस के रसीले गीतों में अपनी सवारी को रास्ते भर गुदगुदाते चलते हैं। पति के घर जाने वाली दुलहिन और विवाह के लिये जाते हुए दूल्हे को शृङ्गार रस के गीत कितने मधुर लगते हैं, इसे अनुभवी ही जान सकते हैं। कहारों के गीतों को 'कहँरवा' भी कहते हैं। कहार लोग वैवाहिक उत्सवों पर नाचते हैं। नाचते समय 'हुडुक' नाम का बाजा बजाते हैं।

नीचे के गीत में बूढ़े कहार जो भारभूत हैं, क्योंकि न तो वह पालकी ढो सकता है और न मजूरी कर सकता है, का वर्णन किया गया है :[2]

"बुढ़वा कँहरवा के आई बुढ़इया
तौ फेके तलौने में जाल।
बुढ़ऊ न पावे जो एको मछरिया,
तो मीजे..........के गाल।"

"बुढ़वा मोरे जिय के जरनिया, टिकुली देखि जरि जाय।
हे देवी दाई तोके रोट चढ़ौबे, जो ई बुढ़वा मरि जाय।"

सचमुच बूढ़े का खाना और नाव का डूब जाना बराबर है। एक दूसरे गीत में बाल विवाह का सुन्दर वर्णन किया गया है। स्त्री कहती है कि मेरा पति इतना बच्चा है कि अपनी टोपी बेंचकर 'लाई और गट्टा' खा डालता है।[3]

१. विशेष के लिये देखिये : त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा पृ० २१९-२२६। २. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० १९१। ३. वही पृ० ११२। दु० श० सिं०—लोक गीत पृ० २४६-२५२।

"जहाँ देखे लाई गट्टा तहाँ मचलाई राम ।
टोपि बदलि दुलहा खाई लाई गट्टा राम ।"

४. तेलियों के गीत :

कोल्हू तेली का परम साधन है। वह इसी के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन करता है। देहात में ऊख पेरने के लिये पहले पत्थर के कोल्हू चलते थे। पेरने वाले रात के तीसरे पहर में उठकर बैलों को जोत देते थे और उनके पीछे लगे हुए लम्बे काठ पर बैठकर जाड़े की लम्बी और ठंढी रात के सन्नाटे में बड़े ही मर्मभेदी गीत गाते थे। वे गीत प्रेम, विरह और करुण रस के अद्भुत इतिहास हैं। आजकल लोहे के कोल्हू चल पड़े हैं। अब हाँकने वालों को बैलों के पीछे नहीं चलना पड़ता है। इससे अब रात या दिन के किसी समय में कोल्हू चलाया जा सकता है। इसलिये रात के वे गीत भी अब समाप्त हो चले हैं।

ईख के अतिरिक्त तेल भी कोल्हू में पेरा जाता है। तेली कोल्हू के पास में जुड़े हुए काठ पर बैठकर बैल को हाँकता है और वह धीरे-धीरे अपनी परिधि पर घूमता रहता है। बैल परिश्रम का प्रतीक है जिसकी अभिव्यक्ति 'कोल्हू का बैल' या 'तेली का नाटा' मुहावरे में पाई जाती है। तेल पेरने के लिये समय-समय पर, तौलकर सरसों, बर्रे अथवा तिल को कोल्हू में डालते जाते हैं जिसे 'धानी' कहते हैं।

तेलियों के गीतों में जिन्हें कोल्हू के गीत भी कहते हैं शृङ्गार रस की मात्रा प्रचुर परिमाण में पाई जाती है। कोल्हू में तेल पेरने वाले तेली को भला अपने काम से कहाँ फुरसत जो वह जाकर अपनी प्रिया के साथ प्रेम संलाप करे। अपने पति की 'खूसटता' पर क्रुद्ध होकर उसकी स्त्री कहती है कि कोल्हू का 'ढेकुआ' ही टूटकर उसके सिरे पर गिर जाय जिससे उसके पति का सिर फूट जाय, फिर हलदी लगाने के लिये तो वह घर अवश्य ही आयेगा।[1]

"टुटते ढेकुवा फुटते कपरवा,
हरदी ओढ़रे घर अउते हो लालनवां।
कोलहु तोरा टूटे जारि तोरि फाटे,
रस बहि लागे पोदरवों हो लालनवां।"

क्यों न हो। जब प्रियतम बार-बार कहने पर भी कहना नहीं मानता और कुरमिन के शृङ्गार कर 'कोल्हुआर' में जाने पर भी वह पत्तियों में छिप जाता है तब उसकी दूसरी दवा ही क्या है। संस्कृत में एक शुष्क वैदिक का भी ऐसा ही वर्णन किया गया है जो रति विलास से पूरे उदासीन दीख पड़ते हैं :

सामगायनपूतं मे, नोच्छिष्टमधरं कुरु।
उत्कंठितासि चेद्भद्रे, वाम कर्णं दशस्व में।

तेलिन 'धानी' लगाती है और तेली तेल पेरता जाता है। इस तैलिक कर्म का उल्लेख भी एक गीत में हुआ है।[2]

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ४५७। २. वही पृ० ४४७।

कौनी की जुनिया तेलिन घनिया अरे लगावे।
अरे कौनी जुनिया ना।
कोइलरि सबद सुनावै कि कौनी जुनिया ना।
आधी की रतिया तेलिनि घनिया लगावै।
कि पिछली रतिया ना।
कोइलरि सबद सुनावे कि पिछली रतिया ना।

इसी प्रकार तेलियों के गीतों में शृङ्गार रस लबालब भरा हुआ है ?[1]

५. गड़ेरियों के गीत :

गड़ेरियों के भी जातीय गीत होते हैं। अपने विवाह आदि उत्सवों में वे अपने ही गीत गाते बजाते हैं। उनका काम दिन भर तो भेड़ चराना होता है परन्तु रात को वे अपनी भेड़ों को किसी व्यक्ति के खेत में 'हिरा' देते हैं। रात को जब भेड़ की चरवाही से उन्हें फुरसत मिलती है तब वो एक साथ बैठकर अपने गीत गाते हैं। उनके एक मुख्य गीत का नाम 'सिउरिया' है और दूसरे का 'पंड़ोंकीमार'।[2] भोजपुरी में इनके गानों का संग्रह अभी बहुत कम हुआ है। आशा है कोई उत्साही युवक इस काम को अपने हाथ में लेगा।

६. धोबियों के गीत :

अहीर, कहार, गोंड़ और तेलियों की तरह धोबी भी अपने जातीय उत्सवों में नाचते गाते हैं। इनके गीत भी प्राय: अहीरों के बिरहे जैसे होते हैं। केवल गाने के स्वर में थोड़ा अन्तर होता है। इनके भावों में स्वभावत: धोबी कुटुम्ब की सजीवता रहती है। धोबी लोग 'हुडुक' नामक बाजा बजाते हैं। कई धोबी एक साथ मिलकर खड़े-खड़े गीत गाते हैं और उनके बीच में खास ढंग की पोशाक पहने हुए धोबी का एक लड़का नाचता है। यह तो प्रसिद्ध है कि धोबी कपड़े नहीं खरीदता। अतएव सभी धोबी नाचगान के समय साफ सुथरे कपड़े पहने रहते हैं। धोबियों के गीतों में इनके पेशे का भी उल्लेख यत्र-यत्र पाया जाता है :

धोबी और धोबिन रोज प्रात:काल घाट पर जाते हैं और शाम तक वहीं कपड़ा धोते रहते हैं। धोबी अपनी थकावट को मिटाने के लिए तम्बाकू भी पिया करता है। धोबो अपनी पत्नी को स्मरण दिलाता हुआ कहता है कि घाट पर चलना है अत: खाने के लिये मोटी लिट्टी लगाना, साथ में एक टिकिया तम्बाकू और थोड़ी सी आग भी मत भूलना।[3]

"मोटी मोटी लिटिया लगैहे धोबिनियां
कि बिहने चले बा घाट।
तीनहिं चीजें मत भूलिहै धोबिनियां
कि टिकिया, तमाकू, थोड़ा आगि।

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० १६८-१६६। २. वही. पृ० २००। ३. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० २१६-२१७।

७. दुसाधों के गीत :

हिन्दुओं की निम्न श्रेणी में परिगणित जातियाँ विशेष कर चमार और दुःसाध एक विशेष प्रकार का गीत गाती हैं जिसे 'पचरा' कहते हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में कुछ निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

पचरा

उपर्युक्त जातियों में किसी व्यक्ति को जब कोई प्रेत बाधा सताती है अथवा वह किसी रोग से बीमार पड़ जाता है तो गाँव का बूढ़ा ओझा उसकी दवा के लिए बुलाया जाता है। 'ओझा' घर के एक भाग को गोबर से लिपवाता है, धूप देता है, अड़हुल के फूल से देवी की पूजा करता है, आरती करता है और फिर पचरा गाना आरम्भ करता है। वह अपनी मस्ती में आकर 'पचरा' गाता जाता है और देवी के आवाहन का अभिनय भी करता जाता है। रोगी बड़े ध्यान से उसे सुनाता है। पचरा के गाने से धीरे-धीरे रोग अच्छा होने लगता है और रोगी कुछ ही दिनों में चंगा हो जाता है। इस जाति के लोग रोगों की चिकित्सा नहीं करते बल्कि उनका विश्वास है कि 'पचरा' गाने से सारे आधि-भौतिक तथा आधिदैविक दुःख दूर हो जाते हैं। ऐसा कहा जाता है जहाँ पचरा गाया जाता है वहाँ देवी जी का आवास रहता है अतः पचरा गाने वाले इसे सभी काल में सभी जगह नहीं गाते। यह पवित्र स्थान में उचित अवसर पर ही गाया जाता है। भक्त देवी से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि आप की पूजा के लिए पूरी सामग्री मैंने इकट्ठा कर ली है :[1]

"आरे आम के पलउआ ए देवी,
गइया केरा घीव हो।
आरे परास के लकड़िया ए देवी,
करीले आहुतिया हो।"

८. गोंड़ों के गीत :

संयुक्त प्रान्त के पूर्वी जिलों में विशेष कर गाजीपुर और बलिया में गोंड़ नामक एक जाति रहती है जिनका काम सेवा वृत्ति है। इस जाति का पुरुष वर्ग पानी भरता है, लकड़ी चीरता है, मजूरी करता है। इनकी स्त्रियाँ भाड़ झोंकने का काम करती हैं। ये गोंड़ मध्यप्रान्त की गोंड़ जाति से भिन्न हैं। इस जाति के गीत सुन्दर होते हैं। ये लोग विशेष अवसरों पर एक विशेष प्रकार का नाच भी नाचते हैं जो 'गोड़ऊ नाच' कहा जाता है। यह नाच 'फोक डान्स' का उत्कृष्ट नमूना है। यह बड़ा ही जन-प्रिय होता है और इसे देखने के लिए दूर-दूर से लोग आते हैं। इस समय एक विशेष बाजे को जिसे हुडुका कहते हैं बजाते हुए ये लोग गीत गाते हैं। इनके अभिनय को "हरबोलाई कहते हैं" गोंड़ों के गीतों में कुछ अश्लीलता की मात्रा भी पायी जाती है। परन्तु सभी गीतों की यह दशा नहीं है। स्त्री पुरुष के रति कलह का एक रमणीय दृश्य देखिए। स्त्री कहती है ऐ पति ! पहिले तुमने मुझे गाली दी और मैंने जब कुछ उत्तर दिया तो तुम रुष्ट होकर साधू बन गये। यह तुमने अच्छा नहीं किया।[2]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३५६। २. वही. पृ० ३४६।

"सूतल रहली पिया संगे सेजिया
बाते बाते बढ़ि गइले रेरिया हो।
पिया बाउर कइल।
पहिले त पिया तुहु मोहि गरिग्रवल
मोहि बोलिया त भइल फकीरवा हो,
पिया बाउर कइल।"

एक गीत में गोंड़ों के पानी भरने के काम की ओर संकेत किया गया है। स्त्री पति से कहती है कि तुम घर पर ही रहो और 'बखरी' में पानी भरा करो :

"नरियर के टोकवा तूरेला दूनो हिकवा,
बर तू घर ही रहित ना।
आरे भरित तुहू बखरी के पनिया,
बर तू घर ही रहित ना।"

इन गीतों में हास्यरस की व्यंजना भी कहीं-कहीं हुई है जो इनका स्वाभाविक गुण है।[१]

"खुर खुर खुर खुर टाटी बोले,
हम जानि पियवा मोर।
पियवा के मेसे मेसे अइले,
कागाना ले गइले चोर।
भुलनी मन के ना बनी।"

इन गीतों में भक्ति भावना भी पाई जाती है। एक गीत में भक्त सहायता के लिये भगवान् से प्रार्थना कर रहा है। इस प्रकार गोंड़ों के गीत सुन्दर हैं।

ङ. क्रिया गीत

क्रिया गीत अथवा काम करते समय गाये जाने वाले गीतों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब उन्हीं गीतों का उदाहरण सहित वर्णन उपस्थित किया जाता है। ये गीत जंतसार, रोपनी एवं सोहनी हैं। जिनकी चर्चा इसी क्रम से की जायगी।

जंतसार

चक्की पीसते समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'जांत के गीत' अथवा 'जंतसार' कहते हैं। 'जंतसार' शब्द 'यन्त्रशाला' का अपभ्रंश रूप है जिसका अर्थ है वह शाला या घर जहाँ आटा का यन्त्र रखा गया हो। यहीं 'यन्त्रशाला' शब्द बिगड़ते-बिगड़ते जंतसार के रूप में विद्यमान है।

नामकरण

चक्की, चूल्हा और चरखा देहातों में पहले घर-घर होते थे। चक्की में आटा पीस लिया, चूल्हे पर रोटियाँ पका लीं। यदि इन कामों से अवकाश मिला तो चरखे पर कपड़ों के लिए सूत तैयार कर लिया। बस इन तीन चकारों की

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३५०।

बदौलत देहात के लोग बहुत ही सुखी और स्वतंत्र थे। स्त्रियाँ चक्की पीसती थीं। इससे उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था और उनके बच्चे हृष्टपुष्ट होते थे। चक्की पीसते समय वे जो गीत गाती थीं, उससे जीवन की धारा शुद्ध होती रहती थी। समय का सदुपयोग होता था, परिश्रम करने की आदत बनी रहती थी और पैसे की बचत भी होती थी। परन्तु अब देहातों में भी आटा पीसने का काम, चक्की के स्थान पर, मशीनें लेती जा रही हैं। ये मशीनें हमारे आटे को पीसने के साथ ही साथ 'जांत के गीतों' को भी पीसती चली जा रही हैं। ये गीत हमारे घरों में सच-रित्रता के रक्षक, स्त्रियों के सदाचार के पोषक और शुद्धता के स्रोत हैं।

जांत पीसने का समय एवं ढंग

जांत पीसने का समय रात का तीसरा पहर है। स्त्रियाँ शाम को ही पीसने के लिये अनाज रख लेती हैं और पहर छः घड़ी रात रहे उठकर वे जांत लेकर बैठ जाती हैं। जांत के दोनों ओर आमने सामने बैट कर प्रायः स्त्रियाँ आटा पीसती हैं। कभी-कभी अकेले भी जांत पीसा जाता है परन्तु दो स्त्रियों के साथ रहने से पीसने में अधिक आसानी होती है। जब ननद, भावज या दो बहुएँ आटा पीसती हैं तब जांता चलाते समय एक दूसरे के पैर पर पैर रख कर बैठती हैं परन्तु यदि सासू और वधू पीसने बैठती हैं तो वधू सासू के पैर पर अपना पैर नहीं रख सकती। वहाँ भी सासू की श्रेष्ठता का ध्यान रख कर विनय का पालन किया जाता है।

जांत के गीत आटा पीसने की थकावट को दूर करते हैं। साथ ही आटा पीसने वालियों के मन को प्रेम, करुणा और उदारता से भिगो कर कुटुम्बियों के असहनीय बर्ताव के कारण पैदा हुए विक्षोभ को निकालते भी रहते हैं। जांत के गीतों के एक-एक शब्द स्त्री सदाचार की नींव की एक-एक ईंट हैं। जाड़ों की ठंडी रात के सन्नाटे में, उषाकाल के मन्द-मन्द समीर में, जंतसार दूर से सुनने वालों को बड़े मधुर जान पड़ते हैं। देहात में किसी भी गाँव में निकल जाइये, रात के पिछले पहर में, अनेक घरों से जांत की घुरघुर की ध्वनि के साथ एक एक कड़ी पर दम लेकर गाया जाता हुआ जांत का गीत सुनने को मिलेगा।

वर्ण्य विषय

जैसे 'झूमर' श्रृंगार रस का कलश है वैसे ही जंतसार में करुण रस की सरिता सिमटी पड़ी दिखाई पड़ती है। करुण रस की बड़ी मार्मिक अभिव्यंजना इन जांत के गीतों में हुई है। इन गीतों में कहीं तो प्रिय विहीना दुःखिनी विधवा का करुण क्रन्दन सुनने को मिलता है तो कहीं बन्ध्या की मनोवेदना लक्षित होती है। कहीं विरहिणी की व्याकुलता का वर्णन है तो कहीं सासू के द्वारा वधू की नारकीय यन्त्रणा का चित्रण। कहने का आशय यह है कि करुण रस के जितने भी मार्मिक प्रसंग हो सकते हैं प्रायः इन सभी की अवतारणा इन गीतों में हुई है।

पति के परदेस चले जाने पर किसी विरह विधुरा नायिका की निम्नलिखित उक्ति कितनी मर्मवेधिनी है। उसकी सास उससे कहती है कि तुम्हारा पति तो पर-देस चला गया है अब किसकी कमाई खाओगी ? सास घर से निकाल देती

है। दुःखिया स्त्री झाड़ू और टोकरी लेकर बन में चली जाती है तथा भाड़ झोंकने के लिए पत्ती बुहारती है। परदेश से लौटा हुआ पति मार्ग में अपनी दुःखिया स्त्री को न पहचान कर पूछता है कि तुम किसकी स्त्री हो। वह उत्तर देती है कि मैं वह अभागिन स्त्री हूँ जिसका पति परदेस चला गया है :[1]

"ए राम हरि मोरे गइले बिदेसवा,
सकल दुःखवा देइ गइले हो राम।
ए सासु, ननदिया बिरही बोलेली,
केकर कमइया खइबू हो राम।
... ...
ए राम काँखे जांति लिहली दउरिया,
त हाथे के बढ़निया लिहली हो राम।
ए राम धई लिहली गोड़िनिया के भेसिया,
त पतई बहारे लगली हो राम।
ए राम बारहो बरिस पर अइले,
त बगिया में ठाढ़ भइले हो राम।
ए राम कवना अभागवा के तिरिया,
त बगिया बहारेलू हो राम।
ए राम हरि मोरे गइले विदेसवा,
त बगिया बहारेली हो राम।

इस उपर्युक्त गीत में करुण रस का सागर हिलोरें मार रहा है। निर्धनता के कारण वियोगिनी का भाड़ झोंकने का वर्णन कितना मार्मिक है। इस गीत के प्रत्येक अक्षर से करुण रस चुआ पड़ता है।

किसी विधवा की मनोवेदना का यह नीचे लिखा वर्णन कितना मार्मिक है। वह अपने शरीर को अलंकृत देखकर कहती है कि आज मेरी मांग में सिन्दूर के बिना यह सारा शृङ्गार व्यर्थ है। 'तबहू ना देहिया सोहावनि एकली सेन्दुरवा बिनु ए राम' इस एक पंक्ति में कितनी वेदना, और कितना क्षोभ भरा पड़ा है। ससुराल में पचीसों आदमी हैं परन्तु पति के बिना ससुराल उसे तनिक भी सुहावनी नहीं मालूम पड़ती।[2]

"राम बगिया में पाँच पेड़ आमवा,
पचीस गो महुअवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना बगिया गमक देले,
एकली बेइलिया बिनु हो राम।
राम सेर भरि सोनवा पहिरलों,
पसेरी भरि चनिया हो राम।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६६। २. वही भाग २ पृ० ११५–११६।

राम तबहू ना देहिया सोहावनि,
एकली सेनुरवा बिनु हो राम।
राम सासु घरे पाँच गो देवरवा,
पचीस गो भसुरवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना ससुरा सोहावन,
एकली कन्हैया बिनु हो राम।"

इसी प्रकार जांत के गीतों में करुण रस की सरिता अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती दिखाई पड़ती है। ग्रामीण कवियों के इन्हीं जंतसारों को लोक हृदय की वेदना को व्यक्त करने का माध्यम बनाया है।

रोपनी के गीत

बिहार के शाहाबाद जिले में जहाँ धान की पैदावार अधिक होती है रोपनी के गीतों का बहुत प्रचलन है। पहिले धान का बीज एक खेत में घना बो दिया जाता है। जब वह कुछ बड़ा हो जाता है तब शुभ मुहूर्त पर एक दिन उसे उखाड़ कर दूसरे खेतों में थोड़ी-थोड़ी दूरी पर गाड़ते अथवा रोपते हैं। इस समय जो गीत गाये जाते हैं, वे 'रोपनी के गीत' कहे जाते हैं। ये गीत प्रायः मुसहरों की स्त्रियाँ गाती हैं क्योंकि रोपनी का काम प्रायः वे ही किया करती हैं। इन गीतों का संग्रह लेखक ने बड़ी कठिनाई से किया है।[1]

खेत में पानी लगा है। कभी-कभी ऊपर से जल वृष्टि भी हो रही है। नीचे भी जल और ऊपर भी जल। ऐसे समय में मुसहरिनें धान के हरे पौधों को लेकर खेत में रोपती जाती हैं और अपने सुन्दर गीतों से जलसिक्त श्रोताओं को रस सिक्त बनाती जाती हैं। सोहनी और रोपनी का काम घर से बाहर खेतों में करना पड़ता है। संभवतः इसीलिये इन गीतों में पुरुषों के द्वारा स्त्रियों को छेड़ने का प्रसंग अनेक बार आया है। पति वियोग विधुरा कोई स्त्री उदासीन खड़ी है। एक पथिक आकर उससे अनुचित प्रस्ताव करता है। तब वह स्त्री उत्तर देती है कि यदि मेरा पति आ गया तो इस उद्दंडता का उचित पुरस्कार तुम्हें दिलाऊँगी।[2]

"कबही त लवटीहें मोर बनिजरवा
पनही से तोहि के पिटइबों हो राम।"

गृहस्थी का कष्ट भी इन गीतों में प्रतिबिम्बित दीखता है। कोई स्त्री ससुराल के कष्टों को अपने पति से निवेदित करती हुई कहती है कि जब से मैं यहाँ आई तब से काम करते-करते मेरे शरीर का चर्म सूख गया और सुख सपना हो गया। आज तक मैंने रुपये का मुँह नहीं देखा। अब मैं मायके जाकर उपले बनाकर जीवन बिताऊँगी।[3]

"जहिया से अइली पिया तहरी महिलिया में
राति दिन कइलों टहलिया रे पियवा।"

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८, वक्तव्य। २. वही. पृ० २६४।
३. वही भाग २ पृ० ३०१।

घर के करत काम सूखल देही के चाम,
सुखवा सपनवा होई गइले रे पियवा।
हरवा जोतत तोर गोड़वा पिरइले,
रुपया के मुंह नाहीं देखनी रे पियवा।
चिपरी के पाथि पाथि दिन हम काटबि,
अब नाहि आइबि तोर दुअरिया रे पियवा ॥"

इस उदाहरण में पत्नी के हृदय की आह गीत बनकर निकलती है। इससे देहात के एक वर्ग की करुण आर्थिक दशा का भी पता चलता है।

स्त्रियों का अटूट एवं शुद्ध प्रेम तो बहुत देखने को मिलता है परन्तु पुरुषों का शुद्ध स्त्री प्रेम दुर्लभ पदार्थ है। परन्तु रोपनी के एक गीत में यह भाव देखने को मिलता है। कोई पति परदेस गया है। इतने में उसकी मां से रुष्ट होकर उसकी स्त्री मायके चली जाती है। परदेस से लौटने पर जब वह घर में अपनी स्त्री को नहीं पाता तो उसको खोजने के लिए मनीहार का रूप धरकर निकल पड़ता है और अन्त में अपनी पत्नी को पा लेता है।[1]

"देहु ना आमा हो ढेबुआ रे पइया
चुरिया बहाने धनि देखबि हो राम।
खोरियन खोरियन फिरेला चुरिरवा।
चुरिया रे पहिरबे गहकिनिया हो राम।"

सोहनी के गीत

आषाढ़ में बोए हुए खेत जब अच्छी तरह जम जाते हैं तब सावन में उनमें उगी हुई घास और दूसरे व्यर्थ पौधों को खुरपी या हँसिया से काट कर फेंक दिया जाता है। इस कार्य को 'सोहनी' कहते हैं। अतः इस समय जो गीत गाये जाते हैं वे सोहनी के नाम से प्रसिद्ध है। इन गीतों को 'निराई' या 'नरवाही' के भी गीत कहते हैं। यह काम प्रायः चमार की स्त्रियाँ किया करती हैं। जिस किसान को अपने खेत में 'सोहनी' करानी होती है वह दस पन्द्रह चमारिनों को बुला लाता है। चमारिनें अपनी खुरपी से खेत सोहती जाती हैं और साथ ही थकावट को दूर करने के लिए कलकंठ से गीत गाती जाती हैं। सोहनी के इन गीतों को लिखने के लिए लेखक को चमारिनों का 'सत्संग' करना पड़ा है और अनेक बार खेतों की मेड़ पर बैठकर इस मौलिक साहित्य को लिपिबद्ध करने का अवसर मिला है।

सोहनी के गीतों में यह विशेषता है कि वे किसी संक्षिप्त कथानक को लेकर लिखे गये हैं। इसीलिए ये आकार में अन्य गीतों से बड़े हैं। कहीं इनमें मुग़लों के अत्याचार का वर्णन है तो कहीं उनसे लड़कर किसी अबला के उद्धार करने का। कहीं बधू के सास के द्वारा सताये जाने का विवरण है तो कहीं पति का पत्नी के आचरण पर विश्वास न कर उसकी अग्नि परीक्षा करने का उल्लेख है। किसी-किसी गीत में सौतिया डाह की

---

१. डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग २, पृ० २९५।

भी झांकी हमें देखने को मिलती है। कोई पति अपनी नयी व्याही स्त्री लेकर सो रहा है। तब उसकी दूसरी स्त्री सौतिया डाह के कारण कहती है कि अभी दरवाजा खोलो। नहीं तो 'टांगे' से इस दरवाजा को काट दूँगी। पति और सौत के बालों को पकड़ कर खींचूंगी और सौत की छाती पर सड़क बनवा कर आने-जाने का रास्ता बनाऊँगी।[१]

"ओही टांगावा पर सान चढ़इबों।
ओहि से जंजीरिया कटइबो ए बालम।
एक हाथे धरबों में सामी के जुलुफिया,
एक हाथे सवती के झोटवा ए बालम।
सवती के छतिया पर सड़क कुटइबों,
लाख आवेला लाख जाला ए बालम।"

चन्दा, कुसुमा और भगवती देवी के सुप्रसिद्ध गीत इन्हीं के गीतों के अन्तर्गत हैं। इन्हीं गीतों में लचिया और जयसिंह के गीत भी विद्यमान हैं। जयसिंह राजा ने लचिया नामक स्त्री से अनुचित प्रस्ताव किया। इस पर रोष में कोधित होकर लचिया ने कटारी निकाल कर जय सिंह की जान ले ली और इस प्रकार उसने अपने सतीत्व की रक्षा की।[१]

"छोड़ु, छोड़ु जयसिंह हमरो अंचरवा हो ना
जयसिंह तोहरा से सुन्दर मोर रजवा हो ना।
अइसन बोली जिन बोलु रानी लचिया हो ना।
लाची चली चलु हमरी सेजरिया हो ना।
अतना बचन लाची सुनही ना पवली हो ना।
लाची काढ़ि कटरिया जिउवा लिहली हो ना।"

इस प्रकार सोहनी के गीतों में दिव्य सतीत्व का उल्लेख पाया जाता है। विरहिणी का वर्णन भी इनमें कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। रूठ कर परदेस गये हुए भाई को खोजने का वर्णन एक गीत में बड़ा सुन्दर हुआ है।[२] सोहनी के गीतों की लय बड़ी मनमोहक होती है जिसे सुनकर श्रोता का मन बरबस आकर्षित हो जाता है।

(च) विविध गीत

कुछ ऐसे भी गीत हैं जो उपर्युक्त वर्गीकरण के अन्तर्गत नहीं आते। इन गीतों में झूमर, अलचारी, पूरबी, निर्गुन, पाराती और भजन मुख्य हैं। रोते हुए बालकों को प्रसन्न करने के लिए एवं उन्हें पालने पर सुलाते समय स्त्रियां गीत गाती हैं जिन्हें पालने के गीत कहते हैं। छोटे-छोटे बालक विभिन्न खेलों, गुल्ली डंडा, कबड्डी को खेलते समय पद्यात्मक वाक्यों को गाते रहते हैं। ऐसे गीतों को 'खेल के गीत' कहते हैं। इन सभी गीतों का समावेश यहां किया गया है।

---

१ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २६८। २. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० ३९१। ३ डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २८३।

झूमर

झूमर उन गीतों को कहते हैं जो विभिन्न अवसरों पर गाये जाते हैं। कभी तो ये यज्ञोपवीत के अवसर पर सुनाई पड़ते हैं तो कभी विवाह के समय पर गाये जाते हैं। इसीलिये इसको जनेऊ और विवाह के गीतों से पृथक कर दिया गया है। किसी भी विशेष संस्कार के अवसर पर उस संस्कार सम्बन्धी गीतों के गाने के पश्चात् झूमर गाया जा सकता है और गाया भी जाता है। इसीलिये झूमर के गाने के लिये कोई विशेष निर्दिष्ट समय या अवसर नहीं है बल्कि ये प्रत्येक अवसर पर गेय हैं।

स्त्रियाँ एक साथ मिलकर झूम-झूम कर इस गीत को गाती हैं इसीलिये इसका नाम 'झूमर' पड़ गया है। जिन्होंने इस गीत को गाये जाते हुए देखा है वे सहज ही समझ सकते हैं कि झूमने से झूमर का कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है। झूमर मस्ती का गाना है। अतः इसे गाते समय विशेष कर झुंड में स्त्रियों का झूमना स्वाभाविक ही है।

झूमर के गीत संभोग शृङ्गार से लबालब भरे रहते हैं। इनके प्रत्येक पद में कूट कूट कर रस भरा है। अतः प्रत्येक झूमर को रस कलश कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। भाव जैसा सुन्दर एवं सरस है भाषा भी वैसी ही चलती है। इसके साथ ही गाने की गति सोने में सुगन्ध की उक्ति चरितार्थ करती है। झूमर द्रुत गति से गाया जाता है। शब्दों का उच्चारण शीघ्रता से किया जाता है जिससे गाने की विधि में एकरसता सदा बनी रहती है। टेक पद की पुनरावृत्ति प्रायः प्रत्येक पंक्ति के बाद की जाती है। उदाहरण के लिए नीचे का गीत लीजिए :

"ना जानो यार झुलनी मोर काहाँ गिरा।
पनियाँ भरन जाऊँ राजा ना जानो।
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो।
ना जानो यार झुलनी मोर काहाँ गिरा।"

इसके गाने की दूसरी विशेषता यह है कि प्रथम दो शब्दों तथा अन्तिम दो शब्दों का उच्चारण शीघ्रतर किया जाता है। जैसे—

"बेर बेर बरजों यार निबुआ जनु लगाव रे।"

इसमें रेखांकित शब्दों का उच्चारण अधिक शीघ्रता से किया जायगा। इसकी तीसरी विशेषता यह है कि यह गीत आकार में छोटा होता है अर्थात् ६, ८ पंक्तियों से अधिक बड़ा नहीं होता। इसके छन्दविधान और भाव व्यंजना में भी गहरा संबंध है।

'झूमर' के गीतों में कहीं तो प्रेमी पति के द्वारा परदेस से लाई गई नाक की झुलनी का तालाब में गिरने का वर्णन पाया जाता है तो कहीं प्रेमी और प्रेमिका के अटूट प्रेम का चित्रण उपलब्ध होता है। उन्हीं पति पत्नी के प्रेम कलह का वर्णन है तो कहीं रूप गर्विता नायिका की गर्वोक्ति।

प्रेम करने के कारण बदनाम किसी नायिका की उक्ति कितनी सुन्दर है और उसकी प्रेम की निष्ठा कितनी दृढ़ :

"तोरे कारन बदनाम रे संवलिया ।
जैसे कचहरी में कलम चलतु है,
वैसे चलबि तोरा साथ रे संवलिया ।
जैसे कुंवन में घड़ा डूबतु है ।
वैसे डुबबि तोरे साथ रे मंवलिया ।"

किसी नायिका के नाक की झुलनी कहीं गिर गई है उसके लिये उसके खोजने की परेशानी में बड़ा आनन्द छिपा पड़ा है । नीचे के गीत में यह भाव है :

"ना जानो यार झुलनी मोर काहाँ गिरा ।
... ...
रोटिया पोवन जाऊँ, राजा ना जानो ।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो ।
ना जानो यार बेलने में लिपट गया ।
सेजिया सोवन जाऊँ, राजा ना जानो ।
यहाँ गिरा ना जानो, वहाँ गिरा ना जानो ।
ना जानो यार सेजिया में लिपट गया ।"

मैथिली झूमर

भोजपुरी और मैथिली झूमर में समानता पाई जाती है । भावों की समता के साथ ही पदावली भी प्राय: एक ही प्रकार की मिलती है । बालक पति वाली किसी युवती स्त्री की यह उक्ति कितनो मधुर एवं मार्मिक है ।[1]

"नइहरवा में सुनइत रहलि पिया छइ लरिकवा,
त दिन मा चारि ना ।
पिया के नइहर में बोलयबों । टेक
बेचबइ ये गोल बरदा किन बइ धेनुगइया
त दुधवा पिलाय ना
पिया के करबो जवनमा
त दुधवा पिलाय ना ।"

अलचारी

अलचारी शब्द लाचारी का अपभ्रंश है । लाचारी का अर्थ विवशता या आजिजी है । उर्दू कविता में इस विषय पर अनेक गजलें लिखी गई हैं । जब किसी स्त्री का पति उसका कहना नहीं मानता अथवा वह परदेस चला जाता है तो लाचार अवस्था में जो गीत वह गाती है उन्हें अलचारी कहते हैं । वास्तव में पहिले भोजपुरी में 'अलचारी' गीतों का प्रयोग केवल विवशता के भावों का प्रदर्शन के लिये ही होता था परन्तु अब समय के परिवर्तन के साथ इसका प्रयोग अन्य भावों को व्यक्त करने के लियें भी होने लगा है ।

कोई स्त्री अपने हठीले पति को बार-बार मना करती है कि तुम व्यापार

---

१. मैथिली लोक गीत पृ० २११ ।

करने के लिए उत्तर दिशा में मत जावो क्योंकि वहाँ की बंगालिन स्त्रियाँ तुम्हें अपने जाल में फँसा लेंगी।[1]

"बारहि बार तोंहि बरजो मोरे सामी,
से उत्तरी बनिजिया मति जइह मोरे सामी।
उत्तरी बनिजिया के उतरी बंगालिन,
से रहिहें करेजवा लगाइ मोर सामी।"

पूरबी

उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों, गाजीपुर, बलिया, गोरखपुर में और बिहार के पश्चिमी जिलों आरा, छपरा में इन गीतों का प्रचुर प्रचार है। भोजपुरी प्रान्त के पूर्वी जिलों में गाये जाने के कारण ही इन गीतों का नाम 'पूरबी' पड़ गया है। आजकल पूरबी गीतों का इतना अधिक प्रचार है कि उपर्युक्त जिलों में कहीं भी चले जाइये इसकी मधुर ध्वनि आपके कानों में अवश्य सुनाई पड़ेगी। पुत्र जन्म में, तिलक में, बारात में, अथवा अन्य किसी मंगलमय उत्सव पर इसका गाना अनिवार्य सा हो गया है। इधर कुछ ही वर्षों में 'पूर्वी गीतों' का जितना प्रचार हुआ है उतना 'विदेसिया' को छोड़कर अन्य किसी गीत का नहीं।

'पूरबी' या 'पूर्वी' गीतों के एक रचयिता पं० महेन्द्र मिश्र हो गये हैं जो बिहार प्रान्त के छपरा जिले के ग्राम मिश्र बलिया पोस्ट जलालपुर के निवासी हैं। अभी हाल हीं में आपका देहावसान हुआ है। आप एक प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। आपने हजारों 'पूर्वी' गीतों की रचना की है। आपकी कविताओं, गीतों के अनेक संग्रह प्रकाशित हुए हैं जिनमें 'महेन्द्र मंगल' प्रसिद्ध है।[2] यद्यपि आपने अपने जीवन में धन बहुत पैदा किया परन्तु आपकी कीर्ति इन 'पूर्वी' गीतों के कारण ही अमर रहेगी। आपने अपने रचित गीतों में अपने नाम की छाप लगा दी है। इसीलिए प्रत्येक पूर्वी गीत में 'कहेले महेन्दर मिसिर' यह अवश्य पाया जाता है :

"कहत 'महेन्दर मिसिर' सुनु प्यारी सखिया
से तेरह बरिस बीति गइले हो रामा।"

विशेषता

पूर्वी गीतों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनके गाने की लय बड़ी ही मधुर है। जिन्होंने इन गीतों को किसी वारवनिता के द्वारा गाये जाते हुए सुना है वे ही इसकी मधुरता का अनुमान कर सकते हैं। ये गाने द्रुतगति से गाये जाते हैं। गाते समय ऐसा मालूम होता है कि एक शब्द दूसरे शब्द को धक्का देकर आगे बढ़ा रहा हो।

---

१. दुर्गा शंकर सिंह : लोकगीत पृ० ३४४-३४५। २. दुर्गा शंकर सिंह : भो० लो० गी० पृ० ४१५।

अन्य लोक गीतों की भांति 'पूर्वी' गीतों में भी विप्रलम्भ शृङ्गार का ही वर्णन अधिक पाया जाता है। परदेस में गये हुए पति के पास, उसकी विरह विधुरा नायिका के द्वारा, संदेश भेजने का नीचे लिखा वर्णन कितना हृदय द्रावक है।[1]

वर्ण्य विषय

"पिया मोरे गइले रामा पुरबी बनिजिया,
कि देके गइले ना, एक सुगना खिलौना।
कि देके गइले ना।
....
उड़ल उड़ल सुगा, गइले कलकत्तवा
कि जाइके बइठे ना, ओहि सामी जी के पगिया
कि जाइके बइठे ना।
पगरी उतारि सामी जांघ बइठवले,
कि कह सुगा ना, मोरे घर के कुसलतिया
कि कह सुगा ना।
माई तोर कूटनी, बहिनि तोर पिसनी,
कि जइया कइली ना, तोर दउरी दोकनिया
कि जइया कइली ना।"

पति के वियोग में धनाभाव के कारण स्त्री की कैसी दुर्दशा हो गई है उसका उपर्युक्त वर्णन बड़ा ही मर्मभेदी है।

परदेसी पति के आने की प्रतीक्षा करने वाली तथा अटारी पर चढ़ कर उसके मार्ग को देखने वाली स्त्री का यह चित्रण कितना सुन्दर उतरा है। ग्रामीण कवि ने क्या ही सुन्दर चित्र खींचा है।[2]

कोठवा ऊपर चढ़ि, झाकेली बारि धनिया
कि आही अइले हो, अलगरजी मोर बलमुआ
कि ना हो अइल ना।"

विरह की मार्मिक व्यंजना के साथ ही संभोग शृंगार का भी उल्लेख इन गीतों में पाया जाता है। परदेस से लौटे हुए पति के द्वारा लाई गई टिकुली को लगाकर शृंगार करनेवाली रूप गर्विता नायिका की यह उक्ति कितनी सरस है।[3]

"सइयाँ मोरे गइल रामा, पुरुबी बनिजिया,
से लेइ हो गइले ना, रस बेंदुली टिकुलिया
से लेइ हो अइल ना।
टिकुली में साटि रामा, बइठली अटरिया
से चमके लगले ना, मोर बेंदुली टिकुलिया।
से चमके लगले ना।"

इनमें कहीं पर मायके जाने की उत्कट अभिलाषा दीख पड़ती है तो कहीं राधा-कृष्ण की रासलीला का वर्णन पाया जाता है।[4]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८८। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३८६। ३. वही पृ० ३६४-६५। ४. वही पृ० ३६७।

'पूर्बी' गीतों के भाव और भाषा दोनों में माधुर्य है। इनके गाने में एक अपूर्व सरसता है। इसीलिए ये गीत ग्रामीण जनता के हृदय में अनायास ही घर कर लेते हैं। भोजपुरी प्रदेश में इन गीतों का प्रचार बहुत अधिक है।

निर्गुन

भक्ति भावना से ओतप्रोत गीतों को 'निर्गुन' कहते हैं। यद्यपि भजन और निर्गुन का वर्ण्य विषय एक ही है परन्तु इन दोनों की गाने की लय में बहुत अन्तर है। निगु न की एक विशेष 'लय' होती है जिसमें वह गाया जाता है। इस लय में बड़ी हृदय द्रावकता होती है। यह सुनने में बड़ा मधुर होता है और श्रोताओं को आनन्द सागर में डुबो देता है। निगु न की दूसरी विशेषता यह है कि इसकी दूसरी पंक्ति प्रायः 'आहो रामा' से प्रारम्भ होती है और इसको 'हो रामा' में समाप्ति पायी जाती है।

"पाँच पचीस कोस बसेले महाजन हो,
आहो रामा कवना अवगुनवे हरि मोरे सेले हो रामा।"

उपर्युक्त गीत की दूसरी पंक्ति 'हो रामा' से प्रारम्भ हुई है और अन्त में भी 'हो रामा' आया है। यही क्रम पूरे गीत में चलता है। कहीं कहीं 'ओहो रामा' के स्थान पर 'कि आहो मोरे रामा' भी पाया जाता है।

कबीरदास की वाणी जिसमें निराकार ईश्वर की उपासना का उपदेश दिया गया हैं 'निगु न' के नाम से प्रसिद्ध है। कबीर ने ईश्वर की निगु न सत्ता का प्रतिपादन करते हुए अनेक पद कहे हैं। ये पद भी निगु नी तत्व के वर्णन के कारण 'निगु न' कहे जाते हैं। कबीर के 'बीजक' में ऐसे पद प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं।

नामकरण

कबीर के 'निरगुनियों' और लोक गीतों के इन पदों में वर्ण्य विषय प्रायः एक ही था अतः इन लोक गीतों को भी 'निगु न' के नाम से पुकारा जाने लगा। कबीर दास का नाम निगु न गीतों से चिरकाल से संबद्ध है अतः इन लोकगीतों के रचयिता भी कबीर ही मान लिये जाते हैं। परन्तु भोजपुरी 'निगु न' के कर्ता कबीर, 'बीजक' के कबीर से नितान्त भिन्न हैं। इन गीतों को महत्व प्रदान करने की दृष्टि से ही इनमें महात्मा कबीर का नाम जान-बूझ कर जोड़ दिया गया है, नहीं तो ये वास्तव में किसी ग्रामीण कवि की ही रचनाएं हैं। नीचे के इस 'निगु न' में कबीरदास का नाम आया है।[1]

"गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो राम।
आहो रामा जगवा में केहू नाहिं आपन हो राम।"

इसी प्रकार एक दूसरे निगु न में भी कबीरदास के नाम की छाप पायी जाती है।[2]

"गावेले कबीरदास इहे निरगुनवा हो।
कि आहो मोरे रामा, गाइ गाइ सखी समुझावेले हो रामा।"

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग० २ पृ० ३६८। २. वही. पृ० ३७७।

'निर्गुन' लिखने की परम्परा कबीरदास से प्रारम्भ होती है। कबीर के सम्प्रदाय में प्रायः जितने भी सन्त कवि हुए हैं उन्होंने इस छन्द को अपनी कविता का माध्यम बनाया है।

वर्ण्य विषय जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है इन 'निर्गुन' गीतों में प्रायः भक्ति की भावना का उल्लेख पाया जाता है। अपने जीवन में दान पुण्य न करने वाले किसी भक्त का निम्नलिखित पश्चाताप कितना मार्मिक है :

"नाहि कइली दान पुनवा, अवरु धरमवा हो।
कि आहो मोरे रामा, पिया अइले गवना करावे हो राम।
आई देली गाहाना, पिता जी देले गइया हो,
कि आहो मोरे रामा, चलही के बेरिया सब छूटल हो राम।"

आत्मा को प्रेमिका और ईश्वर को प्रियतम मानना यह निर्गुन सन्तों की प्राचीन परम्परा रही है। इस परम्परा का अनुकरण ऊपर के गीत में हुआ है। इस संसार से नाता तोड़कर प्रेमी के परमात्मा से मिलने को गवना का रूपक दिया गया है।

एक दूसरे 'निर्गुन' में परमात्मा के बिना निराश्रित आत्मा की तड़पन का दृश्य बड़ी सुन्दर रीति से चित्रित किया गया है।

"बाला जोगी बाला जोगी कुंववां खोनवले,
कि आहो मोरे रामा, डोरिया हो बरत दिनवा
बीतल हो रामा।
टूटि गइले डोरिया, मसि गइले कुंववां,
कि आहो मोरे रामा,
केकरा दुअरिया दिनवा काटबि ए राम।
हाथ छूंछ, फांड़ छूछ केहू नाहीं बात पूछे
कि आहो मोरे रामा,
केकरा हो दुअरिया दिनवा काटबि ए राम।"

इस गीत में निराश्रित भक्त की आत्मा पुकार रही है कि मैंने जीवन भर कुछ भी कार्य नहीं किया। केवल कर्म रूपी रस्सी को जीवन भर बैंटता रहा, अब मैं ईश्वर की दया बिना कहाँ जाऊँ।

पाराती और भजन

स्त्रियाँ केवल श्रृंगार और करुण रस के ही गीत नहीं गातीं बल्कि समय-समय पर भक्ति से ओतप्रोत पाराती और भजन भी गाया करती हैं। जहाँ उनका हृदय श्रृंगार और करुण रस से लबालब भरा रहता है वहाँ उसमें भक्ति की भी कुछ कम मात्रा नहीं होती। घर के झंझटों से जब उन्हें अवकाश मिलता है, बाल बच्चों के किच-किच से फ़ुरसत मिलती है तब वे भगवान् की स्तुति में दो-चार भजन बड़े प्रेम से गाती हैं। ये भजन या तो रात को सोने के पहिले गाये जाते हैं अथवा प्रातःकाल में। प्रातःकाल में गाये जाने के कारण ही इन्हें

'पाराती' कहते हैं। भजन वे हैं जो सभी समय गाये जाते हैं। पाराती और भजन के वर्ण्य विषय में कुछ भी अन्तर नहीं है। केवल दिन के एक विशेष भाग प्रातःकाल में गाये जाने से ही इन्हें यह संज्ञा प्राप्त है। जब स्त्रियाँ किसी तीर्थ यात्रा को अथवा गंगा नहाने जाती हैं तब वे प्रायः भजन ही गाती हैं। उनके कलकंठ से उनके भजनों को सुनकर भक्ति का जैसा उद्रेक मनुष्य के मन में होता है उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है।

ये भजन भक्ति से ओतप्रोत होते हैं इनमें भगवान् की स्तुति रहती है। कहीं इनमें किसी तीर्थयात्रा में चलने का वर्णन है तो कहीं इस पापी मन को भक्ति करने का उपदेश दिया गया है। इतने दिनों तक इससे विमुख रहने के लिए कोसा गया है।[१]

"राम नाम मुख बोलु ए भाई।
छोड़ु अब जग चतुराई।
... ...
ए मनवा पापी भजन कब करबे।
जिनगी बितानी भजन कब करबे।"

मनुष्य जीवन की नश्वरता का नीचे लिखा यह वर्णन कितना सटीक उपदेशपूर्ण एवं यथार्थ है।[२]
का देखि के मन भइले हो दिवाना। का देखि के

मानुख देहि देखि जनि भूल,
एक दिन माटी होई जाता। टेक।
आरे हे देहिया कागद की पुड़िया,
बूनि पड़त भिहिलाना।" टेक।

नीचे लिखी पंक्तियों में राम के बालरूप का वर्णन भी भावपूर्ण है। भक्त कहता है कि हे भगवान्! आप इसी रूप में मेरे मनमन्दिर में विराजिये। मैं कभी आप को न भूलूं।[३]

"रउरा रामजी हरी, रउरा नाहीं बिसरीं, घंटा भरी। टेक।
छोटे छोटे बालक साँवर रूप
बड़ी बड़ी अँखिया सुरति अनूप।
बायाँ हाथे धेनुही, दहिना हाथे तिरवा
खेलत खेलत गइलो सरजू का तिरवा।" टेक।

कहीं-कहीं इन भजनों में रहस्यवाद की गंभीर व्यंजना हुई है। नीचे के भजन में नेहर से नाता तोड़कर पति के पास जाने का जो वर्णन किया गया है वह रहस्यवाद की परम्परा के ही अन्तर्मुक्त है। यहाँ आत्मा की कल्पना स्त्री से की गई है और परमात्मा को पति माना गया है। यह संसार ही नेहर है और गुरु की कृपा से ईश्वरोन्मुख होने का नाम ही गवना है। गुरु की दया ही वह डोली

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३५६। २. वही पृ० ३६०-३६१। ३ वही. पृ० ३६९।

है जिस पर यह जीव अपने प्रियतम परमात्मा से मिलने जाता है। यह कल्पना कितनी कमनीय है।[1]

"मोरे नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
कांचे कांचे बंसवा के डोलिया बनवले,
ताहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

पालने के गीत

बूढ़ी दादियाँ और माताएँ अपने प्यारे पौत्रों और पुत्रों को पालने में सुलाकर उनको मधुर गीत सुनाती रहती हैं जिनका केवल एकमात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है। जिन घरों में लक्ष्मी का अभाव है वहाँ मातायँ अपनी गोदी में ही लेकर बालकों को सुलाती अथवा खेलाती हैं। ग़रीब माता का गोद ही बालक का पालना है। इन गीतों को 'पालने के गीत' या लोरिक कहते हैं। अंग्रेजी साहित्य में ऐसे गीतों का जिन्हें क्रेडिल सांग्स, लुलाबिस या नरसरी र्‌हांइम्स कहते हैं बड़ा प्रचार है। सैकड़ों पुस्तकें इस विषय पर लिखी गई हैं और लोक-साहित्य के प्रेमियों ने इन गीतों का सग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया है। परन्तु भोजपुरी में एक तो पालने के गीत ही बहुत कम हैं और जो हैं भी वे केवल बूढ़ी दादियों के मुख में ही सुरक्षित हैं।

पालने के वे गीत प्रधानतः तीन अवसरों पर गाये जाते हैं। १. बालक को खिलाने के समय २. बालक को प्रसन्न रखने के समय और ३. बालक को सुलाने के समय। जब छोटा बालक दूध अथवा अन्न खाना नहीं चाहता और रोता रहता है उस समय उसकी माँ गीत गाकर उसके ध्यान को रोने से हटाती है और उसे भोजन की ओर प्रवृत्त करती है। वह तरह-तरह के प्रलोभन देकर उससे खाने के लिए आग्रह करती है। रोते बच्चों को दूध पिलाने में यह गीत महामन्त्र का काम करता है। बालक गीत के संगीत को सुनकर चुप हो जाता है और दूध पीना प्रारम्भ कर देता है।

"चाना मामा आरे आव, पारे आव, नदिया किनारे आव।
सोने के कटोरवा में दूध भात ले ले आव।
बबुआ के मुंहवा में घूंट, घूंट, घूंट।"[2]

लड़कों को चन्द्रमा प्रिय लगता है। उसको दिखलाते हुए यह गीत गाया जाता है। दूध पिलाने के लिए एक दूसरा गाना भी प्रसिद्ध है जिसमें गाय के शुद्ध दूध की प्रशंसा की गई है। माँ कहती हैं कि मेरे बालक की गाय ने अभी पहिली बार बच्चा दिया है। अतः बच्चे के पीने के लिए 'कांटी' (मिट्टी का पात्र जिसमें दूध दूहा जाता है) में दूध लावो।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४५ (भूमिका) पृ० भाग २. लेखक का निजि संग्रह।

"बबुआ के गइया आंटी, दूधवा ले अव भरि कांटी ।
बबुआ पियसु भरि कांटी ।"

एक दूसरे गीत में इसी बात को दूसरे शब्दों में कहा गया है। यहाँ 'कांटी' के स्थान पर गगरी का प्रयोग किया गया है।

"आउ रे गइया अगरी, दूधवा ले आऊ भरि गगरी ।
बबुआ पियसु भरि गगरी ।"

इन गीतों का दूसरा प्रयोजन बालक को निद्रा देवी की गोद में समर्पित करना है। यदि माता घर में अकेली हुई तो उसके लिये बालक को सुलाना अत्यन्त आवश्यक होता है नहीं तो उसके रुदन से कार्य में बाधा पड़ती है। अतः बच्चे को सुलाने के लिये वह अनेक गीत गाती है। इन गीतों में संगीत का पुट होना अनिवार्य है जिससे मुग्ध होकर बालक सो जाता है। बच्चों को सुलाने का यह गीत बड़ा प्रसिद्ध है।

"हाल हाल बबुआ, कुरुई में ढेबुआ ।
माई अकसरुआ, बाप दरबरुआ ।
हाल हाल बबुआ ।"

वास्तव में ये गीत गृहकार्य में संलग्ना माता के लिये बड़े सहायक है। यदि हठीला बालक इतने पर भी नहीं सोता तो माता एक दूसरा लम्बा गाना सुनाती है जिसके माधुर्य में मस्त होकर वह सो जाता है। माँ गाती है कि बच्चे का मामा आकर उसके कान में 'बाला' गहना पहिनाता है। बालक बुढ़िया के हाथ की मिठाई लेकर खाता है।

"घुघुआ माना, उपजे धाना ।
एहि मुंहे अइले बबुआ के मामा ।
नाक दुनो धइके छेदा दिहले काना ।
ओहि में पहिरा दिहले सोने के बाना ।
नई भीति उठेले पुरानी भीति गिरेले ।

संभरिहे बुढ़िया दाई ।
तोरा हाथ के मिठाई ।
लड़िका तूरि तूरि खाई ।"

इस गीत में बालक को गहने और मिठाई का लालच देकर सोने का अनुरोध किया गया है।

कुछ गीत ऐसे भी हैं जो किसी विशेष प्रयोजन के लिये नहीं गाये जाते बल्कि उनका एक मात्र उद्देश्य बालक को प्रसन्न रखना होता है। बालक के रोने से माता के गृह कार्य में बाधा पड़ती है। अतः वह यही चाहती है कि बालक यदि न भी सोवे तो प्रसन्नता पूर्वक चारपाई अथवा पालने में पड़ा हुआ खेलता रहे। इसलिये वह उसे गा-गाकर प्रसन्न रखती है। कभी वह बालक के रूप की प्रशंसा करती है तो कभी माँ और बाप की :

"ए बबुआ तू कथी के ।
खने सोना खने रुपा के ।

माई लंवग के, बाप चउवा चन्नन के।
पितिया पीतम्बर के, लोग बिराना माटी के।
ए बबुआ तू कथी के।
खने सोना खने रुपा के।"

एक दूसरे गीत में माता बालक के सुन्दर मुख की प्रशंसा कर रही है और कहती है कि :

अरर बरर पूआ पाकेला,
चीलर खोंइछा नाचेला।
चीलर भइले थोर,
मोर बाबू के मुंहवा गोर।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न गीतों को गा-गाकर माता बालक का मनोरंजन करती है और उसे प्रसन्न रखती है।

वर्ण्य विषय

इन गीतों का वर्ण्य-विषय बाल मनोरंजन है। अत: उन्हीं के खाने पीने और पहिनने का उल्लेख इन गीतों में हुआ है। कहीं माता बालक को शुद्ध दूध पिलाती है तो कहीं उसे मिठाई खिलाने का प्रलोभन देती है। कहीं मामा उसको कान का गहना देता है तो कहीं कोई उसे चिउड़ा देता है। कहीं उसके सौन्दर्य का वर्णन है कहीं उसके माता पिता के रूप का। पालने के गीत प्राय: किसी न किसी भाव को लेकर लिखे गये हैं। परन्तु कोई-कोई गीत अर्थहीन भी है। उनमें निरर्थक पदावली का प्रयोग किया गया है। जैसे—

घुघुआ माना उपजे धाना।
एहि मुंहे अइले ववुआ के मामा।

इस गीत में 'घुघुआ माना' निरर्थक पद है। दूसरा गीत यह लीजिये :

हाल हाल ववुआ,
कुरुई में ढेवुआ।

इन दोनों पदों का कुछ भी अर्थ नहीं है। ये केवल संगीत पैदा करने के लिये प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार चाना मामा आरे आव, पारे आव, इस गीत में पहिली पंक्ति बिल्कुल निरर्थक है। 'अरर बरर पुआ पाकेला, चीलर खोंइछा नाचेला' इस गीत में भी यही बात है। अंग्रेजी में सैकड़ों ऐसे पालने के गीत हैं जिनका कुछ भी अर्थ नहीं है। इनकी रचना का उद्देश्य केवल बालक के कानों के लिये सुखद संगीत पैदा करना है।

खेल के गीत

भोजपुरी में बालकों के खेल के गीत अत्यधिक संख्या में उपलब्ध होते हैं। जितने प्रकार के खेल पाये जाते हैं उनके गीत भी उतने ही भिन्न हैं। इन गीतों में कहीं तो 'दाव न खेलाने वाले' दूसरे पक्ष वालों की निन्दा है तो कहीं स्वयं बहादुरी के साथ कबड्डी के दाव पढ़ाने का उल्लेख है। कहीं चुपचाप बैठे रहने के लिये शपथ खिलाया गया है तो कहीं जानवरों को चिढ़ाने के गीत गाये जाते हैं। खेल के इन गीतों में खेल

की विभिन्न विधियों का उल्लेख भी पाया जाता है। यों तो बालकों के खेलों की संख्या बहुत है परन्तु उनमें से प्रधान ये हैं :

१. कबड्डी।
२. गुल्ली डंडा।
३. आँख मुंदौवल।
४. चुप्पी।
५. जानवर संबंधी गीत।

इन खेलों में से कबड्डी का खेल सबसे अधिक प्रिय और प्रसिद्ध है। कबड्डी के खेल में दो दल होते हैं। जहाँ यह खेल होता है उस स्थान के बीच में एक सीधी रेखा खींच देते हैं। पहिला दल उस रेखा के एक ओर खड़ा होता है तो दूसरा दल उसके विपरीत दूसरी ओर। अब एक दल का एक आदमी दूसरे दल में कोई गीत गाता हुआ जाता है और उस पक्ष के किसी व्यक्ति को छूकर भागने का प्रयत्न करता है। गीत गाते हुये दूसरे दल में घुसने की इस विधि को 'कबड्डी पढ़ाना' कहते हैं। दूसरे दल के लोग कबड्डी पढ़ाने वाले व्यक्ति को पकड़ने का प्रयत्न करते हैं। यदि उन्होंने उसे पकड़ लिया तो वह खेल से बाहर निकाल दिया जाता है इसे खेल की भाषा में 'मर जाना' कहते हैं। यदि कबड्डी पढ़ाने वाला आदमी दूसरे दल के व्यक्तियों को छूकर भाग आता है तो वह जितने व्यक्ति को छूवेगा वे सभी मर जायेंगे। इसी प्रकार यदि किसी दल के सभी व्यक्ति 'मर गये' तो उस पक्ष की हार समझी जाती है। देहातों में कबड्डी का यह खेल बड़ा लोकप्रिय है तथा सभी बच्चे इसे खेलते हैं।

कबड्डी के खेल की दो विशेषताएँ हैं एक तो इसमें दौड़ने से शरीर पुष्ट होता है। दूसरे 'कबड्डी पढ़ाने' से फेफड़ों का व्यायाम होता है। जो लड़का अधिक देर तक कबड्डी पढ़ाता रहता है उसके विजयी होने की अधिक आशा रहती है। 'कबड्डी पढ़ाते समय लड़के कोई न कोई गीत गाते रहते हैं। यह गीत राग से नहीं गाया जाता परन्तु इसमें लय अवश्य रहती है। कबड्डी पढ़ाते समय अधिक लड़के केवल 'कबड्डी, कबड्डी' ही कहा करते हैं परन्तु कुछ दूसरे गीत भी गाते हैं। ये गीत केवल तुकबन्दी हैं। इनमें भाव और भाषा का विशेष ध्यान नहीं रहता परन्तु संगीत उत्पन्न करने के लिये तुक अवश्य मिलाया जाया है। यह गीत लीजिये :

"कबड़ी में लबड़ी पाताल हाहाराई।
चील्ह कउआ हांक पारे बाघ लरिआई।"

इस गीत का कुछ भी अर्थ नहीं है। विभिन्न शब्दों को जोड़कर यह गीत तैयार किया गया है। हाँ 'हाहाराई' में तुक अवश्य प्रयत्न पूर्वक मिलाया गया है। दूसरा गीत लीजिये :

"ए कबड्डी रेता, भगत मोर बेटा।
भगताइन मोरी जोरी, खेलबि हम होरी।"

यहाँ भी बेटा और रेता एवं जोरी, होरी में तुक मिलाया गया है। कबड्डी पढ़ाते समय एक ही सांस में सारा गीत गाना पड़ता है जो बड़ा कठिन काम है। इस-

लिये चतुर लड़के ऐसा ग़ीत चुनते हैं जिसको गाते समय साँस लेने की थोड़ी फ़ुरसत मिल जाय। जैसे—

"आम छू, आम छू, कउड़ी झनक छू।"

यहाँ आम छू, आम छू, कहते हुए थोड़ा साँस लेने के लिये समय मिल जाता है। कहीं-कहीं 'झनक छू' की जगह पर 'बादाम छू' पाठ भी पाया जाता है।

कबड्डी खेलते समय यदि एक पक्ष के लोग दूसरे पक्ष का 'दाव' आने पर उसे खेलने का अवसर नहीं देते तब अन्य दल वाले उनकी शिकायत करते हैं और कहते हैं कि जो मेरा 'दाव नहीं खेलायेगा' उसकी माँ गूजरी है।

"हामार दउवा ना खेलावे ओकर माई गूजरी।
खाले गिरगिटवा बियाले मूसरी।"

इस गीत से पता चलता है कि गूजरी (ग्वालिन) शब्द अपमानजनक समझा जाता था।

दूसरा खेल गुल्ली डंडा है। इसमें बांस या लकड़ी के छोटे डंडे से जो एक हाथ से बड़ा नहीं होता लकड़ी की बनी छोटी गुल्ली को मारते हैं। दूसरे दल के लोग जो कुछ दूर खड़े रहते हैं उसे पकड़ने (लोकने) की कोशिश करते हैं। यदि गुल्ली को वे 'लोकने' में असमर्थ रहे तब उसे खिलाड़ी के पास पृथ्वी में खोदे गये एक छोटे से गड्ढे में फेंकने का प्रयत्न करते हैं। खिलाड़ी गुल्ली को पुनः डंडे से मारता है और वह गुल्ली जहाँ गिरती है उस स्थान तक गड्ढे से डंडे से नापते हैं। इस गुल्ली को कभी पैर पर रखकर, कभी हाथ में और कभी उंगलियों पर रखकर मारते हैं जिनके सात विभिन्न नाम हैं। एड़ी, दोड़ी, तिलिया, चौरी, चम्पा, सेख, सुतेख। इन शब्दों की निरुक्ति कैसे हुई है यह कहना कठिन है। कुछ लोग इसका मनमाना अर्थ करते हैं जिसका कुछ महत्त्व नहीं है। आजकल गुल्ली के स्थान पर रबर के गेंद का प्रयोग किया जाता है। गुल्ली डंडे का खेल बहुत प्राचीन जान पड़ता है।

तीसरा खेल 'आँख मुंदौवल' है जिसे 'आँख मिचौनी' भी कहते हैं। इसमें किसी लड़के की आँख बन्द करके अन्य लड़के उसे मारते हैं। छुआछूत के खेल में एक लड़का खड़ा रहता है और दूसरे बालक बैठे रहते हैं: यदि कोई लड़का ग़लती से खड़ा हो गया और खड़े लड़के ने उसे छू दिया तो अब उसे खड़े हो कर दूसरों को छूना पड़ता हे। जो लड़के बैठे रहते हैं वे खड़े बालक को चिढ़ाने के लिये गीत गाते हैं:

"एक बेर के छुअले का भइले।
किरवा बिनी बिनि खा गइले।"

आचरण की दृष्टि से लड़कों और लड़कियों का एक साथ खेलना अनुचित समझा जाता है। अतः प्रायः छोटी लड़कियाँ भी लड़कों के साथ नहीं खेलतीं। यदि कोई लड़की भूल से खेलने लगती है तो दूसरे बालक उसे चिढ़ाते हुये गाते हैं कि:

"बेटवा में बिटिया गुलेल खेलेले।
भर माथे सेनुरा जियान करेले।"

यहाँ 'सिन्दूर नष्ट' करने का अर्थ पातिव्रत धर्म को छोड़ना है जो लड़की या स्त्री के लिए बड़ा अपराध है।

छोटे-छोटे बालक एक हाथ पर दूसरा हाथ रखकर एक खेल खेलते हैं और खेलते समय यह गीत गाते हैं।

"ताई ताई पुरिया, घी में चभोरिया।
हम खाई कि भउजी खाई,
भउजी पतरंगिया।"

अर्थात् गर्म-गर्म चपातियों को घी में चुपड़ लिया। मेरी भावज पतली अंग वाली है अतः उसे ये रोटियाँ नहीं पचेंगी। अतः मैं इन्हें खा रहा हूँ। यह बाल मनोरंजन का गीत है। बालक को भोजन के अतिरिक्त और क्या चाहिए।

कभी-कभी मौन व्रत धारण करने वाला खेल भी बालक खेलते हैं जिसे 'चुप्पी' कहते हैं। दस पांच लड़के एक साथ बैठ जाते हैं। उनमें से एक लड़का निम्नांकित 'गीत' का गान करता है। इस 'गीत' को सुनते ही सब लड़के मौन होकर बैठ जाते हैं। जब कोई बीच में बोल उठता है तो अन्य लड़के उसे खूब चिढ़ाते हैं। वह गीत है:

"ओका बोका, तीन तलोका
लाठी लउआ, चन्द काठी।
बाग में बगउवा डोले,
सावन में करइला फूले।
ओ करइला के नांव का,
हजइल बिजइल पानवा फूलवा
पूऊवा पचक।"

इस गीत में कुछ ऐसे शब्द हैं जैसे ओका, बोका, तीन तलोका जो हिन्दी भाषा के शब्द नहीं ज्ञात होते। बहुत संभव है कि ये किसी असभ्य जाति (प्रीमीटिव ट्राइब) के भाषा के शब्द हों जिनकी शेष पदावली तो परिवर्तित हो गई है परन्तु ये शब्द उस जाति की स्मृति रूप में ज्यों के त्यों विद्यमान हैं।

एक अन्य खेल में भी निरर्थक पदावली का प्रयोग है। बालक एक पर एक मुट्ठी बाँधकर उसे एक हाँथ ऊँचा बनाकर दूसरे हाथ से काटने का अभिनय करते हुए यह गीत गाते हैं :

"तार काटो सरकुल काटो काटो रे बनखाजा
हाथी पर के घुघुआ चमक चले राजा।
राजा के रजइया, बाबू के दोपाट्टा।
हींची मारो घीचि मारो, मूसर अइसन बेटा।"

देहातों में रासलीला की भाँति एक खेल होता है जिसमें दो लड़कियाँ अपने हाथों को एक दूसरे से जोड़कर नाचती हैं। इसे 'झाका झूमरि' कहते हैं। इस खेल में जितनी ही अधिक लड़कियाँ भाग लेती हैं उतना ही अच्छा होता है और सुन्दर लगता है। वे गाती हैं :

"एक हाड़ी झिगड़ा बड़ेरी लागे धूआँ।
सासु पकवली गल गल पूआ।

अपने खइली घिम्राहवा पूआ ।
हमारा के दिहली तेलहवा पूआ ।
ना खाइबि पूआ, खेलबि जूआ ।
ना खाइबी पूआ, खेलबि जूआ ।''

यद्यपि यह गीत रासलीला का है परन्तु इसमें पूआ के साथ तुक मिलाने को जूआ कर दिया गया है। दूसरी विशिष्ट बात यह है कि इसमें सास की दुष्टता की ओर संकेत किया गया है। वह स्वयं तो घी का पूआ खाती है परन्तु वधू को तेल का पूआ देती है।

इन खेल के गीतों के अतिरिक्त विभिन्न जानवरों को चिढ़ाने या उकसाने के भी गीत पाये जाते हैं। इन गीतों में कहीं तो उस विशेष जानवर की शारीरिक बनावट का वर्णन है तो कहीं उसके स्वभाव का उल्लेख किया गया है। साँड़ का यह वर्णन कितना सटीक एवं हास्योत्पादक है :

''साँड़वां के पीठि पीठि बदुरी बिम्राइल जाला ।
हे हाहा, हे हाहा, हे हाहा, हे ।''

'बदुरी' का अर्थ 'ककुद' है। भाव है कि साँड़ की पीठ पर 'बदुरी' होती है। गीदड़ के स्वभाव की परख एक दूसरे गीत में है :

''एक देखि लपकी, दुइ देखि झपटी ।
तीनी देखि चलेला पराई ।''

अर्थात् गीदड़ एक आदमी को देखकर लपकता है, दो को पाकर झपट्टा मारता है परन्तु तीन मनुष्यों को देखकर भाग चलता है। बन्दर की पूँछ के नीचे का स्थान लाल होता है। इसका उल्लेख एक अन्य गीत में है :

''चोकर के लिट्टी कसइली के दाल ।
ए बनरा तोर चूतरे लाल ।''

एक अन्य गीत में हाथी के मोटी एवं बड़ी रोटी लिट्टी खाने का वर्णन है।[1]

''हथिया हथंग तोरा खाये के लिटंग''

——

१. इस अध्याय में जो गीत उद्धृत किये गये हैं वे सभी लेखक के निजी संग्रह के हैं। अतः इनका सर्वत्र उल्लेख नहीं किया गया है।

अध्याय ५

लोक गीतों में भोजपुरी संस्कृति का चित्रण

भारतीय संस्कृति के विकृति एवं श्रेष्ठ दोनों प्रकार के स्वाभाविक चित्रण न लोक गीतों में उपलब्ध होते हैं । इनमें न तो अतिरंजना है और न अत्युक्ति । ग्रामीण कवि ने समाज में जो कुछ देखा है एवं अनुभव किया है उसका उसी रूप में वर्णन उपस्थित किया है । इन गीतों में हमें अशिक्षित और असंस्कृत भोजपुरी समाज का ज्यों का त्यों रूप देखने को मिलता है; साथ में भारतीय संस्कृति के अनुकरणीय आदर्शात्मक उल्लेख भी हैं । पुत्र जन्म के समय उछाह एवं उत्सव की परन्तु पुत्री के पैदा होने पर विषम दुःख की अभिव्यंजना इन गीतों में हुई है । भोजपुरी समाज में स्त्रियों का जो स्थान है, बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं बहु विवाह के कारण-किस प्रकार उनका जीवन नारकीय बन जाता है इसका मर्मस्पर्शी वर्णन इन गीतों में मिलता है । सास और बहू, ननद और भावज के शाश्वतिक कलह की चर्चा भी दिखाई पड़ती है जिसकी पुष्टि प्रत्यक्ष उदाहरणों से होती है । परन्तु इसके साथ ही भोजपुरी जीवन के उज्जवल पक्ष का भी चित्रण कुछ कम नहीं है । भाई और बहन का सहज, स्वाभाविक एवं अकृत्रिम प्रेम, जो आज के जीवन में कथा मात्र शेष रह गया है, इन चीजों में पाया जाता है । माता और पुत्री के अलौकिक प्रेम की दिव्य झाँकी इनमें हमें देखने को मिलती है । स्त्रियों के सतीत्व का दिव्य एवं स्वर्गीय दृश्य हम इन गीतों में पाते हैं ।

सामाजिक जीवन के साथ ही साथ धार्मिक जीवन का चित्रण भी इनमें हुआ है । व्रत के गीतों में कहीं सूर्य की पूजा पाई जाती है तो कहीं छठी माता की । शिव, कृष्ण आदि देवताओं का वर्णन मिलता है । साथ ही स्त्रियाँ गंगा माता और तुलसी माता के भी गीत गाती हैं । इनमें शीतला माता की पूजा भी बड़ी विधि से की गई है ।

इन गीतों में भव्य आर्थिक जीवन की कल्पना भी हमें देखने को मिलती है । झूमर के सभी गीत 'सोने की थाली में जेवना परोसलों' से प्रारम्भ होते हैं । प्रियतम के भोजन की थाली सोने की बनी है ही साथ ही उसका लोटा भी सुवर्णमय है । वह चन्दन के पलंग पर, जो रेशम से बुनी गई है, सोता है । स्त्री की कंघी भी सोने की ही है ।

राजनैतिक अवस्था का भी थोड़ा वर्णन इन गीतों में मिलता है । मुग़लों के समय शासन की शिथिलता एवं अत्याचार तथा सिपाही विद्रोह के समय नवाबों की बेगमों का मर्मस्पर्शी दृश्य उपस्थित किया गया है । इन लोक गीतों में सामाजिक, धार्मिक आर्थिक एव राजनैतिक जीवन के वर्णन से भारतीय संस्कृति का हमें सच्चा परिचय प्राप्त होता है । उपर्युक्त बातों का दिग्दर्शन हम इन लोक गीतों के उदाहरण के उद्धरणों द्वारा करेंगे ।

(क) सामाजिक जीवन का चित्रण

भोजपुरी समाज के प्रायः प्रत्येक पहलू का वर्णन इन गीतों में पाया जाता है। गार्हस्थ जीवन का चित्रण हमें यहाँ देखने को मिलता है। सास वधू, ननद भावज, माता पुत्री, पिता पुत्र, भाई बहन, देवर भौजाई, और ससुर पतोह आदि यावत् पारिवारिक संबंध जो हो सकते हैं उन सभी का दिग्दर्शन यहाँ कराया है। स्त्री जीवन की पूरी गाथा इन गीतों में गाई गई है।

समाज में स्त्रियों का स्थान

पीछे कहा गया है कि भोजपुरी समाज में स्त्रियों का स्थान कुछ वहुत उँचा नहीं है। भोजपुरी समाज में यह कहावत प्रचलित है कि पुत्री के जन्म होते समय पृथ्वी तीन बालिस्त (बित्ता) नीचे दब जाती है मानों वह उसके भार को सह नहीं सकती। जहाँ पुत्र का जन्म उजेली रात (अँजोरिया) माना जाता है वहाँ पुत्री के जन्म की उपमा अँधेरी रात से दी जाती है। इसी एक उपमा से पुत्री के अनादर का अन्दाजा लगाया जा सकता है। एक गीत में कोई माता कहती है कि यदि मैं जानती कि मुझे पुत्री पैदा होगी तो मैं मिर्च पी जाती। उसकी कटुता मे लडकी मर जाती और मैं इस दुःखद प्रसव वेदना से मुक्त हो जाती।[१]

"जाहु हम जनिती धियवा कोखी रे जनमिहे,
पिहितों में मरिच झराई रे।
मरिच के झाके झुके धिश्रवा मरि रे जाइति,
छुटि जाइते गरुवा संताप रे।"

एक दूसरे गीत में कोई स्त्री यह कहती है कि यदि पुत्री जन्म की मुझे तनिक भी आशंका होती तो मैं अपने पति के साथ सेज पर न सोती और घर के दीपक को बुझा देती। इतना ही नहीं, भोजपुरी प्रदेश में किसी स्त्री का महत्व पुत्र या पुत्री पैदा करने ही से कूता जाता है। पुत्र या पुत्री का जन्म होने पर प्रसव कालीन विधि विधानों में भी अन्तर कर दिया जाता है। यदि स्त्री बालक जनती है तो उसके भोजन आदि के विषय में अधिक सतर्कता रखी जाती है। उसके ओढ़ने के लिये दुशाला दिया जाता है और खाने के लिये मेवा फल आदि। उसकी 'पसंगी' में चन्दन की लकड़ी जलाई जाती है परन्तु लकड़ी के पैदा होने पर कुश की घास बिछाने के लिये और वही ओढ़ने के लिये दी जाती है। वन में उत्पन्न होने वाले जंगली फल मेवा के स्थान पर खाने को मिलते हैं। उसके पसंगी में खुखुड़ी (दानों से रहित सूखा भुट्टा) जलाइ जाती है जिसके दूषित धुएँ से उसे नींद नहीं आती।[२]

"साल ओढ़न साल डासन, मेवा फल भोजन रे।
ए ललना, चनन के जरेला पंसगिया, निनरि 'भल' आवेला रे
अइसन दह में के पुरहन, दहे बिच कांपेले रे।
ए ललना, ओइसन काँपेले हमरो हरिजी,
धिया कारे जनम नु रे।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० १३१। २. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७१।

कुस ओढ़न कुस डासन, बन फल भोजन रे।
ए ललना, खुखुरी के जरेला पंसगिया,
निनरियों ना आवेला रे।''

पुत्री के जन्म का नाम सुनते ही पिता का हृदय इस प्रकार कांपने लगता है जैसे तालाब में पुरइन का पत्ता। ओइसन कांपेले हमरो हरिजी, धिया का रे जनम नू रे'' यह उक्ति कितनी मार्मिक है। साथ ही इसमें कितना सत्य छिपा पड़ा है।

पुत्र जन्म के मंगलमय अवसर पर 'सोहर' गाया जाता है परन्तु पुत्री के जन्म पर हर्ष का अभाव होने के कारण कोई गीत नहीं गाया जाता। जहाँ पुत्र का नाल सोने की छुरी से काटा जाता है वहाँ पुत्री के नाल को काटने के लिये लोहे की कुन्द चाकू ही पर्याप्त समझी जाती है। कोई दुखी पिता कहता है कि ऐ पुत्री! जिस दिन तू पैदा हुई उसी दिन तूने मेरे लिये गाली 'बेसाहा' अर्थात् मुझे गाली सहने पड़ेगी यह निश्चित हो गया :[1]

जाहि दिन बेटी हो तोहरा जनमवा
हमरे सीरे बेसहलु गारि ए।''

देहातों में प्रायः बात-बात पर 'ससुर' की गाली दी जाती है। पिता का संकेत इसी गाली की ओर है। संस्कृत के एक कवि ने भी कन्या के जन्म को कष्ट का ही पर्याय माना है। वह कहता है कि :

''पुत्रीति जाता महती हि चिन्ता,
कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्क:
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा नवेति,
कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्।''

कन्या ज्यों-ज्यों बड़ी होने लगती है, पिता की चिन्ता त्यों-त्यों बढ़ने लगती है। विवाह के वय को प्राप्त करने पर पिता की चिन्ता उग्र रूप धारण कर लेती है। उसे पुत्री के विवाह की चिन्ता से नींद भी नहीं आती। उसकी स्थिति घर में भारभूत-सी मालूम होने लगती है और घर के लोग यही चाहते हैं कि शीघ्र ही इसका विवाह कर ससुराल भेज दिया जाय। गवना के गीतों में इस स्थिति का उल्लेख हुआ है। विदा के समय भाई अपनी बहन की पालकी को प्रेमवश पकड़ कर उसे जाने से रोकता है। इस पर उनकी बहन कहती है कि ऐ भाई! मेरी पालकी छोड़ो। मुझे अब ससुराल जाने दो। तुम सात सात नौकरानियों के भार को सह सकते हो परन्तु मेरा अकेला भार नहीं सहन कर सकते।[2]

विवाह के पहिले

''छोड़ु छोड़ु भइया डंडियावा, घरे जाये रे देउ।
सातो उड़िया के भारावा एगो हमरो नाही।''

इन उपर्युक्त पंक्तियों में बहन की अन्तर्वेदना की अभिव्यक्ति कितनी मार्मिक रीति से हुई है।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १४६। २. वही. पृ० १९५।

कोई पुत्री अपने पिता से कहती है कि ऐ पिताजी ! जिसके घर में कुँवारी लड़की पड़ी हुई है वह भला निश्चिन्त कैसे सो सकता है। इतना सुनकर पिता चिन्तित होकर उठता है, बाजार से पंचांग खरीद कर लाता है और पुत्री के विवाह की परेशानियों का ध्यान कर उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है :[1]

"मरिचि के पतवा झलारी हो बाबा,
नगर में सोर होइ जाइ ए।
जेकरा ही घरे बाबा धियवा कुँवारी,
से कइसे सोवे निभेद ए ।
अतना वचन बाबा सुनही न पवले,
उठले दवन झइराइ ए।
पतरा बेसाहि बाबा घरे चले अइले,
नैना झराझरि लोर ए ।"

पुत्री की उक्ति बड़ी तथ्यपूर्ण है। 'जेकरा ही घरे बाबा धियवा कुँवारी से कइसे सोवे निरभेद ए' इन पंक्तियों में उसने भोजपुरी पिता के हृदय की वास्तविक अवस्था का चित्रण किया है।

एक गीत में पुत्री के विवाह की उपमा 'ग्रहण' लगने से दी गई है। पुत्री के पूछने पर पिता कहता है कि :[2]

"चान गरहनवा बेटी साँझ ही लागेला,
सुरुज गरहनवा भिनुसार ए ।
धियवा गरहनवा बेटी मड़वनि लागेला,
कब होनी उगरह होइ ए।"

अर्थात् ए पुत्री ! चन्द्र ग्रहण सन्ध्या (रात्रि) में और सूर्य ग्रहण प्रातः काल (दिन) में लगता है। परन्तु पुत्री रूपी ग्रहण विवाह के मंडप में लगता है जिससे कब मोक्ष मिलेगा इसका मुझे पता नहीं है। एक दूसरे गीत में पुत्री 'परायी वस्तु' कही गई है। गवना के समय पुत्री पिता को सान्त्वता देती हुई कहती है कि आप तो जानते ही थे कि पुत्री दूसरे की चीज़ है अतः अब मैं सुन्दर वर के साथ जा रही हूँ।[3]

"काहे के दूधवा पियवल ए बाबा।
काहे के कइल दुलार ए ।
जानते तु रहल बाबा धियवा परायी,
लगली सुनर बर साथ ए।"

लड़की का विवाह हो जाने पर ही पिता सुख की नींद सोता है। एक गीत में कोई माता कहती है कि ऐ बेटी ! जिस दिन तुम्हारा विवाह हो जायगा उसी दिन तुम्हारे पिता का (चिन्ता के कारण उद्विग्न) हृदय शान्त तथा सन्तुष्ट होगा।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३४। २. वही भाग १ पृ० १५६। ३. वही भाग १ पृ० १५५।

इन उपर्युक्त उल्लेखों से यह स्पष्ट पता चलता है कि विवाह के पहिले घर में कन्या की स्थिति माता पिता को भारभूत मालुक होती है। पुत्री एक धरोहर के रूप में समझी जाती है जिसे विवाह में पिता दूसरे को देकर अपने को निश्चिन्त समझता है।

संभवतः कन्याओं की यह अवस्था चिरकाल से भारतीय समाज में चली आ रही है। महाकवि कालिदास ने शकुन्तला के विदाई के अवसर पर कण्व के मुख मे ऐसे ही शब्द कहलवाये हैं। वे कहते हैं कि :[1]

"अर्थो हि कन्या परकीय एवं
तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः
जातो ममायं विशदः प्रकामं,
प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।"

विवाह के पश्चात् गृहस्थ जीवन में

विवाह के पश्चात् स्त्री गृहस्थ जीवन में प्रवेश करती है। वह पति की सह-धर्मिणी होती है। अतः उसके भी वही कर्तव्य, धर्म और अधिकार होने चाहिएं जो पति के हैं। उसको पुरुष के समान ही आदर और सम्मान प्राप्त होना चाहिए। परन्तु व्यावहारिक जीवन में ऐसी बात नहीं पायी जाती। 'लोक गीतों में प्रेम पद्धति' के प्रकरण में यह दिखलाने का प्रयत्न किया जायगा कि किस प्रकार लोक गीतों में वर्णित प्रेम एकपक्षीय है। जहाँ स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति अगाध प्रेम है वहाँ पुरुष के मानस में प्रेम का एक बिन्दु भी नहीं दिखाई पड़ता। इस प्रकार के व्यवहार के चित्रण समाज में स्त्री के गिरे हुए स्थान के द्योतक हैं।

इन गीतों में बहुधा पुरुष का अधिकार स्त्री के ऊपर पूर्ण रूप से दिखाई पड़ता है। वह जब चाहे उसे दूसरे किसी को दे सकता है अथवा बेच सकता है। एक गीत में स्त्री अपने पति से नम्रता पूर्वक निवेदन करती है कि भैंस को बेच कर चारपाई बनाकर हम दोनों सुख की नींद सोयें। इस पर पति उत्तर देता है कि भैंस के स्थान पर मैं तुम्हीं को बेच दूँगा और उस दाम से बछड़ा खरीद कर उसे रात भर चराऊंगा।[2]

"आरे भइंसी बेचि ए प्रभु चुरवा गहईतीं
हम रउरा सोहतो निरभेद ए।
आरो तोहरा के बेचिए धनि भइंसि लेअइबों,
बछरु चरहबों सारि राति ए।"

कहीं-कहीं स्त्रियों को पीटने का भी वर्णन इन गीतों में मिलता है। कोई कन्या अपनी माता से ससुराल के दुःखों का वर्णन करती हुई कहती है कि अब मैं ससुराल नहीं जाऊँगी क्योंकि वहाँ लात, मुक्का, थप्पड़ खाने को मिलता है, मार पड़ती है परन्तु मायके में मीठी-मीठी बात सुनती हूँ।[3]

---

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् अंक ४ श्लोक २२। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२६। ३. वही पृ० २९३।

"ससुरा में मिलेला लात अवरु मूका,
नइहरवा में मीठी सी बात।
ससुरवा मैं ना जाऊँ हो।"

एक अन्य गीत में स्त्री की हाथ की अँगूठी खो जाने के कारण सास और ननद के द्वारा उसके पीटे जाने का वर्णन पाया जाता है। इतना ही नहीं उसका प्यारा पति भी उसे बबूल के डंडे से जो बड़ा सख्त होता है मार रहा है।[1]

"सासु मोरा मारे ननद मोरा मारे,
संइया मारे रे।
बबूर डंडा तानि तानि,
संइया मारे रे।"

किसी स्त्री की नाक की झुलनी तालाब में गिर गई। बहुत खोजने पर भी वह नहीं मिली। इससे क्रोधित होकर सास उसे तंग करती है, ननद पीटती है और उसका पति मूंगरी (काठ का बना मोटा कुन्दा) से उसे मारता है। स्त्री कहती है कि :

"सासु मारे हुदुका, ननद मारे पटुका
सइयाँ मारे मुंगरी के मारि हो।
तिनपतिया झुलनिया।"

इन उल्लेखों से भोजपुरी समाज में स्त्रियों का जो स्थान है उस पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। परन्तु उससे यह नहीं समझना चाहिए कि भोजपुरी स्त्री सदा ताड़न की ही अधिकारिणी है। यह तो भोजपुरी सामाजिक जीवन का एक विकृत पक्ष हुआ। इसका एक दूसरा पक्ष भी है जो नितान्त उज्ज्वल, दिव्य एवं स्वर्गिक है।

शास्त्रकारों ने स्त्री को 'धर्मपत्नी' की संज्ञा दी है क्योंकि वह सभी धार्मिक कार्यों में सहयोग देती है। भोजपुरी समाज में धार्मिक कृत्यों में स्त्री पुरुष के समान आदर तथा आसन प्राप्त करती हैं। यज्ञोपवीत, विवाह और गवना आदि सभी मंगलमय अवसर पर स्त्री पुरुष के बायीं ओर बैठती है और विविध कृत्यों का सम्पादन करती है। किम्बहुना विवाह के समय पत्नी के बिना पुरुष 'कन्यादान' भी नहीं कर सकता। सत्यनारायण एवं एकादशी की कथा सुनने के लिए पुरुष के साथ स्त्री का बैठना नितान्त आवश्यक है। अग्निहोत्र का कार्य तो स्त्री के बिना करना असम्भव ही है। इस प्रकार स्त्री का धार्मिक कार्यों में पूर्ण अधिकार है।

पारिवारिक जीवन में भी स्त्री का स्थान प्रधान है। वह घर की मालकिन है। अपने पति के प्रेम की पूर्ण अधिकारिणी है। स्त्री और पति का प्रेम आदर्श दिखाई पड़ता है। दाम्पत्य प्रेम का जो रमणीय चित्र इन गीतों में दिखाई पड़ता है वह स्तुत्य है। एक गीत में परदेश से लौटा हुआ पति घर में अपनी स्त्री को न पाकर फूट-फूट कर रोता है। इससे उसके हार्दिक प्रेम का पता लगता है।

---

१. डा० उपाध्याय, भो० ग्रा० गी० भाग १, पृ० ३०६।

हाँ, इतना अवश्य है कि स्त्री के हृदय में अपने पति के लिए जो स्थान है वह पति के हृदय में पत्नी के लिए संभवतः उतना नहीं है।

भाजपुरी स्त्री आर्थिक दृष्टि से पूर्णतया पराधीन है। वह पढ़ी लिखी भी नहीं है। जब उसका पति परदेस चला जाता है तब वह गाँव के मुन्शी (कायस्थ) को अपना सन्देश उससे लिखवा कर भिजवाती है। अतः विशेष

आर्थिक पराधीनता

पढ़ी लिखी न होने के कारण वह अपने जीविकोपार्जन के लिये पति के ऊपर पूर्णतया आश्रित है। जब पति परदेस चला जाता है और अपनी लापरवाही से उसके लिये खर्चा नहीं भेजता तो उसे खाने पीने का भी कष्ट होने लगता है। घर की स्त्रियाँ (सास और ननद) उसे ताना मार कर कहती हैं कि अब तुम किसकी कमाई खाओगी। एक गीत में कोई लम्पट पुरुष किसी स्त्री से पूछता है कि तुम कहाँ जा रही हो। वह उत्तर देती है कि घर में खाने के लिये रुपया नहीं है। तब वह कहता है कि खाने का खर्चा तो मैं दूँगा परन्तु तुम अपने यौवन में मुझे साझी रखो।[1]

"बाट में भेंटे रसिया कवन राम हो,
काहां रे जालु मोर रनिया।
आजु के खरचिया ओराइल बाटे हो,
जोबन बेचे ओइ गलिया।
आजु के खरचिया में चलाइबि हो,
जोबनवा में हम सझिया।"

इससे स्त्री की आर्थिक पराधीनता का स्पष्ट पता चलता है।

वन्ध्या का कष्ट

भोजपुरी समाज में किसी स्त्री का महत्व उसके पुत्रों की संख्या से ही आँका जाता है। जिस स्त्री को जितनी अधिक पुत्र सन्तान होगी उसका आदर घर में उतना ही अधिक होगा। इसीलिये वन्ध्या स्त्री का सम्मान घर में विशेष नहीं होता।

अतः बन्ध्या स्त्री पुत्र प्राप्ति के लिये तरह-तरह का उपाय करती है। वह षष्ठी का व्रत रख कर सूर्य से पुत्र देने की प्रार्थना करती है। शीतला को प्रसन्न कर पुत्र प्राप्ति की भिक्षा माँगती है। अनेक व्रत एवं विधि-विधानों को सम्पादित करती है जिससे उसकी सूनी गोद भर जाय।

इन लोक गीतों में वन्ध्या स्त्री का बड़ा ही सजीव चित्रण मिलता है। पुत्र के बिना उसकी अधीरता, व्याकुलता, आतुरता एवं दीनता जो इन गीतों में चित्रित है सचमुच करुणाजनक है।

स्त्रियों में पुत्र कामना का होना स्वाभाविक है क्योंकि वे जानती हैं कि इसके बिना जीवन निरर्थक है। इसीलिये व्रत, तप एवं पूजापाठ करती हैं। एक सोहर में किसी स्त्री का पुत्र प्राप्ति के लिये गंगा स्नान का उल्लेख पाया जाता है। गंगा जी जब उससे पूछती

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १।

हैं कि तुम क्यों स्नान कर रही हो तब वह उत्तर देती है कि मुझे सन्तति (पुत्र) चाहिए।[1]

"सोनवा ए गंगाजी ढेर बाटे रूपवा के पूछेला हो।
मोरा रे सनततिया के साध, सनतति हम चाहिले हो।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में कोई स्त्री पुत्र के अभाव में अपने भाग्य को कोस रही है।[2]

"ए रानी नाही विधि लिखले लिलार,
संतति नाहि मिलेला हो।"

सोहर के ही एक अन्य गीत में संतानहीनता के लिए भाग्य को कोसा गया है।[3] कोई स्त्री सन्तान प्राप्ति के लिये अनेक तीर्थ स्थानों में यात्रा करती है परन्तु पुत्र न होने पर उसका 'बांझिन' नाम नहीं छूटता। इसी मनोवेदना की अभिव्यंजना नीचे की पंक्ति में बड़ी सुन्दर रीति से हुई है।[4]

"आताना तीरिथि हम कइली,
बांझिनी हम रहि गइली रे।"

कोई स्त्री पुत्र के अभाव में अपने जीवन को निरर्थक बतलाती हुई पश्चाताप कर रही है। वह कहती है।[5]

"लाल पियर ना पहिरलि, चउक ना बइठली हो।
ललना, गोदिया ना खेलवली बालकवा, मोरे जनम अकारथ हो।"

वन्ध्या स्त्री से उसका पति भी प्रसन्न नहीं रहता और वह स्त्री को अपने व्यंग्य बाणों से मारता रहता है। कोई स्त्री अपने देवर से कहती है कि तुम्हारा भाई केवल एक पुत्र के बिना मुझे कटु वचन कहता रहता है।"[6]

"ए बबुआ राउर भइया बोलेले कुबोलिया,
न एक रे बालक बिनु ए राम।"

वह पुत्र प्राप्ति के लिए सूर्य की पूजा करने के लिए घर से चल पड़ती है और अपने प्रयत्न में सफल होती है। छठी माता के एक गीत में कोई पुत्रहीन स्त्री अपनी सास से पुत्र प्राप्ति का उपाय पूछ रही है।[7] कोई स्त्री सूर्य से पाँच पुत्र देने की प्रार्थना कर रही है।[8] पार्वती जी भी पुत्र कामना से षष्ठी व्रत करती हुई पाई जाती हैं।[9] साथ ही एक अन्य स्त्री भी छठी माता से पुत्र माँग रही है।[10] कोई वन्ध्या स्त्री सूर्य से प्रार्थना करती है कि हे भगवान्! मेरी पूजा का आप निरादर क्यों करते हैं। इसीलिये न, कि मैं बांझ हूँ। इस गीत में वन्ध्या की मनोवेदना स्फुट (प्रकट) हो रही है। स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति के लिए शीतला माता की भी पूजा करती हैं परन्तु वे वन्ध्या की पूजा को स्वीकार नहीं करतीं क्योंकि उनका जीवन पुत्र के बिना अपवित्र है।[11] सीता जी भी पुत्र प्राप्ति के लिये रोती

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५८। २. वही पृ० ६२। ३. वही पृ० ६२। ४. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७२। ५. वही पृ० ८२। ६. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३६। ७. वही पृ० २४९। ८. वही पृ० २५३। ९. वही पृ० २५३। १०. वही पृ० २५६। ११. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २५७।

हुई पाई जाती हैं। वह कहती हैं कि मुझे पुत्र नहीं हुआ अतः मेरे जीवन की मनोकामना कैसे पूर्ण होगी।[1]

"राजा मोरा गोदिया ना जनमल बलकवा,
अहकल कइसे पुजिहई हो।"

कोई वन्ध्या स्त्री अपनी पुत्रेच्छा की पूर्ति के लिये किसी दूसरी स्त्री से उसका पुत्र मांगती है। परन्तु वह अपना बालक एक बांझ को देने से स्पष्ट इन्कार कर जाती है।

"ए रानी अपन बालक नाहिं देबो
तोर नइयाँ बझिनियां के हो।"

इस पर वह बांझ स्त्री लकड़ी का निर्जीव बालक बढ़ई से बनवा कर अपनी गोदी में लेकर पुत्र खेलाने की अपनी आन्तरिक इच्छा को सन्तुष्ट करती है।[2]

"ए बढ़इया, काठे के होरिलवा गढ़ि देहु
त जियरा जुड़ाइबि हो।"

इस एक पंक्ति में बन्ध्या की पुत्र कामना अपनी चरम सीमा को पहुँची हुई दिखाई पड़ती है।

सोहर के एक गीत में स्त्री की यह पुत्रेच्छा अपनी सीमा को पार करती हुई दिखाई पड़ती है। बाँझ स्त्री बढ़ई से काठ का बालक बनवाती है और वह काष्ठमयी पुत्र की प्रतिमा से निवेदन करती है तुम रोकर मुझे सुनाओ जिससे बांझ होने का मेरा कलंक मिट जाय। इस पर काठ का बालक कहता है कि यदि मैं भगवान् का बनाया हुआ होता तो रोकर सुनाता भी। हे रानी! बढ़ई का गढ़ा हुआ बालक रोना नहीं जानता।[3]

काठे के बालक गढ़ि दिहले, अँगने धरी दिहलई हो।
बाबुल मोरे आँगन रोई ना सुनावहु, मैं बांझिनी कहावहुँ हो।
रानी बढ़ई के गढ़ल होरिलवा, रोवन नाहीं जानइ हो।
दैव गढ़ल जो मैं होइतों, तो रोइ के सुनउतेउँ हो।"

जांत के एक गीत में बालक के बिना स्त्री के गोद के सूनी होने का उल्लेख पाया जाता है।[4] पुत्र जन्म के एक दूसरे गीत में कोई स्त्री कहती है कि एक गोदी में तो मैंने भाई को लिया और दूसरी में भतीजे को। फिर भी केवल एक बालक के बिना मेरी गोद सूनी मालूम पड़ती है।[5]

"एक कोरा लिहलों मैं भैया, दूसरे कोरा भतीजा नु हो।
अहो रामा तबहू ना गोदिया सोहावन, अपना बालक बिनु हो।"

स्त्री की यह उक्ति सर्वथा सत्य है।

कभी-कभी बन्ध्या को पुत्र के अभाव के कारण सास और ननद के व्यंग्य वाणों के साथ ही मार भी सहनी पड़ती है। गाँव की सभी स्त्रियाँ उसे 'बाँझिन' के नाम से पुकारती हैं। इस व्यवहार से ऊबकर कोई स्त्री कहती है कि मेरे मन

---

१. वही. पृ० २७२। २. भो० लो० गी० पृ० १७। ३. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ७। ४. भो० लो० गी० पृ० १७६। ५. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ९९।

में ऐसा विचार आता है कि मैं विष खाकर मर जाऊँ अथवा आग में जल मरूँ जिससे बाँझ होने का कलंक सदा के लिए मिट जाय।[1]

"अस मन करे मइया जहरवा खाइ मरितों हो।
दुइ मन करे मइया अगिनिया जरि हो जाऊँ।"

पुत्राभाव में स्त्री का रोना तो एक साधारण घटना है। कोई स्त्री देवी से कहती है कि मैं बाँझ होने से रो रही हूँ, आप दया कीजिए।[2]

"कोखिया विरोगे हम रोइला, मइया होई ना देवाल।"

पुत्र के बिना स्त्री का पद-पद पर अनादर होता है। कोई वन्ध्या स्त्री अपने पति को गले का हार बनाने के लिये कहती है। तब वह उत्तर देता है कि तुम काली कलूटी एवं गन्दी हो, हार लेकर क्या करोगी? परन्तु जब एक वर्ष के बाद उस स्त्री को पुत्र रत्न उत्पन्न होता है तब वही पति स्वयं हार बनवाकर पत्नी के लिए लाता है।[3] इसी अपमान की असह्यता के कारण एक स्त्री वन में चले जाने का निश्चय करती है और जोगिनी बनकर जीवन व्यतीत करती है।[4] किम्बहुना, वन्ध्या स्त्री को भक्षण करने से बाघिन भी इन्कार करती है क्योंकि वह समझती है कि बांझ स्त्री को खाने से मैं भी बाझिन हो जाऊँगी। सर्पिणी भी बन्ध्या को डँसने से डरती है कि उसके डँसने से मुझे वन्ध्यत्व की छूत न लग जाय। जगत्धात्री पृथ्वी भी उसे शरण देने से मना करती है। अधिक तो क्या, अपनी प्रेम वत्सला मां भी प्यारी पुत्री को बांझ होने के कारण आश्रय देने से स्पष्ट अस्वीकार कर देती है:[5]

"बाघिन, हमका जो तू खाइ लेतिउ, बिपतिया से छूटित हो।
बांझिन, तुमका जो हम खाइ लेबिं, हमहू बांझिन होइब हो।
नागिनी, हमका जो तुम डसि लेतिउ, विपति से हम छूटित हो।
बांझिन, तुमका जो हम डसि लेबि, हमहू बांझिनी होइब हो।
मइया, हमका जो तुम राखि लेतिउ, विपति से हम छूटित हो।
बिटिया, तुमका जो हम राखि लेबि, हमहू बांझिनी होइब हो।
धरती, तुमही सरन अब देहु, बांझिनी नाम छूटई हो।
बांझिनी तोहंका जो हम राखि लेबि, हमहूँ होईबि ऊसर हो।"

इन उल्लेखों से समाज में वन्ध्या का स्थान और उसके भीषण कष्टों का सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

विधवा की दुर्दशा

भारतीय जन समाज में विधवा का स्थान बड़ा ही दयनीय है। पुरुष अनेक विवाह कर सकता है। परन्तु बाल विधवा भी दूसरा विवाह नहीं कर सकती। पुरुष के स्त्री धर्म पालन के लिए कोई विशेष नियन्त्रण नहीं है परन्तु विधवा की दिनचर्या के लिये बड़े कड़े नियम बनाये गये हैं। विधवा की आर्थिक दशा भी बड़ी दु:खद है। उसे उत्तराधिकार का कोई अधिकार नहीं है। अत: पति की

---

१. भो० लो० गी० भाग पृ० ३५४। २. वही पृ० ३५७। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ८१। ४. भो० लो० गी० ५६। ५. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ११।

मृत्यु के बाद वह पुत्र तथा घर के अन्य कुटुम्बियों की दया पर आश्रित रहती है। यदि विधवा कहीं साथ ही बन्ध्या भी हुई तो फिर उसकी अकथ कहानी है। उसे भरपेट भोजन और वस्त्र के भी लाले पड़ने लगते हैं। कुटुम्बी लोग उसके खाने के लिए भोजन मात्र बड़ी कठिनाई से देते हैं जिसे भोजपुरी में 'खोरिस' कहते हैं। कभी-कभी इस 'खोरिस' को भी लेने के लिए विधवा को कचहरी की शरण लेनी पड़ती है। उसका मुख देखना भी पाप समझा जाता है, वह किसी मंगल कार्य में भाग नहीं ले सकती और न किसी शुभ उत्सव में अग्रणी हो सकती है। इस प्रकार विधवा का जीवन आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से बड़ा ही सोचनीय है जिसका वास्तविक चित्रण हमें लोकगीतों में मिलता है।

कोई बाल विधवा पुत्री अपने पिता से कहती है कि ऐ पिताजी ! मेरी मांग सिन्दूर के अभाव में रो रही है' नयन काजल के बिना रो रहे हैं, क्योंकि विधवा होने से मैं शृङ्गार नहीं कर सकती, मेरी गोदी बालक के बिना रो रही है, और मेरी सेज पति के बिना सूनी मालूम पड़ती है।[1]

"बाबा सिर मोरा रोवेला सेंदुर बिनु,
नयना कजलवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोरा रोवेल बालक बिनु
सेजिया कन्हैया बिनु ए राम।"

इस गीत में विधवा का हृदय फूट-फूट कर रोता दिखाई पड़ रहा है। अन्तिम पंक्ति के प्रत्येक अक्षर से करुणा चुई पड़ती है।

किसी भाई ने बहन को दुःख देने वाले अपने बहनोई की हत्या कर दी है। इस पर बहन अत्यन्त दुःखी होकर भाई से कहती है कि ऐ भइया ! अब मेरी रांड़ विधवा की मड़ई छप्पर को कौन छावेगा। क्योंकि तुमने मेरे पति को मार डाला है और कौन मेरी रात और दिन को बितायेगा। अब मेरी कौन सुध लेगा।[2]

"के मोरा छइहें रांड के मड़ैया,
के मोरा बितइहें दिनवा रतिया हो राम।"

भोजपुरी में एक कहावत प्रचलित है कि 'सबके दिन ओराला लेकिन रांड़ के दिन ना ओराला' अर्थात् सबका दिन किसी प्रकार व्यतीत हो जाता है परन्तु विधवा का दिन किसी प्रकार नहीं कटता। उपर्युक्त गीत में इसी कहावत की पुष्टि की गई है।

कोई स्त्री अपने पति से बंगाल न जाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि वहां का पानी खराब होता है। पीने से वह लग जाता है। यदि वहाँ के पानी लगने से तुम्हारी मृत्यु हो जायगी तो मैं अनाथ हो जाऊंगी।[3]

"पुरुब के पनिया जहर बिख महुरा, लागे करेजवा में घाव।
पनिया पियत सामी जो मरि जइब, हम धनि होइबो अनाथ।"

वास्तव में पति के बिना स्त्री अनाथ समझी जाती है। तुलसीदास जी ने भी

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २११। २. भो० लो० गी० पृ० १०३। ३. भो० लो० गीत पृ० ४५६।

"जिय बिनु देह, नदी बिनु बारी।
तैसहिं नाथ पुरुख बिनु नारी।"

लिखकर इसी उपर्युक्त तथ्य का समर्थन किया है।

कोई विधवा विलाप करती हुई कहती है कि ऐ पति! तुम्हारे बिना मेरा जीवन नष्ट हो गया। मायके में यदि मेरा भाई होता और ससुराल में यदि देवर होता तो मैं उसकी भी आशा करती परन्तु अब मैं किसका अवलम्ब ग्रहण करूँ।[1]

"बिगड़ी प्रभु नाथ, तोहे बिनु हमरी।
नइहर में जो बीरन होइते, उनहू के करितों आस।
ससुरा में जो देवर होइते, उनहू के करितों आस।
दुअरा पर एको खो होखिते तो हम होइती ठाढ़।"

रूपा देवी अटारी पर चढ़कर अपने लम्बे-लम्बे केशों को सँवार रही है। इतने में ही उसकी माता आकर खबर देती है कि ऐ बेटी! अब क्या बाल सँवारती हो तुम्हारा पति गाय की रक्षा करते समय मार डाला गया। इतना सुनते ही हाथ की कंघी हाथ में रह गई और उसके सिर का सिन्दूर नष्ट हो गया।[2]

"का तुहु रूपा बेटी झारेलू लामी केसिया,
तोरा सामी जूझेले गइया के रे गोहारि।
हाथ के रही ककही हाथहिं रहि गइली,
माथा के सेनुरवा दैवा हरले रे जाइ।"

सचमुच विधवा की दशा बड़ी दयनीय होती है। वह अपने शरीर का शृङ्गार नहीं कर सकती, इसी सत्य की ओर उक्त गीत का संकेत है। इसी प्रकार अन्य गीतों में भी वैधव्य का बड़ा करुणाजनक चित्र खींचा गया है।

भोजपुरी समाज में वैधव्य का अभिशाप सबसे बड़ा समझा जाता है। यही कारण है कि स्त्रियाँ जब आपस में झगड़ा करती हैं तो गाली के रूप में विधवा होने का शाप देती हैं। उदाहरण के लिये 'तोहरा मांग में खरी दरों, कोइला दरों, तोहरा घरे दूध लागो' आदि गालियाँ इसी वैधव्य की सूचक हैं। स्त्री का सुहाग उसकी सबसे बड़ी अमूल्य निधि है और विधवापन सर्वश्रेष्ठ अभिशाप। इसी कारण से सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दृष्टि से विधवा को स्त्री समाज में अत्यन्त नीचा स्थान प्राप्त होता है।[3]

आदर्श सतीत्व

लोक गीतों में स्त्रियों का चरित्र बड़ा निर्मल, विशुद्ध एवं पवित्र दिखलाया गया है। विषम परिस्थितियों में पड़कर, आपत्तियों के समूहों का सामना कर, एवं बलशाली कामुकों को चकमा देकर किस प्रकार स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा की है इसकी कथा भारतीय इतिहास की अज्ञात किन्तु अमर कहानी है।

१. भो० लोक गीत पृ० ४६९। २. वही पृ० ४७०। ३. विधवा के शास्त्रीय विवेचन के लिये देखिए डा० कृष्णदेव उपाध्याय 'हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।'

सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने कौन-सा कष्ट नहीं झेला एवं कौन-सा कठोर त्याग नहीं किया। कुसुमादेवी ने प्रत्यक्ष जल-समाधि लेकर आततायी एवं दुराचारी मुगलों के पंजे से अपना पिंड छुड़ा कर अपना सतीत्व बचाया है। इसी प्रकार भगवती देवी ने भी बड़ी चतुराई से दुराचारी कामुकों से अपने सतीत्व की रक्षा की है। धन की अपार राशि उनके सतीत्व को खरीदने में असमर्थ रही है 'डाल भर सोना' और 'मोती के हार' को न ग्रहण कर इन स्त्रियों ने कामुकों का जो तिरस्कार किया है। वह आदर्श स्वरूप है। सच तो यह है कि सतीत्व का यह दिव्य आदर्श जो इन गीतों में चित्रित है संसार के किसी भी देश में ढूंढ़ने पर नहीं मिल सकता।

कोई स्त्री नदी पार करने के लिए मल्लाह से नाव मांगती है परन्तु कामुक मल्लाह कहता है कि मैं तुम्हें दूध पिलाऊँगा, मछली खिलाऊँगा। अतः आज तुम यहीं रहो। इस पर सती स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारी मछली में आग लग जाय और दूध में वज्र पड़े। मैं पार नहीं जाऊँगी :[1]

"आगि लगइबों चाल्हावा मछरिया, बजर परसु तोरा दूध ए।
आरे दुनुकी फुटहु तोरा जांत के करीयवा, नउजी उतारि देबो पार ए।"

प्रोषितपातिका किसी सुन्दरी स्त्री को देखकर कोई बटोही उस पर मोहित हो जाता है और उसे बहुमूल्य सोना, मोती देकर उसके सतीत्व को खरीदना चाहता है। परन्तु वह सती स्त्री क्या ही सुन्दर उत्तर देती है कि तुम्हारे सोने में आग लग जाय और मोतियों में वज्र पड़े। दुनिया में सत छोड़ने से 'पत' नहीं रहती।[2]

"डाल भर सोना लेहु मोतिया से माँग भरु,
जांत छाड़ि मोरे संग लागहु रे की।
आगि लागो सोनवा बजर परो मोतिया रे,
सत छोड़े कइसे पत रहिहे नु रे की।"

इसी प्रकार एक जांत के गीत में एक अश्वारोही कामुक के द्वारा किसी स्त्री को सोना और मोती देने का उल्लेख मिलता है जिसे वह पति परायण स्त्री दृढ़तापूर्वक, तिरस्कार कर अस्वीकार कर देती है।[3]

पुत्र जन्म के एक और गीत में स्त्री की सतीत्व की रक्षा के साथ ही साथ उसका अदम्य साहस एवं अलौकिक पराक्रम भी दिखलाया गया है। नदी के पार जाने के लिए नाव मांगने पर कामुक मल्लाह उससे हार और अँगुठी देने का लालच देकर व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। वह सती स्त्री उसके इस प्रस्ताव को पैरों से ठुकराती हुई नदी को तैर कर पार जाती है। लौटती बार वह अपने भाई को इस दुष्ट मल्लाह की खाल खींचकर उसमें भूसा भर देने का आदेश देती है।[4]

"अगिया लगावऊँ तोरी मुंदरी बजर परे तिलरी।

:o: :o: :o: :o:

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३५। २. भो० लो० गी० पृ० १६५-६६। ३. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३४। ४. त्रिपाठी : ग्राम गी० पृ० ७५-७६।

जाते ही दइया अकेलिन लौटत बिरन संग
केवटा खलवा कढ़ाय भूसा भरतेऊँ, जवन मुख भाखेऊँ ।"

मैना नामक स्त्री पर गोपी नाम का कोई कामुक आसक्त है। वह उसे अनेक प्रकार का प्रलोभन देता है। वह मैना के ससुराल में जोगी का रूप बनाकर पहुँचता है। परन्तु मैना उससे कहती है कि तुम प्रेम की आशा छोड़कर चुल्लू भर पानी में डूब मरो। तुम तो मेरे धर्म के भाई हो।[1]

"तोहरो करमवा के कहों गोपी आसिक,
चुल्लू भरि पनिया में डुबहू रे जी,
आसिक के आस छोड़ि देहू गोपी भइया,
तुहुँ त धरम केरा भइया हू रे जी।"

स्त्री ने प्रेमी को अपना धर्म का भाई बनाकर वाक्‌चातुरी से अपने धर्म को निभाया है।

सुगिया ने सती होकर किस प्रकार दुराचारी संबन्धियों से अपने आदर्श सतीत्व की रक्षा की है इसका उल्लेख 'सती प्रथा' के प्रकरण में अन्यत्र विस्तार से हुआ है।[2]

लचिया नामक किसी सुन्दरी स्त्री पर कोई राजा का लड़का मोहित हो गया है। वह अनेक प्रकार का प्रलोभन उसे देता है परन्तु लचिया का, अपने पति में निश्चल प्रेम टस से मस नहीं होता। वह कहती है कि राजकुमार! तुम मुझे क्या प्रलोभन दे रहे हो। मेरा पति तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है। उसका नया जूता 'मरर मरर' शब्द करता है और उसके पैर की एड़ी दर्पण के समान स्वच्छ है।[3]

"जो हम चली राजा तोहरे गोड़नवा रे ना।
राजा तोरे ले सुन्दर मोर बिअहुवा रे ना।
जे के मरर मरर करे जुतवा रे ना।
जे के एड़िया बरन दरपनवा रे ना।"

इसी गीत में राजकुमार का सम्पूर्ण वैभव, गरीबनी लचिया के घनी प्रेम को नहीं खरीद सका है।

निरवाही के एक गीत में जयसिंह नामक राजा लचिया नामक किसी स्त्री से व्यभिचार का प्रस्ताव करता है। इस पर सती स्त्री लचिया, अपनी कमर से कटार निकाल कर राजा का वध कर देती है[4] और इस प्रकार अपनी सतीत्व की रक्षा करती है। रेशमी नाम की किसी सुन्दरी स्त्री पर कोई कोतवाल आसक्त है और वह उससे पूछता है कि यह अलौकिक रूप सौन्दर्य तुम्हें कैसे मिला। क्या तुम सांचे में ढाली गयी हो अथवा चतुर सोनार ने तुम्हें बनाया है। इस पर शुद्ध आचरण करने वाली रेशमी उत्तर देती है कि ऐ कोतवाल! मैं तुम्हारी दाढ़ी में आग लगा दूँगी। कहीं आदमी को सोनार बनाता है।[5]

---

१. डा० उपाध्याय भो० लो० गी० पृ० १३५। २. वही पृ० २५३। ३. त्रिपाठी: ग्रा० गी० पृ० ३४३, ३४७, ३६१। ४. वही पृ० ३८७। ५. त्रिपाठी: ग्रा० गी० ३६१ ६. वही पृ० ४५६।

"दढ़िया में जारौं भैया तोर कोतवलवा,
मनवेउ का गढ़ेला सोनार बहुअरि रेसमी।"

कोई स्त्री पानी भरने गई है। वहाँ कोई राजपूत उसे देखकर मोहित हो जाता है और उससे प्रेम की बातें करके अपने जाल में फँसाना चाहता है। वह कहता है कि यदि तुम्हारी जैसी स्त्री मुझे मिले तो मैं उसे आँख और हृदय में छिपा कर रखूँ। इस पर वह सती स्त्री उत्तर देती है कि तुम्हारे ऐसे राजपूत को मैं पाती तो उसे नौकर रखती और अपने पति के पाँव की जूती उससे ढोवाती।[1]

"अस राजपुतवा जो पाइत चाकर हम राखित हो।
अपने प्रभुजी के पांय के पनहिया तो तोसे ढोवाइत हो।"

कुसुमा देवी ने किस प्रकार आततायी मुगलों के हाथों से, छलपूर्वक निकल कर, अपने पिता के तालाब में डूबकर, अपने सम्मान एवं सतीत्व की रक्षा की, इसकी कहानी लोकगीतों के इतिहास में सदा अमर रहेगी। कुसुमा देवी का गीत एक लोक गाथा (बैलेड) है जो स्त्री के सतीत्व का दिव्य आदर्श हमारे सामने उपस्थित करता है।[2] अपनी आत्महत्या कर के भी सतीत्व की रक्षा करना भारतीय ललनाओं का ही काम है।

कोई देवर प्रोषित्पतिका अपनी भावज से अनुचित प्रस्ताव करता हुआ पूछता है कि तुम किसके लिये अपने यौवन (स्तन) को सुरक्षित रख रही हो। इस पर भावज उत्तर देती है कि मैं अपने पति के लिए यौवन को, सुरक्षित रख रही हूँ। ऐ देवर! जैसा तुमने अनुचित प्रस्ताव किया है यदि वैसा फिर किया तो तुम्हारी लम्बी-लम्बी बाहों को मैं अपने पति के द्वारा कटवा डालूँगी।[3]

देवर सचिलें जोबानावा हो बलमुआ लागिना।
:o: :o: :o: :o:
अइसन बोली जनि बोलु देवरवा हो, काटाइरे देबो ना।
तोरी अलफी रे बहियाँ, काटाइरे देबो ना।"

प्रेम परायणा पत्नी का यह उत्तर कितना साहसपूर्ण है।

किसी स्त्री का पति बारह वर्ष के बाद परदेस से लौटता है। उसकी बहन अपने भावज के दुश्चरित्र की कथा कहकर उसकी अग्नि परीक्षा कराती है। दु:खिया स्त्री इसके लिए भी तैयार हो जाती है और अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण होकर अपने सतीत्व को प्रमाणित करती है।[4]

इन लोकगीतों में सतीत्व की भावना इतनी सूक्ष्मता को प्राप्त हो गई है कि विवाह के पहले अपने पति से भी स्पृष्ट होना स्त्री पातक समझती है। वह अपने वर से कहती है कि ऐ दुल्हा! अभी तुम मुझे मत छुओ क्योंकि मैं अभी कुँवारी हूँ। जब मेरे पिता जी कन्यादान कर देंगे तभी मैं तुम्हारी स्त्री होऊँगी।[5]

---

१. डा० उपाध्याय भो० लो० गी० पृ० ५६। २. वही पृ० ४२६-४३३। ३. वही भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१७। ४. भो० लो० गी० पृ० १४१-४३। ५. भो० लो० गी० पृ० ३६२।

"जनि छुअ ए दुलहा, जनि छुअ, अबही कुँवारी।
जब मोर बाबा संकलपिहें, तब होइबो तोहारी।"

भोजपुरी समाज में आज भी स्त्रियाँ अपने भावी पति से बात तक नहीं कर सकतीं। उसको छूने अथवा छुये जाने की चर्चा तो बहुत दूर रही। आदर्श सतीत्व की यह कल्पना पशु जगत् में भी आरोपित की गई है। कोई हरिणी अपने हिरन (पति) की खाल कौशिल्या से मांगती हुई कहती है कि मेरे पति को मार कर उसका मांस तो आपके रसोईघर में पकाया जा रहा है परन्तु उसकी खाल हमें दे दीजिए। मृत पति की उस खाल को पेड़ पर टाँग कर मैं अपने मन को सान्त्वना दूँगी :[1]

"पेड़वा से टांगबि खलरिया त मनवा समुझाइबि हो।
रानी हिरि फिरी देखबि खलरिया, जनुक हरिना जीवतहि हो।"

इसी प्रकार एक दूसरे गीत में हिरन की हड्डियों को लेकर हरिणी के सती होने का उल्लेख हुआ है।

जांत के गीत में सतीत्व का स्वर्गीय आदर्श चित्रित हुआ है। कोई परदेसी पति, वेश बदलकर, घर लौट कर, अपने स्त्री को लालच दिखाकर फुसलाना चाहता है। वह उसे प्रचुर धन देता है। परन्तु वह उस धन को अस्वीकार कर जो उत्तर देती है वह भारतीय ललना के सतीत्व की आधार शिला है।[2]

"अगिया लागे गलहार, बजर परे मोती लरी।
तोहरे ले पिया मोर सुन्दर, गुलाब के फूल छड़ी।
कटबो चननवा के गाछि पलंगिया उसाहबि हो।
ताही पर पिया के सुताइबि, बेनिया डोलाइबि हो।
धनि सतवन्ती नारी धर के ज्योति खरी।
झेप बदलि पिय ठाढ़ देखी धनि मुरुछि परी।"

सतीत्व का ऐसा भव्य आदर्श भारतीय ललना की निजी विशेषता है जो अन्यत्र दुर्लभ है।

सती प्रथा:[3]

प्राचीन भारत में सती प्रथा प्रचलित थी जिसका चरम उत्कर्ष भारतीय-इतिहास के राजपूत काल में पाया जाता है। प्राचीन काल में पति के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से अभिभूत होकर स्त्रियाँ प्रियतम के शव के साथ सती हो जाती थीं। सती होते समय वे सौभाग्यवती वधू के समान अपना शृंगार कर अग्नि में प्रवेश करती थीं। राजपूती समय में हँसते-हँसते सैकड़ों स्त्रियों का धधकती हुई ज्वाला में 'जौहर' करना इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित है। कालक्रम से इस प्रथा में कुछ बुराइयाँ आ गईं और स्त्री की इच्छा न रहते हुए भी लोग उसे बलपूर्वक मृत पति के साथ आग में जला देते थे। इसके विरोध में राजा राममोहन राय ने अपनी आवाज उठाकर सती एक्ट पास कराया था।

१. भो० लो० गी० पृ० २६। २. वही पृ० १४७। ३. इस प्रथा के विशेष विवरण के लिये देखिये। (क) डाक्टर अलल्तेकर: दि पोजीशन आफ विमेन इन हिन्दू कल्चर।
(ख) डाक्टर कृष्णदेव उपाध्याय: हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

इसी प्राचीन, सती प्रथा का भी लोक गीतों में वर्णन मिलता है। इन गीतों में सती का जो स्वरूप चित्रित है वह नितान्त भव्य और दिव्य हे। पति की मृत्यु का समाचार सुनते ही स्त्री उसकी चिता सजवाती है और अपना श्रृंगार कर, अग्नि में प्रवेश कर धधकती हुई आग की लपटों के साथ स्वयं भी स्वर्ग को चली जाती है।

जांत के एक गीत में बस्ती सिंह की स्त्री के सती होने का बड़ा सुन्दर उल्लेख मिलता है। बस्तो सिंह को उसके भाई ने मार डाला। इसका समाचार जब उसकी स्त्री सुनती है तब वह उसकी पति की लाश मँगा कर चिता सजाती है। इतने ही में उसकी साड़ी में आग की लपटें निकलने लगती हैं और वह पति के साथ जलकर सती हो जाती है।[1]

"जब लक भसुरु आगि आने गइले,
फुफुती से निकले अँगरवा हू रे जी।
संगहि भइली जरि छरवा हू रे जी।"

इसी प्रकार 'टिकुली' नामक स्त्री भी अपने पति के शव के साथ जलकर सती हो जाती है।[2]

"राम फुफुतनि अगिया धधकली हो राम।
राम दुनो बेकति जरि छारवा भइले हो ना।"

भगवती नामक पति परायणास्त्री के सती होने का बड़ा ही मार्मिक वर्णन जांत के एक गीत में हुआ है। दुष्ट पिता ने उसके पति को मार डाला है। बेटी पिता से अपने पति की लाश मँगवाती है और ईश्वर से प्रार्थना करती है कि हे भगवन्! यदि मैं वास्तव में पति की विवाहित स्त्री होऊँ तो मेरी फुफुती (साड़ी) में आग प्रकट हो जाय। इतना सुनते ही सती के प्रभाव एवं प्रताप से उसके वस्त्र से आग की लपटें निकलने लगती है और वह सती अपने प्राणप्रिय पति के साथ जलकर अमर हो जाती है।[3]

"जऊँ रउरा हई रे बारे के बिअहुआ रे ना।
ए रामा फुफुती से अगिया धधकावहु रे की।
ए रामा फुफुतिनि अगिया धधकवली नु रे की।
ए रामा दुनो रे बेकति जरि गइलनि रे की।"

जांत के एक और गीत में देवर के द्वारा बड़े भाई के मार दिये जाने पर उसकी स्त्री बन-बन में घूम कर के चन्दन की लकड़ी इकट्ठा करती है और चिता तैयार कर मृत पति से कहती है कि यदि आप सत्य ही मेरे 'विवाहित पति हैं तो मेरे आंचर से आग उत्पन्न हो जाय।' पतिव्रता स्त्री के प्रताप से तत्काल ही आग उत्पन्न हो जाती है और दोनों प्राणी चिता में जलकर अमरलोक को प्राप्त हो जाते हैं।[4]

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २४५। २. भो० लो० गी० पृ० ८५। ३. वही. पृ० ६४। ४. वही. पृ० १३३।

"जो रउरा होई सामी सत के बिम्रहुता।
अँचरा अगिनिया उपजाई मोरे राम।
अँचरा भभकि उठल सतिया भसम भइली।"

इसी प्रकार तिलंगिया की स्त्री ने भी अपने पति के साथ सती होकर अपने सतीत्व की रक्षा की है।[१] रूपा नामक स्त्री जब अपना शृंगार कर रही है उसी समय उसके पति की मृत्यु की सूचना उसे मिलती है। वह तत्काल ही सती होने के लिये तैयार हो जाती है। वह अपनी माता से रेशमी वस्त्र माँगती है, भाई से पति की चिता के लिये चन्दन की लकड़ी माँगती है और अपनी भावज से सिन्दूर से भरा 'सिंधौरा' मांगती है। प्रेमवत्सला माँ पुत्री से कहती है कि तुम सुकुमार हो अतः अग्नि की ज्वाला कैसे सहोगी। तुम सती मत होवो। तब पुत्री उत्तर देती है कि ऐ माँ! अग्नि की ज्वाला तुम्हारे लिये भयंकर है परन्तु मेरे लिये यह आग तो वायु के समान शीतल है।[२]

"मचियहिं बइठलि अमा तू मइया हो हमारी।
लहुरा पटोरवा देहु हमरा के दान।
पासावा खेलत चुहु भइया हो हमार।
चनन चइलिया देहु हमरा के दान।
अब द सिन्दोरवा भऊजी हमरा के दान।
एक त पातरि बेटि दूसर सुकुवारि।
कइसे कइसे सहबू बेटी अगिनि के आंचि।
तोहरा लेखे अम्मा हो अगिनि के आँचि।
हमरा लेखे अँचिया बा सितली बतास।"

सती होने के लिए उद्यत स्त्री अपना पूर्ण शृंगार करके चिता में प्रवेश करती है और अपने सिन्होरे, जो उसके सुहाग का सूचक है, को भी जला देती है। इसी पुरातन प्रथा का उल्लेख उक्त गीत में हुआ है। साथ ही सती स्त्री की दृढ़ता प्रशंसनीय है। इसी प्रकार एक जतंसार में उदयी सिंह की स्त्री के सती होने का उल्लेख पाया जाता है।[३] सुगिया नामक स्त्री अपने पति के लम्पट बड़े भाई से अपने सतीत्व की रक्षा करने के लिये पति के साथ अग्नि में प्रवेश कर सती हो जाती है।[४]

सती होने की इस भावना का आरोप पशुओं में भी किया गया है। कोई शिकारी से निवेदन करती है तुम हिरन का खाल भले ही ले लो परन्तु उसके हाड़ हड्डी) को मुझे दे देना जिसे लेकर मैं सती हो जाऊँ।

"हाड़ लेइ सती होइबो, ओहि जमुना के तीर।"

दिव्यः

प्राचीन भारत में दिव्य की प्रथा अत्यन्त अधिक प्रचलित थी। चोरी, कर्ज (ऋण), सीमा निर्णय, भूमि दान, और पशुहरण आदि मामलों में अपराधी का

१. भो० लो० गी० पृ० ४३६। २. वही पृ० ४७१। ३. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ३१०-३१३। ४. वही पृ० ३४१-४५।

निर्णय करने के लिये 'दिव्य' का प्रयोग किया जाता था। जब अपराधी के निर्णय में साक्ष्य, लिखित प्रमाण आदि साधारण साधन असफल हो जाते थे तो साधारण या अलौकिक साधनों से काम लिया जाता था। इन्हीं अलौकिक सावनों के होने के कारण ही इसे 'दिव्य' कहते हैं। नारद ने लिखा है कि जब किसी मुकदमे में साक्षी (गवाह) न मिले तो भिन्न-भिन्न प्रकार के दिव्य और सपथ के द्वारा इसका निर्णय करना चाहिए।[1] कुछ आचार्यों ने दिव्य और शपथ को दो भिन्न वस्तुएँ माना है। उनका मत है कि दिव्य के द्वारा तत्काल निर्णय किया जाता है परन्तु शपथ के द्वारा अधिक समय लगता है। परन्तु व्यास ने दोनों को ही माना है और दिव्य के लिए 'शपथ' शब्द का प्रयोग किया है।[2]

इन लोकगीतों में दिव्य के लिए 'किरिया लेना' शब्द का प्रयोग किया गया है।[3] विष्णु धर्म सूत्र[4] में अलौकिक प्रमाण को 'दैविकी क्रिया' कहा गया है। अतः 'किरिया लेना' शब्द इसी संस्कृति दैवि की क्रिया का अपभ्रंश रूप है। धीरे-धीरे दैवी की शब्द का लोप हो गया और 'क्रिया' शब्द 'किरिया रूप में परिवर्तित हो गया। भोजपुरी में शपथ खाने को 'किरिया लेना' या 'किरिया खाना' कहते हैं। अतः 'किरिया लेना' शपथ अथवा दिव्य के लिये प्रयुक्त होता है। कहीं-कहीं 'किरिया' के लिये 'विचरवा लेना' का प्रयोग भी पाया जाता है।[5] अन्यत्र 'शपथ लेना' का भी उल्लेख उपलब्ध होता है।

शपथ अथवा दिव्य का प्रयोग न्याय संबंधी मामलों में ही नहीं किया जाता था बलिक साधारण परिस्थितियों में अपनी बात को प्रामाणिक सिद्ध करनेके लिए अथवा अपने आचरण की शुद्धता प्रमाणित करने के लिए भी किया जाता था। नारद ने लिखा है कि दिव्य का प्रयोग उस समय भी किया जा सकता है जब किसी स्त्री के सतीत्व में सन्देह हो जाय।[6] नारद के इस कथन से सीता की अग्नि परीक्षा प्रत्यक्ष सामने आ जाती है। नारद ने साधारणतया स्त्रियों के द्वारा 'दिव्य' का प्रयोग निषिद्ध बतलाया है।[7] परन्तु उपर्युक्त विधान केवल विशेष अवस्था में ही है। लोक गीतों में 'दिव्य' का जो उल्लेख पाया जाता है और वह भी केवल उनके सतीत्व की शुद्धता की परीक्षा के लिये। यद्यपि पुरुषों ने भी वैसा ही अपराध किया है परन्तु उनके द्वारा दिव्य प्रयोग का उल्लेख कहीं नहीं पाया जाता। किसी स्त्री का पति परदेस चला गया है वह पत्र भी नहीं भेजता। वह दूसरा विवाह कर वहीं आनन्द लेता है। परन्तु बारह वर्षों के उपरान्त जब वह लौटकर आता है तब वह अपनी स्त्री के आचरण पर सन्देह प्रकट करता है। स्त्री दिव्य प्रयोगों के द्वारा जब अपने को सती प्रमाणित करती है तभी वह उसे ग्रहण करता है। लोक गीतों में दिव्य का जो विधान पाया जाता है वह केवल इसी एक अवसर पर अन्यत्र नहीं। शास्त्रकारों ने लिखा है कि

दिव्य का प्रयोग

१. यदा साक्षी न विद्येत, विवादे वदतां नृणाम्, तदा दीव्यैः परीक्षेत शपथैश्च पृथग्विधैः : नारद ४ : २४७। २. स्मृति चन्द्रिका २ पृष्ठ ९६ में व्यास का उद्धरण। ३. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० २४३। ४. वि० ध० सू० ९:१। ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६७। नारद स्मृति ४:२४२। ७. वही. ४:२५६।

दिव्य का प्रयोग अभियुक्त के द्वारा ही होना चाहिये।[1] परन्तु यदि किसी कारणवश उसके द्वारा नहीं किया जा सकता तो उसके संबंधियों द्वारा होना चाहिए।[2]

विभिन्न व्यक्तियों द्वारा दिव्य प्रयोग

याज्ञवल्क्य ने लिखा है कि तुला दिव्य को स्त्री, नाबालिग, बूढ़ा पुरुष, अन्धा, लँगड़ा, ब्राह्मण और रोगी को देना चाहिये। अग्नि दिव्य क्षत्रिय को, जल दिव्य वैश्य को और विष दिव्य शूद्र को देना चाहिए। नारद ने भी इसी प्रकार बिभिन्न वर्गों के लिए भिन्न-भिन्न दिव्य देने का विधान किया है। नारद ने लिखा है कि व्रती, दुःखिया, तपस्वी आदि को दिव्य नहीं देना चाहिए।[3] मिताक्षरा के अनुसार तुला और कोश दिव्य को स्त्रियों और नाबालिगों को न देना चाहिये। स्त्री के लिए दिव्य का विधान नहीं है और विष दिव्य के लिये तो बिल्कुल ही नहीं।[4] संभवतः इसीलिये लोकगीतों में विष दिव्य का उल्लेख नहीं पाया जाता।

पितामह का मत है कि दिव्य का विधान राजा स्वयं करे अथवा उसके द्वारा नियुक्त न्यायाधीश के द्वारा हो। यह क्रिया विद्वान् ब्राह्मणों एवं जनता के समक्ष होनी चाहिए।[5]

दिव्य लेने का स्थान

वात्यायन ने लिखा है महापातकों के अपराधियों को किसी सुप्रसिद्ध मन्दिर में और धोखे या जालसाजी के अपराधियों को राजद्वार के निकट दिव्य देना चाहिए।[6] अपराधी वर्णशंकर को चौराहे पर और इनसे अतिरिक्त लोगों को न्यायालय में देना चाहिए। अनुचित स्थान में दिया गया दिव्य सफल नहीं होता। लोकगीतों में समस्त जनता के सामने विशेषकर स्त्री के संबंधी भाई एवं पिता के समक्ष दिव्य देने का वर्णन पाया जाता है। एक गीत में चन्दा नामक स्त्री के सतीत्व पर उसके सास, ससुर एवं पति सन्देह करते हैं। तब वह भाई और पिता को बुलाती है एवं ससुराल के सभी लोगों के सामने अग्नि दिव्य को लेती है। वह कहती है कि ऊँचे-ऊंचे स्थान पर मेरी ससुराल के लोग बैठे हुए हैं और मेरा भाई एवं पिता लज्जा के मारे जमीन पर नीचे बैठे हैं :[7]

ऊँचे-ऊँचे बैठे मोरे ससुर के लोगवा रे ना।
रामा खालावा बैठे भैया बाबा रे ना।
बड़ी-बड़ी पागा बान्हे ससुरे के लोगवा रे ना।
रामा भइया बाबा बान्हें अँगउछवा रे ना।
रामा तेही बिच चढ़ी है करहिया रे ना।
रामा तेही ढिग ठाढ़ी सती चन्दा रे ना।

१. न कश्चिदभियोक्तारं दिव्येषु विनियोजयेत्। अभियुक्ताय दातव्यं दिव्य दिव्यविशारदैः कात्यायन स्मृति। असाक्षिप्रणिहिते दिव्यइ। अथवा मित्रैः सज्जनैरात्मानं ना शोधयदेव। अपरार्क पृ० ८४२। ३. या० स्मृ० २:६८। ४. नारद ४:२५६। ५. पराशरमाधव ३:१६४ में पितामह का उद्धरण। ६. या. स्म० २:६६ की मीताक्षरा में कात्यायन का उद्धरण। ७. त्रिपाठी : ग्रा० गीत पृ० ३३२।

इस वर्णन से स्पष्ट ही पता चलता है कि गीतों के समय समस्त जनता के सामने किसी सार्वजनिक स्थान पर स्त्री को दिव्य दिया जाता था जिससे उसके सतीत्व की शुद्धता सबको विदित हो जाय। सीता जी की जो अग्नि परीक्षा राम ने ली थी वह भी सब लोगों के सामने ही हुई थी। एक दूसरे गीत में स्त्री की अग्नि परीक्षा के समय बढ़ई, लोहार, तेली, कोहार, नाई, आदि के उपस्थित रहने का उल्लेख पाया जाता है।[1]

याज्ञवल्क्य[2] और नारद[3] का मत है सब प्रकार का दिव्य प्रधान न्यायाधीश के द्वारा प्रातःकाल सूर्य निकलने के समय अथवा पूर्वाह्न में देना चाहिए। मिताक्षरा के अनुसार रविवार का दिन इसके लिये शुभ एवं उचित दिन है। पितामह का मत है कि जल दिव्य दोपहर को देना चाहिए और विष दिव्य रात्रि के अन्तिम प्रहर में।[4] विभिन्न दिव्यों के लिए भिन्न-भिन्न ऋतुओं एवं मासों को उचित बतलाया गया है। जैसे अग्नि दिव्य वर्षा ऋतु में, तुला दिव्य शिशिर में, जल दिव्य ग्रीष्म में एवं विष दिव्य को शीत ऋतु में देने का विधान है। लोकगीतों में दिव्य देने के लिये अथवा 'किरिया देने के लिये' किसी विशेष ऋतु, मास या दिन का उल्लेख नहीं मिलता। हाँ, एक गीत में त्रयोदशी तिथि का वर्णन अवश्य पाया जाता है। कोई स्त्री कहती है कि आज एकादशी है, कल द्वादशी होगी। अतः मैं परसों त्रयोदशी के दिन 'किरिया' लूँगी।[5]

दिव्य लेने का समय

"आज एकादसिया विहान दुवादसिया।
तेरसि के लेइहैं किरियवा हो राम।"

शास्त्रकारों ने लिखा है कि दिव्य लेने वाले को व्रती होना चाहिए। संभवतः इसीलिए एकादशी और द्वादशी का व्रत रखकर त्रयोदशी को दिव्य लेने का उल्लेख ऊपर के गीत में किया गया है।

स्मृतिकारों ने दिव्य लेने की विधि का बड़ा ही विस्तृत विधान बतलाया है।[6] शास्त्रकारों का मत है कि राजा की आज्ञा लेकर प्रधान न्यायाधीश को समस्त कार्य करना चाहिए। वह स्वयं उपवास रखे और जो दिव्य लेने वाला है उसे भी उपवास रखने का आदेश दे। दोनों को प्रातःकाल स्नान करना चाहिए और शोध्य को अपना गीला कपड़ा ही पहनना चाहिए। तब न्यायाधीश गन्ध, चन्दन एवं पुष्प से पूजाकर देवताओं की स्तुति करे। पुरोहित लोग अग्नि में १०८ बार हवन करें। इसके पश्चात् जिस कार्य के लिए दिव्य किया जा रहा है उसे किसी पत्ते पर लिखकर शोध्य के सिर पर रखकर मन्त्र का उच्चारण करें।[7] लोकगीतों में दिव्य लेते समय किसी विशेष विधि विधान का वर्णन हमें उपलब्ध नहीं होता। एक गीत में दिव्य लेने के पहिले कोई स्त्री सूर्य की प्रार्थना करती हुई कहती

दिव्य लेने की विधि

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २८७। २. या० स्मृ० २:९७। ३. ना० स्मृ० ४:२६८, ३२०। ४. या० स्मृ० २:९७ की टीका में मिताक्षरा का उल्लेख। ५. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २८७। ६. या० स्मृ० २:९७ की टीका मिताक्षरा देखिये। ७. म० भा० आदि पर्व ७४:३०।

है कि हे सूर्य ! यदि मैं सती होऊँ तो तुम मेरी प्रतिष्ठा रखो ।[1]

"हे मोर सुरुज हमार पति राखेउ ।
जो हम होई सतवन्ती हो राम ।"

कहीं-कहीं तेल दिव्य में कड़ाही, तेल, लकड़ी आग आदि लाने का उल्लेख मिलता है ।[2] किरिया लेने के पहिले प्रारम्भिक पूजा अवश्य की जाती होगी परन्तु उसका वर्णन गीतों में उपलब्ध नहीं होता ।

दिव्य के भेद

स्मृतियों में अनेक प्रकार के दिव्य पाये जाते हैं जिनमें तुला दिव्य, अग्नि दिव्य, जल दिव्य, विष दिव्य, कोश दिव्य, तंडुल दिव्य, तप्त माष दिव्य, फाल-दिव्य और धर्म दिव्य प्रसिद्ध है ।[3] तुला दिव्य में अपराधी पुरुष को तराजू में बैठाकर मिट्टी आदि से तोलते थे । यदि किसी अज्ञात कारण से तराजू टूट गई तब वह पुरुष अपराधी समझा जाता था अन्यथा नहीं । अग्नि दिव्य में शोध्य के हाथ में पीपल की पत्तियाँ रख दी जाती थीं और उन पत्तियों के ऊपर एक बड़ा लोहे का लाल जलता हुआ लोहा रख दिया जाता था । यदि शोध्य का हाथ उससे जल गया तो वह अपराधी होता था अन्यथा नहीं । जलदिव्य में कुछ निश्चित काल के लिये शोध्य को जल में डूबाना पड़ता था । यदि उस अवधि के भीतर ही वह जल के ऊपर आ गया तो अपराधी प्रमाणित होता था । विष दिव्य शोध्य को विष पिलाया जाता था यदि उसके शरीर पर विष का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा तब तो वह निर्दोष समझा जाता था अन्यथा अपराधी । कोश दिव्य में भयंकर देवताओं रुद्र, दुर्गा और आदित्य की प्रतिमाओं को जल में स्नान कराकर उसका जल शोध्य को पिलाया जाता था यदि कुछ बुरा असर न हुआ तो वह निर्दोष प्रमाणित होता था । तंडुल दिव्य में चावल शोध्य को खाने के लिए दिया जाता था । उस चावल को चबाने के पश्चात् वह उगलता था । यदि उसमें रुधिर दिखाई पड़ा तो अपराधी सिद्ध होता था । तप्त माष में लोहे, ताँबा अथवा मिट्टी के घड़े में घी को खौलाकर डाल दिया जाता था । पश्चात् उस घड़े में अंगूरी डालकर उस खौलते हुए घी में शोध्य को अँगूठी निकालने को कहा जाता था । यदि निकालने पर हाथ न जले तो दोषरहित समझा जाता था । फालदिव्य में हलके फाल को गर्म करके अपराधी से चटवाया जाता था । यदि उसकी जीभ न जले तो निरपराधी अन्यथा अपराधी समझा जाता था ।

गीतों में दिव्य भेद

लोक गीतों में छः प्रकार के दिव्य का उल्लेख पाया जाता है : (१) अग्नि । (२) आदित्य । (३) गंगा जल । (४) तुलसी । (५) तेल । (६) सर्प । इनमें से आदित्य, तुलसी और सर्प दिव्य बिलकुल नये और मौलिक हैं । गंगा दिव्य जिसे गीतों में 'गंगाविचार' कहा गया है जलदिव्य का ही दूसरा नाम है । गीतों का तैल दिव्य धर्मशास्त्रों के तप्तमाष दिव्य में अन्तर्मुक

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० २८७ । वही. ३. देखिये: डा० काने: हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ३ पृ० ३६६-३७५ ।

किया जा सकता है जिसकी विधि का उल्लेख अभी हो चुका है। सर्प दिव्य को स्मृतिकारों ने घटसर्प दिव्य कहा है।[1] परन्तु इसका विशेष उल्लेख नहीं मिलता। तुलसी दिव्य और आदित्य दिव्य का विधान स्मृतियों में कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। ये लोक गीतों के रचयिताओं के नवीन आविष्कार हैं।

जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, गीतों में दिव्य का अवसर केवल एक ही बार आता है और वह समय है परदेसी पति के घर लौटने का। प्राचीन समय में जब आवागमन के साधन नहीं थे उस समय लोग व्यापार करने के लिये दूर देशों को जाते थे, तब बहुत दिनों के बाद घर लौटते थे। गीतों में बारह वर्षों के सुदीर्घ काल के पश्चात् पुरुषों के घर लौटने का वर्णन मिलता है। इतने दिनों तक उनकी स्त्रियाँ अपने पातिव्रत धर्म का पालन कर सकीं या नहीं इसकी परीक्षा वे करते थे। एक गीत में बारह वर्ष पर पति लौटकर घर आया है।[2] उसकी चुगलखोर बहिन अपनी भावज के आचरण की निन्दा उससे करती है। अतः वह उसके चंगुल में फँस कर उसके सतीत्व की परीक्षा करना चाहता है।

"गोड़वा धोवावत बहिनी लागेले चुगुलिया
भैया भौजी से लेहु किरियवा हो राम।"

स्त्री बढ़ई से प्रार्थना कर लकड़ी, लोहार से कढ़ाई, तेली से तेल, और कोहार से घड़ा मँगाती है। वह आग जलाकर खौलते हुए तेल में, कड़ाही में खड़ी होकर सूर्य से प्रार्थना करती है कि हे भगवान्! यदि मैं पतिव्रता हूँ तो मेरी प्रतिष्ठा की रक्षा करो। देहाती कवि ने इस दृश्य का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है।[3]

"बरि गई अगिया और भभकी करहिया रे।
बहिनो खड़ी किरिया देई हो राम।
हे मोर सुरुज हमार पत राखेऊ।
जौ हम होई सतवन्ती हो राम।
जब बहिनी चलली गंगा किरियवा हो।
तब गगरी गइली झुराई हो राम।
जब बहिनी चलली सुरुज किरियवा हो,
उगल सुरुज गइले छिपाई हो राम।
जब बहिनी गइली अगिनि किरियवा हो,
खौलत तेल जुड़ पनिया हो राम।
एक दाईं डारे दुसर दाईं डारे,
तिसरे उतरि गइ परवा हो राम।"

इस गीत में तेल दिव्य का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है।[4] स्त्री खौलते हुये तेल में हाथ डालती है परन्तु उसके सतीत्व के प्रताप से वह पानी की भाँति शीतल हो जाता है और वह जलती नहीं। स्मृतियों में जलदिव्य के वर्णन में

१. व्यवहारतत्त्व पृ० ५७६। २. त्रिपाठी : ग्राम गीत २८६। ३. दुर्गाशंकर सिंह भो० लो० गी० पृ० १४२-४३। त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० २८७-८८। ४. इसके विशेष वर्णन के लिये देखिये : रिपोर्ट आफ साऊथ इंडियन एपीग्राफी फार १९२ पैरा ६६।

जल के भीतर कुछ देर तक डूबने का विधान बतलाया गया है : परन्तु इस गीत में गंगा जी के शपथ खाने से घड़े के जल के सूखने का उल्लेख है। सूर्य दिव्य में सूर्य की शपथ खाने से सती के प्रताप से उनके डूबने का उल्लेख यहाँ किया गया है।

राम ने जिस प्रकार सीता की अग्नि परीक्षा ली थी उसी प्रकार से कोई राजा अपनी रानी के सतीत्व पर सन्देह करता हुआ उसकी अग्नि परीक्षा ले रहा है। रानी धधकती हुई आग में खड़ी होकर कहती है कि ऐ आग! यदि तुम में 'सत' हो तो मेरी देह न जले :[1]

"जहुँ तुहुँ अगिया सत के होइबू न रे।
आग तिल नाहीं जरे मोर देहिया न रे।
लहकल अगिया जुड़ाइली हो न रे।
अरे ताहि बिच खड़ी सती रनिया न रे।"

लोकगीतों में अग्नि दिव्य की प्रथा ही सबसे प्रधान दीख पड़ती है। इन गीतों में कहीं-कहीं सर्प दिव्य का भी उल्लेख पाया जाता है। इसे स्मृतिकारों ने 'सर्पघटदिव्य' कहा है।[2] इस दिव्य के अनुसार सर्प को घड़े में रख देते थे और उसमें कोई अँगूठी या मुद्रा डाल देते थे। उस मुद्रा को जो शोध्य निकालता था यदि सर्प उसे न काटे तो वह निरपराधी प्रमाणित होता था। कहीं-कहीं घट स्थित सर्प को शोध्य के द्वारा लाठी से मारने का उल्लेख है। सर्प दिव्य की यह प्रथा अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होती है। महामण्ड-लेश्वर कार्तवीर्य चतुर्थ के सन् १२०८ ई० के एक शिलालेख से ज्ञात होता है कि राजा लक्ष्मीधर की रानी चन्द्रिका सती स्त्री थी और उसने घटसर्प दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषिता को सिद्ध किया था।[3]

एक लोक गीत में शिवजी के द्वारा पार्वती के सतीत्व की परीक्षा का वर्णन मिलता है। पार्वती जी गंगा, अग्नि तथा सर्प दिव्य के द्वारा अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करती हैं। जब वह अग्नि में हाथ डालती हैं तब आग ठंडी पड़ जाती है। जब वह गंगा में कूदने जाती हैं तब गंगा जी सूख जाती हैं। जब वे सर्प को हाथ से छूती हैं तो वह काटने के स्थान पर 'गेड़ुरी' मारकर शान्त बैठ जाता है।[4]

"जब रे गऊरा अगिनि हाथ लवली, अगिन गइली निभाई।
जब रे गऊरा गंगा बिचे पइठली, गंगा गइली सुखाई।
जब रे गंगा देई सरप हाथ लवली, सरप बइठले फेटा मारि।"

एक दूसरे गीत में सर्प को हाथ में लेने का उल्लेख मिलता है।[5] इसी गीत में तुलसी की दिव्य का भी वर्णन है। पार्वती ने अपने को निर्दोष सिद्ध करते हुए जब तुलसी को हाथ में उठाया तो तुलसी जी सूख गईं और इस प्रकार उनका सतीत्व प्रमाणित हो गया।

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २५६। २. तत्प्रसिद्धानि सर्पघटादीनि इति स्मृतीतत्वे। व्य० प्र० १८०। ३. भाति श्लाघ्यगुणा पतिव्रततया देवी चिरं चद्रिका। सप्रासा घटसर्पजातविजयं लक्ष्मीधर प्रेयसी। ए. ई. भा० १६ पृ० २४६। ४. दुर्गाशंकर सिंह भो० लो० गी० पृ० २७८। ५. वही पृ० ३११।

इन्हीं विभिन्न दिव्यों की आवृत्ति भिन्न-भिन्न गीतों में भी की गई है। इन दिव्यों के उल्लेख से हमें भारतीय नारी के अलौकिक सतीत्व का परिचय मिलता है। अपने पातिव्रत धर्म को प्रमाणित करने के लिये हँसते हुये आग में कूद पड़ना भारतीय ललना का ही काम है।[1]

पारिवारिक जीवन के चित्र :

लोक गीतों में पारिवारिक सम्बन्ध का बड़ा ही सच्चा चित्रण पाया जाता है। कहीं भाई और बहन का स्वाभाविक एवं शुद्ध प्रेम दिखाई पड़ता है तो कहीं माता और पुत्री का सहज स्नेह। कहीं पति और पत्नी की शाश्वतिक प्रीति का वर्णन है तो कहीं पिता पुत्र के अकृत्रिम स्नेह का। इसके साथ ही कुछ अन्य सम्बन्ध भी दिखलाये गये हैं जो अपने शाश्वतिक विरोध एवं अनिचित लगाव के कारण सुन्दर प्रतीत नहीं होते। इन समस्त सम्बन्धों का विश्लेषण कर हम इन्हें दो श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं (क) रुचिकर सम्बन्ध और (ख) अरुचिकर सम्बन्ध। रुचिकर सम्बन्ध वह है जिसका परिणाम सुन्दर और शोभन है। अरुचिकर सम्बन्धों का फल अन्त में अच्छा नहीं दिखाई पड़ता है। वर्णन की सुविधा के लिये इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है।

(क) रुचिकर सम्बन्ध

१. माता और पुत्र।
२. माता और पुत्री।
३. भाई और बहन।
४, पति और पत्नी।

(ख) अरुचिकर सम्बन्ध

५. सास और पतोहू।
६. ननद और भावज।
७. देवर और भावज।
८. ससुर और भवहि।
९. ससुर और पतोहू।
१०. सौत और सौत।

क. रुचिकर सम्बन्ध

१. माता और पुत्र

पुत्र के जन्म के अवसर पर माता को कितनी प्रसन्नता हुआ करती है इसका विस्तृत विवेचन 'सोहर' के प्रसंग में पहले किया जा चुका है। पुत्र घर का प्रकाश माना जाता है। ऐसी दशा में पुत्र के ऊपर माता का प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक है। यह ध्यान देने की बात है कि लोकगीतों में पिता पुत्र की चर्चा बहुत ही कम पाई जाती है। परन्तु पुत्र के प्रति मातृ स्नेह के प्रसंग भरे पड़े हैं। शीलता माता के गीतों में पुत्र के प्रति माता का प्रेम उमड़ता हुआ दिखलाई पड़ता है।

पुत्र के चेचक से पीड़ित होने पर उसकी माता व्याकुल होकर शीतला देवी का आवाहन करती है और उनसे भिक्षा के रूप में पुत्र का जीवन मांगती है।[2]

"आंचरा पसारि भीखि मांगेले बालकवा के माई, हमरा के बालकवा भीखी दीं।
मोरी दुलारी हो मइया, हमरा के बालकवा भीखी दीं।"

---

१. 'दिव्य' के विशेष वर्णन के लिए देखिए : डा० काने : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र भाग ३ पृ० ३६१-३७८। डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६०।

परन्तु जब शीतला माता के आने में विलम्ब होता है तब आतुरता के साथ वह राही से पूछती है कि क्या तुमने शीतला माता को आते हुए देखा है।[१] शीतला के प्रकोप से पीड़ित बालक के कष्ट को देखकर माता का हृदय पिघल उठता है और वह दुःखी होकर शीतला माता से निवेदन करती है कि :[२]

"मइया दाया ना करों।"

कौशिल्या का राम के साथ अनन्य प्रेम तो प्रसिद्ध ही है जिसे आदि कवि ने आदर्श रूप में चित्रित किया है। उस अलौकिक मातृ प्रेम की झांकी इन गीतों में भी मिलती है। राम बन जाने के लिए तैयार हैं। वह माता के पास आज्ञा मांगने आते हैं। परन्तु पुत्रवत्सला कौशिल्या कहती है कि राम तो मेरे हृदय में एवं लक्ष्मण आंख की पुतली हैं। अतः बन जाने के लिए मैं कैसे कहूँ।[३]

"राम त मोर करेजवा, लखन मोरी पुतरिअ हो।
अरे रामा, सीता रानी केरा चुरिया मैं कइसे बन भाखों हो।

माता की ममता ने इस सोहर में मूर्तिमान रूप प्राप्त किया है। वनवासी राम को भोजन कराने के लिए माता कौशिल्या घी कि पूड़ी और दूध का बना हुआ खीर लेकर वन को निकल पड़ती है। वह लता एवं वृक्षों से राम का पता पूछती है। कितना मार्मिक दृश्य है।[४]

"घियवा के काढ़ेली सोहरिया,
त दुधवा के जाउरि कइली हो।
लिहेली आंचर तर ढांकि,
रमइया हेरइ निकसेली हो।"

राम के बन जाते समय कौशिल्या को जो हार्दिक दुःख हुआ उसकी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में बड़ी सुन्दर हुई है।[५]

"आछा काम ना कइलू ए कैकेयी
आछा काम ना कइलू।
हमार बसल भवनवा उजरलू ए कैकेयी
आछा काम ना कइलू।"

देहात में एक कहावत प्रसिद्ध है कि :

"माता निहारे...कि जइया निहारे पोटरी।"

अर्थात् माता तो पुत्र का मुख देखती है कि कहीं दुःख के कारण वह मलीन तो नहीं हुआ है परन्तु स्त्री पोटरी अर्थात् रुपए की गठरी खोजती है। इससे भी माता की ममता स्पष्ट झलकती है।

लोक गीतों में पिता पुत्र का उल्लेख कम मिलता है। एक स्थान पर विवाह के लिए जाने वाला पुत्र अपनी माता से कहता है कि मैं तो पिता जी का आज्ञाकारी सेवक बनूंगा और मेरी स्त्री तुम्हारी दासी बनेगी।[६]

पिता पुत्र

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २६२। २. वही. २७४। ३. दु० शं० सिं० भो० लोक गीत पृ० २१। ४. वही. पृ० ७१। ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३७२। ६. वही पृ० १४०।

"हम तो होइबो ए आमा बाप के सेवइन,
धनि होइहैं दासी तोहार ए।"

आदर्श पुत्र की चर्चा करते हुए एक गीत में कहा गया है कि पुत्र तो वही है जो पिता की सेवा करे।[१] नहीं तो दुष्ट पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ।

"पूत त वो है जो पिताजी का सेवै,
नाहीं तो पाजी के जनमें से का भा।"

उपनिषदों में भी 'मातृ देवो भव", पितृ देवो भव' का उपदेश दिया गया है। सच्चे पुत्र की उपर्युक्त कल्पना उपनिषद् की इस आज्ञा से पूर्णतया सामंजस्य प्राप्त करती है।

२. माता और पुत्री

यद्यपि माता का स्नेह पुत्र के प्रति अगाध होता है परन्तु पुत्री के प्रति भी उसका प्रेम कुछ कम नहीं होता। लोकगीतों में माता का पुत्री प्रेम पुत्र प्रेम से बहुत आगे बढ़ा हुआ है। पुत्री के पैदा होने में, उसके विवाह में कितना ही कष्ट क्यों न हो, मां का प्रेम से परिपूर्ण हृदय इसकी परवाह नहीं करता और वह पुत्री को उसी ममता की दृष्टि से देखती है जिससे अपने पुत्र को।

गवना के गीतों में पुत्री के विदा होते समय माता का पुत्री के प्रति प्रगाढ़ प्रेम स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। उस समय उसके स्नेह का फौवारा फूटता हुआ दृष्टिगोचर होता है। विदाई के समय पुत्री के लिए माता की व्याकुलता और उसके वियोग में अनवरत रोदन करने की चर्चा 'गवना' के गीतों के प्रसंग में की जा चुकी है। पुत्री जब ससुराल चली जाती है तब माता सदा इसका ध्यान रखती है कि वह सुखपूर्वक वहाँ रहे और उसे किसी प्रकार का कष्ट न हो। वह दासी से अपनी समधिन के पास सन्देश भिजवाती है कि मेरी प्यारी पुत्री को मारना मत और इसे गाली भी न देना। जब मेरी बच्ची कच्ची नींद में सो रही हो तब उसे मत जगाना।[२] इस सन्देश में माता की कितनी गहरी ममता छिपी पड़ी है।

बहन को ससुराल भेजकर जब भाई लौटकर घर आता है तब माता उससे पूछती है कि तुम मेरी पुत्री को कहाँ छोड़ आये। इस पर पुत्र कहता है कि माँ! जिसकी वह थी वही उसे लिये जा रहा है:[३]

"अरे काहां छोड़ल काहां ए बबुआ, बाचावा रे हमारी।
आरे जेकर बाचावा ए आमा, से हो लेले जाई॥"

पुत्री को जब ससुराल में कष्ट होता है, उसका वहाँ जी नहीं लगता तब वह माता के अतिरिक्त किसी से भी अपना दुःख नहीं कहती और उससे मायके बुलाने के लिए बार-बार प्रार्थना करती है। एक गीत में कोई लड़की सावन मास होने के कारण मायके बुलाने के लिए अपनी माता से आग्रह करती है। तब वह अपनी विवशता प्रकट करती हुई अगले वर्ष उसे बुलाने का आश्वासन देती है।[४]

---

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ४८२। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६०। ३. वही पृ० १६६। ४. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४२३।

"बबली तो जोगिया हो गये, बाबुल है निरमोही।
भैया तोहारे बेटी चकरी गये, परु को मैं लेबि बुलाय।"

भाई बहन के पास ससुराल गया है। माता को आशा है कि मेरा बेटा मेरी पुत्री को लेकर लौटेगा। अतः वह कोठे के सबसे ऊँचे भाग पर चढ़ कर अपनी पुत्री के आने की राह देख रही है। भाई लौट आया परन्तु बहन के बिना ही। इस पर क्रुद्ध होकर माता कहती है कि ऐ पुत्र ! तुम तो बड़े कपूत निकले जो रोती हुई बहन को छोड़ कर चले आये। जो मेरे पति होते तो उसे हँसते खेलते घर लाते।[1]

"ऊँचवा चढ़ि-चढ़ि माता निरेखै,
मोरी धिया धौं केती दूरि रे।"

:o: :o: :o: :::

पूत हो तुम भयउ कपूते, रोअत बहिनि आये छाड़ि रे।
जो मेरी धेरिया के बाबुल होते, हंसत खेलत लेइ अवते रे।"

पार्वती अपने ससुराल के कष्टों का निवेदन माता से करती हुई कहती है कि ए माता ! भाँग पीसते-पीसते मेरा हाथ घिस गया और धतूर मलते-मलते हृदय व्याकुल हो गया।[2]

"भँगिया पीसत ए आमा, हाथवा खिअइले,
धतूरा मलत ए आमा जियरा अकुलइलें।"

भाई बहन के पास गया है। वह अपने दुःखों की लम्बी कहानी भाई को सुनाती है और कहती है कि ऐ भाई ! इस दुःख को मेरी माता से मत कहना। नहीं तो मेरे दुखों को सुनकर मेरे प्रेम के कारण उसकी छाती फट जायगी।[3]

"इ दुःख जनि कहिय भइया माई के अगवा हो ना।
माई छतिया बिहरि मरि जइहें हो ना।"

इस प्रकार इन गीतों में माता और पुत्री का प्रगाढ़ प्रेम भरा पड़ा है। माता पुत्री के लिए जितनी व्याकुल है, पुत्री भी माता को उतना ही प्यार करती है। माता पुत्री के इसी अविचल प्रेम में भारतीय संस्कृति का सच्चा रूप हमें दिखाई पड़ता है।

३. भाई और बहन

भाई और बहन के प्रेम का भी दिव्य रूप हमें इन गीतों में देखने को मिलता है। सच तो यह है कि माता और पुत्री के विशुद्ध प्रेम के अनन्तर भाई और बहन का ही प्रेम आदर्श स्वरूप कहा जा सकता है। बहन के हृदय में अपने भाई के प्रति अगाध प्रेम भरा पड़ा है और भाई भी बहन को प्राणों से अधिक प्यार करता है।

'गवना' के गीतों में बहन की विदाई के अवसर पर भाई के करुण क्रन्दन से पैर तक की धोती भींगने का उल्लेख किया जा चुका है।[4] एक सोहर में बहन अपनी भावज के द्वारा दिये गये कष्टों का उल्लेख अपने भाई से करती है। बहन के इन दुःखों को सुनकर

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४१५। २. दु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० ३०७। ३. वही पृ० ४४५। ४. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १९९।

भाई इतना रोता है कि उसका सारा वस्त्र भींग जाता है। वह बहन की बिदाई के समय उसकी पालकी को रोक कर उसके पहिनने के लिये रेशमी वस्त्र और 'खोंइछा' में सोने की मुहर देता है :[1]

"त भइया के रोग्रले पटुक भीजे, बहिनी जमुन दहे हो।
ए बहिनी तनि एक डड़िया बेलमाव, जलदि चलि आइबि हो।

:o: :o: :o: :o:

ए बहिनी खोलि द तू फटही लुगरिया, बनउर केरा 'खोंइछ' हो।
ए बहिनी पहरहु लंहगा पटोरवा, मोहर भरि 'खोंइछ, हो।"

इस गीत में जहाँ भावज की दुष्टता दिखाई पड़ती है वहाँ भाई का स्वाभाविक प्रेम का पारावार हिलोरें मारता दृष्टिगोचर होता है। रोपनी के एक गीत में भाई के द्वारा बहन के ससुराल के कष्टों को सुनकर दुःख प्रकट करने का उल्लेख हुआ है। भाई कहता है कि मैंने चन्द्रमा और सूर्य के समान सुन्दरी अपनी बहन को विवाह में दिया है परन्तु वह ससुराल के कष्टों के कारण जलकर कोयला हो गई है :[2]

"चाँद सुरुज अस बहिनी संकल्प्यों हो ना।
बहिनी जरि जरि भइली कोइलिया हो ना।"

इस गीत के नीचे की पंक्ति में भाई के बहन के प्रति प्रेम की गहरी अभिव्यंजना हुई है। भाई बहन का सन्देशवाहक है। वह उसके दुःखों को जाकर माता से कहता है और माता अपनी पुत्री को ससुराल से बुला लेती है। भाई बहन के दुःखों को प्रकट करने का माध्यम है। वह उसका बल और सम्बल है। बहन को जहाँ सहायता की आवश्यकता होती है, किसी वस्तु की जरूरत होती है, ऐसी स्थिति में भाई ही काम आता है। बहन के दुःखिया जीवन में माता और भाई ही उसके अवलम्ब हैं। ये ऐसे ध्रुव तारा हैं जिनकी ओर बहन निश्चिन्तता के साथ देखा करती है।

यद्यपि बहन और भाई का प्रेम अत्यन्त विशुद्ध है परन्तु दोनों की तुलना में बहन के प्रेम का पलरा नीचे झुक जाता है। बहन के प्रखर प्रेम की धारा में भाई का प्रेम बहता हुआ दिखाई पड़ता है। भाई के ऊपर जब विपत्ति पड़ती है तब उसकी स्त्री भी ससुराल में उसे आश्रय नहीं देती। ऐसी दशा में वह बहन का ही अवलम्ब प्राप्त करता है। जीवन की विषम परिस्थितियों में, गाढ़े दिनों में बहन ही काम आती है। बहन के घर भाई के आने पर हृदय में आनन्द की जो सरिता उमड़ पड़ती है उसका वर्णन कठिन है। उस दिन बहन के ससुराल के नीरस जीवन में सरसता एवं आनन्द का प्रादुर्भाव हो जाता है। वह फूले नहीं समाती। उसके पैर जमीन पर नहीं पड़ते। वह भाई के लिए सुन्दर-सुन्दर पकवान बनाती है और बड़े प्रेम से भोजन कराती है। रोपनी के नीचे लिखे गीत में भाई के प्रति बहन के अलौकिक प्रेम को देखिये।

भाई बहन के यहाँ आया है। इस समय वह अपनी सास से पूछती है कि मैं अपने भाई के लिए क्या भोजन तैयार करूँ। दुष्टा सास कोदो का भात और मसउड़ा का साग बनाने को कहती है। इस पर बहन क्रोधित होकर सास से कहती है कि

१. भो० लो० गी० पृ० ५६-६० । २. भो० लो० गी० पृ० ४४५ ।

तुम्हारे सड़े हुए कोदो में आग लग जाय और मसउढ़ के साग में बज्र पड़े। मैं तो अपने भाई के लिए महीन आटे की पूड़ी बनाऊँगी, पालक का साग खेत में से ले आऊँगी और मूँग की दाल बनाकर सोने की थाल में सरोसकर भाई को खिलाऊँगी[1] तथा उसमें घी की धारा छोड़ूँगी।

"अटवा जे चालि चालि लुचई पकवली हो ना।
बहुअरि खोंटि लिहली पलकी के सगवा हो ना।।
बहुअरि रीन्ही लिहली मुँगिया के दलिया हो ना।
सोने के थरियवा में जेवना परोसली हो ना।
रामा ऊपर से तातल घीव धारवा हो ना।"

भाई का आगमन बहन के लिये उत्सव का अवसर होता है। विवाह के इस गीत में बहन का आनन्द सागर लहराता दिखाई पड़ता है। वह गाने का पेशा करने वाली भाटिन और जोगन से कहती है कि आज तुम लोग गीत गाओ, आज मेरा भाई आया है। अतः मेरे हृदय में बहुत आनन्द हुआ है। ऐ सास! तुम भाई के भोजन के लिए कढ़ाई चढ़ाओ। भाई के आने से मेरा हृदय आनन्दित हो उठा है :[2]

"आरे आरे जोगिन भांटिन सब कोई गावहु हो।
मोरा जियरा भइल बा हुलास, बीरन मोर आवेले हो।"
आरे आरे सासु गोसाईं, करहिया चढ़ावहु हो।
आजु मोरा जियरा हिलोरे, बीरन मोर आवेले हो।"

इस गीत में 'मोरा जियरा भइल बा हुलास' और 'आजू मोर जियरा हिलोरे' आदि पंक्तियों में बहन के हृदय का आनन्द हिलोरें मार रहा है। एक दूसरे गीत में भाई का आगमन बड़ी सुन्दर रीति से वर्णित है। गाँव की कोई स्त्री पूछती है आज कौन आया है। इस पर बहन अत्यन्त प्रसन्न होकर उत्तर देती है कि आज मेरा सूबेदार आया है, आज मेरा भाई आया है।

"कहेली कवन बहिनी हुलसी के ना।
आजु मोर भइया अइले हा
आजु मोर हवलदार अइले हा।
आजु मोर सुबिदार अइले हा।
आजु मोर भइया अइले हा।"

इस गीत में 'मोर भइया अइले हा' इस पद की पुनरावृत्ति से ही पता चलता है कि बहन के हृदय में प्रेम का कितना आधिक्य है।

सास और ननद बहू को ताना मारती हैं कि तुम्हारे मायके वाले तुम्हें नहीं पूछते तो तुम्हारा भाई क्यों नहीं आता। पतोहू उत्तर देती है कि मेरा भाई अवश्य आयेगा। इतने ही में भाई बँहगी पर सामान लिये और घड़े में घी लिये आता दिखाई पड़ता है। भाई से मिलने के लिए आतुर बहन इस प्रकार उसके पास दौड़ती है जिस प्रकार गाय अपने बछड़े के लिये दौड़ती है :[3]

१. भो० लो० गी० पृ० ४४४। २. वही पृ० ४०६। ३. भो० लोक गीत पृ० ५२।

"आगे आगे आवे बहँगिया, पाछू घीव गागर हो।
ओहि पाछे भइया असवरवा, बहिनी के देश जाले हो।
जइसे दउरे गइया त अपना बछरुआ खातिर हो।
ओइसे दउरली बहिनियाँ त अपना भइयवा खातिर हो।"

यहाँ भाई और बहन के प्रेम की तुलना माता और पुत्र के प्रेम से की गई है। सचमुच माता पुत्र का स्नेह जितना अकृत्रिम और विशुद्ध होता है उससे कम भाई बहन का प्रेम नहीं होता। उपर्युक्त गीत की अंतिम पंक्ति में बहन का प्रेम उमड़ा पड़ता है।

स्त्री के कटु वाक्य कहने के कारण कोई पति संसार से उदासीन होकर जोगी बन जाता है। वह घूमता फिरता अनजान में अपनी बहन की ससुराल में पहुँच जाता है और दासी से भिक्षा मांगता है। संयोग से भिक्षा देने के लिये उसकी बहन ही चली आती है और जोगी के रूप में अपने भाई को देखकर आश्चर्यचकित हो जाती है। वह भाई की दशा को देखकर रोने लगती है। और कहती है कि ऐ भाई ! अब सारंगी और गुदड़ी को छोड़ दो और मेरे घर रहकर यहीं धूनी रमाओ। कहीं अन्यत्र मत जाओ :[1]

"रोवैली बहिनी पटोरवे पोंछि लोरवा,
आरे ई त हउएँ बीरना हमार, ए यदुबंसी।"
आरे ई त हउएँ बीरना हमार, ए यदुबंसी।"

:o: :o: :o: :o:

छाड़ि देहु भइया हो सरंगी गुदड़िया,
आरे हमरी दुअरिया धुनिया रमाव ए यदुबंसी।"

बहन का भ्रातृ स्नेह सक्रिय वस्तु है। दासी के द्वारा जब उसे समाचार मिलता है कि मेरा भाई आ रहा है तब वह अत्यन्त उत्कंठित हो उठती है। वह कोठे पर चढ़कर खिड़की से भाई को बेला के फूल के नीचे खड़ा देखती है। वह सास से चादर मांग कर भाई से मिलने के लिए चल पड़ती है :[2]

"खिरकी से बहिनी जे चितवै, वीरन बेइलि नीचे ठाढ़।
देहु न सासु मोरी अपनी चदरिया, बीरन मिलन हम जाइबि।"

राजा गोपीजन्द जब संसार को छोड़ कर जोगी हो जाते हैं तब उनकी माता कहती हैं कि बेटा ! अपनी बहन के पास मत जाना। परन्तु वे उत्तर देते हैं कि और कहीं भले न जाऊँ परन्तु बहन के यहाँ अवश्य जाऊँगा। गोपीचन्द जोगी के भेष में बहन के घर जाकर जब उसकी दासी से भिक्षा माँगते हैं तब वह उनका तिरस्कार करती है। परन्तु जब वे अपने माता पिता का नाम बतलाते हैं और बहन उसे सुन लेती है तब वह दौड़ती हुई भाई के सत्कार के लिए आती है सोने की थाली में उनका पैर धोती है और आरावा चावल एवं अरहर की दाल बनाकर स्वादिष्ट भोजन कराती है :[3]

"आताना वचन बहिना सुनही ना पवली,
सोने के थरियवा गोड़वा धोवेली हो राम।

---

१. भो० लो० गीत पृ० १३६-४०। त्रिपाठी : ग्रा० गीत पृ० २८४। २. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ४२६। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० २४०।

आरावा चउरवा अवरु रहरी के दलिया,
अमृत भोजन करवली हो राम।''

सभी भाइयों में बराबर प्रेम होने पर छोटे भाई में बहन का संभवत: विशेष प्रेम होता है एक गीत में बहन अपने बड़े भाई की अपेक्षा छोटे भाई का अपने घर आना अधिक पसन्द करती है।[1]

''माई लहुरा भइयवा मोंहि पठयेऊ सावन नियर।''

भोजपुरी में एक कहावत है कि 'भाई अवरु केहुनी के घाव ना सहाला' अर्थात् भाई का दु:ख और केहुनी (हाथ का जोड़ वाला मध्य भाग) की चोट मार्मिक होता है। केहुनी में चोट पहुँचने पर जितनी हृदय भेदी पीड़ा होती है वैसे ही भाई का कष्ट बहन के लिए परम असह्य होता है। इसी एक कहावत में बहन की भातृप्रेम की सारी 'फिलासफी, छिपी पड़ी है। सचमुच इन गीतों में वर्णित भाई बहन का प्रेम दिव्य एवं स्वर्गीय है।

४. पति और पत्नी

पति और पत्नी का सम्बन्ध भारतीय विश्वास में अटूट माना जाता है। भारत में विवाह संबंधी सामाजिक ठेका (सोशल कान्ट्रैक्ट) नहीं बल्कि धार्मिक कृत्य है। अत: पति पत्नी का संबंध अविच्छेद्य है। लोक गीतों में पति और पत्नी के संबंध का चित्रण बड़ा ही सुन्दर हुआ है। इन गीतों में आदर्श गृहस्थी का चित्रण हमें देखने को मिलता है। पति पत्नी सुख से घर में निर्वाह करते हैं। आधुनिक जीवन की विषमता का वहाँ प्रवेश नहीं है।

दाम्पत्य जीवन की मधुमय झाँकी झूमर के एक गीत में हमें देखने को मिलती है।[2] पति पत्नी का प्रेम वर्णन भी कई गीतों में सुन्दर रीति से किया गया है।[3] पति के वियोग को न सह सकने वाली स्त्री, परदेश जाने के लिए उद्यत अपने पति को रोकने के लिये इन्द्रदेव से प्रार्थना करती है कि हे देव ! बरसो। एक प्रहर रात से ही बरसो जिससे पति के प्रस्थान करने का समय टल जाय और वह परदेस न जाय।[4]

''बरसहु ए देव ! आरे घरी रे पहर राती।
आरे पिया के पयेतवा घरे बेलमावहु रे की।''

इस गीत में स्त्री का पति प्रेम स्पष्ट झलक रहा है। किसी स्त्री का किसान पति खेती के कामों में इतना व्यस्त रहता है कि खेत में छोड़कर घर में सोने का कोई अवसर ही नहीं आता। स्त्री कोल्हू के बैल से प्रार्थना करती है कि तुम जुआठ (काष्ठ दंड) को तोड़कर घर चले आवो। इससे मेरे पति के सिर में चोट लगेगी। तब वह अपने चोट की दवा कराने के लिए अवश्य घर आवेगा और तब उससे भेंट होगी।[5]

'' गोड़ तोरा लागीले सोरही के बछवा,
जुअठिया तुरि घरवा आव हो राम।

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ५०। २. डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० ३०८। ३. वही पृ० ३११। ४. वही पृ० ३२१। ५. भो० लोक गीत पृ० १६४।

जुग्रठिया नु टुटले कपरो नु फुटले,
घइया लठावे घरवा अइले हो राम।"

हिन्दी के एक कवि ने भी इसी भाव की एक बड़ी सुन्दर कविता कही है।

"आगि लागि घर जरिगा, बड़ सुख कीन।
पियके बाँह धरिलवा भरि भरि दीन।"

पति पत्नी के अनन्य साहचर्य एवं प्रेम का वर्णन भजन के एक गीत में पाया जाता है।[१]

कोई पति व्यापार के लिए परदेस जाने के लिये तैयार है इस पर उसकी स्त्री भी साथ चलने का आग्रह करती है। पति मार्ग के कष्टों का वर्णन करता है परन्तु वह कहती है कि मैं सभी कष्टों को सह लूँगी। ऐ प्रिय मैं तुम्हारे साथ जोगिन बन जाऊँगी।[२]

"भूख मैं सहबों पियास मैं सहबों,
पान डारवि बिसराई।
तोहरे साथ पिया जोगिन होइबै,
ना संग बाप ना भाई।'

सीता जी को राम के बिना सारी अयोध्या ही सूनी दिखाई पड़ती है। वे राम की सेवा के लिये सदा तत्पर हैं और कहती हैं कि जहाँ राम जायेंगे वहाँ मैं उनकी सेवा के लिये तैयार रहूँगी।[३]

पुरुष का स्त्री प्रेम

जहाँ इन गीतों में पत्नी अपने पति के लिए सर्वस्व त्याग कर सभी दुःखों को झेलने के लिये तैयार दिखाई पड़ती है वहाँ पति के हृदय में भी स्त्री के लिए कुछ कम प्रेम नहीं है। पति के मरने पर तो अनेक स्त्रियों के विलाप करने का वर्णन मिलता है, परन्तु स्त्री की मृत्यु पर पति का विलाप करना बहुत कम पाया जाता है। किसी परदेशी पति की स्त्री डूब कर मर गई है। जब उसे घर जाने पर इसका हाल मालूम होता है तब वह रोता है और पश्चाताप करता है।[४]

"कहाँ गइलू सत के तिरियवा,
बिहरे मोर छतिया नु रे को।"

पत्नी की अँगूठी खो जाने पर पहले तो पति उसे मारता है परन्तु बाद में पश्चाताप कर रोने लगता है।[५] सीता के बिना राम को सारा जग सूना दिखाई पड़ता है। क्योंकि उनके राजसूय यज्ञ को अब कौन देखेगा।[६] एक सोहर में राम को सीता के बिना जीवन भी व्यर्थ ज्ञात होता है।[७]

"सीता! तोरे बिनु जग अँधियार, त जीवन अकारथ हो।"

झूमर के एक गीत में पत्नी के प्रति पति का प्रगाढ़ प्रेम दिखलाया गया है।[८] एक दूसरे गीत में पत्नी के प्रेम के कारण पति माता, पिता की आज्ञा की अवहेलना करके

१. भो० लोक गीत पृ० २६४। २. वही पृ० ४०२। ३. वही पृ० २६२। ४. वही पृ० ६७। ५. वही भाग १ पृ० ३१०। ६. वही ६६। ७. वही पृ० ३४। ८. डा० उपाध्याय भो० ग्राम गीत भाग १ पृ० ३१३।

भी, नौकरी छोड़कर घर चला आता है।[1] कोई अज्ञात यौवना स्त्री अपने पति से माता पिता की सुधि आने की बात कहती हैं। इस पर प्रेमी पति कहता है कि भूख लगने पर मैं तुम्हें भोजन कराऊँगा और प्यास लगने पर पानी पिलाऊँगा। ऐ स्त्री ! मैं तुम्हें अपने हृदय से लगाकर रक्खूँगा अतः अपने माता पिता को भूल जावो।[2]

"भुखिया में भोजन खिअइबो,
पिअसिया में पानी देइबो हो।
धनिया रखबों मैं हियरा लगाई,
बवैया के बिसरावहु हो।"

पत्नी के बिछोह को न सह सकने वाला पति अपनी स्त्री के मायके जाते समय कहता है कि तुम अपने विभिन्न आभूषणों को छोड़ जावो जिन्हें देखकर मैं अपने हृदय को शान्त करता रहूँगा।[3] इसी प्रकार से अनेक गीतों में पति द्वारा स्त्री के आदर, सम्मान, दुःख-हरण, प्यार करने आदि का उल्लेख हुआ है।[4]

(ख) अरुचिकर सम्बन्ध

५. सास और पतोहू

लोक गीतों में सास और पतोहू का संबंध रुचिकर नहीं दिखाई पड़ता। इन दोनों के शाश्वतिक विरोध का बड़ा ही सुन्दर चित्रण हुआ है। यद्यपि धर्मशास्त्रों और काव्य ग्रंथों में पुत्रवधू को सास की आज्ञाकारिणी होना और उसकी सेवा में तत्पर होना लिखा है परन्तु इन गीतों में इसके ठीक विपरीत स्थिति पाई जाती है।

माता अपने पुत्र को प्राणों से भी अधिक प्यार करती हैं। उसके जन्म में वह प्रसव पीड़ा के विषम एवं असहनीय दुःख को सहती है। जब छोटा बालक रात को बिछौने को गीला कर देता है तब प्यारी माँ अपनी साड़ी को बिछाकर उसे सुलाती है और सर्दी के कष्टों से बचाती है। वह स्वयं भूखे रहकर भी समय पर उसे भोजन देती है। पुत्र के बड़े होने पर भी उसकी ममता कम नहीं होती। वह उस समय भी अपने प्यारे लाड़ले को अपनी आँखों से ओझल होने देना नहीं चाहती। विचित्र सेवाओं से उसका शरीर संवर्धन करती है। इस प्रकार माता पिता का स्नेह पुत्र के ऊपर यावज्जीवन बना रहता है। वह इतनी तो अवश्य ही आशा रखती है कि पुत्र भी उससे इसी प्रकार प्रेम करेगा। परन्तु पतोहू के आने से यह स्थिति बदल जाती है। पुत्र का जो प्रेम पूर्ण रूप से माता के चरणों में लगा रहता है अब उसमें अन्तर आ जाता है। वह माता और स्त्री में आधा-आधा बंट जाता हैं। कहीं-कहीं पर स्त्री के घर में आते ही पुत्र माता का अनादर एवं तिरस्कार करने लगता है। वह उसे खाने को भी कष्ट पूर्वक देता है। उसकी स्त्री पतोहू सास के विरुद्ध पति के कानों में उल्टी सीधी बातें कहती रहती है जिससे वह माता के प्रति उदासीन हो जाता है। पुत्र की माता के प्रति इस उदासीनता और निरादर का मुख्य कारण पतोहू ही होती है। यही कारण है कि सास और पतोहू में झगड़ा हुआ करता है।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ० ३०७। २. भो० लोक गीत पृ० ४०१। ३. भो० ग्रा० गीत पृ० ४३५। ४. भो० लोक गीत १६३, १६६।

एक गीत में सास अपनी पतोहू से रुष्ट होने पर उसके साथ सहयोग प्रदान नहीं करती है। पतोहू को पुत्र होने वाला है परन्तु सास उसकी सहायता को नहीं जाना चाहती। इस पर पतोहू कहती है कि यदि सास नहीं आवेगी तो मेरा क्या बिगाड़ लेगी। मैं अपनी माता को बुलाकर अपने पुत्र की सेवा कराऊँगी। पतोहू की उक्ति में सास का अनादर स्पष्ट झलक रहा है।[1]

"सासु अइहें ना हमार, आरे का करिहें।
अबटन आपन आमा बोलइबो, हमें रंगीली के का केहु करिहें।"

ससुराल के कष्टों से ऊबकर कोई स्त्री मायके जाना चाहती है। वह कहती है कि सास की व्यंग्य वाणी मुझसे नहीं सही जाती।[2]

"ए राम समुरा में रोवै बिटुइया,
त हमरे नइहरवा जइबो ए राम।
ए राम मचिया बइठल तुहुँ सासुजी,
सासु जी बिरहिया बोले ए राम।"

इतना ही नहीं पति के परदेस चले जाने पर सास पतोहू से कहती है कि अब तुम किसकी कमाई खावोगी क्योंकि तुम्हारा कमानेवाला पति तो है नहीं :[3]

"सासु मोर बोलेली बिरहिया, त केकर कमइया खइबू ए राम।"

परदेश से लौटा हुआ पति स्त्री को उदास देख कर पूछता है कि तुम्हें क्या मेरी माता ने गाली दी है अथवा बहन ने व्यंग्योक्ति कही है :[4]

"किया हो जिरवा माई गरिअवलिन,
किया हो बहिनियाँ बिरहा बोलेहु रे जी।"

सास पतोहू को केवल व्यंग्य वचन ही नहीं बोलती बल्कि उसे शारीरिक कष्ट भी देती है। वह वधू को इतना अधिक घर का काम करने को सौंप देती है जिसे वह करने में असमर्थ है। कोई स्त्री मायके में ससुराल के दुःखों का वर्णन करती हुई कहती है कि उत्तर देश के लोग बड़े निर्दयी होते हैं, वे बहुत कष्ट देते हैं,

ऐ पिताजी! रात में तो जौ और गेहूं जांत में पीसना पड़ता है और दिन में चर्खा चलाकर बारीक सूत कातना पड़ता है। जब मैं सोई रहती हूँ तभी मुझे कच्ची नींद में ही जगा दिया जाता है। चाहे आँगन घर में कोई काम करने को भले ही न रहे :[5]

"उतर के लोग निरमोहिया ए बाबा, उलटी पुलटी दुःख देई।
रतिया पिसावे जव गेहुँआ ए बाबा, दिनवा कतावे झीन सूत।
सूतलि सेजिया उठावे ए बाबा, आंगाना घरेले सब छूँछ।"

सास के द्वारा दिये गये वधू के कष्टों का एक दूसरा दृश्य देखिये जिसका चित्रण कवि ने बड़ी मार्मिक रीति से किया है। ससुराल में आये हुये भाई से बहन अपने कष्टों को बतलाती हुई कहती है कि ऐ भाई! मुझे कई मन अनाज कूटना पड़ता है, और कई मन पीसना पड़ता है। कई मन अन्न का भोजन

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १००। २. वही भाग १ पृ० २२१। ३. दुर्गाशंकर सिंह: भो० लो० गी० पृ० १३३। ४. त्रिपाठी : ग्राम गी० पृ० ७५-७६। ५. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१४।

बनाना पड़ता है। सास मुझसे बहुत सा बर्तन मँजवाती है, और बहुत गहरे कुँये मे पानी भरवाती है :[1]

"कई मन कूटौं भैया, कई मन पीसीला हो ना,
भइया कई रे मन बीन्हींला, रसोइयाँ हो ना।
सासू खाँची भर बसना मँजावेली हो ना।
सासू पनिया पताल से भरावेली हो ना।"

सास छोटी-छोटी बातों पर भी बहू के सतीत्व पर सन्देह करने लगती है और अपने पुत्र से इस बात की शिकायत कर उसे दंड दिलवाती है। परदेसी पति ने स्त्री के लिये पंखा भेजा है। सास उस पंखे को देखकर वधू के सतीत्व पर आक्रमण करती है और उसके बाप और भाई को खा डालने की गाली देती है :[2]

"बेनिया डोलावत अइले सुख करे निंदिया,
आरे परि गइले सासु के नज़रिया हो राम।
बाबा खाऊँ भइया खाऊँ तोहरी बहुअवा।
आरे कवना रसिकवा बेनिया भेजेले हो राम।"

पंखे जैसे छोटी सी बात को लेकर सती बधू के चरित्र पर इतना गंभीर दोषारोपण करना भोजपुरी सास का स्वाभाविक धर्म है। एक दूसरे गीत में इसी पंखे के कारण सास वधू से 'किरिया' लेती है उसकी अग्नि परीक्षा करती है।[3] सास कहती है कि मैं तो किरिया अवश्य लूँगी :

"ना हम मनबै ना हम पतियइबै, हम लेबि तोइसे किरियवा हो राम।"

सास के अत्याचारों के कारण वधू अपने शरीर का शृङ्गार भी नहीं कर सकती। कोई स्त्री बड़े करुण स्वर में कहती है कि जिस घर में हींग की महक तक नहीं है, वहाँ जीरे की 'बघार' कब मिलेगा। जिस घर में कर्कशा सास बैठी है, उस घर में बहू का शृङ्गार कहाँ संभव है :[4]

"जे रे घरे हिंगुआ न महके,
जिरवा के कवन बघार।
जे रे घरे सासु दरुनियाँ
बहुआ के कवन सिंगार।"

वधू की उपर्युक्त उक्ति नितान्त सत्य है। बहुत से घरों में स्त्री को नियमित रूप से सरसों का भी तेल बालों में लगाने को नहीं मिलता, शीशा और कंघी की चर्चा तो बहुत दूर रही।

सास बहू को केवल व्यंग्य बाणों से ही नहीं मारती बल्कि डंडे से भी पीटती है। छोटे-छोटे अपराधों पर भी वधू को सास की ताड़ना का पात्र बनना पड़ता है। सास से बिना पूछे किसी वधू ने चना भुना लिया था। ननद ने उसकी शिकायत अपनी माता से कर दी। इसका फल क्या हुआ वह वधू के ही मुँह से सुनिये :[5]

१. दु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० ४४५। २. वही. पृ० १६३। ३. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २४३। ४. दु० शं० सिं० : भो० लो० गी० पृ० २१६। ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१६।

"सासु मारे हुदुका, ननदिया मारे गारी हो।
ए चदरिया के ऊलोतवा हो, देवरवा हमरो ना।"

पुत्री की बिदाई के समय उसकी माता अपने पुत्र से कहती है कि मेरी समधिन से जाकर कह देना कि वे मेरी पुत्री को पैर न मारेंगी, गाली न देंगी और प्रात:काल न जगायेंगी। जब इस बात को पुत्र ने समधिन सास के आगे कहा तब वह तड़प कर कहती है कि मैं अवश्य ही पैर से अपनी पतोहू को मारूँगी, प्रात:काल में गाली दूँगी और कच्ची नींद में ही उसे जगा दूँगी :[1]

"लाते हम मरबो पाराते देवों गारी।
कांच ही निनिये हम जगइबो पूत बहुआ री।"

सास की यह गर्वोक्ति उसके स्वभाव की परिचायिका है। कोई परदेसी पति घर आकर अपनी स्त्री को उदासीन देखकर उससे पूछता है कि तुम क्यों दु:खी हो। इस पर वह उत्तर देती है कि तुम्हारी माता मुझे मारती है और गाली देती हैं :[2]

"माई तोहार प्रभु मारे गरिआवे,
बहनी बोलेली विरह बोल हो।
लहुरा देवरा मारे लाली छरिया,
ओही गुने बदन मलीन हो।"

एक बिरहे में सास और पतोहू की कलह का बड़ा स्वाभाविक वर्णन पाया जाता है। सास और पतोहू में वाग्युद्ध होते-होते मूसल से मार पीट होने लगती है। संभवत: सास घायल होकर कहती है कि यदि मेरा बूढ़ा पति जीवित होता तो आज मैं इस पतोहू को 'बनवास' दिये बिना नहीं छोड़ती :[3]

"सासु पतोहिया में लागल बा झगड़वा।
कइली मूसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहितीं,
जो जियत रहिते बुढ़ऊ हमार।"

इस बिरहे में सास पतोहू के विरोध ने मूर्तिमान रूप धारण कर लिया है। वह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया है।

इन गीतों में सर्वत्र 'दरुनियां सास' का ही चित्रण किया गया है जो सत्य है।

जहाँ सास और पतोहू के भयानक झगड़े का वर्णन इन गीतों में पाया जाता हैं वहाँ कहीं-कहीं इनके पारस्परिक व्यवहार की सुन्दर झाँकी भी हमें देखने को मिल जाती है। पुत्र जन्म के एक गीत में पुत्र प्राप्ति का कारण बतलाती हुई कोई स्त्री कहती है कि मैंने सास के वचन को कभी नहीं टाला और न कभी ननद का तिरस्कार ही किया। इससे पुत्र रूपी फल मिला है।[4]

"सासु क वचन न टारेऊँ, न ननद तुकारेऊँ हो।
ससुरु कबहू न लाई लूकी लायऊँ, नाही रे जानो बोही गुन हो।"

कोई पति परदेस जाते समय अपने स्त्री को मायके चले जाने का आदेश

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६०। दुर्गा शंकर सिंह : भो० लोक गीत पृ० ४११। ३. भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३२६। ४. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ६५।

देता है। इस पर वह कहती है कि मैं सास की सेवा करके अपना जीवन यहीं बिताऊँगी।[1]

"राजा सासु की करिके टहलिया,
उमिरि हम बिताइब हो।"

इस प्रकार जहाँ सास और वधू में विरोध दिखाई पड़ता है वहाँ प्रेम का दर्शन भी पाया जाता है। इन गीतों में भोजपुरी समाज का जो चित्र खींचा गया है वह अक्षरशः सत्य है जिसकी पुष्टि प्रस्तुत उदाहरणों से की जा सकती है।

६. ननद और भावज

सास और वधू में जिस प्रकार शाश्वतिक विरोध पाया जाता है उसी प्रकार ननद और भावज के बीच हम निरन्तर बढ़ते हुए वैमनस्य को पाते हैं। भाई और बहन एक ही माता पिता की सगी सन्तान है अतः उनमें प्रगाढ़ प्रेम होना स्वाभाविक है। जिस प्रकार माता पुत्र के प्रेम और आदर की अधिकारिणी अपने को समझती है उसी प्रकार बहन भी उसके अकृत्रिम प्रेम का पात्र अपने को मानती है। परन्तु भावज के आते ही यह स्थिति बदल जाती है। पुत्र का प्रेम बहन, स्त्री और माता में त्रिधा विभक्त हो जाता है। भावज घर में आते ही पति पर अधिकार जताने लगती है, उसके तन, मन और धन की मालकिन बन बैठती है। यह बात बहन को (साथ ही उसकी माता को) असह्य हो जाती है। यह देखकर कि पराये घर की एक स्त्री ने मेरे भाई पर अधिकार कर लिया है, भावज से चिढ़ने लगती है। भावज ननद को दो चार दिन का पाहुना समझकर, परिवार में उसके महत्व को न समझकर उसका तिरस्कार करती है। यही दोनों के झगड़े का मूल मनोवैज्ञानिक कारण है।

ननद और भावज का यह झगड़ा कुछ नया नहीं है। यह चिरकाल से चला आ रहा है। संस्कृत के किसी कवि ने ननद और भावज की अनबन की ओर बड़े सुन्दर शब्दों से संकेत किया है। भावज कहती है :

"श्वश्रूः पश्यति नैव पश्यति यदि भ्रूभंगवक्रेक्षणा,
मर्मच्छेदपटुः प्रतिक्षणमसो ब्रूते ननान्दा वचः
अन्यासामपि किं ब्रवीमि चरितं स्मृत्वा मनोवेपते,
कान्तः स्निग्धदृशा विलोकयति मामेताषदगः सखि।"

इस श्लोक में ननद को मर्म भेदने वाली वाणी बोलने में निपुण कहा गया है।

एक चैता, में कुम्भकर्णी निद्रा में सोये हुये आलसी पति का बड़ा सुन्दर वर्णन हुआ है। वह शाम को ही सो जाता है और सूर्योदय होने पर भी आलस्यवश नहीं उठता। इस पर उसकी स्त्री अपनी ननद से उसे जगाने को कहती है। परन्तु ननद उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं करती :

"रामा कइसे के भऊजी भइया के जगाईं हो रामा :
मोर भइया, निदिया के मातल हो रामा।
मोर भइया।"

सास और ननद का एक साथ मिलकर भावज को कष्ट देने का वर्णन अनेक

1. त्रिपाठी, ग्राम गीत पृ॰ ५६।

गीतों में आता है। सास अपनी वधू के विरुद्ध जो कुछ करना चाहती है, ननद उसमें सहायता पहुँचाती है। एक जांत के गीत में वधू को गेहूं पीसने के लिये भेजा जाता है। सास तो उसे गेहूँ देती है और ननद उसे बड़ी 'चँगेरी' प्रदान करती है जिसमें अधिक गेहूँ समा सके। परन्तु भावज से जांत चलता ही नहीं है और वह रोने लगती है।[१]

"सासु देली गोहुँआ हो रामा, ननदी चँगेरिया।
गोतिनि बहरिनिया हो रामा, भेजेली जंतसरिया।
जँतवो न चलइ हो रामा, मकरी न डोलई।
जँतवा के धइले हो रामा, रोइला जंतसरिया।"

बड़ी चँगेरी में वधू को गेहूँ देने में ननद की गहरी दुष्टता छिपी पड़ी है।

किसी स्त्री ने पुत्र होने पर अपनी ननद को आभूषण देने का वादा किया था। परन्तु जब उसे पुत्र हुआ तो वह आभूषण देने से इन्कार करने लगती है। इस पर ननद कहती है कि मैं तुम्हें सात लात और गाल में दो थप्पड़ मारूँगी तथा तुम्हारा कंगन और पछेला दोनों छीन लूँगी।[२]

"भौजी जवन बोली बोललू ओसरवा, उहे बोल राखौ।
मारब सात गडहरी गले दुइ थप्पड़ रे।
भौजी कँगना के जोट पछेलवा दुनो हम लेबों।"

जब वधू ससुराल जाती है तब ननद भावज के प्रति अपनी माँ से कहती कि यह हल जोतने वाले किसान की लड़की है। अतः इसे रहने के लिए ए माता! वह घर दो जिसमें भूसा रखा जाता है।[३]

"मैया तो न बोले पावे कि ननद उठि बोलैं,
अम्मा एहि हरजोतवा की बिटिया दिहो घर भुसहुल।

ननद और भावज पानी भरने के लिए जाती हैं। भावज जोगी का मन्दिर देखने के लिये जाती है और कुछ विलम्ब से आती है। इतने ही में दूसरे के कहने पर ननद उसके चरित्र पर आशंका करती है। भावज प्रार्थना करती है कि फिर भी ननद अपने भाई से यह कहती है कि ऐ भाई! तुम्हारी ठकुराई में आग लग जाय। तुम्हारी स्त्री तो जोगी के मन्दिर में जाती है।[४]

"आगि लागै भइया तोहरी ठकुरइया,
भौजी जाली जोगी के मिढुलिया हो ना।

इसी से ननद की दुष्टता का अनुमान किया जा सकता है।

लोक गीतों में भावज का जो चित्रण किया गया है वह ननद की अपेक्षा अधिक निर्मम एवं कठोर है। ननद तो भावज की भाई से केवल शिकायत करती है परन्तु भावज ननद को विष खाने का सन्देह ही नहीं भेजती बल्कि उसकी छाती में खंजर घुसेड़ कर उसकी ऐहिक लीला भी समाप्त कर देती है। भावज की कठोरता का यह दृश्य देखिये। ननद पिता के घर से बिदा होकर ससुराल जा रही है। पुत्री वियोग के दुःख से रोने के कारण पिता के आँसुओं से गंगा में बाढ़ आ गई है, माता के रोने से

१. डु० श० सिंह भो० लो० गी० पृ० १६३। २. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ६०। ३. वही. पृ० ६४। ४. वही. पृ० ३४८।

अंधेरा छा गया है, भाई के रोने से पैर तक की धोती भींग गई है। परन्तु भावज की आंखों में आँसू के बूँद भी नहीं दिखाई पड़ते :

"भऊजी नयनवो ना लोर।"

ननद भावज के लिए भारस्वरूप होती है। भावज समझती है कि यह व्यर्थ में बैठकर घर का आटा गीला कर रही है। एक गीत में इसी भावना से प्रेरित होकर भावज ननद के विवाह के लिये सास, ससुर और अपने पति से वर खोजने की विनती करती है।[1] विवाह होने पर पुत्री के विदा होते समय माता, पिता वस्त्र और गाय आदि देते हैं परन्तु भावज अफीम का टुकड़ा उपहार स्वरूप उसे देती है।[2]

"आमा जे देली रामा लहर पटोरवा, बाबा दीहें धेनु गाइ।
भइया जे देले रामा चढ़न के घोड़वा, भउजी महुरवा के गांठि।"

भावज की बोली विष के समान लगती है।[3] वह जब कभी भी बोलती है तो उसकी वाणी में व्यंग्य भरा रहता है।[4] जिस प्रकार ननद भावज के चरित्र पर व्यर्थ का कलंक लगाती है। पानी के लिए गई ननद से भावज पूछती है कि ए ननद! तुम्हारा आँचल (कपड़ा) मैला क्यों है। तुम कहाँ गई थी।[5]

"मैं तोसे पूछों मैना ननदिया,
अँचरा कवन गुन धूमिल हो राम।"

घर में भावज ननद को खाने, पीने, पहिनने का कितना कष्ट देती है इसका सुन्दर वर्णन नीचे के सोहर में हुआ है।[6]

"कोठिला कढ़लों खुखुड़िया, त घमवा सुखावेलो हो।
ए ननदी! खुखुड़ी के रोटिया पकवलों, बथुइया केरा सगिया नु हो।"

ननद ससुराल के कष्टों से ऊब गई है। फिर सावन का महीना है। अतः वह मायके आने के लिये अपनी भावज के पास सन्देश भेजती है। परन्तु भावज ने इसके उत्तर में विष (अफीम) की गांठ भेज दी और कहा कि इसे खाकर सो जाना।[7]

"भौजी जे पठवा सनेसवा, महुरवा के गांठि।
खाई न रहेऊ मोरी ननदी तो सावन मास।"

भावज की इसी दुष्टता को जानकर कोई बहन अपने भाई से ससुराल के दुःखों को निवेदन करने के पश्चात् कहती है कि ए भाई! मेरा यह दुःख भावज से मत कहना नहीं तो वह इस बात को दो चार और लोगों से बढ़ा चढ़ा कर कहती फिरेगी।[8]

"ई दुःख जनि कहो भइया भऊजी के अगवा हो ना।
भऊजी दुइ चारि घरे कहि अइहें हो ना।"

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३१७। २. वही पृ० १९९। ३. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ६७। ४. वही पृ० २५७। ५. वही पृ० २८९। ६. भो० लो० गी० पृ० ५६। ७. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ४३३। ८. भो० लो० गी० पृ० ४४१।

खेलवना के गीत में, पुत्र जन्म के अवसर पर सहायता न पहुँचाने के कारण भावज ननद को धमकी देती है कि यदि मैं प्रसव कार्य से सकुशल निवृत्त हो गई तो ननद की छाती में छूरी भोंक कर उसे मार डालूँगी।[१]

"गोतिनी के झोंटा धइ लसार देबों ललना।
अबकी बरहिया के ऊपर होइबों,
ननदी के छुरी लेके सीना फरबों ललना।"[१]

ज्ञात नहीं कि इस प्रस्ताव को भावज ने कार्य रूप में परिणत किया या नहीं परन्तु इसकी कल्पना भी बड़ी भयंकर और वीभत्स है। इन उल्लेखों से ननद और भावज के सम्बन्ध का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता।

देवर और भावज

प्राचीन भारत में देवर और भावज का सम्बन्ध आदर्श रूप में दिखलाया गया है। सीताहरण के पश्चात् उनके गहनों को जब रामचन्द्र लक्ष्मण से पहचानने को कहते हैं तो उस समय वे जो उत्तर देते हैं वह स्मरणीय है।

"केयूरं नैव जानामि, नैव जानामि कुंडले।
नुपूरावेव जानामि, नित्यं पादाभिवन्दनात्।"

अर्थात् मैं केयूर और कुण्डल को नहीं पहचानता क्योंकि सीताजी के शरीर के ऊपर मैंने कभी दृष्टिपात नहीं किया था। मैं तो उनके पैर के नुपूरों को ही पहिचानता हूँ क्योंकि मैं नित्यशः उन्हें प्रणाम किया करता था। आदिकवि वाल्मीकि ने देवर और भावज के सम्बन्ध की कितनी ऊँची कल्पना इस श्लोक में की है।

राम जंगल में जाने को तैयार हैं। लक्ष्मण भी उनके साथ जाना चाहते हैं। जब वह सुमित्रा से अनुमति मांगने के लिये आते हैं तब वे कहती हैं :[३]

"रामं दशरथं विद्धि, मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि, गच्छ तात, यथासुखम्।"

इस श्लोक में भावज की तुलना माता से की गई है। यही हमारा भारतीय आदर्श रहा है।

परन्तु लोकगीतों में देवर और भावज के सम्बन्ध को हम भारतीय आदर्श के अनुरूप नहीं पाते। इन गीतों में भावज और देवर के अनुचित प्रेम का वर्णन प्राप्त होता है। इसका क्या कारण है ? यह कहना कठिन है। हमारी ऐसी धारणा है कि पीछे के धर्मशास्त्रकारों ने जो नियोग की व्यवस्था दी वही इसका मूल कारण है। किन्हीं विशेष परिस्थितियों में जैसे पुत्रहीन होने पर भावज नियोग की प्रथा से देवर से पुत्रोत्पत्ति करा सकती थी।[४] इसके अनेक उदाहरण इतिहास ग्रंथों में विद्यमान हैं। यही प्रथा काल क्रम से दूषित हो गई और शास्त्रीय आज्ञा का उल्लंघन कर विशेष परिस्थिति के अभाव में भी देवर और भावज का अनुचित सम्बन्ध होने लगा। इसी अनुचित प्रेम की झलक हमें इन गीतों में देखने को मिलती है।

१. वही पृ० ३४७। २. वाल्मीकि रामायण। ३. वही। ४. नियोग प्रथा के विशेष विवरण के लिए देखिये : डॉक्टर कृष्णदेव उपाध्याय : हिन्दू विवाह की उत्पत्ति तथा विकास।

कोई देवर अपनी भावज (जिसका पति परदेस गया है) से यह कह रहा है कि जब तक मेरा भाई बाहर से नहीं आता है तब तक तुम मुझसे प्रेम करो :[1]

"जब लग भउजी भइया हमार अइहैं हौ।
कि तब लागि ना, भउजी जोर ना सनेहिया।
कि तब लागि ना।"

एक दूसरे गीत में लछुमन नामक देवर अपनी भावज से कहता है कि मेरा भाई तो परदेस गया है अतः तुम मेरे लिए सेज सजाओ। उस सेज पर फूलों को बिखेरो और मेरी सेवा कर पतिप्रवास के दुःखों को भूल जावो।[2]

"हमरहिं सेजिया बिछावहु, फूल छितरावहु हो।
भऊजी ! हमरेहि लागहू टहलिया, त दुख बिसरावहु हो।

भावज पानी लाने के लिये पनघट पर गई है। हंसराज नामक उसका देवर घोड़े पर चढ़ा आ रहा है। भावज ने घड़ा सिर पर उठाने के लिये कहा। हंसराज एक हाथ से तो उसके घड़े को उठाता है और दूसरे हाथ से उसके आँचल को पकड़कर उसे रोक लेता है।[3]

"एक हाथे देवरू धइला अलगावै,
कि दूसर हाथे ना, धई अँचरा विलमावे।
कि दूसर हाथ ना।"

एक दूसरे गीत में कोई मल्लाहिन अपने देवर से विवाह कर लेती है परन्तु जब उसे अपने पूर्व पति से उत्पन्न बालक की सुधि आती है तो रोने लगती है। देवर भावज को उदासीन देखकर जब इसका कारण पूछता है तो वह उत्तर देती है कि :[4]

"नाहीं मन परे देवर, माई बाप सुखवा हो,
नाहीं मन परे देवर, पहिला बिअहुवा।
एक त जे मन परे गोदी के बलकवा हो।
रोवत होइहें घरवा गोदी के बलकवा हो।"

आजकल की नीची जातियों (मल्लाह, गोंड़, अहीर, चमार, और कोईरी आदि) में पति के मर जाने पर प्रायः स्त्रियाँ अपने देवर से विवाह कर लेती हैं इस गीत में मल्लाहिन ने जो देवर से विवाह कर लिया है वह इसी प्रथा के अन्तर्गत है। ऊँची जातियों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) में तो नियोग की प्राचीन प्रथा जाती रही परन्तु नीची जातियों में यह अब तक भी बनी हुई है।

कई गीतों में देवर भावज का सहायक और पत्रवाहक भी दिखलाया गया है। किसी स्त्री का पति परदेस चला गया है। वह अपने देवर को बुलाती है और उससे पत्र लिखवा कर पति के पास भिजवाती है।[5]

"देवरा के बदिहे कयिथवा नु ए राम।
चिठिया जे लिखी हे समुझाइ के नु ए राम।"[5]

देवर भावज की विरह वेदना को उसके प्राण प्यारे पति के पास पहुँचाता है और

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१७। २. दु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० ४१। ३. वही पृ० २५१। ४ दु० श० सिं० भो० लो० गी० पृ० १७४। ५. वही पृ० ८८।

अपने भाई से घर लौट चलने का आग्रह करता है। पति पत्र को पढ़कर घर लौट जाता है और अपनी स्त्री के दुःखों को दूर करता है :[१]

"मोरी रानी लहुरा देवरवा के हाथे जो पाती लिखी भेजेउ हो।
देवरा हो मोरे देवरा, अरे तु मेरे देवरा हो।
मोरा देवरा जो हरि होय अकेले, तो बांचि सुनायउ हो।"

इस गीत में देवर ने भावज की जो सहायता की है वह अभिनन्दनीय है।

८. भसुर और भवहि

पति के बड़े भाई को भोजपुरी में 'भसुर, कहते हैं और छोटे भाई की स्त्री 'भवहि' कही जाती है। हिन्दी में इन शब्दों का पर्यायवाची कोई दूसरा शब्द नहीं है। अतः इन्हीं शब्दों का प्रयोग यहाँ किया गया है। भोजपुरी समाज में भसुर अपनी भवही की देखना तो दूर रहा स्पर्श तक नहीं कर सकता। पति के बड़े भाई होने के कारण वह पूज्य माना जाता है। अतः उसके सामने आना, बातें करना या उसे छूना भवहि के लिए सर्वथा निषिद्ध है। इस नियम का भोजपुरी समाज में बड़ी कड़ाई के साथ पालन किया जाता है। फिर भी कुछ ऐसे गीत उपलब्ध हैं जिनमें इन नियमों का उल्लंघन कर भवहि और ससुर में अनुचित प्रेम वर्णित है।

इन्द्रसिंह नामक कोई पुरुषप टिकुली नाम की अपनी भवहि के रूप सौंदर्य पर मोहित हो जाता है। वह उसके पति (अपने छोटे भाई) को जंगल में ले जाकर मार डालता है और अपनी भवहि टिकुली से अनुचित प्रस्ताव करता है। टिकुली अपने पति की लाश उससे मँगवाती है और उसे झूठा आश्वासन देती रहती है। लाश को जलाने के लिए जब इन्द्रसिंह आग लाने जाता है इतने में वह पति के साथ जलकर सती हो जाती है। इन्द्रसिंह यह देखकर हाथ मलकर पछताता है।[२]

"जब लगि भसुर अगिया आने गइलनि रे ना।
रामा फुफुनिनि अगिया धधकवली हो रामा।
रामा दुनो रे बेकति जरि छरवा भइलें हो ना।
जहूँ हम जनिती 'टिकुली' मोरि बुधि छोरबू रे ना।
ए राम डड़िया रे पइसि ससवा नस ती हो राम।"

उक्त गीत की अंतिम पंक्ति में भसुर की नीचता की पराकाष्ठा दिखलाई गई है। साथ ही 'टिकुली' का दिव्य सतीत्व आदर्श रूप में हमारे सामने आता है।

एक दूसरे गीत में कोई भसुर अपनी भवहि से छेड़खानी करता है। भवहि पानी भरने के लिए गई है। भसुर उसका रास्ता रोक लेता है। जब वह कहती है कि मुझे मार्ग दो क्योंकि मेरी चुनरी भींग रही है तब वह अपनी चादर देता है। सती उसकी चादर में आग लगा देने की बात कह कर उसकी प्रार्थना को अस्वीकार कर देती है :[३]

"पानी के पियासल जिरवा गइली पनिघटवा रे।
घर के भसुर बटिया रोकेले नु रे जी।
छोड़ छोड़ु भसुरा! रे मोर पनिघटवा रे।

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गा० पृ० ३२। २. दु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० ८५। ३. दु० शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० १००।

बरसेला पनिया भीजेला मोर चुनरिया नु रे जी।
जउँ तोरा 'जिरवा' रे भीजे ले चुनरिया रे,
हमरो दुपटवा ओढ़ि लेवहु रे जी।
तोहरो दुपटवा भसुर, आगि धधका हवि,
हमरी चुनरिया सीतल बयरिया नु रे जी।"

रोपनी का यह गीत लीजिये जिसमें भसुर का कामुक प्रयत्न चरमकोटि तक पहुँच जाने पर भी सफलता को नहीं प्राप्त कर सका है। भवहि द्वारा चित्रकारी को देखकर भसुर उसके प्रेम में फंस जाता है और अपनी अभिलाषा को माता से कह सुनाता है, परन्तु माता इस प्रस्ताव को अनुचित ठहराती है।[1]

"मैया लहुरी पतोहिया मनवा बसली हो ना।
लहुरी पतोहिया पूता भवहि हो तोहार।
रामा ऊ त तिलंगवा के जोइया हो ना।"

बड़ा भाई अपने छोटे भाई (तिलंगवा को जंगल में ले जाता है और विश्वासघात कर उसका वध कर देता है। दुःखी स्त्री भसुर से झूठा वादा करती है और अपने पति की लाश लेकर सती हो जाती है। इस प्रकार भसुर हाथ मल कर पछताता रह जाता है।[1]

"रामा जो हम होई सतवन्ती हो ना।
मोरे अँचरा भभकि उठे अगिया हो ना।
बरे लगली लकड़ी भसम भइली छोटका हो ना।
रामा जेठवा मले दूनो हथवा हो ना।"

इन गीतों में भसुर की दुष्टता देखने को मिलती है। दोनों उद्धरणों में भवहि भसुर को चकमा देकर अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई पाई जाती है।

९. ससुर और पतोहू

लोकगीतों में ससुर और पतोहू का जो आदर्श होना चाहिये वैसा हमें देखने को नहीं मिलता। 'पतोहू' पुत्रवधू का अपभ्रंश रूप है, जिसका अर्थ पुत्र की स्त्री होता है। अतः पिता का पुत्र के प्रति जो स्नेह होता है वह उसकी स्त्री के साथ भी होना चाहिये। परन्तु ऐसी बात नहीं पाई जाती। एक गीत में ससुर और पतोहू में अनुचित संबंध दिखलाया गया है। पतोहू लोक लज्जा को त्याग कर ससुर को झलने के लिये पंखा माँग रही है। एक दूसरे गीत में ससुर के द्वारा पुत्रवधू की बाहों पर गोदे गये 'गोदना' को कामुकता भरी दृष्टि से देखने का उल्लेख पाया जाता है। ससुर जब भोजन करने आता है तब वह वधू के गोदना को देखता रहता है। वधू कहती है कि यदि मैं जानती कि ससुर जी ऐसा करेंगे तो मैं गोदना ही न गोदाती।[2]

"सासु दांत रे बतीसी, बहू का बांही गोदना।
ससुर जेवना ना जेवेंले नीहारे मोर गोदना।
जाहु हम जनिति ससुर, नीहरब तू गोदना।
ससुर नाहीं रे गोदइतो, आपन बाहीं गोदना।"

१. वही पृ० ३४६। २. डॉ० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३३५।

इसी प्रकार से एक झूमर में वधू की भूली हुई झुलनी को ससुर पानी में खोज रहा है। यह कार्य बधू के साथ अनुचित संबंध का व्यंजना कर रहा है।

१०. सौत-सौत

सौत शब्द 'सपत्नी' का अपभ्रंश रूप है। भोजपुरी में इसके लिए 'सवति' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसकी निरुक्ति सौत के ही समान है। एक पुरुष की दो या दो से अधिक स्त्रियाँ आपस में 'सौत' कहलाती हैं। सपत्नियों में आपस में बड़ा द्वेष पाया जाता है। यहाँ तक कि 'सौतिया डाह' ईर्ष्या का उपमान बन गया है।

भोजपुरी में एक कहावत है कि 'चूनो के सौत ना भावेले' अर्थात् आटे की निर्जीव सौत को प्रकृति भी अच्छी नहीं लगती। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि सपत्नी द्वेष कितना भयंकर होता है। लोकगीतों में सौतिया डाह का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। सौतों के झगड़ों का सजीव चित्रण इन गीतों में हुआ है।

पति अपनी स्त्री को 'मधुपीपरि' पीने के लिए कहता है। पत्नी के मना करने पर वह दूसरा विवाह करने की धमकी देता है। इस पर उसकी स्त्री कहती है कि मैं मधुपीपरि भले ही पी लूँगी परन्तु सौत का 'जार' दुःख मुझसे नहीं सहा जायगा।[1]

"सवति के जार हम ना सहाँबे,
पियब मधु पीपरि हो।"

बारह वर्ष के बाद सौत लेकर लौटे हुये परदेसी पति से स्त्री की यह व्यंग्योक्ति कितनी मार्मिक है। वह कहती है कि तुम बारह वर्ष पर परदेस से लौट रहे हो। इस बीच में मुझे क्या कष्ट हुआ इसकी तुम्हें क्या चिन्ता। साथ ही सौत भी लेते आये हो। तुम्हें मेरे दिल का दर्द क्या मालूम।[2]

"आरो बारहों बरिस पर आना,
सबतिन लिए साथ।
दिल का दरद ना जाना।"

एक झूमर में सौत की वाणी की तीक्ष्णता का वर्णन हुआ है। स्त्री अपने पति से पूछती है कि तुम्हारी आँखें मेरे ऊपर लाल क्यों हो रही हैं। एक तो सौत लाने की बात मेरे कलेजे को बेध रही है और दूसरा यह तुम्हारा क्रोध। इससे मेरा हृदय कांप रहा है।[3]

"कवन गुनहिए चुकलों ए बालम, तोर नयना रतनार।
सवती के बतिया करेजवा में साले, कांपेला जियरा हमार।"

कोई पति दूसरा विवाह करके सौत लाया है। इस पर उसकी पहिली स्त्री कहती है कि यदि मैं बन्ध्या होती, लँगड़ी लूली होती, कोयल के समान काली होती तब तुम्हारा सपत्नी लाना ठीक था। परन्तु मैं तो पुत्रवती हूँ, एवं सर्वांग सुन्दरी

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७०। २. वही पृ० २८९। ३. भो० लोक गीत पृ० २२८।

हूँ फिर तुम सौत क्यों लाये। मैं तो तुम्हारे गले का हार थी फिर ऐसा अनाचरण तुमने क्यों किया ?[1]

"मैं तो तोरे गले का हार रजवा,
काहे को लायो सवतिया।
जाहु हम रहिती बाँझ बझिनिया,
तब आइति सवतिनिया।
जब हम रहिती कालो कोइलिया,
तब आइति सवतिनिया।
रजवा हमरो सोटा अइसन देह,
काहे को लायो सवतिया।"

उपर्युक्त झूमर में पत्नी द्वारा पति का उपालम्ब बड़ा ही मार्मिक है। सौत के द्वेष के कारण एक स्त्री अपनी दूसरी सौत को विधवा हो जाने की गाली देती है और उसके प्रेम को क्षणिक बतलाकर सौत का उपहास करती है।[2]

"आरे इ त तिरिया सेजिया पर मीठ रे
सैयां भूले ओहि रांड़।"

सौत की कल्पना से ही स्त्रियों को इतनी चिढ़ हो जाती है कि पति का मनोरंजन करने वाली परन्तु उसके अधर को चूसने वाली वंशी भी सौत का प्रतीक समझी जाती है। कोई पुरुष पलंग पर बैठ कर वंशी बजा रहा है तब उसकी स्त्री उससे कहती है कि मैं सौत बनकर (क्योंकि वंशी रूपी सौत पहिले से ही सेज पर विराजमान है) आपका गाना सुनूँगी :[3]

राजा के वंशी सेजरिया पर बाजे,
सवतिया हो के सुनबि राउर बंसी॥"

इस गीत में पति का अधर पान करने वाली (वंशी) भी सौत के रूप में दिखाई पड़ती है। एक दूसरे गीत में सौत की कुबरी से तुलना की गई है।[4]

एक झूमर में सपत्नी की चिन्ता के कारण नींद न लगने का करुणाजनक वर्णन पाया जाता है। पति के साथ सौत सो रही है इसे देखकर उसकी दूसरी स्त्री को डाह उत्पन्न होता है और यही उसकी नींद न लगने का मुख्य कारण है।[5]

लागत नाहीं निनिया ए राजाजी।
बायें सूतलि बा सवतिया ए राजाजी।
लागति नाहीं ए निनिया हो राजाजी !"

सौत के कारण नींद न लगने का एक दूसरा कारण पहिली स्त्री का निरादर भी है। पति नई विवाहित पत्नी के आगे पहिली स्त्री का पूर्ण तिरस्कार करता है जैसा कि नीचे की इस झूमर में स्पष्टतया वर्णित है।[6]

"अस सवतिन के माने माई,
हमरा बदर बनवत बा।"

---

१. डॉ० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०३। २. भो० लो० गीत पृ० १६७। ३. भो० लो० गी० पृ० २०३। ४. वही. पृ० २१०। ५. वही पृ० २१६। ६. वही पृ० २२६।

सौतिया डाह कभी-कभी उग्र रूप भी धारण कर लेता है। जब वाणी का व्यापार समाप्त हो जाता है तब हाथा-पायी की नौबत आ जाती है। निरवाही के इस गीत में दो सौतों का 'झोंटा' (बालों का समुदाय) पकड़कर लड़ने का वर्णन पाया जाता है :[१]

"उढ़री बियही दोनों करे झोंटी क झोंटा हो ना।
रामा राजा बैठि डेहरी झंखे हो ना।"

एक सौत दूसरी सौत को अपने भाई के साथ पानी में डूब जाने का आशीर्वाद देती है जिससे उसका रास्ता आगे के लिए निष्कंटक बन जाय।[२]

"देहिन सवतिया आपन असीसिया,
भैया बहिन बूड़ो मंझधार।"

सौत का 'जार' इतना असह्य हो उठता है कि कभी-कभी स्त्रियां आत्महत्या तक कर डालती हैं। सौत को पति के साथ सोया देखकर कोई स्त्री अपने सास से आत्म हत्या करने के लिए छूरी और कटार मांगती है, क्योंकि सपत्नी का द्वेष उसके लिए असह्य हो रहा है।[३] एक झूमर में पति के द्वारा सोनारिन को सौत बनाने का वर्णन मिलता है। उसकी पहली स्त्री सास से छूरी कटारी माँगकर अपनी सौत का बध करने का निश्चय कर रही है।[४]

"देहु ना सासु हो छुरिया कटरिया,,
कतल करि घलबों सोनारिन हो।"

यह कितना भयंकर संकल्प है। इसी प्रकार 'सौतिया डाह' के अनेक वर्णन लोक गीतों में उपलब्ध है।

बाल विवाह

कभी भोजपुरी समाज में बाल-विवाह अधिक प्रचार था। यह प्रथा आज भी प्रचलित है परन्तु धीरे-धीरे कम हो रही है। जैसे-जैसे नयी सभ्यता का प्रकाश गांवों में फैल रहा है वैसे-वैसे लोग उसकी बुराइयों को समझने लगे आज भी धनी एवं प्रतिष्ठित घरों में पुत्र एवं पुत्री का विवाह बाल्यावस्था में ही कर दिया जाता है। अभी भी विवाह में वर के साथ दासी या नौकरानी के जाने की प्रथा है। जिसका काम पहिले बाल वर की सेवा सुश्रूषा करना होता था। 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' के सिद्धान्त के मानने वाले पुराण पन्थी लोग पुत्री का विवाह बालकपन में तो कर ही देते हैं परन्तु लड़के के विवाह को भी यथाशीघ्र कर देने की चेष्टा करते हैं। भोजपुरी प्रदेश में बालकों का अधिक दिनों तक अविवाहित रहना लोगों की दृष्टि में निर्धनता का सूचक माना जाता है।

इन गीतों में कहीं स्त्री अपने बाल पति के लिए दुःखी दिखाई पड़ती है तो कहीं पति छोटी स्त्री को देखकर रूठ जाता है।

आजकल उत्तर प्रदेश के पूर्वी जिलों में 'बनवारी का गीत' बड़ा प्रसिद्ध एवं लोकप्रिय है। इसी गीत में किसी स्त्री के बाल पति के दुःखों का बड़ा दर्दनाक वर्णन है। वह स्त्री कहती है कि ए शिव! तुमने सबको तो अन्न और धन दिया परन्तु मुझे छोटा पति

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४०३ : डु० शं० सिं० भो० ल० गी० पृ० १७७
२. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४३०। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३०२। भो० लो० गीत पृ० २०६।

(लड़िका भतार) दे दिया। उसे लेकर मैं एक दिन सोई। खेत में गीदड़ बोलने लगा। उसकी आवाज सुन कर मेरा पति डर कर रोने लगा। मेरी चोली का बन्द खोलने के स्थान पर वह घर का किवाड़ खोलता है। उसकी इस नादानी को देखकर मेरा शरीर सिर रे पैर तक जल जाता है।

'सबके त देल भोला अन, धन, सोनवा,
बनवारी हो, हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली ओसरवा,
बनवारी हो, रहरी में बोलेला सियार।
खोले के ते चोली बन्द खोलेले केवार,
बनवारी हो, जरि गइले एँड़ी से कपार।'

यह गीत और लम्बा है जिसमें बालक पति वाली इस तरुणी स्त्री की मनोवेदना का वर्णन सुन्दर रीति से हुआ है। 'जरि गइले एड़ी से कपार' इसी एक पंक्ति में कितना क्षोभ, क्रोध, कितनी आत्म-वेदना और कितनी व्यंजना भरी है।

पति विवाह करने के लिए जाता है। उसकी माता अटारी पर चढ़ कर देख कर कहती है कि मेरा बेटा विवाह करने जाने के लिए प्रस्तुत है परन्तु दूध पीने के विना उसके होंठ सूख रहे हैं।[२]

"ऊँच रे मन्दिर चढ़ि हेरेली कवन देई,
कवन गांव नियरा कि दूर।
हमरा कवन दुलहा बियहन चलेंले,
दूध बिनु ओठ सुखाई ए।"

इस वर्णन से सहज ही में अनुमान लगाया जा सकता है कि विवाह के लिए जाने वाला वर दुधमुँहा है।

झूमर के नीचे के गीत में बालक पति मिलने के कारण स्त्री की मानसिक वेदना बड़े करुण शब्दों में व्यक्त हुई है। कोई स्त्री अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है कि मैंने शिव की पूजा बड़ी भक्ति से की। परन्तु मुझे फल रूप में बाल पति मिला है। मेरे साथ की सब स्त्रियाँ लरकोरी (पुत्रवती) हो गईं परन्तु मेरा भाग्य छोटा है। हे सखी ! मैं अपने मन को कैसे धीरज धराऊँ। पति की इस छोटी-सी उम्र पर बज्र पड़ जाय।[३]

"फूलवा मैं लोर्हीं लोर्हीं भरली चंगेरिया
सिउ पर चढ़वली ए चार गोइयाँ।
सिउ पर चढ़वली कवन फल पवलीं,
बलमुआ मिलल मोर छोट, ए चार गोइयाँ।
हमरा ले छोटी-छोटी भइली लरकोरिया,
करमवा भइले खोट, ए चार गोइयाँ।
कइसे हम धीरज धरी मन समुझाई,
बजर परे बारी उमरिया नु, ए चार गोइयाँ।"

इस गीत में कितनी कसक भरी है। बालक एवं नादान पति को देखकर उस स्त्री के हृदय में क्या बीतता होगा इसका वर्णन शब्दों द्वारा नहीं किया जा सकता।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२१। २. वही पृ० १५३। ३. भो० लो० गी० पृ० २३५।

एक दूसरे गीत में कोई स्त्री व्यंग्य रूप से अपने बाल पति की सेवा करने का वर्णन करती है[१]

हमरा बलमु जी के छोटे छोटे गोड़वा,
पनही पर पनही पेन्हायबि ।

कहारों के गीत में भी बाल विवाह की प्रथा पाई जाती है। स्त्री कहती है कि मैं अपने पति को दिन में दूध पिलाऊँगी और रात में तेल और उबटन लगाऊँगी इस प्रकार बाल पति की सेवाकर मैं उसे युवा बना दूँगी ।[२]

शिव और पार्वती के विवाह में अनमेल विवाह सम्बन्ध देखने को मिलता है ।[३]

बाल पति को पाकर जैसे स्त्री को कष्ट होता है वैसे छोटी स्त्री को पाकर पति को भी। सीता को उम्र में छोटी पाने से राम का यह रोना कितना अर्थपूर्ण है। वह माता से कहते हैं:—[४]

"नाही कोसिला आमा माई बाप निरधन,
ना पवली थोर दहेज हो ।
आमा कोसिला मोर सीता छोट बाड़ी,
ए ही नयन ढरे लोर हो ।"

वृद्ध विवाह

लोक गीतों में वृद्ध विवाह का भी वर्णन पाया जाता है। यद्यपि भोजपुरी समाज में वृद्ध विवाह की प्रथा नहीं के बराबर है फिर भी एक-दो विवाह ऐसे देखने को अवश्य मिलते हैं जिनमें वर के मुँह में बतीसों का अभाव पाया जाता है और सिर के बाल जीवन के अवसान की सूचना देते हैं। भोजपुरी समाज में तिलक दहेज की प्रथा अत्यधिक होने के कारण गरीब माता पिता धनाभाव के कारण बूढ़े वर से विवाह कर देते हैं। कभी-कभी रुपये के लालच में पड़कर भी वे ऐसा कर बैठते हैं। लड़की को बेंच कर बूढ़े वर से विवाह करने का नीचे लिखा यह वर्णन कितना मार्मिक है। पुत्री कहती है कि पिताजी ने बूढ़े वर से मेरा विवाह कर मेरी 'सादी' नहीं की बल्कि बरबादी कर दी। सभी लोग मेरी खिल्ली उड़ाते हैं और कहते हैं कि यह बूढ़े की स्त्री है। उस बूढ़े पति के पास जाते मुझे बड़ी लज्जा लगती है :—[५]

"पइसा के लालच पड़ि के बुढ़ऊ से सादी रे।
सादी ना कइले ई त मोर बरबादी रे।
कोठा ऊपर कोठरी बुढ़ऊ बोलाउसु रे।
जात सरमवा लागे राम बुढ़ऊ के जोरू रे।
झीनी चदरिया ओढ़ि के बगिया में गइली रे।
मलिया हरामी ठट्ठा मररलसि, बुढ़ऊ के जोरू रे।"

इस गीत में पुत्री की मनोव्यथा का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। वृद्ध विवाह का एक दूसरा सजीव चित्रण इस गीत में हुआ है। कोई स्त्री कहती है कि मैं सेज पर सोने

---

१. भो० लो० गी० पृ० २४५। २. भो० लो० गी० पृ० २७४। ३. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भा १ पृ० १६६। ४. वही पृ० १६७। ५. भो० लो० गी० पृ० १८७।

के लिये गई तो देखा कि बूढ़ा पति विराजमान है। उसकी सफेद दाढ़ी को देखकर मेरा हृदय जल गया। लेकिन बूढ़े ने मेरा सत्कार किया। मुझे मिठाइयाँ दिखाई, सुन्दर गहना बनवा दिया और बहुमूल्य कपड़ा भी लाया। ऐसा मेरा बूढ़ा पति चिरजीवी हो। गीत यह है[1]—

"सोवे मैं गइलो रे रंग महलिया,
सेज पर बुढ़ऊ रे बलमुआ।
पाकलि दढ़िया नजरिया जे परले।
जिउवा जरल हमार।
अतना दूलार चेल्हिकवो ना कइले,
जेतना बुढ़ऊ दुलार।"

सत्य है, बूढ़ा पति नवेली वधू का बहुत अधिक आदर करता है। किसी कवि ने कितना सटीक लिखा है कि :—

"वृद्धस्य तरुणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।"

झूमर के एक गीत में कोई स्त्री कहती है कि जब बूढ़ा पति मेरे पलंग पर आता है तो मेरा हृदय गन-गन कांपने लगता है। मेरे लालची माता पिता ने बूढ़े से मेरा विवाह कर दिया। मैं थर-थर कांप रही हूँ।

"बाबा मतरिया मोर पइसा के राजी,
करेले बुढ़वा से सादी॥
आरे मोर राजा मैं थर-थर कापों
जब रे बुढ़वा पलंगिया पर अइले,
हमरा से मांगे गलचूमा।
आरे मोर राजा मैं गनगन कापों।"

इस गीत में वृद्ध विवाह की प्रथा के साथ ही साथ कन्या विक्रय की प्रथा की ओर संकेत किया गया है। वृद्ध पुरुष से विवाह होने के कारण उस स्त्री की क्या मानसिक दशा है इसकी झलक भी हमें देखने को मिलती है। एक बूढ़े वर की हुलिया कितनी सजीव है :—[3]

"दाँत जो टूटि गइले चाम जे झूलतारे
मथवा के बरवा चंवर भइले।"

सिर के बालों की चंवर से उपमा देकर बुढ़ापा की अतिशयता को प्रकट किया गया है। एक दूसरे गीत में बूढ़े वर की उपमा पके आम से दी गई है[4] कोई पुत्री बूढ़े वर से विवाह कर देने के कारण अपने पिता से यह व्यंग्योक्ति कह रही है कि पिताजी! आपने मेरे हृदय को लालायित कर दिया। बाला और वृद्ध का आपने एक साथ विवाह कर कर दिया आप कितने कठोर हैं[5]

"बाल वृद्ध एक संग कइ दीहल,

एक अन्य गीत में पुत्री कहती है कि बूढ़े पति की दशा देखकर मैं पागल हो गई हूँ और रो रो कर दिन बिताती हूँ।

१. भो० लो० गी० पृ० १८९। २. वही पृ० २०८। ३. भो० लो० गी० पृ० ४७९। ४. वही पृ० ४७८। ५. वही पृ० ४८०।

"पति कर देखि गति पागल भइल मति,
रोइ रोइ करीला बिहान मोर बाबूजी ।"

गीत की अन्तिम पंक्ति में पुत्री की व्यथा सिमटी पड़ी है ।

बहु विवाह

भोजपुरी समाज में बहुविवाह की प्रथा आज भी प्रचलित है । यद्यपि यह धीरे-धीरे कम होती जा रही है और पढ़े लिखे लोग इसकी बुराइयों को समझ कर इसे छोड़ने लगे हैं फिर भी इसकी सत्ता विद्यमान है । एक स्त्री के मर जाने के बाद दूसरा और दूसरी के बाद तीसरा विवाह करना तो एक साधारण सी बात है । यह संख्या चार, पाँच छः तक बढ़ती जाती है । कुछ लोग तो एक स्त्री के जीवित रहते ही दूसरी स्त्री से विवाह कर लेते हैं । ऐसे विवाह बहुधा सन्तानहीन अथवा पुत्रहीन लोग ही किया करते हैं । परन्तु समाज ऐसे विवाहों को सम्मानित नहीं समझता यद्यपि इसका निषेध भी नहीं करता । एक स्त्री के जीवित रहते ही दूसरा विवाह करने का परिणाम बड़ा विषम होता है जिसका कुछ दिग्दर्शन 'सौत' वाले प्रकरण में कराया जा चुका है । स्त्रियाँ आपस में लड़ती हैं, झगड़े होते हैं, कचहरी की शरण लेनी पड़ती है । इस प्रकार बिचारे दो जोरू वाले का जीवन संकटमय बन जाता है । जहाँ एक स्त्री के मरने पर दूसरा विवाह होता है वहाँ सौतेली मां के कटु व्यवहार के कारण लड़कों में भी आपस में वैमनस्यता हो जाता है ।

कोई पति जीविकोपार्जन के लिए बंगाल जा रहा है । उसकी स्त्री उससे पूछती है कि तुम मेरे लिए वहाँ से क्या लाओगे । तब वह उत्तर देता है कि :—

"जो तुम जइब रावल पुरुब बनिजिया से,
हमराके का तू ले अइब रावल मुनिया ।
तोहरा के लाईबि धनिया कसमल चोलिया से,
अपना के पुरुबी बंगालिन रावल मुनिया ।"

इससे पता चलता है बंगाल में जाकर वहाँ की स्त्री से विवाह करना 'रावल' के लिये साधारण बात थी ।

कोई पुरुष माली की लड़की के साथ काम पाश में फंस गया है । जब उसकी स्त्री उस बिटिया से अपने पति का साथ छोड़ने के लिए कहती है तो वह स्पष्ट मना कर देता है ।[1] कोई परदेसी पति घर आने पर अपनी स्त्री से रुष्ट होकर कहता है कि यदि मैं जानता कि तू ऐसा करोगी तो मैं पूर्व देश बंगाल में किसी बंगालिन से विवाह कर लेता ।[2]

"जाहु हम जनिती की धनिया बाड़ी अइसन,
राम कि कइरे घलितों ना ।
उजे पुरुबी बंगलिनिया,
राम कि कइरे घलितों ना ।"

एक अन्य गीत में स्त्री को मुगलों के हाथ में बेच कर दूसरा विवाह करने का वर्णन मिलता है ।[3]

कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि मेरे लिए अपने भाई की हत्या आप मत

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१३ । २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २१६ । ३. वही पृ० ३१६ ।

कीजिये। भाई के मर जाने से आप अकेले पड़ जायेंगे परन्तु स्त्री के मर जाने पर आप दूसरा विवाह कर सकते हैं।[1]

"भइया मरले जयसिंह अकसर होइब,
धनिया मरले दोसर धनिया नूरे जी।"

एक स्त्री के मरने के बाद दूसरा विवाह करना तो भोजपुरी समाज में एक साधारण सी घटना है अपनी पहली स्त्री के मर जाने पर कोई पति दुःखी है। तब उसकी माता कह रही है कि बेटा! तुम क्यों दुःखी हो। तुम्हें मैं दूध भात खाने को दूँगी और तुम्हारा दूसरा विवाह कर दूँगी।[2] किसी मनचले राजा ने डोमिन से विवाह कर लिया है। जब उसे अपनी विवाहिता पहिली स्त्री की याद आती है तो वह बहुत दुःखी होता है।[3]

"एक त याद परे बिअही तिरियवा,
जे छोड़िरे अइलों डोमिन! घरवा में तिरियवा।"

अन्य दो गीतों में विवाहिता पत्नी के रहते भी पति के द्वारा 'रखेली' रखने का उल्लेख पाया जाता है।[4] एक अलचारी के गीत में यह वर्णन मिलता है कि कोई स्त्री अपने पति को इसलिये बंगाल की ओर जाने से मना कर रही है कि वहाँ बंगालिन स्त्रियाँ उसके पति को फँसा लेंगी।[5] गीत का भाव बड़ा सुन्दर है।

"उतरी बनिजिया के उतरी बंगालिन।
से रखिहैं करेजवा लगाई मोर सामी॥"

कोई पति सुन्दरी स्त्री से विवाह न होने के कारण दुःखी है। तब उसकी माता उसे समझाती हुई कहती है कि बेटा! दुःख मत करो। मैं तुम्हारा दूसरा विवाह सुन्दरी स्त्री से कर दूँगी:—[6]

"जनि बाबू हहरहू जनि बाबू झहरहु हो।
बाबू कई देबों दोसर बिआह,
त ओही घरे बेनी पहब हो।"

सुन्दरी स्त्री न होने के कारण भी कुछ लोग दूसरा विवाह कर लेते हैं।

शिवजी भी परदेस में जाकर दूसरा विवाह करके लौटते हैं। जब पार्वती पूछती हैं कि मुझमें क्या दोष था जो आपने विवाह किया तब वे उत्तर देते हैं कि तुम निर्दोष हो परन्तु मेरे भाग्य में ही दूसरा विवाह लिखा था।[7]

"नाहि गउरा आन्हर नाहि गउरा लंगर,
नाहि गउरा कोखिया बिहून रे।
बिधि के लिखल गउरा नाहीं मेटे रे।
भावी कइल दूसर बियाह रे।"

इस प्रकार मनुष्यों में ही नहीं देवताओं में भी बहु विवाह की प्रथा का वर्णन किया गया है।

पर्दे की प्रथा

भोजपुरी समाज में पर्दे की प्रथा अत्यधिक है। कोई भी कुलीन परिवार की स्त्री

---

१. भो० लो० गी० पृ० १०१। २. वही पृ० १७३। ४. वही पृ० १७७, १८८। ५. भो० लो० गी० पृ० ३४५। ६. वही पृ० ३६८। ७. डा० उपाध्याय: भो० लो० गी० पृ०१७७। भो० लो० गी० पृ० ३१०।

अपने घर से बाहर नहीं निकल सकती। मंगल एवं उत्सव आदि अवसरों पर बूढ़ी स्त्रियाँ तो एक दूसरे के घर आती जाती हैं परन्तु घर की वधू कहीं भी नहीं जा सकती। वे अपने पति से भी दिन में सास. ननद के सामने बातें करने में असमर्थ होती हैं। पति के बड़े भाई भसुर और ससुर से बोलना अथवा उनके सामने आना नितान्त निषिद्ध है। जो बहू जितनी अधिक लज्जा करती है वह उतनी ही सुशीला समझी जाती है।

भोजपुरी समाज में पर्दे की प्रथा के कारण पति अपनी स्त्री के पास सब लोगों के समक्ष नहीं जा सकता। वह चुपके से आता है और फिर चुपके से ही जाता है।

कोल्हू के एक गीत में कोई स्त्री कहती है कि मैं चुनरी पहिर कर ओसारे में सो रही थी। उस समय मेरा पति चोर की भांति लुकता छिपता जिससे कोई उसे देख न ले मेरे पास आया। जिनकी मैं विवाहिता स्त्री हूँ वे भी पास दीवाल फोड़ कर घुमने वाले चोर की भाँति मेरे पास आते हैं।[1]

"चुनरी पहिरि मैं ओलरघो ओसरवा,
पियवा के मन ललचाय हो गोरिया।
चोर की नैयां पिया लुकि लुकि आवे,
जेकरे मैं बारी बियारी तेऊ पखफोरवा।"

गीत की अन्तिम दो पंक्तियों में पर्दे की प्रथा का स्पष्ट उल्लेख है। कभी-कभी पति को दीवाल फोड़कर तो नहीं परन्तु दीवाल को लांघ कर स्त्री के पास जाना पड़ता है।

अरे आपन ए दुलहिन सेनुरा सहेजिइ,
बूँद परत भीहिलाल ए।
चिठिया जे लिख भेजलीं दुलहिनिया,
देहुगे दुलहा के हाथ ए।
आरे आपन ए दुलहा चनन सहेजिइ,
घाम परत कुम्हिलाइ ए।"

परन्तु जिन स्त्रियों का साक्षरता से सम्बन्ध नहीं हैं उन्हें तो अपनी हृदय की व्यथा दूसरों को सुनाकर लिखवानी पड़ती है। यह काम कहीं तो देवर से लिया गया है, कहीं पर घर के पास रहने वाले मित्र से और कहीं लिखने का पेशा करने वाले गाँव के मुन्शी कायस्थ जी से। सीता से उनकी कोई सखी कहती है कि तुम अपने देवर को कायस्थ पत्र लेखक बनाना। अर्थात् देवर से पत्र लिखवाना।[2]

"देवरा के बदिहे कयथवा नू ए राम।"

यहाँ पर यह बतला देना आवश्यक है कि प्राचीन भारत में लिखने का काम जो लोग किया करते थे उन्हें 'कायस्थ' के नाम से पुकारते थे। शूद्रक ने 'मृच्छकटिक' में लेखक को 'कायस्थ' के नाम से अभिहित किया है। संभवत: बाद में इसी से लिखने का काम करने वाले लोगों की एक पृथक् जाति बन गई जो कायस्थ नाम से पुकारी जाने लगी। नीचे के एक गीत में एक कायस्थ का उल्लेख है।

"मोरा पिछुअरवा कायथवा भइया हितवा।
मोर चिठिया लिखु समुझाई के रे ना।"

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२५। २. दुर्गा शंकर सिंह : भो० लो० गी० पृ० ४२।

प्राचीन है। संस्कृत के ग्रन्थों में इसका उल्लेख अनेक स्थानों पर पाया है। महाकवि कालिदास का वियोगी यक्ष अपनी प्रियतमा के पास मेघ को दूत बनाकर भेजता है। महाकवि बाणभट्ट ने एक दासी के द्वारा कादम्बरी और महाश्वेता के बीच प्रेम का सन्देश भिजवाया है। कहीं-कहीं पक्षियों द्वारा भी सन्देश वाहक का काम लिया गया है। श्रीहर्ष ने नैषधीय चरित में वचन चातुरी में प्रवीण हंस को नल दमयन्ती के प्रेम का माध्यम बनाया है। लोक गीतों में अध्ययन से पता चलता है कि उनमें भी मनुष्य के अतिरिक्त पशु पक्षी भी सन्देशवाहक का कार्य करते हैं। कौवे तथा तोते के द्वारा सन्देश भिजवाने का वर्णन अनेक स्थलों पर लोक गीतों में आता है। कोई स्त्री एक तोते से कहती है कि तुम यहाँ से उड़कर चले जावो और परदेश में जहाँ मेरे पति हों उनकी पगड़ी पर बैठ जाना और उनसे यह सन्देश कह सुनाना। तोता जाता है और उस निष्ठुर पति की पगड़ी पर बैठ कर उस स्त्री की दुःखद कहानी सुनाता है। पति स्त्री के कष्ट को सुनकर घर लौट आता है। इसी प्रकार से कौवे के द्वारा भी यह समाचार भिजवाने का काम लिया गया है।

इन गीतों के पत्र लिखकर विरह सन्देश भेजने का भी वर्णन उपलब्ध होता है। नीचे के गीत में किसी स्त्री के द्वारा अपने पति के पास पत्र लिखने का वर्णन किया गया है। पति के पत्र को पाकर स्त्री उसका उत्तर स्वयं लिख भेजती है:[1]

"चिठिया जे लिखि लिखि भेजेला दुलहवा,
देहुगे दुलहिन के हाथ ए।

जांत के गीत में कोई सास पुत्र से अपनी वधू की प्रशंसा करती हुई कहती है कि तुम्हारी स्त्री अंगूठा मोड़ कर चलती है। जिससे उसके पैर का अंगूठा कोई देख न ले। और वह सदा घूँघट काढ़े रहती है।[2]

"बाबू राउर घनि आंगुठ मोरि चले
घूँघट काढ़ि चले हो राम।"

नयी वधू के लिए घूँघट निकाल कर चलना आवश्यक है। इसी का उल्लेख ऊपर के गीत में दिया है। राजा गोपीचन्द जोगी के वेश में भिक्षा मांगते हुए रानी से भीख देने को कहते हैं परन्तु वह बाहर नहीं आती। तब वे निवेदन करते हैं कि ससुर से तो पर्दा किया जा सकता है परन्तु जोगी से पर्दा कैसे हो सकता है:—[3]

"जेठ ससुर को परदा करिहै,
जोगी का होय कइसे परदा हो राम।"

एक पूर्वी गीत में, लाल-लाल पालकी में जिसमें हरे रंग का 'ओहार' (पर्दा) लगा हुआ बैठकर किसी स्त्री के ससुराल जाने का वर्णन है।[4]

"लाली लाली उड़िया रे सबुजी ओहरवा,
सैयां ले आवे अंगनवा हो बाला जोगी से।"

इसा प्रकार लोक गीतों में समाज में प्रचलित पर्दे के अत्यधिक प्रचार का वर्णन भी मिलता है।

पत्र लेखन

वियोगियों के अपने प्रिय के पास सन्देश भिजवाने अथवा पत्र लेखन की प्रथा बड़ी

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ४५३। २. वही पृ० ३०७। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ३२३। ४. भो० लो० गी० पृ० ४१५।

प्राचीन भारत में लिखने के साधन बहुत कम थे। ताड़ पत्रों पर लोहे की कलम से छेद कर और भूर्जपत्रों पर स्याही से लिखने की प्रथा प्रचलित थी। लोक गीत की एक स्त्री अपनी साड़ी की आंचर फाड़ कर कागज बनाती है और मृगी की आंखों को मात करने वाले अपने नयनों में लगे काजल जो विरह में अश्रुपात के कारण गीले पड़ गये हैं उससे स्याही का काम लेती है। वह लेखनी के स्थान पर अंगुली का प्रयोग करती है। क्यों न हो। अलौकिक एवं लोकोत्तर प्रेम सन्देश को लिखने के साधन भी यदि अलौकिक हों तो इसमें सन्देह ही क्या। लेखन सामग्री का यह वर्णन कितना सुन्दर है:—[1]

"कथी के करबों से कारावा कागादवा निरवामोहिम्रा,
कथी के करबों मसीइनवा, निरवामोहिया।
आंचर फारि चोरि कारावा रे कागादवा निरवामोहिया।
नयन कजरवा मसीइनिया, करबों निरवामोहिया।"

आचर रूपी कागज पर सन्देश लिखने की विधि बतलाती हुई विरहिणी लेखक से कहती है कि मेरे आंचर के कोने में इधर-उधर साधारण समाचार लिखना परन्तु उनके बीच में मेरी असीम विरह की व्यथा को अंकित करना।[2]

"आसपास लिखिहै सनेसवा निरवामोहिया।
बीचे ठइयाँ बरहों वियोगवा, निरवामोहिया।"

जिस प्रकार किसी पत्र में आवश्यक वस्तु को बीच में लिखा जाता है उसी प्रकार इस गीत में वियोग के दुःख को आंचर के बीच में लिखने का आदेश दिया गया है। प्रिया की प्रिय एवं चिरसहचरी साड़ी के ऊपर नयन के काजल से लिखे गए इस विरह सन्देश का प्रेमी पति के हृदय पर क्या असर पड़ा होगा यह सहृदय ही समझ सकते हैं।

भोजन

लोक साहित्य में विशेषकर लोक गीतों में विभिन्न प्रकार के भोज्य पदार्थों का उल्लेख पाया जाता है। इन गीतों के अध्ययन करने से पता चलता है कि हमारा देशी भोजन क्या था। किसी वस्तु को खाने की ओर लोगों की अधिक अभिरुचि थी। हमारे जनपद के निवासियों की प्रवृत्ति सात्विक भोजन की ओर थी अथवा राजसिक की ओर। उपनिषद् में लिखा है कि 'अन्नमयं हि सौम्य मनः' अर्थात् मनुष्य जो अन्न खाता है उसी के अनुसार उसका मन होता है। तामसिक पदार्थों का भोजन करने वाला पुरुष कभी सात्विक बातों को नहीं सोच सकता। भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में भोजन के तीन विभिन्न भेद सात्विक राजसिक एवं तामसिक बतलाते हुए इनके गुण दोष की सुन्दर मीमांसा की है तथा भोज्य पदार्थ से मनुष्य के आचरण पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका मार्मिक विवेचन किया है।[3] भोजपुरी लोगों के भोज्य पदार्थों के अध्ययन से उनके स्वभाव एवं आचरण पर भी प्रकाश पड़ता है।

भोजपुरी प्रदेश में सत्तू खाने की बहुत अधिक प्रथा है। सच तो यह है कि जिस प्रकार लाठी भोजपुरियों का देशी हथियार है, उसी प्रकार सत्तू उनका निजी भोजन है।

१. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२६ : २७। २. वही पृ० २२७। ३. गीता सर्ग १७ श्लोक ८-१०।

सत्तू

जेठ और वैशाख की सांय-सांय कर चलने वाली लू में काम करने वाला किसान सत्तू खाता है, पथ में चलने वाला पान्थ अपनी प्रिया के द्वारा प्रदत्त पाथेय के रूप में सत्तू लेकर जाता है और मेले-ठेले में जहाँ कच्ची, पक्की रसोई का प्रबन्ध नहीं हो सकता वहाँ भोजपुरी जवान सत्तू से ही अपना उदर दरी की पूर्ति करता है।

लोकगीतों में सत्तू खाने का उल्लेख बार-बार आता है। कोई भानजा अपने परदेसी मामा को बुलाने के लिए जाता हुआ अपनी मामी से पाथेय रूप में सत्तू पीसकर देने की प्रार्थना कर रहा है :[1]—

"पीसहु आवहु ए मामी। जीरवा रे सतुइया।
हम जइबो मामा के लियावनु रे की।"

कोई सन्तोष वृत्ति वाला मनुष्य कह रहा है कि पूड़ी और मिठाई की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, सत्तू खाकर ही सन्तोष धारण करना चाहिए :—[2]

"पूड़ी रे मिठाई के गम मत करना,
सुखनी सतुइया गुजर करना।"

ससुराल के कष्टों का वर्णन करती हुई कोई स्त्री कहती है कि ससुराल में साग और सत्तू खाने को मिलता है परन्तु मायके में भात। अतः अब मैं वहाँ नहीं जाऊँगी।[3]

"ससुरा में मिलेला साग सतुइया।
नइहरवा में धाने क भात।"

भोजपुरी के कहावतों में भी सत्तू का उल्लेख पाया जाता है तथा उसमें पितरों (पितृगण) पूर्वज को सत्तू देने की चर्चा की गई है। एक कहावत है—"अउधियाइल सातू पितरन के" अर्थात् जो सत्तू हवा में उड़ जाय उसे पितरों को समर्पित कर देना चाहिए। बारम्बार सत्तू के उल्लेख से पता चलता है कि यह भोजपुरियों का प्रिय भोजन है।

सत्तू भोजपुरियों का राष्ट्रीय भोजन होने पर भी समृद्ध प्रदेश होने के कारण यहाँ दाल, भात, पूड़ी आदि अन्य भोज्य पदार्थों का अभाव नहीं है। बारात में आए हुए

दाल, भात, पूड़ी आदि

बारातियों के लिए पुत्री के पिता घी, दाल, भात, फुलबड़ा, कचौरी और पूड़ी खिलाने का उल्लेख पाया जाता है।[4] पिता कहता है कि बेटी! मैं दीवाल के समान ऊँची भात की 'ढेर' लगाऊँगा और दाल की तो धारा बहा दूँगा। हथहर डोटीदार बड़ा लोटा से बारातियों के भोजन के लिए दाल में घी दूँगा :—[5]

"पाख बरोबरी बेटी भात निर्हाइबि
दलिया चलइबो पवनार ए।
हथहर के डोटी ए बेटी घीव ढरकाइबि,
बारावा के नेवता देजि ए।"

चावल भात खाने के प्रसंग में दो प्रकार के चावलों का उल्लेख मिलता है १. साठी का चावल। २. जड़हन। साठी शब्द संस्कृत षष्टि का अपभ्रंश है जिसका अर्थ (६०) होता है यह चावल बरसात के मौसम में (६०) दिन में ही पककर

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २४२। २. वही पृ० २८४। ३. वही पृ० २९३
४. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३७। ५. वही पृ० १३७।

तैयार हो जाता है अतः इसे 'साठी, कहते हैं। यह चावल खाने में मीठा लगता है परन्तु इसका भात गीला होता है। दूसरा चावल जड़हन है जो जाड़े के दिनों पूस, माघ में पैदा होता है। यह जड़हन चावल भी दो प्रकार का होता है, अरवा और भुजिया। साधारण लोग तो भुजिया चावल खाते हैं परन्तु अतिथि और संबंधियों को अरवा चावल खिलाया जाता है। दालों में अरहर और मूंग की दाल के खाने का उल्लेख पाया जाता है। एक गीत में राजा गोपीचन्द की बहिन के द्वारा उनको अरवा चावल और अरहर की दाल भोजन कराने का उल्लेख किया गया है।[1]

"आरावा चउरवा अवरू रहरी के दलिया,
आमृत भोजन करवली हो राम।"

भोजपुरी प्रदेश में अरवा चावल और अरहर की दाल उत्तम भोजन माना जाता है इसीलिए इसे 'आमृत भोजन' कहा गया है।

कोई स्त्री कहती है कि यदि मेरा पति भोजन के लिए आयेगा तो साठी का धान कूटकर मैं उसके लिए भात बनाऊँगी और मूंग की दाल कर दाल परोसूंगी और उसे भोजन करते समय लालसा भरे आँखों से उसे देखूंगी :—

"सठिया कुटिय भात रिन्हितों
मुगिया दरी दलिया हो राम।
अहो रामा, मोरे प्रभु अइतें जेवनवाँ
नयन भरी देखितों हो राम।"

नीचे के गीत में भुजिया चावल का उल्लेख देखिये :—[2]

"ससुरा में मिलेला जउवा के रोटिया,
नइहरवा में पूड़ी हजार।
ससुरा में मिलेला साग सतुइया,
नइहरवा में धाने के भात।"

विभिन्न अवसरों पर पूड़ी खीर और पूरी जाऊर खाने का भी उल्लेख पाया जाता है[4] खीर और जाऊर में अन्तर केवल इतना ही है कि खीर को दूध में पका कर चीनी डाल कर बनाते हैं परन्तु जाऊर के सिद्ध होने में जल और गुण की ही आवश्यकता होती है। किसानों के भोजन में दूध और दही का विशेष स्थान होता है। अतः दही भात और दूध भात खाने का अनेक गीतों में वर्णन पाया जाता है।[5] कहीं-कहीं घी के लड्डू खाने का भी उल्लेख हुआ है।[6]

आटा अथवा जौ की मोटी रोटी को 'लिट्टी' कहते हैं। टूटा हुआ चावल 'खुदी' के नाम से प्रसिद्ध हैं। कोदो और सांवा[7] मोटे अन्न हैं। इन सभी वस्तुओं का उल्लेख इन गीतों में पाया जाता है। गोरखपुर और शाहाबाद जिले में चिउड़ा खाया जाता है।

देहात में जो फल पैदा होते हैं उन्हीं की प्रधानता भोजन में पाई जाती है। नीबू केला,[8] नारियल, आम, जामुन,[9] अमरूद,[10] मूली, शरीफा,[11] अनार, और ककड़ी आदि

१. वही पृ० २४०। २. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० पृ० १२१। ३ डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २९३। ४. दु० शं० सिंह : भो० लो० गीत पृ० ७१। ५. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५४। ६. वही पृ० २३२। ७. दु० शं० सिंह भो० लो० गीत पृ० ५३। ८. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५२। ९. वही पृ० १२८। १०. वही पृ० २५०। ११. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५६।

फलों का उल्लेख अनेक स्थान पर इन गीतों में हुआ है। मिठाइयों में टिकरी,[1] जलेबी, बरफी, लड्डू,[2] और पेड़ा की प्रधानता उपलब्ध होती है। मथुरा[3] के पेड़े और काशी ने लड्डू[4] का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है। मथुरा के पेड़े तो आज भी प्रसिद्ध हैं परन्तु काशी के लड्डू के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक[5] में एक विवाह गीत दिया है जिसमें बारातियों के सामने सभी प्रकार के भोजन पक्वान्न, फल और मिष्ठान्न परोसने का उल्लेख है। मिठाइयों में पेड़ा, बरफी, अमीरती, खुरमा, घेवर, गुपचुप, सोहन हलुआ, जलेबी, अन्दरसा, बूंदी, बतासा, बालूसाही और लड्डू का, पक्वान्न में पूड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, पकौड़ी, पापड़ और हलुआ का, शाकों में सोया, मेथी, चौराई, पालक, मसींडा, मूली, कटहर, लौकी, कद्दू, करेला भाटा, भिंडी, तुरैया, आलू, चचेंड़ा और बथुआ का, फलों में नारंगी सेव, शहतूत, चिरौंजी, चिलगोजा, अखरोट, किसमिस, मूँगफली, जामुन और खरबूजा का उल्लेख पाया जाता है। इस गीत में कुछ ऐसी मिठाइयों एवं फलों के नाम भी हैं जिन्हें देहात के लोगों ने कभी सुना भी नहीं होगा। बारात में खाने की कथा ही दूर रही। हमारे यहाँ भोजन के छप्पन प्रकार बतलाये गये हैं परन्तु इस गीत में इससे भी अधिक भोज्य पदार्थों की सूची दी गई है। इस गीत के रचयिता का नाम 'तुलसीदास गँवार' बतलाया गया है। संभवतः यह गीत आधुनिक काल का है।

इन गीतों में कहीं-कहीं मांस खाने का भी उल्लेख पाया जाता है। गर्भावस्था में स्त्री को विभिन्न वस्तुओं के खाने की इच्छा होती है। ऐसे ही अवसर पर कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि मुझे तो रेहु मछली और तीतर का मांस खाने में अच्छा लगता है।[6]

मांस-भोजन

"ए प्रभु ! रेहुआ त भावेला मछरिया,
मासु तीतिले केरा हो।"

रेहु एक विशेष प्रकार की मछली होती है जिसका रंग लाल होता है। यह खाने में बड़ी स्वादिष्ट होती है संभवतः तीतर का मांस भी स्वादिष्ट होता है। इसलिए इन दोनों जीवों के मांस भक्षण का वर्णन हुआ है। कोई कामुक मल्लाह किसी स्त्री से कह रहा है कि तुम्हें दिन में खाने के लिए 'चाल्हवा' मछली दूँगा और रात में गाय का दूध पिलाऊँगा।[7]

"दिनवा खिअइबों बहिना चाल्हवा मछरिया,
रतिया मुर्रहिया गाइ के दूध ए।"

चल्हवा मछली बड़ी चमकदार होती है।[8] हरिन के मांस खाने का भी उल्लेख कुछ गीतों में पाया जाता है। संभवतः यह मांस भक्षण किसी विशेष अवसर पुत्र जन्म, विवाह, अतिथि का आगमन आदि पर किया जाता था। राम जन्म के अवसर पर 'छठियार' के दिन हिरन के मांस खाने की चर्चा एक गीत में पायी जाती है। कोई हरिणी अपने पति से कहती है कि आज राजा दशरथ के घर 'छठी' है। अतः तुम्हें मार कर तुम्हारे मांस का भक्षण किया जायगा।[9]

---

१. वही पृ० ३५८। २. वही पृ० २६४। ३. वही पृ० २८७। ४. वही पृ० १८७। ५. ग्रा० गी पृ० १६६ : १७१। ६. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ५२। ७. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५३। ८. दु शं० सिं० भो० लो० गी० पृ० १८३। ९. वही पृ० २६।

"हरिना आजु राजा के छठियार,
तुम्हें मारि डरिहैं हो।"

आगे वह हरिणी रानी कौशिल्या से प्रार्थना करती हुई कहती है कि:—[१]

"रानी मंसुआ त सीझेला रसोइया,
खलरिया हमें दीतू नु हो।"

अर्थात् ऐ रानी ! हिरन का मांस तो रसोई घर में पक रहा है परन्तु उसकी खाल हमें दे देना।

इससे स्पष्ट पता चलता है कि हिरन का मांस पकाकर खाया जाता था। दोहद में भी हिरन के मांस खाने का उल्लेख पाया जाता है। हिरन अपनी स्त्री से पूछता है कि आज किसकी स्त्री गर्भवती है जो हिरन को खाने के लिये मरवा रही है—[२]

"हिरनी ! केकर धनिया गरभ से,
हरिनवा मरवावेली हो।"

एक दूसरे गीत में भी हिरन के मांस खाने का उल्लेख हुआ है।[३] कहीं-कहीं मोर का मांस खाने का भी वर्णन लोक गीतों में पाया जाता है। हिरन और मोर के मांस खाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि अशोक तृतीय शतक ईसवी पूर्व के शिलालेखों में इसका उल्लेख उपलब्ध होता है। अशोक के प्रथम शिलालेख में उसके महान रसोई घर में प्रतिदिन दो मोर और एक मृग के मांस लाने का वर्णन पाया जाता है:—[४]

"दुवे मजुला एके मिगे, से पि च मिगे नो ध्रुवे।

पुले महानससि देवानं पियसा पियदसिसा लजिने अनुदिवसं बहूनि पान सहसानि आल भियिसु सुपठाये।" मनु ने भी पंच पंचनखाः भक्ष्याः' लिखकर हिरन के मांस खाने की व्यवस्था दी है। अतः गीतों के वर्णित मांस भक्षण शास्त्रानुमोदित एवं प्राचीन परम्परागत हैं।

उपर्युक्त उल्लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि भोजपुरी लोग बहुधा शाकाहारी हैं। मांस भक्षण का उल्लेख केवल आकस्मिक है।

वस्त्र एवं आभूषण

लोक गीतों में विभिन्न वस्त्रों एवं आभूषणों के पहिनने का उल्लेख पाया जाता है: पीछे कहा गया है कि भोजपुरी प्रदेश में पर्दे की प्रथा प्रचलित है। कोई भी स्त्री बिना ओढ़नी (चादर) ओढ़े घर से बाहर नहीं निकल सकती। नयी बधू जब पालकी के भीतर बैठती है तब उस पालकी को भी चादर से जिसे ओहार कहते हैं ढक देते हैं। इसीलिये इन गीतों में ओढ़नी और ओहार का बार-बार उल्लेख आता है। विभिन्न अवसरों पर किस प्रकार के वस्त्र पहिने जाते हैं इसका भी पता इन गीतों से चलता है। मांगलिक उत्सव पुत्र जन्म, विवाह आदि के समय पर पीत वस्त्र जिसे पियरी कहते हैं पहिना जाता है तथा अशुभ कार्यों, दाह, श्राद्ध आदि के अवसर पर सफेद कोरा वस्त्र। बालकों को यज्ञोपवीत संस्कार के समय मृग चर्म, पलाशदंड और मूंज की करधनी धारण करनी पड़ती है। स्त्रियों की विभिन्न प्रकार की वेशभूषा का उल्लेख गीतों के अनेक स्थलों में पाया जाता है जिससे

---

१. दु० शं० सिं० : लो० गी० पृ० २६। २. वही. पृ० २५। ३. वही पृ० २७३। ४. प्रियदर्शि प्रशस्तयः पृ० १।

उनके घर की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। धनी स्त्री साटन का लहंगा, रेशमी साड़ी और कुसुम्भी रंग की चोली पहनती है परन्तु गरीब स्त्री फटही 'लुगरी' पहिनकर ही अपना गुजर करती है एवं 'चिरकुट' धारण कर अपना दिन काटती है।

आभूषण स्त्रियों का परम प्रिय पदार्थ है। विवाह में वर पक्ष की समृद्धि का अनुमान उनके द्वारा लाये गये गहनों से ही किया जाता है। कितनी बारातों में गहना न लाने के कारण झगड़ा हो जाता है। स्त्रियां वस्त्र से भी अधिन गहनों को चाहती हैं। कितने घरों में तो पति पत्नी की शान्ति इसी गहने के पीछे भंग हो जाती है। इन गीतों में भी इस विषय की सुन्दर झांकी हमे देखने को मिलती है। परदेश में जाने वाले पति से स्त्री अपने लिये गहना मांगती है, अपने भतीजे के जन्मोत्सव पर ननद भावज से गहने की याचना करती है और सूतिकागृह (सऊरि) लीपने के लिए लालायित बहन अपने भाई से कगहना गढ़ाने के लिये आग्रह करती है। आशय यह कि स्त्री की अलंकारप्रियता का पता हमें प्रत्येक गीत से चलता है।

विभिन्न अंगों में पहिने जाने वाले विभिन्न गहनों का वर्णन भी हमें इन गीतों में प्राप्त होता है।

यहाँ सुविधा के लिये आभूषण का नाम और उसके पहिनने का स्थान (अंग) पृथक्-पृथक् लिखा जाता है।

आभूषण का नाम	अंग का नाम
१. मंगटीका[1]	मांग
२. नथिया[2]	नाक
३. झुलनी	नाक
४. हार	गला
५. हसुली	गला
६. कंठा[3]	गला
७. हलका	गला
८. तिलरी[4]	गला
९. बाजूवन्द	बाहु का मध्य भाग
१०. बाजू	बाहु का मध्य भाग
११. झबिया[5]	बाहु का मध्य भाग
१२. कगना	हाथ
१३. कड़ा	पैर
१४. छड़ा	पैर
१५. नूपुर	पैर
१६. अंगूठी	हाथ और पैर की अंगुली
१७. करधनी	कमर
१८. पायजेब	पैर

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३१५। २. वही पृ० ९८। ३. डा० उपाध्याय : वही पृ० १०४। ४. वही पृ० २७९। ५. वही पृ० ३२०।

इन आभूषणों में झुलनी, हसुली एवं कड़ा परम प्रसिद्ध हैं। झूमर के गीतों में झुलनी का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कहीं परदेश को प्रयाण करने वाले पति को झुलनी लाने के लिये स्त्री आदेश देती है तो कहीं तालाब में खोई हुई झुलनी को खोजती हुई वह दिखाई पड़ती है।

"ना जानो यार झुलनी मोर कहाँ गिरा।
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानों
यहाँ गिरा ना जानों, वहाँ गिरा ना जानों
ना जानों यार डोरिये में लिपट गया।"

इन गहनों में से बाजूबन्द, झबिया, करधनी, पायजेब, कड़ा, छड़ा, कंठा, हलका और नथिया पहिनने की प्रथा उठती जा रही है और इनका स्थान बेशकीमती सोने के गहने ले रहे हैं। इनमें मंगटीका, नथिया, कंठा, झुलनी और हार सोने के बनते हैं, शेष सब चांदी के होते हैं।

लोक गीतों में साड़ी, लहंगा, चोली और ओढ़नी के प्रयोग का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कोई पुरुष अपनी स्त्री से पूछता है कि तुम्हें कौन-कौन सा कपड़ा पसन्द है, तब वह उत्तर देती है कि मुझे मलमल की साड़ी, साटन का लहंगा और कुसुम्भी रंग की चोली सुन्दर लगती है।[1]

वस्त्र

"ए प्रभु! सड़िया त भावेला मलमलवा,
लहंगा साटन केरा हो।
ए प्रभु! चोलिया त भावेला कुसुम केरा,
अवरू ना भावेल हो।"

साटन लाल या हरे रंग का मखमलीदार कपड़ा होता है जो बड़ा महंगा बिकता है। एक दूसरे में भी स्त्री इन्हीं वस्त्रों को पहनने की इच्छा प्रकट करती है।[2] सोहर के गीत में कोई धाय रानी से प्रार्थना करती है कि पुत्र जन्म के उपलक्ष में मैं तो ओढ़नी (चादर) लूंगी।[3]

"ओबरोनी झगड़ेले धगड़िनिया,
दुअरिया पर नाउनि ए।
ए रानि! हम लेबो राम ओढ़निया,
तबहिं नोह टुंगबि ए।"

लज्जाशीला स्त्रियों के लिये ओढ़नी आवश्यक वस्त्र है। इसीलिये धाय इसे लेने के लिये झगड़ रही है।

पुत्र जन्म के उछाह भरे अवसर पर कहीं-कहीं 'पाँचो टूक' कपड़ा दान में देने का वर्णन पाया जाता है। पुरुष के संबंध में यह पाँच टुकड़ा या वस्त्र धोती, कुरता, अंगरखा, गमछी तौलिया दुपट्टा और पगड़ी हैं और स्त्रियों के लिये ये कपड़े साया, साड़ी, चोली, झूला और ओढ़नी हैं। एक गीत में कोई माता धाय को यही 'पांचो टूक' कपड़ा देने की इच्छा प्रकट करती है :—[4]

"रानी पांचो टुक कपड़ा धगड़िनिया,
कन्हैया के जनम नु रे।"

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो० गी० भाग १ पृ० ५२। २. वही पृ० ७७। ३. वही पृ० ६३। ४. वही पृ० ७५।

मंगलमय अवसरों पर रंगीन वस्त्र विशेषकर पीला वस्त्र (पियरी) पहिनने की प्रथा है। जिस स्त्री को लड़का पैदा होता है उसे 'छठियार' या 'बरही' के दिन पीला वस्त्र ही पहिनाया जाता है। एक गीत में सासु को चुनरी जिसमें लाल, हरे, पीले रंग का समावेश रहता है ननदी को पियरी और दायादिन को लाल रेशमी वस्त्र देने का वर्णन है।[1]

"सासु के दिहली चुनरिया, त ननदी पियरिया हू रे।
गोतिनी के लहरा पटोरवा, गोतिनिया फेरिहै पांइच रे।"

भोजपुरी समाज में सधवा स्त्रियाँ ही रंगीन लाल, पीला वस्त्र पहनती हैं। विधवा सदा श्वेत वस्त्र धारण करती हैं। उपर्युक्त वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि जिन्हें वस्त्र प्रदान किया गया वे सभी सधवा थीं। पति के वियोग में दुःख काटने वाली विरहिणी स्त्री भी रंगीन वस्त्र नहीं पहिनती। कोई वियोगिनी कहती है कि अब मैं लाल चूनरी नहीं रंगाऊंगी क्योंकि पति के बिना सारा संसार अन्धकारमय प्रतीत होता है।[2]

"हम ना रंगइबो चुनरिया,
पिया बिनु सगरों अन्हार।"

कहीं-कहीं पर 'दखिन चीरा' अर्थात् दक्षिण देश का वस्त्र पहनने का भी उल्लेख मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि जिस प्रकार आजकल 'मद्रासी साड़ियाँ' प्रसिद्ध हैं उसी प्रकार सम्भवतः प्राचीन काल में भी इनकी प्रसिद्धि रही हो :—

"किया फुआ पहिरबि रातुल,
किया रे दखिन चीरा रे।"

इस पर फूआ जबाब देती है कि :—[3]

"पियर बहतर हम पहिरबि, लापर परीछबि रे।
नाहि रातुल पहिरबि, नाहि रे दखिन चीरा रे।"

कोई कुलटा स्त्री अतरस का लहंगा, नीली रंग की साड़ी और लाल किनारीदार चोली पहिनकर रास्ते में जाती दिखाई पड़ती है :—[4]

"अतरस लहंगा, सबुज रंग साड़ी,
चोलिया जरद किनारी।
चोलिया पेन्हैली कुलटा कवन देई
बटिया चलेली अकेली।
हाइ अलबेला ना।"

गरीब स्त्रियाँ प्रायः झूला (देहाती जम्पर) पहिना करती हैं तथा साड़ी के स्थान पर 'लूगा' धारण करती हैं। साधारण मध्यम वर्ग की स्त्रियों का भी यही पहिनावा है। झूले में लाल, पीले या हरे रंग की 'तोई' भी चढ़ाई जाती है। नीचे का गीत देखिये :[5]

"आरे जाजिम झुलवा रे सियइहै,
रेसम चढ़इहैं सानाचाप।
ताहि बीचे जोवना रे छिपइहैं,
कुलवा रखिहै हमार।"

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ९५। २. वही पृ० ९४। ३. वही पृ० ११४। ४. वही पृ० १८०। ५. वही पृ० २०९।

इसमें जाजिम मोटा कपड़ा के भूले में रेशम की 'तोई' चढ़ाने की चर्चा है। अंगिया या चोली में 'बन्द लगने का भी वर्णन उपलब्ध होता है 'बन्द' का स्थान आजकल बटन न ले लिया है।[1]

"जब सोनरवा के लगली नोकरिया,
उठावे लगले कोठा बंगलवा रे।
सियावे लगले चोली बन्द अंगिया,
गढ़ावे लगले बाजुबन अंगिया रे।"

स्त्रियों को चुनरी और चोली पहिनने का बड़ा शौक जान पड़ता है क्योंकि इनका उल्लेख बारम्बार गीतों में पाया जाता है।[2] रेशम की चोली उन्हें अधिक प्रिय है। कपड़ों पर बेल बूटे, बनाने, विविध प्रकार की चिड़ियां को सूई से निकालने या काढ़ने का उल्लेख भी इन गीतों में है। एक गीत में साड़ी के आंचल पर दो मोर पक्षी और चोली पर चार चिड़िया काढ़ने बनाने की बात पाई जाती है।[4] जैसे :—

"कहवाँ बनावों गुजरि, चारि चिरइया,
कहवाँ बनावों दुई मोर जी।
अंगिया बनावहु चारि चिरइया,
अँचरै बनावहु दुइ मोर जी॥"

साड़ी के ऊपर शोभा के लिये पक्षियों को बनाने की प्रथा अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती है। महाकवि कालिदास ने भी पार्वती की साड़ी के किनारे को कलहंस से सुशोभित होने का वर्णन किया है। आज भी सुन्दर साड़ियों की कन्नी पर मोर, हंस आदि पक्षी 'काढ़े' गये पाये जाते हैं।

जब स्त्रियाँ अपनी ससुराल या मायके जाती हैं तब वे पालकी में बैठा दी जाती हैं। उस पर चादर डाल दी जाती थी। नीचे लिखे गीत में लाल पालकी के ऊपर नीले रंग का ओहार चादर डालने की चर्चा है।[4]

"लाली लाली डोलिया रे सबुजी ओहरवा
हो बाला जोरी से।
सइयां ले आवे अँगनवा हो,
बाला जोरी से॥"

पुरुषों के पहनावे के विषय में कहा जा सकता है कि धोती उनका परम प्रिय वस्त्र है। इसीलिये मंगल अथवा विदाई आदि के अवसर पर धोती ही उन्हें भेंट की जाती है। देहाती किसान धोती पहिनता है और कम्बल ओढ़ता है।[5] मध्यम वर्ग के लोग ओढ़नी के लिये रजाई (लिहाफ) और दुलाई का प्रयोग करते हैं। इन गीतों में भगवान् कृष्ण के पीताम्बर पहिनने का उल्लेख पाया जाता है।[6] परदेसी पति के पगड़ी बाँधने की चर्चा भी मिलती है।[7] विवाह के लिये जाने वाला दूल्हा सिर पर पगड़ी बाँध कर चलता है।

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २७९। २. वही पृ० ३१२, ३१९, ३४६, ३६८। भो० लो० गी० पृ० ११९, २१६। ३. वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं गजाजिनं शोणितबिन्दुवर्षि च। कु० सं० ५।६७। ४. भो० लो० गी० पृ० ४२५। ५. भो० लो० गी० पृ० २०९। ६. वही २६८। ७. वही १८३।

वह सेहरा भी पहनता है।[1] अंगरक्षा (अँगरखा) भी पहिना जाता है। इस प्रकार धोती, अंगरखा, चादर और पगड़ी पुरुष की पूरी पोशाक समझी जाती है।

बिछौना के प्रसंग में गद्दा, दरी, गलइचा (कालीन), जाजिम का उल्लेख मिलता है।[2] चन्दन के बने पलंग का वर्णन तो कितनी ही बार हुआ है। उस पलंग पर बिछौना के रूप में तोसक, चादर, कालीन और तकिया पाया जाता है।[3] चन्दन के पलंग में रेशम का ओरचना (अदवाहन) लगा हुआ है।[4]

प्रसाधन

देहाती दुनिया में सादगी का साम्राज्य विराजता है। वहाँ की स्त्रियाँ न तो 'लिपस्टिक' का प्रयोग जानती हैं और न 'नेल पालिश' से परिचित होती हैं। गाँव के वातावरण में जो सामग्री उपलब्ध होती है उसी से अपने शरीर का वे अलंकरण करती हैं। वे लम्बे-लम्बे केश रखती हैं जिनका प्रसाधन वे सरसों या नारियल का तेल लगाकर करती हैं।[5] एक गीत में एक स्त्री जिस कंघी से अपने बालों को सँवारती है वह सोने की बनी हुई है। हाथी दाँत और चन्दन की कंघी तो सुनने और देखने में आती है परन्तु सोने की कंघी लोक गीतों की दुनिया में ही पाई जाती है। माता पुत्री से पूछती है कि तुम कौन-सा तेल लगाकर किस कंघी से, किस मचिया पर बैठकर अपने केशों को सँवारती हो। पुत्री उत्तर देती है कि मैं नारियल का तेल लगाती हूँ, सोने की कंघी से, सोने की मचिया पर बैठकर बाल सँवारती हूँ :[6]

"आरे कथि केरा ककही, कथीय केरा तेल,
आरे कथिका मचियवा हो बेटी, झारेलू लाभी केस।
आरे सोने केरी ककही नरियर केर तेल,
आरे सोने का मचयिवा हो आमा, झारीले लामी केस।',

एक गीत में भगवती नामक स्त्री तीसी (अलसी) का तेल बालों में लगाती है :[7]

"तिसिया के तेलवा से भगवती माथावा रे बन्हवलों,
आरे तेलवे कचोरवे ए भगवत, पटिया रे बन्हवलों।"

एक अन्य गीत में कोई स्त्री तीसी का तेल बालों में लगाने से उसके 'लटियाने की चर्चा दुःख भरे शब्दों में करती है।

"आरे तिसिया के तेलवा से माथावा रे बन्हवलों,
से बारवा गइले रे लटिआई।"

इसी प्रकार सरसों का तेल लगाने का भी उल्लेख पाया जाता है।

शरीर को सुन्दर बनाने के लिये आजकल अनेक प्रकार के साबुन देह में लगाये जाते हैं। परन्तु देहातों में इसका अभाव है अतः स्त्रियाँ शरीर के प्रसा-

१. डा० उपाध्याय : भो ग्रा० गी० भाग१ पृ० १४३, १४७। २. वही पृ० १५७। ३. वही पृ० ३५८। ४. वही पृ० २०४। ५. वही पृ० १९५। ६. वही पृ० १९५। ७. वही पृ० २३५।

उबटन का प्रयोग करती हैं। उबटन बनाने के कई तरीके हैं। १. सरसों को तेल में भूनकर उसे सिल पर पीसकर देह में लगाते हैं। २. आटे में हलदी तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ मिलाकर उसे शरीर में मलते हैं। पहले का नाम उबटन है और दूसरे का बुकवा। स्त्रियाँ इन्हीं दोनों प्रसाधनों को शरीर में लगाकर उसे कोमल और कान्तिमान् बनाये रखती हैं। इनके लगाने से देह चिकनी हो जाती है। उबटन लगाकर सास को जगाने का यह वर्णन सुनिये :[१]

"अबटन लाई लाई सामु के जगवलों हो राम।
राउर बेटा होई गइले फकीरवा हो राम।"

आँखों में आजकल सुरमा लगाया जाता है परन्तु देहातों में आज भी रात में सोने के समय काजल लगाने की प्रथा है।[२] इससे नेत्र की ज्योति बढ़ती हैं। कभी-कभी आंखों में आँजन भी लगाया जाता है। सिन्दूर और टिकुली (बिन्दी) भारतीय स्त्रियों के सौभाग्य का सूचक है। इससे उनके शरीर की शोभा शतगुनी हो जाती है। कोई पुत्री अपने पिता से बिन्दी और सिन्दूर मँगाती है।[३]

"हमरो कन्त ना बाबा हो निहुरी,
बिन्दुली, सेन्दुर मँगाव हो।"

कोई स्त्री अपने मायके में अपने पति से बहन का परिचय देती हुई कहती है कि जिसके ललाट पर टिकुली चमक रही है वही मेरी बहन है :[४]

अरे जेकरा लिलारे झमाझमि बिजुली,
उहे प्रभु बहिना हमार ए।"

कहीं पर पैर में महावर और हाथ में मेंहदी लगाने का भी वर्णन पाया जाता है।

मनोरंजन

लोकगीतों में मनोरंजन के साधनों का उल्लेख बहुत कम मिलता है। केवल पासा खेलने और शिकार करने का वर्णन अवश्य पाया जाता है। पासा खेलने की प्रथा हमारे देश में बहुत प्राचीन है। वेदों में 'अक्ष' खेलने का भी उल्लेख हुआ है। मृच्छकटिक में भी द्यूत का बड़ा सुन्दर वर्णन उपलब्ध है। यही परम्परा लोकगीतों में भी पाई जाती है। कोई पुरुष अपनी भावी पत्नी की खोज में जाता है। वहाँ उसका भावी शाला पासा खेल रहा है। वह उसके आगमन का कारण पूछता है :[५]

"आरे पासवा खेलतरे सारवा पूछे एक बात।
आरे कइसे कइसे अइले ए दुलहा, एहि देशवा की ओर।"

इसी प्रकार पुत्र जन्म के एक गीत में लक्ष्मण जी के पासा खेलने का वर्णन पाया जाता है।[६]

"पासवा खेलन तुहु लखनजी अवरु लखन देवरु हो।
आरे रउरी भउजी बाड़ी गजओबरि, रउरा के बोलावहि हो।"

---

१. डा० उपाध्याय : ग्रा० गी० भाग १ पृ० २३५। २. वही पृ० २२७। ३. वही पृ० १५६। ४. वही पृ० १५०। ५. वही पृ० १६३। ६. लो० गी० पृ० ६२।

शिकार खेलने का उल्लेख भी गोधन के अनेक गीतों में मिलता है। बहन कहती है कि मेरा भाई शिकार खेलने के लिए गया है और मैं उसे असीस देती हूँ।[1]

"कवन भइया चलले अहेरिया, कवन बहिनी देली असीस हो ना।"

एक दूसरे गीत में नदी किनारे भाई के शिकार खेलने का वर्णन पाया जाता है।

—:०:—

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ८४

भोजपुरी लोगों का स्वभाव

भोजपुरी लोगों की कुछ निजी विशेषतायें हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल सभी में अपनी वैयक्तिकता है। इसलिये भोजपुरियों के विषय में बलिया के प्रसिद्ध कांग्रेसी कार्यकर्ता तथा कवि श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने ठीक ही कहा है कि :[1]

> "निरबल, निरगुन, निरधन, गँवार !
> अलगा आपन बोली विचार।
> कन कन में जेकरा क्रान्ति बीज,
> अइसन भोजपुर टप्पा हमार।"

भोजपुरियों के स्वभाव की सबसे पहली विशेषता उनकी वीरता, शौर्य और शक्ति है। भोजपुरी 'वीरभोग्या वसुन्धरा' का उपासक है। यह शक्ति में विश्वास रखता है। लाठी उसका अनन्य मित्र सहायक एवं सहचर है।

भोजपुरी में एक कहावत है "सौ पुराचरन ना एक हूराचरन' अर्थात् सौ पुरश्चरण (पूजा, पाठ के द्वारा दूसरे का नाश कराना) के द्वारा जो काम नहीं होता वह एक हूराचरन (लाठी की उपासना), हूरा लाठी के निचले मोटे भाग को कहते हैं, में सम्पन्न हो जाता है। इसी एक कहावत में भोजपुरियों के जीवन की फिलासफी छिपी हुई है।

भोजपुर की भूमि सदा से वीर प्रसू रही है। भोजपुरी सिपाही सदा से रणबाकुरें रहे हैं। मुगलों की सेनाओं में भोजपुरी जवान विशेष आदर से भरती किये जाते थे और अंग्रेजों के समय में भी भोजपुर उनकी सेनाओं के सिपाहियों के भरती का केन्द्र था। भोजपुरियों के कण-कण में क्रान्ति का बीज वर्तमान है : यह देश के प्रेम में जूझ कर मरने वालों की वह जमात है जिसने पीठ दिखाना कभी नहीं जाना है। सन् १८५७ की क्रान्ति की चिनगारी पैदा करने वाला मंगल पाण्डे इसी भोजपुर का निवासी था और उस समय में शाहाबाद जिले के जगदीशपुर ग्राम के निवासी कुँवर सिंह ने जो वीरता, साहस और त्याग दिखलाया वह इतिहास की उल्लेखनीय घटना है—अमर कहानी है।

> "सन् सत्तावन के बाति याद,
> सुनि कुँवर सिंह के सिंहनाद।
> सब भागि चलल वैरी समूह,
> छा गइल उहां घर घर विसाद।"[2]

राष्ट्रीय आन्दोलन के अवसरों पर भी भोजपुरियों ने अपनी वीरता एवं शौर्य का परिचय दिया है। सन् १९४२ ई० के अगस्त आन्दोलन में भोजपुरी प्रदेश विशेषकर बलिया जिला ने जो लोकोत्तर कार्य किया है उसका महत्व अगले इतिहासकार स्वर्णाक्षरों

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० १०। २. लेखक का निजी संग्रह।

में अंकित करेंगे। जब जब गाँधी जी ने स्वतन्त्रता संग्राम के लिए अपना बिगुल बजाया उस समय भोजपुरी लोगों की कतार पहली रही है :

"जब जब बापू कइलन पुकार।
रन में बाजल बिगुल तोहार।
सिर बाधि बाँधि कफनी आपन
हम छाड़ि दउरलीं घर दुआर।"
रन में हमार अगलो कतार।[1]

इसीलिए डाक्टर ग्रियर्सन ने भोजपुरियों की सच्ची प्रशंसा करते लिखा है कि : "शाहाबाद का जिला (जहाँ भोजपुरी लोग रहते हैं) अपने वीरगीतों एवं गाथाओं के कारण द्वितीय राजपूताना कहा जा सकता है। यह वीराग्रगण्या, वीरक्षत्राणी भगवती के रुधिर से सिंचित पवित्र भूमि है जिसने दुराचारी मुगलों से अपनी इज्जत को बचाने के लिए प्रत्यक्ष जल समाधि ले ली। इसे महोबा के परम प्रसिद्ध आल्हा और ऊदल की जन्मभूमि होने का गौरव प्राप्त है। बाल के काल में बहादुर परन्तु बूढ़े कुअरसिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध बगावत का झंडा ऊँचा किया था। यह युद्ध प्रिय वीरों की भूमि है अतः मथुरा के कृष्ण नहीं प्रत्युत अयोध्या के राम यहाँ उपास्यदेव हैं।"[2]

भोजपुरियों की दूसरी विशेषता उनका साहसी स्वभाव है। ये विषम परिस्थितियों का विचार न करते हुए अपने अलौकिक साहस के कारण सुदूर देशों की यात्रा करते हैं। भोजपुरी लोग कलकत्ता, रंगून, हांगकांग, फीजी, मारिशस और दक्षिण अफ्रिका आदि अनेक देशों में जीविकोपार्जन के लिए गये हैं और कितने लोग वहीं पीढ़ियों से बस गये हैं। पूरब देश की ओर, अर्थात् कलकत्ता, रंगून की ओर, व्यापार अथवा जीविका के लिये जाने का वर्णन ग्राम गीतों में अनेक बार आता है। एक गीत में एक स्त्री अपने पति से पूछती है कि यदि तुम 'पुरबी बनिजिया' को जावोगे तो मेरे लिये क्या लावोगे।

"आरे जो तुहु जइब रावल पुरुबि बनिजिया से,
हमरा के का तू ले अइब रावल मुनिया।"

और तो क्या, भोले बाबा महादेव जी भी 'पुरुबी बनिजिया' को जाते दिखाई पड़ते हैं और बारह वर्ष पर परदेश से लौट कर आते हैं :

"महादेव चलले हा पुरुबि बनिजिया,
बितेला महिनवा चारि रे।
बारह बरिस पर लौटे महादेवा,
भइले दुअरवा पर ठाढ़ रे।"

इनके साहसिक स्वभाव के कारण मारिशस और फीजी भी इनका घर बन गया है और वहाँ हजारों नहीं, लाखों की संख्या में भोजपुरी पाये जाते हैं।

भोजपुरियों की तीसरी विशेषता उनकी स्पष्टवादिता है। भोजपुरियों का स्वभाव सीधा सादा होता है। वे छल कपट से कोसों दूर रहते हैं। उनकी वेश-

१. लेखक का निजी संग्रह। २.ज० रा० ए० सो० भाग १८, १८८६ पृ० २११

भूषा सादी परन्तु स्वच्छ होती है। बात और व्यवहार में वे कृत्रिमता से अलग रहते हैं। इसीलिए वे स्पष्टवादी होते हैं।

डा० ग्रियर्सन ने भोजपुरियों की प्रधान विशेषताओं का वर्णन करते हुए बड़े पते की बात लिखी है :—

"भोजपुरी भाषा भाषी प्रदेश उस जाति का प्रदेश है जो अपने अन्य विहारी भाषा भाषी भाइयों से एक विलक्षण अलग स्वभाव की है। यह जाति भारतवर्ष की लड़ाक् जाति है। इनमें स्वभाव से ही सहज रूप में सदा चैतन्य रहने वाली जातीयता—जिसमें दोष बहुत ही नगण्य और गुण एवं योग्यता अत्यधिक मात्रा में विद्यमान रहती है—पायी जाती है ये युद्ध को केवल युद्ध करने मात्र के लिये प्यार करते हैं। ये समग्र भारत में फैले हुए हैं। प्रत्येक मनुष्य किसी भी संयोग अथवा कुयोग पूर्ण घटना से जो उसके सामने स्वतः आ उपस्थित होता है अपनी किस्मत आजमाने और अपनी जीविकोपार्जन करने के के लिये सदा प्रस्तुत रहता है। इस जाति का प्रदेश हिन्दुस्तान की सेना में भर्ती के लिये अच्छा स्थान है। पर साथ ही इसके ठीक विपरीत सन् १८५७ ई० की क्रांति में इस जाति ने प्रमुख भाग लिया था। भोजपुरी अपनी लाठी से उतना ही प्रेम करता है जितना आयरिश अपने डंडे से। बड़ी, मोटी और लम्बी हड्डियों वाला, लम्बा कद वाला भोजपुरी जवान अपनी मोटी लाठी के साथ सुदूर खेतों में लम्बे कदमों से टहलता हुआ सदा देखा जाता है। हजारों भोजपुरी ब्रिटिश उपनिवेश में बस कर वहाँ से धनी होकर लौटे हैं। हर वर्ष बहुत बड़ी संख्या में ये उत्तरी बंगाल में घूमते हैं और वहाँ अपनी जीविका ईमानदारी के साथ नौकरी करके उपार्जन करते हैं। कलकत्ता में इनसे कम वीर बंगाली इनसे सदा डरते रहते हैं। कलकत्ता इस जाति से भरा पड़ा है बंगाल के सभी जमींदार अपनी प्रजा (रियाया) में शान्ति स्थापना के लिए इन भोजपुरियों को अपने यहाँ सम्मान पूर्वक रखते हैं।[1]

ख. धार्मिक जीवन की झलक और धार्मिक विश्वास

भोजपुरी लोकगीतों में धार्मिक जीवन का भी चित्रण हुआ है। हिन्दुओं का जीवन ही धर्ममय है। तथापि आजकल की नयी शिक्षा ने तथा समय के प्रवाह ने पुरानी भावनाओं में बहुत बड़ा परिवर्तन कर दिया है। फिर भी यह प्रभाव अभी स्त्री समाज में नहीं पहुँचा है। आज भी स्त्रियाँ व्रत रखती हैं, पुत्रोत्पत्ति एवं कल्याण के लिए विभिन्न देवताओं की पूजा करती हैं। एवं भगवान् का भजन कर अपनी परलोक यात्रा का मार्ग प्रशस्त बनाती हैं। इन लोक गीतों में ऐसा ही चित्र उपलब्ध होता है।

गीतों में जिन प्रधान देवताओं की पूजा का उल्लेख मिलता है उनमें शिवजी सबसे अधिक प्रचलित हैं। शिवजी देवता के रूप में ही चित्रित नहीं किये गये हैं बल्कि वे एक साधारण भोजपुरी पति के रूप में भी चित्रित हैं। भोजपुरी

शिव

में शिवजी के विवाह के गीतों की संख्या बहुत हैं। वे एक दूल्हे के रूप में विवाह करने के लिये जाते हैं। परिछावन के समय इनकी वीभत्स आकृति को देखकर पार्वती की दुःखी माँ कहती है कि मैं ऐसे गरीब

एवं कुरूप वर से पार्वती का विवाह नहीं करूँगी चाहे वह अविवाहित हों रह जाय :

"अइसन तपसिया से गउरा ना बिहबि,
चाहे गउरा रहिहें कुँवार ।"

इतना ही नहीं शिवजी व्यापार के लिए 'पुरुबी वनिजिया' को भी जाते हैं और किसी बंगालिन बिटिया से व्याह कर घर लौटते हैं, शिव जी के गीतों से आशय केवल इतना ही है कि ये भोजपुरी समाज में इतने प्रसिद्ध एव जनप्रिय हो गये हैं कि धर्म के उच्च क्षेत्र से (देवता कोटि से) उत्तर कर समाज में एक साधारण व्यक्ति के रूप में आ गये हैं ।

जहाँ धर्म के क्षेत्र में शिवजी की चर्चा है वहाँ वे उसी भाव भक्ति से पूजित हैं । आज भी भोजपुरी प्रदेश के प्रत्येक गांव में एक न एक शिव मन्दिर अवश्य मिलेगा । हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रयी प्रसिद्ध है । आजकल के प्रचलित एवं जनप्रिय धर्म में इन्हीं तीनों देवताओं की प्रधानता है । परन्तु इनमें से भी शिव का ही वर्णन इन गीतों में अधिक पाया जाता है । किसी भक्त स्त्री के शिवमदिर में जाने का नीचे लिखा वर्णन कितना सुन्दर है :[1]

"चल देखि आई के लाल गली । टेक ।
केहु चढ़ावेला अक्षत चंदन ।
केहू चढ़ावेला सुन्दर चुनरी । टेक ।
राजा चढ़ावेला अच्छत चन्दन,
रानी चढ़ावेली सुन्दर चुनरी । टेक ।
चल देखि आई भोला के लाल गली ।"

गंगा स्नान कर जब स्त्रियाँ घर लौटने लगती हैं तब समीप के शिव मन्दिर में अवश्य ही जल चढ़ाती हैं । संभवतः वे समझती हैं कि भगवान् शिव 'आशुतोष' हैं । न मालूम कब प्रसन्न हो जायेंगे और हमारी अभिलाषाओं की पूर्ति कर देंगे ।

सूर्य

शिव के बाद सूर्य पूजा का उल्लेख पाया जाता है । स्त्रियाँ घर में अथवा किसी तालाब में जब स्नान करती हैं तब स्नान के पश्चात् :

"एहि सूर्य ! सहस्रांशो ! तेजोराशे ! जगत्पते ! ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर ! ॥

इस श्लोक का उच्चारण कर सूर्य को अर्घ देती हैं । जो स्त्रियाँ अनपढ़ हैं वे इस श्लोक के भ्रष्ट रूप का उच्चारण कर जल देती हैं ।

जैसे—"एक सुरुज सहस्सर नाम तेजोराज जगत्पत्यांग आदि ।

जैसा कि पीछे कहा गया है कि स्त्रियाँ पुत्र की उत्पत्ति के लिये जो षष्ठी माता का व्रत रखती हैं वह वास्तव में सूर्यपूजा का व्रत है । इसीलिए यह व्रत 'सूर्य षष्ठी व्रत' के नाम से भी प्रसिद्ध है । इस दिन स्त्रियाँ व्रत रखती हैं और

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गीत भाग १ पृ० ३६८ । २. गौरीशंकर उपाध्याय : व्रत चन्द्रिका पृ० १३३ ।

दूसरे दिन सबेरे उठकर गंगा अथवा किसी नदी के किनारे सूर्योदय के पूर्व पानी में जाकर खड़ी हो जाती हैं। जब सूर्य भगवान् उदय होते हैं तब वे दूध से उनको अर्घ प्रदान करती हैं। फल और पकवान चढ़ाती हैं। छठी माता के गीतों में सूर्य से कोई भक्तिन प्रार्थना कर रही है कि हे भगवन्! आपको अर्घ्य देने के लिए मैं कब से खड़ी हूँ। खड़े रहने से मेरा पैर थक गया है और कमर में पीड़ा हो रही है। अतः हे सूर्य भगवन्! शीघ्र उदय लीजिये जिससे आपको अर्घ्य दूँ।[1]

"गोड़वा दुःखइले रे डांडव पिरइले,
कबसे जे बानि हम ठाढ़।
आरे हाली हाली उगए अदितमल,
अरघ दिआऊ।"

उस समय सूर्य की पूजा के समय विभिन्न वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है, जैसे फूल, फल, पकवान्न। ग्रामीण कवि कहता है :[2]

"फलवा फूलवा लेले मालिनी बिटिया ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल, अरघ दिआऊ।
दूधवा, घिउवा लेले गवालिनी बिटिया ठाढ़।
धूपवा, जलवा रे लेके बभना बा रे ठाढ़।
आरे हाली हाली उग ए अदितमल अरघ दिआऊ।"

एक गीत में सूर्य के स्वरूप की कल्पना बड़ी सुन्दर की गई है। भगवान् सूर्य खड़ाऊँ पर चलते हैं, उनके माथे में तिलक हैं और उनके हाथ में सोने की छड़ी है। वे धीरे-धीरे उदय ले रहे हैं। यहाँ रूपालंकार के द्वारा उनके रूप का उल्लेख अच्छा हुआ है। सूर्य के उदय के पहिले आकाश में निकलने वाला अरुण ही खड़ाऊँ है और सोने के समान चमकने वाली किरनें ही सोने की छड़ी हैं :[3]

"आरे गोड़े खड़उँवा ए अदितमल, तिलका लिलार।
आरे हथवा में सोबरन साठी ए अदितमल, अरघ दिआऊ।
एक आमाके कोरा सुतले अदितमल, भोरे होगइले बिहान।"

पुत्र प्राप्ति की कामना करने वाली कोई स्त्री सूर्य को अर्घ्य देने के लिए जाती हुई कहती है कि मैं अधिक पुत्र नहीं चाहती, केवल पाँच पुत्रों को लेकर ही मैं सन्तुष्ट हो जाऊँगी। वह अर्घ्य के लिये अक्षत और ठंडा जल लिये हैं :[4]

"खोंइछा अछतवा गडुवा जुड़ पानी।
चलली कवन देई अदित मनावे।
थोरा नाहीं लेबों आदित बहुत ना मांगिले।
पाँच पुतर आदित हमरा के दिहितीं।"

भगवान् कृष्ण का वर्णन इन गीतों में बहुत आता है। जिस प्रकार से सूरदास जी ने श्रीकृष्ण के केवल बाल्य रूप का वर्णन किया है उसी प्रकार से इन

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गीत० भाग १ पृ० २५२। २. वही : पृ० २५२। ३. वही : पृ० २५२। ४. वही : पृ० २४६।

कृष्ण

गीतों में भी हम श्रीकृष्ण को यशोदा के पुत्र के रूप में चित्रित पाते हैं। कभी तो ये किसी गोपी का रास्ता रोक लेते हैं, कभी दूसरी से छेड़खानी करते हैं और तीसरी से 'गोरस' माँगते हैं। किसी गोपी के दही बेचने जाते समय कृष्ण के उत्पात का निम्नलिखित वर्णन देखिये :[1]

"आरे ले लिहलो सिर मटुका हो सँवार लिहली केस।
दहिया बेचन राधे चलली हो ओही जमुना के देस।
आरे दही मोरा खइलें हो कान्हा, मटुका दिहलें हा फोर।
बहियाँ मोर मुरुकवले हो, मनवा बसेला हो मोर।"

कृष्ण के 'उत्पात' का एक दूसरा दृश्य देखिए। कोई गोपी कहती है कि ऐ कृष्ण ! तुम्हारे दुष्ट वचनों को सुनकर मैं कहाँ जाऊँ ? तुम रास्ता रोक लेते हो और चलने नहीं देते।[2]

"कहाँ चलि जाई हो कन्हैया बोली तोरी।
राह बाट मोहि रोकेलें हो, बोली बोलेलें अन्टियारी।

गोपियाँ कृष्ण के साथ क्रीड़ा करती हुई भी उनके ईश्वरत्व को नहीं भूलतीं। इस भाव की व्यंजना 'मनवा बसेला हो मोर' के द्वारा गोपियों ने की है। लोकगीतों में वर्णित कृष्ण महाभारत के कृष्ण नहीं बल्कि भागवत के ब्रज के कृष्ण हैं। वे द्वारिका के राजमहल में निवास करने वाले नहीं प्रत्युत गोकुल के गांव में विचरने वाले कृष्ण हैं।

स्त्रियों की भक्ति और श्रद्धा जितनी देवियों के प्रति है उतनी संभवत: देवताओं के प्रति नहीं। यह स्वाभाविक भी है। जब घर में कोई लड़का बीमार हुआ, कोई

शीतला माता

अपशकुन हुआ, कोई आपत्ति आई, उस समय भगवती, काली माई, देवी जी तथा कितनी ही अन्य देवियों की मनौती प्रारम्भ हो जाती है। देवी की कृपा से संकट टल जाने पर उनकी पूजा बड़े धूमधाम से होती है। शीतला माता या शीतला देवी इन देवियों में प्रधान हैं। जब घर में किसी बालक के चेचक निकल आती है, वह पीड़ा के मारे छटपटाने लगता है, कष्ट से चिल्लाने लगता है, उस समय पुत्रवत्सला माँ अपनी प्राणप्यारी संतति के कष्ट को दूर करने के लिये शीतला माता की प्रार्थना करती है। चेचक के निकलने पर उसकी शान्ति के लिये कोई दवा नहीं की जाती। ऐसा विश्वास किया जाता है कि शीतला माता की प्रसन्नता से बालक निरोग हो जायेगा।

पीछे उल्लेख किया जा चुका है कि शीतला माता का वाहन गधा है, परन्तु इन गीतों में घोड़ा का वाहन होना लिखा है।[3] शीतला का मन्दिर जल के बीच में बतलाया गया है और उसका दरवाजा अत्यन्त छोटा है जिसमें मोती जड़े हुए हैं।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ४१९, २०। २ वही : पृ० ४२०, २१। ३. वही : भाग १ पृ० २६५।

चारु ओरिया जल थल, बीचवा गंभीरवा ए देवी हो।
ताहि बीच मन्दिलवा तोहार, दु:खवा हर देवी हो।
ऊँच रे मन्दिलवा के नीचा रे दुअरिया हो।
मइया मोती जड़ल बा केवार।"[1]

शीतला माता का नीम की डाल पर झूला लगाकर झूलने का वर्णन भी पाया जाता है। नीम का वृक्ष ही उनका प्रिय निवास स्थान है। इसीलिये संभवतः चेचक के पीड़ित व्यक्ति को नीम की पत्तियों को झल कर हवा करते हैं। चेचक से प्रचण्ड आक्रमण से पीड़ित बालक की रक्षा के लिये कोई माता शीतला देवी का आवाहन कर रही है:[2]

"केकरा आँगनवा ए मइया, दानावा मड़ुववा हो।
केकरा आँगनवा नीमी गाछि, जोगिया मइया बिलमलि हो।"

वह देवी की प्रार्थना करती हुई आंचल फैलाकर कहती है कि ए माता! मेरे बालक को भिक्षा दीजिये अर्थात् उसके कष्ट का निवारण कीजिये।[3]

"पटुका पसारि भीखी मांगेली बलकवा के माई।
हमरा के बलकवा भीखी दीं।
मोरी दुलारी हो मैया, हमरा के बलकवा भीख दीं।"

शीतला माता से सभी लोग बहुत डरते हैं। यह भयंकर देवी समझी जाती हैं। अतः इनके नियमों का पालन अत्यन्त कड़ाई के साथ किया जाया है। जब बालक का रोग शान्त हो जाता है तब शीतला की चाँदी या सोने की प्रतिमा बनाकर उनकी पूजा की जाती है।

माली शीतला देवी का परम भक्त समझा जाता है। अतः देवी की कृपा अथवा अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उसकी सहायता लेनी आवश्यक है। शीतला हिन्दू धर्म की एक विशिष्ट देवी हैं, जिनका प्रभाव स्त्रियों के क्षेत्र में बहुत अधिक है।

तुलसी

तुलसी के पौधे से सभी परिचित हैं। अपनी उपयोगिता एवं पवित्रता के कारण इस पौधे ने भी देवी के महान् पद को प्राप्त कर लिया है। घर-घर में तुलसी देवी की पूजा होती है। संकट पड़ने पर इनकी मनौती मनाई जाती है और इनकी दया से विपत्ति टल जाने पर इन पर प्रसाद चढ़ाया जाता है। कार्तिक मास में तुलसी पूजन का विशेष महत्व है। इस मास में स्त्रियाँ तुलसी जी को जल चढ़ाती हैं और सन्ध्या को दीपक जलाकर इनकी आरती करती हैं। तुलसी का पत्ता आरोग्यवर्द्धक है, ज्वर-नाशक है। संभवतः इसीलिए भगवान् के चरणामृत में इसका उपयोग होता है।

गंगाजी

गंगा जी की पवित्रता एवं आरोग्यवर्द्धकता हिन्दू समाज में निःसंदिग्ध है। इसीलिये इसमें स्नान करना लाभदायक ही नहीं पुण्यदायक भी माना जाता है। स्त्रियाँ प्रातःकाल में झुण्ड की झुण्ड गंगा स्नान के लिये जाती हैं और गंगा की महिमा में गीत गाती हुई घर लौटती हैं। उनका विश्वास है कि गंगा में नहाने से

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २६३। २. वही : पृ० २६२। ३. वही : पृ० २७०।

पाप जाता रहता है और पुण्य की प्राप्ति होती है। कोई स्त्री अपनी सखी से गंगा स्नान करने के लिये कहती हुई उसे बतलाती है कि :

"मीलहु सखिया रे मीलहु सहेलिया, आरे सुनु सखिया चलु देखे गंगाजी के लहरिया।
गंगा नइहला से पाप कटित होइहैं निरमल होइहैं देहिया।
आरे सुनु सखिया चलु देख गंगाजी के लहरिया।"

कार्तिक मास में गंगा जी में दीपक जलाने का माहात्म्य है। अतः बहुत सी स्त्रियाँ ऐसा करती हैं। गंगाजी को पिंडदान भी दिया जाता है जो हमारे यहाँ की एक खास प्रथा है।

देवीजी दुर्गा

नीच जातियों में देवी का बड़ा प्रभुत्व है। चमार और दुसाध जाति के लोगों में जब कोई बीमार पड़ता है तब उसकी दवा नहीं की जाती। बल्कि उस जाति का बूढ़ा पुरुष, जो तन्त्रमन्त्र जानता है, बुलाया जाता है। वह कुछ प्रारम्भिक पूजा पाठ करके देवी जी का आवाहन करता है और उनकी स्तुति में गीत गाता है जिसे 'पचरा' कहते हैं। इस 'पचरा' को गा-गा करके ही वह रोगी को निरोग कर देता है। यह ध्यान रखना चाहिए कि ये देवी जी शीतला माता से नितान्त भिन्न हैं। एक गीत में इन्हें 'दुर्गा' के नाम से स्मरण किया गया है।[1] जैसेः—

"जागु-जागु देविया जागु 'दुरुगवा' जागु दिनवानाथ हो।
जागु-जागु इहंवा के डिहऊ, तोहरे कइलीं बानी आस हो।"

भगवती का निवास स्थान 'कवरू देस' कामरूप, आसाम प्रान्त का एक जिला बतलाया गया है। भक्त के स्मरण करने पर देवीजी कामरूप से चलती हैं। कलकत्ते में वहां की काली जी से भेंट करती हैं और तब भक्त के घर आती हैं।[2] प्राचीनकाल में कामरूप 'शाक्त सम्प्रदाय' का प्रधान स्थान था। इसी तथ्य का उल्लेख इस पचरे में है। भगवती का वाहन सिंह है परन्तु एक गीत में उनके पालकी पर चढ़ने का वर्णन किया गया है।[3] उनकी पालकी लाल है जिसपर हरे रंग का परदा लगा है और उसे बत्तीस कहार ढोते हैं।[4] देवी को आवाहन करने के लिए हवन किया जाता है। इस कार्य में आम के पल्लव, गाय का घी और पलाश की लकड़ी का उपयोग होता है। हवन करने वाला भक्त देवी से कहता है कि :[5]

"आरे आम के पलउआ ए देवी, गइया केरा घीव हो।
आरे पारास के लकड़िया ए देवी, करीलें आहुतिया हो।"

देवी को अड़हुल (एक प्रकार का लाल फूल), दवना और महुआ के फूल बहुत पसन्द हैं। अतः उनकी पूजा में इन फूलों का उपयोग विशेष रूप से किया जाता है। जिस घर में उनकी पूजा की जाती है उसे शुद्ध मिट्टी से (यदि गंगा की मिट्टी हो तो अधिक उत्तम) लीप दिया जाता है और पूजा में गंगा जल का ही प्रयोग करते हैं। एक भक्त देवी से प्रार्थना करता है, कहता है कि पूजा के

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३६० । २. वही : पृ० २५६, ३४१ । ३. वही : ० । ४. वही : पृ० ३६१ । ५. वही : पृ० ५५६ ।

निमित्त आपका घर लीपते-लीपते मेरा हाथ घिस गया, फिर भी आप प्रसन्न नहीं होतीं :[1]

"आरे गंगा जी गंगवटि माटी न अवरू गंगा जल हो।
ए मइया हाथ खियइलें घर लिपइत, त रउरा चिते छाया नहीं हो।"

देवी जी के जलपान (नाश्ता-कलेवा) के लिये चीनी का लड्डू और गर्म दूध रखा हुआ है भक्त देवी से आकर उन्हें ग्रहण करने की प्रार्थना करता है। भक्त का आर्त्तनाद सुनकर देवी जी आती हैं और उसे नीरोग कर देती हैं।[2]

इस प्रकार 'पचरा' गाकर और दुर्गाजी को प्रसन्न कर रोगी को नीरोग करने की प्रथा अब भी विद्यमान है।

भगवान के रूप में राम

लोक गीतों में जहाँ कृष्ण का चित्रण बाल गोपाल के रूप में किया गया है वहाँ रामचन्द्र का वर्णन भगवान् या ईश्वर के रूप में उपलब्ध होता है। राम का नाम विस्मरण न होने की प्रार्थना करता हुआ भक्त कहता है कि :[3]

"रउरा राम जी हरी, रउरा राम जी हरी।
रउरा नाहीं बिसरीं, घंटा घरी।"

एक दूसरे गीत में भगवान् का नाम लेने का उपदेश लोगों को दिया गया है।[4] राम नाम लेने से स्वर्ग की शीघ्र ही प्राप्ति होती है। कलियुग में हरि के नाम-कीर्तन की बड़ी महिमा है।

"कलौ तत् हरिकीर्तनात्।"

नीचे लिखे गीत में संसार की मोह-माया में फंसने वाले मन को लताड़ बतलाई गई है तथा भगवान् का कीर्तन न कर व्यर्थ में ही जीवन गँवाने पर पश्चाताप प्रकट किया गया है।

"ए मनवा पापी भजन कब करबे।
जिनगी बितानी भजन कब करबे।"

राम नाम का भजन न करने पर क्या दुर्दशा होगी उसे भी सुनिये :[5]

"धोबी का घरे गदहा होइबे छीलल घास नाहीं पइबे।
देस देस के नरक बटोरबे ले घटिया पहुँचइबे।"
बालापन में खेलि गँवइबे, तरुना में जोरू रमइबे।
बिरिधा में तन काँपन लागी समुझि समुझि पछतइबे।"

इस प्रकार राम नाम की महिमा का वर्णन इन भजनों में पाया जाता है। साधारणतया रामरूप में ही भगवान् का स्मरण किया गया है।

स्त्रियों का जीवन व्रतमय है, यदि यह कहा जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। कभी भाई की मंगल कामना के लिए, कभी पुत्रोत्पत्ति और कभी पति के स्वास्थ्य

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० गी० भाग १ पृ० ३५७। २. वही : पृ० ३६४। ३. वही : भाग १ पृ० ३६६। ४. वही : पृ० ३६८। ५. ३७०।

व्रतों का विधान

लाभ के लिए व्रत एवं उपवास स्त्रियाँ किया करती हैं। जब लड़कियाँ कुँवारी रहती हैं तो भाई की शुभ कामना के लिये 'पिड़िया' का व्रत करती हैं। व कार्तिक मास में पूरे मास भर 'पिड़िया' लगाती हैं और रात्रि में कथा को बिना सुने हुए भोजन नहीं करतीं। अन्त में मास की समाप्ति पर 'पिड़िया' की पूजा के लिये मोरंग से लड्डू और चिउड़ा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि यह तुम्हारी बधाई के लिये कर रही हूँ।[1]

"मोरंग देसे तुहु जइह ए कवन भइया,
ले अइह ए भइया मोरंगी लड्डुइया हो।
लड्डुआ चिउरवा से हम पूजबि पिड़ियवा हो।
तोहरी बधइया भइया पिड़िया बरतिया हो।"

इसी प्रकार से षष्ठी माता का व्रत पुत्र की प्राप्ति एवं उसके मंगल के लिए स्त्रियाँ करती हैं। इस व्रत में स्त्रियाँ पंचमी एवं षष्ठी इन दोनों दिनों उपवास रखती हैं और सप्तमी के प्रातःकाल सूर्य भगवान् को अर्घ्य देने के पश्चात् ही अन्न ग्रहण करती हैं। स्त्रियों में यह व्रत प्रचलित है और सभी सन्तानहीन युवती स्त्रियाँ इसे नियमपूर्वक करती हैं। इन व्रतों के अतिरिक्त एकादशी, रविवार आदि व्रतों का उल्लेख इन गीतों में अनेक बार हुआ है।

लोक गीतों में धार्मिक विश्वास

लोक गीतों में जनता के धार्मिक विश्वास का चित्रण पाया जाता है। ग्रामीण जनता कर्मवाद अथवा भाग्यवाद में पूर्ण विश्वास रखती है और जगत् में जो विषमता दीख पड़ती है इसका मूल कारण भाग्य को ही समझती हैं। गीतों में जनता के इस धार्मिक विश्वास का बार-बार उल्लेख किया गया है।

लोक गीतों में विविध देवताओं की पूजा का वर्णन पाया जाता है कहीं पर सूर्य की स्तुति की गई है तो कहीं तुलसी माता की। शीतला देवी और गंगा माता का वर्णन अनेक बार हुआ है। इन गीतों में जिस देवता की भी स्तुति की गई है उसे ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है।

रविवार व्रत का पूजन करती हुई स्त्रियाँ 'अवतार देवता' को सबसे बड़ा देवता मानती हैं और उनकी पूजा में त्रुटि होने पर बहुत डरती हैं। राम नाम की महिमा का वर्णन करता हुआ एक भक्त कहता है कि :

"मोरा तो राम नाम धन खेती।"

अर्थात् राम का नाम ही मेरा सब धन है। काली माता को स्त्रियाँ बड़े आदर की दृष्टि से देखती हैं और उन्हें सर्वश्रेष्ठ देवता मानती हैं। कोई भक्तिन कहती है कि ए माता! प्रसन्न होवो क्योंकि तुम्हीं सबसे बड़ी देवता हो।[2]

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ६५। २. लेखक का निजी संग्रह।

"खुस होख ए मइया खुस होख हो।
तुही बाड़ सबसे बड़की देवता नु हो।"

इस गीत में देवी (काली माता) को सबसे बड़ा देवता कहा गया है।

लोक गीतों में बहु देवोपासना का धार्मिक विश्वास मिलता है। इन गीतों में वर्णित देवता बहुधा शिव, सूर्य, राम, कृष्ण, शीतला और काली हैं।

लोकगीतों में कहीं-कहीं रहस्यवाद की बड़ी सुन्दर झलक दिखाई पड़ती है। भक्ति भाव से अपनापन भूलकर जब भक्त अपने हृदय के भावों को प्रकट करता है तब जिस कविता का उद्गम होता है वह काव्यकला और दार्शनिक दोनों दृष्टियों से महत्वपूर्ण होती है। रहस्यवाद में प्रयुक्त प्रतीक सांसारिक होते हैं परन्तु उनमें अभिव्यक्त भाव पारलौकिक होता है। इन गीतों में रहस्यवाद की छटा भी देखने को मिलती है।

इस गीत में एक साधिका कह रही है कि मैं अपने ओसारे (बरामदे) में बेखबर सो रही थी कि 'गुरु जी' ने मुझे जगाया और गवन के नजदीक होने की सूचना दी। यह गवना सांसारिक गवना न होकर भगवान् रूपी प्रियतम के पास जाने की सूचना है। जीव संसार के रमणीय पदार्थों या विषयों में इतना लगा हुआ है कि उसे गन्तव्य स्थान भी भूल गया है। वह यह नहीं जानता कि यह जन्म केवल आगे बढ़ने के लिये एक सोपान मात्र है, यह टिक कर आनन्द मनाने की जगह नहीं है। ऐसी गाढ़ी अज्ञान निद्रा से गुरु के अतिरिक्त और कौन जगा सकता है। गुरु की शरण में जाने से ही साधक का निस्तार है :[1]

"सूतल रहलों ओसरवा हो, गुरु जी दिहल जगाई।
गवना के दिन नियरा गइले हो, मन गइल घबराई :
गुरु जी हो गुरु जी पुकारिलें हो, गुरु जी सरन तोहार।
रचि एक दोहिती गुरु हुकुमवा हो, धउरल करि अइतों दान।
कोठिला भरल बाटे चउरा हो, गुरुजी कइ अइतों दान।
रचि एक दिहिती हुकुमवा हो, गुरुजी कइ अइतों दान।"

एक दूसरे भजन में कोई गुरु संसार में दिन रात मस्त रहने वाले किसी सांसारिक पुरुष से पूछ रहा है कि तुम अपना तम्बू गिराकर कहाँ जावोगे? अपना ठिकाना तो बतलाओ – यहाँ आकर तुमने सांसारिक प्रपंच का फैलाव तो कर दिया, परन्तु तुम्हें अपने गन्तव्य स्थान का कुछ भी पता नहीं है कि तुम्हें कहाँ जाना होगा। तुमने बबूर का पेड़ क्यों लगाया, आम का पेड़ लगाना चाहिए था। हरि का भजन करना चाहिए था तभी तो तुम्हें अमृत फल प्राप्त होता। क्या तुम नहीं जानते कि इस लोक में भगवद् भक्ति के बिना अमरत्व की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रेम ही जीवन का सार है। यह प्रेम के बिना मानव हृदय उसी प्रकार सूना है जिस प्रकार घनघोर अँधियारी रात। प्रेम नगर के हाट में हीरा और रत्न बिकता है। चतुर लोग तो सौदा करके अपना जीवन सफल बनाते हैं। परन्तु मूर्ख लोग खड़े-खड़े पछताते हैं:[2]

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४४ [भूमिका-पृष्ठ भाग] २. भो० ग्रा० गीत भाग १ पृ० ४५ भूमिका।

"तम्बुवाँ गिराइ कहाँ जइब हो कह आपन ठेकान।
काहे के लगवल बबुरिया हो लगवत तू आम।
अमिरित करत भोजनिया हो भजत हरिनाम।
प्रेम बाग नहिं बौरे हो प्रेम न हाट बिकाय।
बिना प्रेम के मनुजवो हो, जस अँधियरिया राति।
प्रेम नगर की हटिया हो हीरा रतन बिकाय।
चतुर-चतुर सौदा करि गयो हो, मूरख ठाढ़ पछिताय।"

इस गीत में तम्बू गिरने से सांसारिक जीवन की जो उपमा दी गई है वह बड़ी मार्मिक और उपयुक्त है। सांसारिक जीवन की समाप्ति कर यह जीव कहाँ जायगा इसका कुछ भी पता नहीं क्योंकि कर्मों के अनुसार जीवन की गति भिन्न हुआ करती है। पूरा भजन रहस्यवाद के गहरे रंग में रंगा हुआ है।

एक अन्य गीत में नैहर (मायके) से नाता तोड़कर पति के पास जाने का जो वर्णन दिया गया है वह भी रहस्यवाद की परम्परा में ही अन्तर्मुक्त है। यहाँ आत्मा की कल्पना स्त्री रूप में की गई है और परमात्मा को पति माना गया है। यह संसार ही नैहर है गुरु की कृपा से ईश्वरोन्मुख होने का ही नाम गवना है। गुरु जी की कृपा ही वह डोली (पालकी) है जिस पर चढ़कर यह जीवन अपने प्रियतम से मिलने जाता है। इस कमनीय कल्पना को हिन्दी भाषा में कबीर और जायसी इत्यादि रहस्यवादी कवियों ने खूब अपनाया है। नीचे लिखे गीत में भी रहस्यवाद का उद्‌घाटन है।[1]

"मोरे नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
काचे-काचे बँसवा के डोलिया बनवले,
ताहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

इस भजन में आत्मा रूपी प्रिय का परमात्मा रूपी प्रियतम से मिलने का जो रूपक खींचा गया है वह बड़ा ही मार्मिक और सुन्दर है।

आत्मा को नारी मानकर परम प्रियतम परमात्मा के वियोग में उसके तड़पने का वर्णन कितना भावपूर्ण हुआ है।[2]

"मूल सब्द सुधि सुनइत जाग री आतम नारी।
नैहर नेह बिसरि गेला गुरु सुरती ससुरारी।
पूरन प्रेम प्रगट भइ डर उपजेला अनुराग।
भूखन भवन न भावे नैनन्ह नींद न लाग।
संग सहेलरि सकुचित संगति सवति सोहाय।
बिरहिन बिरह बिआकुल निसि बासर अकुलाय।
बिलपति, कलपति, रोअति, झंखति, झूर्खति सोइ।
औषध दरस-दरस बिनु, व्याधि बिनास न होई।"

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४५ [भूमिका-पृष्ठ भाग] २. दुर्गाप्रसाद सिंह भो० लो० गी० पृ० ३।

यहाँ मूल शब्द के सुनते ही आत्मा रूपी स्त्री के जागने, संसार रूपी मायके को भूलकर ससुराल (परलोक) के स्मरण होने का वर्णन किया है। उस प्रियतम के वियोग में यह आत्मा रोती, कलपती और बिलपती दिखलाई गई है। जायसी ने भी उस प्रियतम के विरह में सारी सृष्टि के दुःखी होने का वर्णन किया है।

लोक गीतों में भाग्यवाद की अमिट रेखा खिंची दीख पड़ती है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता की अभिव्यक्ति इन गीतों में बड़ी मार्मिक रीति से हुई है।

कर्मवाद

इनमें कर्म और भाग्य शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। कोई बाल विधवा स्त्री अपने दुःखों का वर्णन अपने पिता से करती है। वह उत्तर देता है कि सोनपुर के मेले में मैं तुम्हारे भाग्य को (अन्य वस्तुओं की भाँति) बदल दूँगा। इसपर वह उत्तर देती है कि ए पिता जी ! कांसा और पीतल तो बदला जा सकता है परन्तु मेरा कर्म (भाग्य) कैसे बदला जा सकता है :[1]

"बेटी लागे देहु हाजीपुर के हटिया, करम तोर बदलि देबों ए राम।
बाबा काँसावा पीतर सब बदली, करम कइसे बदलीं ए राम।"

हिन्दू समाज में कर्मवाद का सिद्धान्त अपना प्रबल प्रभुत्व जमाये हुये है। साधारण जनता में यह विश्वास प्रबल रूप से फैला हुआ है कि जो जैसा करता है वैसा ही उसे फल मिलता है। किसी मनुष्य को अपनी करतूत पर पछताते हुए देखकर लोग प्रायः यह कहा करते हैं कि :

"जस करनी तस भोगहु ताता।
नरक जात अब का पछिताता।"

तुलसीदास जी ने लिखा है कि संसार कर्म-प्रधान है जो जैसा करता है उसका फल उसे अवश्य ही मिलता है।

"कर्म प्रधान विस्व रचि राखा।
जो जस करै सो तस फल चाखा।"

तुलसीदास जी की चौपाई लोगों के जीवन का महामन्त्र है। इसी की प्रतिध्वनि हमें उनके गीतों में भी मिलती है। एक गीत में, जिसका उल्लेख हमने पीछे भी किया है, कोई बहन अपने भाई से ससुराल के कष्टों का निवेदन करती हुई कहती है कि ए भइया ! दुःखों की इस गाथा को तुम अपने मन में रखना, किसी से भी मत कहना। मेरे कर्म में जैसा लिखा होगा वैसा फल तो मुझे भोगना ही पड़ेगा।[2]

ई दुःख तुम भैया मनही में राखेउ रे ना।
भैया करम लिखा तस भोगब रे ना।

शास्त्रकारों ने भी लिखा है कि :

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।

"कर्म की रेखा अमिट है, उसको मिटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।"[3] इस भाव का वर्णन एक गीत में बड़ा सुन्दर हुआ है। गोपीचन्द के जन्म के अवसर

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २११। २. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ३५७। ३. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० ३५७।

पर जब ज्योतिषी आता है और वह फल बतलाता है कि यह जोगी हो जायगा तब उसकी माता क्रोधित होकर कहती है कि तुम्हारे पोथी-पत्रे में आग लग जाय। तब ज्योतिषी उत्तर देता है कि कागज को भी फाड़कर फेंका जा सकता है परन्तु कर्म को कौन मेटने वाला है। वह तो पत्थर की लकीर के समान है जो कभी नष्ट नहीं की जा सकती।[1]

"कागज होइ राजा फारि के फेकौं,
कर्म न मेटो जाय हो राम।"

फिर ज्योतिषी कहता है कि ब्रह्मा ने जो कुछ लिख दिया है भला उसे कौन मिटा सकता है :[2]

"लिखने वाले लिखि गये साईं,
को है मेटन हार हो राम।"

शिव जी भी भावी (भाग्य) के चक्कर में पड़ जाते हैं, परदेस जाते हैं और दूसरा विवाह करके घर लौटते हैं। जब पार्वती जी उनसे पूछती हैं कि मुझमें कौन-सा दोष था कि आपने दूसरा विवाह किया तब वे उत्तर देते हैं कि ए पार्वती! भाग्य के लिखे हुए को कौन मिटा सकता है। भावी के कारण ही मेरा दूसरा विवाह हुआ है।[3]

"बिधि के लिखल गउरा आरे नाहिं मेटे रे,
भावी कइल दोसर वियाह रे।"

एक सोहर में कोई बन्ध्या स्त्री दुःख करती हुई किसी पंडित से पुत्र योग पूछ रही है। तब वह उत्तर देता है कि ए रानी! तुम्हारे ललाट में पुत्र जन्म नहीं लिखा है, अतः तुम्हें पुत्र नहीं मिल सकता।[4]

"ए रानी नाहिं बिधि लिखले लिलार,
संतति नाहि मिलेला हो।"

लोक कथाओं में भी भाग्यवाद का प्रभाव पाया जाता है। जो कर्म में लिखा है वही होगा दूसरा नहीं।

"लिखितमपि ललाटं प्रोज्झितुं कः समर्थः"

(ग) १. जीवन के आर्थिक तथा राजनैतिक पक्ष की झांकी

लोक गीतों में जनता की आर्थिक तथा राजनैतिक अवस्था का जहाँ-तहाँ उल्लेख पाया जाता है। इन गीतों में लोगों की आर्थिक अवस्था का जो चित्रण पाया जाता है उससे ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज समृद्ध था तथा किसी को भोजन का कष्ट नहीं था। गीतों में सोने की थाली में भोजन करने और सोने के लोटे (गड़ुवा) से जल पीने का बारम्बार उल्लेख हुआ है।[5] राम के जन्म होने के उत्सव पर ब्राह्मणों को सेर भर सोना और पाँच सेर चाँदी दान देने का उल्लेख

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ३२०। २. वही. पृ० ३२१। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १७७। ४. वही. पृ० ६२। ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ०३०७, ३०९।

पाया जाता है।[१] प्रियतम के घर में लगा हुआ दरवाजा सोने का बना हुआ है। जिसे खोलने के लिए उनकी स्त्री बार-बार आग्रह करती है। न गीतों में भोज्य अन्न का प्रचुर वर्णन पाया जाता है। बारात के आने पर अनेक स्वादिष्ट भोज्य पदार्थों को खिलाने का वर्णन हुआ है।[२] भोजपुरी प्रदेश के लोगों के व्यापार करने का वर्णन भी कहीं-कहीं उपलब्ध होता है। वे लोग 'पुरुबी बनिजिया' (बंगाल) को जाते हैं और वहाँ व्यापार करने के पश्चात् बारह वर्ष के बाद घर लौटते हैं।[३] व्यापार के लिए भोजपुरी लोग 'मोरंग' देस भी जाते हैं।

आर्थिक दशा के उल्लेखों के अतिरिक्त राजनैतिक अवस्था का दिग्दर्शन इन गीतों में हुआ है।

लोक गीतों के अनुशीलन से यह पता लगता है मुगल काल के शासन में बड़ी ढिलाई थी। किसी की इज्जत नहीं बच सकती थी। राह में अकेली जाने वाली स्त्रियों पर मुगलों के सिपाही आक्रमण करते थे और उन्हें छीन कर या जबरदस्ती भगाकर विवाह कर लेते थे। भगवती की लोक-प्रसिद्ध गाथा इस विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण है। मुगलों के सिपाही भगवती को बलपूर्वक पकड़ कर लिये जाते हैं। उस सती देवी ने अपने प्राणों की बाजी खेलकर किस प्रकार अपने सम्मान की रक्षा की इसका उल्लेख पीछे हो चुका है। मुगल काल में देश में शान्ति नहीं थी। मारकाट मची रहती थी। मुगल लोग जाति द्वेष के कारण हिन्दुओं को बहुत सताते थे। यह तो प्रसिद्ध ही है कि औरंगजेब ने जजिया कर हिन्दुओं पर लगाया था और मुहम्मद तुगलक ने जंगल में जानवरों के शिकार की तरह आदमियों का भी शिकार किया था।

एक गीत में कोई ब्राह्मण कन्या किसी पुरुष से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना करती हुई कहती है कि मुगलों ने मेरे भाई और बाप को मार डाला है, मैं उनके डर से इस जंगल में छिपी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो।[४]

"जतिया तो हमरी पंडित के यहि रन बन में,
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन में,
मारि डारेन भाई औ बाप त यहि रन बन में,
दुलहा मुगुल के डरिया लुकानि त यहि रन बन मे,"

वह वीर पुरुष उस स्त्री को अपने घोड़े पर बिठा लेता है परन्तु मुगलों के उत्पात के मारे कहीं जाना सुरक्षित नहीं है। रास्ते में उसे पचास मुगल घेर लेते हैं। परन्तु वह उन सबको तलवार के घाट उतारता है और उस अबला का उद्धार करता है।[५]

"दुलहा खींचि लिहलन तरवरिया त यहि रन बन में,
ठाढ़े एक ओर मुगुल पचास त यहि रन बन में।
दुलहा एक ओर ठाढ़े अकेल त यहि रन बन में,
रामा जूझे हैं मुगुल पचास त यहि रन बन में।

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ९२। त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० १६९-७०। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २५ [भूमिका] ४. त्रिपाठी : ग्राम गीत पृ० १६। ५. वही पृ० १६-१७।

एक दूसरे गीत में मुगलों के द्वारा किसी व्यक्ति का घर घेर कर उससे लड़ने का वर्णन प्राप्त होता है। बहिन कहती है कि ए भाई, जल्दी-जल्दी भोजन कर लो क्योंकि मुगल लड़ने के लिये बाहर खड़े हैं।[1]

"बिरना हाली हाली जेंवउ बिरन मोरा, बलैला लेउँ बीरन
बिरना तुरुक लड़इया के ठाढ़ बलैया लेउँ बीरन
बिरना तुरुक लड़इया के ठाढ़ बलैया लेउँ बीरन
बिरना मुगल की ओरियाँ सब साठि जने, बलैया लेउँ बीरन
मोरा भइया अकेलवइ ठाढ़ बलैया लेउँ बीरन

एक दूसरे गीत में रजलो नामक स्त्री से किसी मुगल के द्वारा बलात्कार विवाह करने का उल्लेख पाया है।[2] रजलो मुगल को नहीं चाहती परन्तु वह लाचार है। वह उसकी सूप जैसी दाढ़ी और बैल के समान आँखें देखती है तो उसे उल्टी, कै होने लगती है।

"सूप अइसन दाढ़ी मोगलवा के, बरध अइसन आंखि।
ओहि मुहें लिहलन मुगल चुमवाँ, रजलो के छुटि उकिलाई।"

इन गीतों से स्पष्ट पता चलता है कि मुगलों के समय में कोई दृढ़ शासन व्यवस्था नहीं थी। हिन्दू स्त्री समाज की इज्जत खतरे से खाली नहीं थी। उन्हें भगा ले जाना चुरा लेना और उनसे जबरदस्ती ब्याह कर लेना एक साधारण घटना हो गई थी।

अंग्रेजी काल में सिपाही विद्रोह के समय जो लूटमार मची थी, जो भगदड़ हुई, शासन-व्यवस्था में जो गड़बड़ी मची थी, उसका बड़ा सजीव चित्रण गीतों में मिलता है। कोई स्त्री कहती है सिपाही विद्रोह के समय मेरठ के बाजार में लोगों ने बहुमूल्य सामान लूटा मेरे प्रिय ने कुछ भी नहीं लूटा क्योंकि वह मूर्ख है, लूटना नहीं जानता।[3]

"लोगों ने लूटे शाल दुशाले, मेरे प्यारे ने लूटा रुमाल।
मेरठ का सदर बाजार है, मेरे सइयाँ लूटे न जानें।
लोगों ने लूटे थाली कटोरे, मेरे प्यारे ने लूटे गिलास।
लोगों ने लूटे गोले छुहारे, मेरे प्यारे ने लूटे बदाम।
लोगों ने लूटे मोहर, अशरफी मेरे प्यारे लूटे छदाम।
मेरठ का सदर बाजार है, मेरा सइयाँ लूटे न जानें।"

झांसी की लड़ाई का यह वर्णन कितना सटीक है। उसने किस विकट परिस्थिति में अंग्रेजों से लोहा लिया था उसका उल्लेख यहाँ मिलता है।[4]

"बुर्जन बुर्जन तोप लगे दिन, गोला चलै आसमानी।
सगरे सिपाहिन को पेड़ा जलेबी, अपने चबाम गुडधानी।
छोड़ मोर्चा लस्कर को भागी, ढूँढ़े मिलै न पानी।
खूब लड़ी मरदानी आरे, झांसी वाली रानी।"

दिल्ली के बहादुरशाह के निर्वासन के पश्चात् उसकी बेगमों के विलाप से पता चलता है कि अंग्रेजों ने उनकी क्या दुर्दशा की थी। रैयत मारी-मारी फिर रही थी और लोग डर के मारे अत्यन्त भयभीत थे।

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० १६ [ग्राम गीतों का परिचय]। २. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २२। ३. इ. ए. भाग ४० (१६११) पृ० १२३। ४. वही पृ० १६६।

"गलियन गलियन रैयत रोवै, हटियन बनिया बजाज रे।
महल में बैठी बेगम रोवै, डेहरी पर रोवै खवास रे।
मोती महल की बैठी छूटीं, छूटी है मीना बजार रे।
बाग जर्मनिया की सैरें छूटी, छूटे मुलुक हमारे रे।"

कुँअर सिंह के पराक्रम का वर्णन भी कुछ गीतों में पाया जाता है। सिपाही विद्रोह का प्रारम्भ क्यों हुआ इसका यथार्थ ऐतिहासिक कारण दिया गया है।

इस प्रकार इन गीतों में समय-समय के राजनैतिक जीवन की झाँकी हमें देखने को मिलती हैं।

२. भौगोलिक वर्णन

लोक गीतों में, किसी वस्तु अथवा स्थान का विस्तृत वर्णन उपलब्ध नहीं होता। हाँ, प्रसंगवश किसी स्थान का उल्लेख अवश्य मिल जाता है। जैसे किसी स्त्री का पति परदेश जा रहा है और वह विभिन्न स्थानों की सुन्दर वस्तुओं को उससे लाने के लिए कह रही है अथवा अमुक-अमुक स्थानों में न जाने के लिये उसे मना कर रही है। पिता अपनी पुत्री का वर खोजने के लिए विभिन्न नगरों या स्थानों में जाता है परन्तु तिरहुत में ही उसे उपयुक्त पति मिलता है। आल्हा की गाथा में लड़ाई के संबंध में अनेक स्थानों का उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रकार बिहुला के गीत में बिहुला और बाला लखन्दर के जन्म स्थान का वर्णन है।

लोकगीतों में जो भौगोलिक वर्णन है वे प्रधान कथा के अंगभूत हैं। लोक गीतों में प्राप्त भौगोलिक वर्णन को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। १. स्थान का उल्लेख २. किसी स्थान की द्योतक वस्तु का उल्लेख। इनमें विभिन्न स्थानों का उल्लेख ही अधिक पाया जाता है, वस्तुओं का वर्णन बहुत कम मिलता है।

इन गीतों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि भिन्न-भिन्न नगर विशेष प्रकार की वस्तुओं के लिये प्रसिद्ध थे। मगह अपने पान के लिये सुप्रसिद्ध था तो मोरंग देश अपनी सुपारी के वास्ते मशहूर समझा जाता था। इन स्थानों में उपर्युक्त वस्तुओं का व्यापार होता था। एक लोक गीत में कोई पुत्र अपनी माता से कह रहा है कि मैं पान लाने के लिये मगह जाऊँगा और सुपारी के लिये मोरंग देश।[1] आजकल का पटना और गया जिला मगह के नाम से प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन नाम मगध था जिसकी राजधानी पाटलीपुत्र आधुनिक पटना थी। मोरंग देश की स्थिति वास्तव में कहाँ थी यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं कि "मोरंग सारन बिहार प्रान्त का छपरा जिला और चम्पारन जिलों का वह भाग था जो हिमालय की तराई तक चला गया हैं। मुगलों ने सन् १६६४ और १६७६ में इसे जीता था। ....आजकल तो इस स्थान की कोई गिनती ही नहीं"।[2] डा० ग्रियर्सन का मत है कि नेपाल देश का जो भाग ब्रिटिश भारत और हिमालय की उपत्यका में फैला हुआ है उसके पश्चिमी भाग की तराई और पूर्वी

वस्तु वर्णन

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २०८। पान लागि मतवा रे जइबो मगह देसवा। सुपारि लागि मतवा जइबो मोरंग देसवा। २. त्रिपाठी ग्रा० ग्री० पृ० २३६।

भाग को "मोरंग" कहते हैं।[1] पं० रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी का मत भी यही है।[2] अतः यह सिद्ध है कि हिमालय की तराई के पूर्वीय प्रदेश को जो विहार से संबद्ध है मोरंग कहते थे। नैपाल की तराई में होने के कारण मोरंग देश की जलवायु अच्छी नहीं थी। अतः कोई स्त्री अपने पति को वहाँ जाने से मना करती हुई कहती है कि मोरंग देश का पानी पतला अस्वास्थ्यकर होता है और पीने से कलेजे में लगता है अर्थात् नुकसान करता है।[3]

"बेरी ही बेरो तोहि बरजों ए लोभिया जनि जाहु तुहु मोरंगवा।
मोरंग पातर पनिया, लगी है रे करेजवा"।

आज भी तराई प्रदेश का पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकर है तथा बस्ती, गोंडा और बहराइच जिलों की जलवायु अच्छी नहीं समझी जाती है।

इन गीतों में कहीं बंगाल के पान का भी उल्लेख मिलता है।[4] जिसे बंगालिन देवी शीतला बड़े शौक से खाती है। वर के परीछने के लिये जिस लोढ़े का उपयोग किया जाता है वह मिर्जापुर से मंगाया जाता है।[5] आज भी मिर्जापुर अपने पत्थर के सामान के लिये प्रसिद्ध है। चुनार, विन्ध्याचल और मिर्जापुर में पत्थर के सिलवट और लोढ़े बड़े सुन्दर और मजबूत बनते हैं। लोक गीतों में वर के चढ़ने के लिये हाथी गोरखपुर से मंगाया जाता है और वह पटना शहर के बने हुये जरी के झूल से अलंकृत किया जाता है। गोरखपुर और बस्ती के तराई जिलों में हाथी अधिकता से पाये जाते हैं, अतः वहाँ से हाथी का मंगाना स्वाभाविक ही है। बनारसी साड़ी के पहिनने और बनारसी लड्डू खिलाने के वर्णन भी उपलब्ध होते हैं।[6] ज्ञात होता है कि बनारसी साड़ी का व्यापार बहुत काल से चलता आ रहा है।

लोक गीत की कैकेयी राम के परीछने के लिये जो साड़ी पहिन कर निकलती है वह दक्षिण देश से मंगायी जाती है।[7] आज भी महाराष्ट्र देश की साड़ियाँ प्रसिद्ध हैं और मद्रासी तथा बंगलोर की साड़ियों के पहनने का तो आजकल फैशन ही हो गया है। एक विवाह के गीत में दूल्हे के शृङ्गार का वर्णन है। उसके पहिनने लिये जो वस्त्र और अलंकार हैं वे भिन्न-भिन्न स्थानों से मंगाये गये हैं। उसने जो पगड़ी बाँधी है वह गुजरात से मँगाई गई है। उसके कान का कुण्डल सूरत के मोती का बना हुआ है एवं पैर का जूता 'सकलाती' कपड़े से निर्मित है। उसके ललाट में मलयागिरि का चन्दन सुशोभित है।[8]

कानें सोहे सूरत की मोती, चुन्नी में छबि आई।
माथे सोहे गुजराती फेटा, लरिया में छबि आई।
पांय सोहे सकलाती जूता, मोजे में छबि आई।

सूरत गुजरात प्रान्त के एक प्रसिद्ध जिला के जौहरी तो आज भी प्रसिद्ध हैं। 'सकलात' शब्द अंग्रेजी के स्कारलेट क्लाथ का अपभ्रंश जान पड़ता है। यह विलायती लाल रंग का मखमल ज्ञात होता है। पृथ्वीराज रासो में भी 'सुकलात' के रूप में यह शब्द पाया जाता है।

लिनं पक्खरं पीठ हय जीत सालं।
फिरंगी कती पास सुकलात लालं।

---

१. डा० ग्रियर्सन : जेड. डी. एम. जी. भाग ४३ पृ० ४६६। २. बेनीपुरी : विद्यापति-पदावली (भूमिका भाग)। ३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२३। ४. वही. पृ० २७४। ५ वही. पृ० १२२। ६. वही. पृ० १८६। ७. वही. पृ० १६५। ८. त्रिपाठी ग्राम गीत पृ० २२४-२२५।

उपर्युक्त गीत की रचना अंग्रेजों के आगमन पर हुई होगी जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत से व्यापार स्थापित किया था और लाल रंग के मखमल स्कारलेट क्लाथ का आयात यहाँ होता था।

अनेक गीतों में हाजीपुर की हाट का वर्णन किया गया है।[1] पिता कहता है कि "ए पुत्री हाजीपुर का हाट लगने दो तो मैं तुम्हारे भाग्य को बदल दूँगा।"

"बेटी लागे देहु हाजीपुर के हटिया,
करम तोर बदलि देबों ए राम।"

यह हाजीपुर की हाट सोनपुर के मेले के नाम से प्रसिद्ध है। यह स्थान बिहार प्रान्त के छपरा जिले में ४० मील पूर्व में, स्थित है और यह ओ. टी. रेलवे का प्रमुख स्टेशन एवं जंकशन है। यहाँ 'हरिहर' नाम से प्रसिद्ध, शिवजी का मन्दिर भी है। अत: इसे हरिहर क्षेत्र का मेला भी कहते हैं।

तिरहुत में बेंत की छाजन बनने का उल्लेख है। कोई पिता वर खोजने के लिये उत्तर और दक्षिण देशों में जाता है, उसे वहाँ वर नहीं मिलता है। तिरहुत देश में प्राप्त होता है। तिरहुत का प्राचीन नाम 'तीरभुक्ति' था। आजकल बिहार प्रान्त में तिरहुत एक कमिश्नरी है जिसमें मुजफ्फरपुर, दरभंगा और चम्पारन आदि जिले हैं।

प्राचीन काल से काशी के वैद्य और दिल्ली के हकीम प्रसिद्ध रहे हैं। एक स्त्री अपनी दवा के लिये इन दोनों स्थानों से वैद्य और हकीमों को बुलाती है।[2] काशी जिस प्रकार अपने वैद्य और पण्डितों के लिये प्रसिद्ध है उसी प्रकार गुण्डों के लिये भी सुप्रसिद्ध है। 'बनारसी गुंडे' बनारसी साड़ी की ही भांति विख्यात हैं। किसी राजा के दरबार पर बनारसी गुण्डों के रहने का भी उल्लेख कुछ गीतों में है।[3] यह बड़ी मनोरंजन बात है कि बनारसी गुण्डों का वर्णन प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में भी उपलब्ध होता है।[4]

इन गीतों में कलकत्ता शहर का उल्लेख अनेक बार आता है। कहीं तो इस नगर को इसी नाम से स्मरण किया गया है, कहीं कालीपुर काली जी नगर के नाम से और कहीं 'बंगाला देस' से। कोई भावज अपनी ननद से कह रही है कि मैं सोई हुई थी, इतने में मैंने सपना देखा कि मेरा पति कलकत्ते से आ गया। इस पर ननद पूछती है कि ए भावज! तुम कैसे जानती हो कि मेरा भाई कलकत्ते से आने वाला है।[5] तब वह उत्तर देती है कि शकुन और स्वप्न से मैने यह जाना है।

"सूतल में रहली ननदी देखनी सपनवा,
कलकतवा से मोर बलमू अइलन हो राम।
तू कइसे जानत बाडू लहुरि भउजिया,
कलकतवा से मोर भइया अइलें हो राम।
पैर पिरइले ननदी उठत बा दरदिया,
से कागा भइया आगल जनवले हो राम।"

एक दूसरे गीत में भगवती देवी का कालीपुर कलकत्ता से आने का उल्लेख पाया जाता है।[6] लोक गीतों में व्यापार अथवा जीविकोपार्जन के लिए जो 'पुरबी बनिजिया'

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २११। २. वही पृ० २६१। ३. वही पृ० ३१२। ४. गुलेरी : गुलेरी ग्रंथ। ५. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८६। ६. वही पृ० ३६१।

वर्णन है वह यही कलकत्ता है ।[१] देहाती अनपढ़ लोग इसे 'बंगाला अथवा 'बंगाला देस' भी कहते हैं। यहाँ पर 'बंगालिन बिटिया' के अत्यन्त सुन्दरी होने का उल्लेख पाया जाता है जो अपने लम्बे-लम्बे काले केशों और मोहनी आकृति से भोजपुरी जवानों का मन मोह लेती है ।[२] कोई स्त्री अपने पति से कहती है कि जब तुम 'पुरबि बनिजिया' को जावोगे तो मेरे लिए क्या लावोगे ? वह उत्तर देता है कि तुम्हारे लिए तो चोली लाऊँगा। और अपने लिए सुन्दर बंगालिन लाऊँगा।[३] आसाम के कामरूप जिले का भी उल्लेख एक स्थान पर हुआ है। कोई भक्त कहता है कि मेरी देवी कवरूँ कामरूप देश से चल पड़ी है और मालिन के घर पहुँच गई है ।[४] कामरूप की कामाख्या देवी का स्थान शक्त सम्प्रदाय का प्रधान केन्द्र रहा है और यहाँ तान्त्रिक पूजा की प्रधानता थी। तन्त्र-मन्त्र सीखने के लिये आज भी लोग 'कवरू' 'कमच्छा' कामरूप और कामाख्या जाने की बात कहते हैं।

एक गीत में वाल्मीकि के आश्रम में जब लव और कुश का जन्म होता है तब इसकी सूचना राम को देने के लिए नाई अयोध्या जाता है ।[५] सोहर के गीतों में कृष्ण की बाल लीला के प्रसंग में मथुरा, वृन्दावन और गोकुल का अनेक बार उल्लेख हुआ है। 'गोकुल' की गीतों में 'गोखुला' कहा गया है। कोई ग्वालिन कहती है कि मैं मथुरा की निवासिनी हूँ और गोकुल गोखुल में दही बेचने जा रही हूँ ।[६] कोई पिता अपनी पुत्री के वर खोजने के लिए काशी, प्रयाग और अयोध्या जाता है। पुत्री का पिता वर खोजने के लिए उड़ीसा और जगन्नाथपुरी में भी जाता हैं परन्तु वहाँ भी कोई सुन्दर वर उसे प्राप्त नहीं होता ।[७] परशुराम जब राम के विवाह के अवसर पर राम पर क्रुद्ध होते हैं तब उनका पहिला बाण यमुना में और दूसरा कुरुक्षेत्र में गिरता है। यह कुरुखेत सुप्रसिद्ध कुरुक्षेत्र है जहाँ कौरवों और पांडवों की प्रसिद्ध लड़ाई हुई थी। एक गीत में मुहावरे के रूप में लंका नाम आता है[९] एक दूसरे गीत में छपरा, आरा और बक्सर इन तीन स्थानों का उल्लेख पाया जाता हैं ।[१०] बक्सर आरा जिले का सब-डिवीजन है। यहाँ पर अंग्रेजों और मुसलमानों में बड़ा घमासान युद्ध हुआ था जो बक्सर की लड़ाई के नाम से प्रसिद्ध है। अन्यत्र एक गीत में बक्सर, आरा और पटना में मुकदमा करने का उल्लेख पाया जाता है ।[११] भागलपुर के कायरों-लड़ाई में भाग जाने वाले अर्थात् भगेड़ू कहलगाँव के ठगों और पटना के दिवालियों का उल्लेख कुछ कम मनोरंजक नहीं है ।[१२] भागलपुर बिहार प्रान्त का एक प्रसिद्ध जिला कहलगाँव इसी जिले का एक बड़ा कस्बा है जहाँ प्राचीनकाल में ठग मशहूर थे। नेपाल देश का भी उल्लेख अनेक गीतों में हुआ है। गंगा स्नान करने के लिए दूर-दूर देशों से लोगों के नेपाल के राजा के भी आने का वर्णन किया गया है ।[१३] इसी प्रकार से अन्य छोटे-छोटे स्थानों का भी यथावसर उल्लेख मिलता है। बलिया जिले का 'हरदी' और प्रयाग की अरैल स्थान का उल्लेख ऐसा ही है।

लोक गीतों में गंगा यमुना और सरयू तीन नदियों का उल्लेख प्रधानतया पाया जाता है। इसका पहिला कारण तो यह है कि ये भारत की परम पवित्र नदियाँ हैं और हिन्दू

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १७६। २. वही. भाग १ पृ० ३०४-३०६। ३. पृ० २५। ४. वही भाग २ पृ० २५६। ५. वही भाग १ पृ० ६०, १३१, १३३। ६. आर्चर : भो० ग्रा० गी० पृ० १७३। "मथुरा के हई हम ग्वालिन गोखुला में दही बेचे हो।" ७. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२४। ८. वही पृ० १६०। ९. वही पृ० ८६। १०. वही पृ० २६६। ११. वही पृ० २६७। १२. वही भाग १ पृ० ११ भूमिका। १३. वही पृ० ३६२।

नदी

सभ्यता और संस्कृति इन्हीं के किनारे फूली फली हैं। इसका दूसरा कारण यह है कि भोजपुरी प्रदेश में यमुना को छोड़कर ये दोनों नदियाँ प्रवाहित होती हैं। अतः इनसे विशेष रूप से परिचित होने के कारण गीतों के लेखकों ने इनका ही वर्णन किया है। जनेऊ तथा विशेषकर मुंडन के गीतों में गंगा और यमुना के 'ओहारने' का वर्णन पाया जाता है।[1] एक दूसरे गीत में गंगा और यमुना के बीच संभवतः प्रयाग में किसी पुरुष के निवास करने का उल्लेख है।[2] वर खोजते-खोजते जब पिता थक जाता है तो उसकी पुत्री कहती है कि आप जाइये सरयू के किनारे राम के रूप में आपको वर अवश्य मिलेगा।[3] समुद्र का उल्लेख भी गीतों में हुआ है। कोई स्त्री आत्म-हत्या के लिये समुद्र का रास्ता पूछ रही है। परन्तु किसी विशिष्ट समुद्र का वर्णन नहीं मिलता।[4]

गीतों में विभिन्न जातियों का भी उल्लेख है। जैसे गूजरी, मल्लाहिन, और राजपूतिनी।[5] राजपूत और मल्लाह तो प्रसिद्ध हैं। यू० पी० के पश्चिमी जिलों में गूजर लोगों की बहुत सी बस्तियाँ हैं।[6] ये गुर्जर प्रतिहार नामक क्षत्रियों के वंशज हैं। परन्तु आजकल इनकी गणना निम्न जातियों अहीर आदि में की जाती है।

जाति

आल्हा खंड में भूगोल

आल्हा की जो गाथा उपलब्ध है उसमें अनेक भौगोलिक स्थानों का उल्लेख हुआ है। ये उल्लेख बहुत अधिक हैं।

आल्हा में जिन स्थानों का वर्णन आया है वे प्रधानतया आल्हा और उसके भाई ऊदल के पराक्रमों से संबंद्ध हैं। कुछ स्थान ऐसे भी हैं जो इनके विपक्षियों से संबंध रखते हैं।

कन्नौज:—यहाँ सुप्रसिद्ध राजा जयचन्द राज्य करता था। परमाल से रुष्ट होकर आल्हा-ऊदल कुछ दिनों तक यहीं रहे थे। आजकल यह फर्रुखाबाद जिले में एक कस्बा है।

महोबा:—आल्हा और ऊदल की यही कर्मभूमि थी। यह स्थान आजकल यू० पी० के हमीरपुर जिले में स्थित है। यहाँ चन्देलवंशी सुप्रसिद्ध राजा परमर्दिदेव राज्य करता था जो इन दोनों वीरों का आश्रयदाता था।

ऊरई:—यहाँ माहिल परिवार रहता था जो चुगलखोरी के लिये प्रसिद्ध था। इसने अपनी दुष्टता के कारण आल्हा को परमाल के यहाँ से निकलवा दिया था।

माड़ोगढ़:—यह स्थान आजकल धार रियासत में धार से २१ मील दूर मांडू के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ कलिंगराज नाम का राजा राज्य करता था जिसने महोबे पर चढ़ाई करके आल्हा-ऊदल के पिता दस्सराज को पकड़ कर मरवा डाला था।

बनरस:—यह स्थान गोरखपुर जिले में एक गाँव है। यहाँ का निवासी मीरा ताल्हन दस्सराज का बड़ा मित्र था और आल्हा-ऊदल को पुत्र की तरह मानता था।

नरवरगढ़:—यह स्थान ग्वालियर राज्य में आज भी विद्यमान है। यहाँ पुराने

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ११४। २- वही. पृ० २१३। ३. वही. पृ० १५६। ४. वही. पृ० २१४। ५. पृ० २२६। ६ त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० २७५ नोट २८०।

खंडहर भी पाये जाते हैं। यहाँ के राजा नरपति की कन्या फुलवा से ऊदल का विवाह हुआ था।

नैनागढ़:—यह स्थान मिर्जापुर जिले में चुनार के नाम से विख्यात है। आल्हा का विवाह यहाँ की लड़की सोनवा या सोनाकुंवरि के साथ हुआ था जिसके लिये बड़ी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। चुनार के किले में आल्हा, ऊदल और सोनवा का निवास स्थान अभी भी दिखलाया जाता है।

विठूर:—कानपुर जिले में यह ऐतिहासिक स्थान है। आल्हा-ऊदल की माँ का चन्द्रहार करिंगा राय ने यहीं के मेले में छीन लिया था।

खजुआगढ़:—यह बुन्देलखंड के छतरपुर राज्य में आजकल खजुराहो के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ चन्देलवंशी राजाओं की पुरानी राजधानी थी।

बौरीगढ़:—यह स्थान बुन्देलखंड में है। यहाँ के राजकुमार से परमाल की कन्या चन्द्रावली का विवाह हुआ था। इन स्थानों के अतिरिक्त दिल्ली, हरद्वार, हिंगलाज, बुखारा, गया, बंगाल, गोरखपुर, पटना, बूंदी और राजगृह आदि स्थानों के नाम पाये जाते हैं जो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

लोकगीतों में पाये जाने वाले इन भौगोलिक स्थानों के उल्लेखों से भारत की एकता ज्ञात होती है। इनमें नेपाल से लेकर लंका तक और दिल्ली से लेकर आसाम तक के नगरों का उल्लेख प्राप्त है।



अध्याय ६

भोजपुरी लोक गीतों की साहित्यिक समीक्षा

(क) वर्णन की स्वाभाविकता

लोक गीतों में स्वाभाविकता कूटकूटकर भरी हुई है। उनमें वह अस्वभाविक कविता नहीं है जो पाठकों के हृदय में सहानुभूति न उत्पन्न कर केवल आश्चर्य ही पैदा करे। लोकगीतों में जो कुछ वर्णन किया गया है वह अत्यन्त स्वाभाविक है। किसी विरहिणी स्त्री का बादल के द्वारा प्रियतम के पास सन्देश भिजवाना विलक्षणता से पूर्ण होने पर भी स्वाभाविक है :—[1]

"अरे अरे कारी बदरिया, 'तुहइँ मोर बादरि।
बदरी, जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये।"

अर्थात् ए बादल ! तुम जाकर उस देश में बरसो जहाँ मेरे प्रिय गये हैं। संभवतः इससे उन्हें मेरी सुधि आ जाय। इन पंक्तियों को पढ़कर रसिक शिरोमणि घनानंद का निम्नांकित सवैया बरबस याद आ जाता है। :

"घन आनंद जीवन दायक हो, तुम मेरी हू पीर हिये परसो।
कबहूँ वा बिसासी सुजान के आंगन, मो अंसुवान को लै बरसो।"

सावन का महीना आ गया। आकाश में घिरे मेघों को देखकर पति को अपनी विरहिणी स्त्री की याद आ गई। वह घर आया। स्त्री द्वार बन्द किए हुए सो रही थी। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा कौन दरवाजा खटखटा रहा है, तुम कुत्ते हो या बिल्ली हो या मेरे ससुर के पहरेदार हो ?[2] इस पर पति उत्तर देता है कि :—

"ना हम कुकुरा बिलरिया, न ससुरु पहरुआ।
धन ! हम अही तोहरा नयकवा, बदरिया बुलायसि।"

"बदरिया बुलायसि" इस पद में कितना माधुर्य है। कैसी स्वाभाविकता है। कालिदास ने मेघदूत में इसी का वर्णन करते हुए लिखा है कि :—[3]

यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ।

अर्थात् बादल परदेशी लोगों को जो अपनी स्त्रियों की वेणी खोलने के लिए उत्सुक हैं जल्दी घर जाने की प्रेरणा देता है।

कालीदास ने जो बात एक वैज्ञानिक की तरह कही है वही बात उपर्युक्त गीत में बड़े सीधे सादे ढंग स्वाभाविक रूप से कही गयी है।

एक गीत में रुक्मिणी और चकई का कथनोपकथन बहुत सुन्दर बन पड़ा है। रुक्मिणी का हार टूट कर जमुना में गिर पड़ा है। वह चकई से उसे निकालने की प्रार्थना करती है।

१. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ७८ (ग्रामगीतों का परिचय)। २. वही. पृ० ७८।
३. मेघदूत पूर्व भाग।

तब वह उत्तर देती है कि तुम्हारे हार में आग लगे, मोती पर बज्र गिरे। साँझ ही से मेरा चकवा खो गया है। मैं उसी को ढूंढ़ रही हूँ परन्तु वह अभी तक नहीं मिला।[1]

"धावउ बहिनि चकैया तूं हाली बेगि आवउ हो।
चकई, चुनि लेव मोतिन के हार जमुना जल भीतर हो।"
अगिया लगावों तोरा हरवा बजर परे मोतिन हो।
बहिनी; संझवे से चकवा हेरान ढूंढ़त नाहिं पावऊँ हो।"

प्रियतम की खोज से बढ़कर चकई को और जरूरी काम क्या हो सकता है।

एक गीत में कन्या ससुराल जा रही है। घर के सामने नीम का एक पेड़ है जो उसी के द्वारा लगाया गया है। बिदाई के समय वह अपने पिता से कहती है कि पिताजी इस नीम के पेड़ को मत काटियेगा क्योंकि इस चिड़ियों का बसेरा है। जब चिड़िया यहाँ से उड़ जायँगी तब यह नीम अकेला रह जायगा। इसी तरह लड़की के बिदा हो जाने पर माता भी अकेली रह जायगी।

"बाबा निमिया क पेड़ जिनि काटेउ,
निमिया चिरैया बसेर, बलैया लेऊँ बीरन।
बाबा बिटियउ जिनि केउ दुख देउ
बिटिया चिरैया की नाईं, बलैया०
सब रे चिरैया उड़ि जइहैं
रहि जइहैं निमिया अकेलि, बलैया०
सगरे बिटियवा जइहैं सासुर
रहि जइहैं माई अकेली, बलैया०

अपने हाथ से लगाये गये नीम के वृक्ष को न काटने की प्रार्थना कितनी स्वाभाविक है। नीम के साथ माता की और पक्षियों के साथ कन्याओं की तुलना भी मार्मिक है।

शृङ्गार रस के गीतों में भी स्वाभाविकता की सुन्दर मुग्धता देखने को मिलती है। पुत्र जन्म के गीतों में गर्भिणी की शरीर-यष्टि का वर्णन भी अत्यन्त स्वाभाविक हुआ है।[2]

"लीपी पोती भइलों ओबरिया, अंगनवा में ठाढ़ भइलों रे।
ललना राजा के दुलरिया भितिआ ओठंघें,
हरदी मुँहवा पीयर रे।"
दुअरा से अइले नन्दलाला, नाजो के मुँहवा देखेलें हो।
आमावा दुलहिन के ओठवा भुरइलें,
हरदी मुँहवा पीयर हो।
सासु मोरी मुँहवा निरेखे, ननद मुँहवा चूमे ले हो,
बहुआ धीरे धीरे अंगव बेदनिया,
होरिल तोहरा होइहैं हो।"

गर्भवती होने के कारण स्त्री की शरीर-यष्टि भारी हो गई है। वह भीत का सहारा लेकर चलती है, उसका मुँह हलदी के समान पीला पड़ गया है और तन प्रतिदिन पतला होता जा रहा है। गर्भिणी का कमनीय चित्र यहाँ उपस्थित किया गया है। उसकी प्रसव

१. त्रिपाठी: ग्रा० गी० पृ० ७६ (ग्रामगीतों का परिचय)। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३० (पृष्ठ भाग)।

वेदना का उल्लेख भी सुन्दर हुआ है। कालिदास ने भी गर्भिणी की शरीर-यष्टि का वर्णन किया है परन्तु उसमें शृंगार की मात्रा अधिक है और स्वभाविकता कम।[1]

पुत्र के बिना स्त्री की जो दुर्दशा है, उसे जिस मानसिक वेदना का अनुभव करना पड़ता है उसका बड़ा ही सुन्दर वर्णन इन गीतों में पाया जाता है वन्ध्या स्त्री कहती है कि जिस प्रकार बन में कोयल कुहुकती है उसी प्रकार से मेरा हृदय बालक के अभाव में कष्ट पाता है। जिस प्रकार अंगठी (बोरसी) की आग धीरे-धीरे सुलगती है और उसी प्रकार मेरा मन पुत्र के बिना अनवरत जलता रहता है।

"जइसन बन में के कोइलरि बने-वने कुहुकेले हो।
ए राम ओइसन जियरा हमरा कुहुकेला
एक रे बालक बिनु हो।
जइसन बोरसी के आग हवे धीरे-धीरे सुलुगेला हो।
ओइसे जियरा हमरा सुनुगेला, एकरे बालक बिनु हो।"

पुत्रहीन स्त्री के दिल पर जो बीतती है उसे वह स्वयं जानती है। दूसरा उसके कष्ट का अनुभव नहीं कर सकता। उपर्युक्त गीत में वन्ध्या के मनोभावों का बड़ा स्वाभाविक वर्णन हुआ है।

सौतिया डाह बहुत बुरी मनोवृत्ति है परन्तु यह अत्यन्त स्वाभाविक है। जिस प्रियतम के ऊपर स्त्री अपना सर्वस्व निछावर करने के लिये तैयार हो यदि उसके मन को कोई दूसरी स्त्री चुरा ले तो दुःख लगना आवश्यभावी है। सौतिया डाह का वर्णन संस्कृत एवं हिन्दी के कवियों ने बहुत सुन्दर किया है। उधर लोक गीतों में भी इसका सजीव चित्र मिलता है।

एक गीत में ससुराल के कष्टों का बहिन के द्वारा भाई से निवेदन हृदय-स्पर्शी है। वह कहती है मुझे एक मन रोज अन्न कूटना और पीसना पड़ता है। पूरे एक मन आटे की रोटी बनानी पड़ती है ?। बर्तन भी मलने पड़ते हैं। परन्तु खाने के लिये एक छोटी लिट्टी मिलती है। उसमें से भी कुत्ता और बिल्ली एवं दासी को देना पड़ता है।[2]

यह वर्णन कितना स्वाभाविक है और इसमें सत्य की मात्रा कितनी अधिक है।

(ख) अलंकार विधान

भोजपुरी लोक गीतों में अलंकार का विशेष विधान नहीं पाया जाता। परन्तु कहीं-कहीं पर भाव को अधिक स्पष्ट करने के लिये उपमा, रूपक, अत्युक्ति तथा श्लेष आदि स्वतः आ गये हैं। इन गीतों में उपमालंकार अन्य अलंकारों से अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं। परन्तु लोकगीतों में प्रयुक्त उपमा की विशेषता यह है कि इसमें एक विचित्र प्रकार की सादगी है, नवीनता है और मौलिकता है, जो काव्य की कृत्रिम कविताओं में देखने को नहीं मिलती। काव्य जगत की अधिकांश उपमायें कवि परम्परा युक्त होने के कारण बासी तथा फीकी सी प्रतीत होती हैं, परन्तु इन गीतों की उपमायें वैसी ही ताजी हैं जैसे ऊँचे वृक्षों से अठखेलियाँ करने वाली बन की वायु। उपमा का एक उदाहरण लीजियेः—

"गहरी नदिया अगम बहै राम पनिया।
पिया चलेले मोरंग देसवा, बिहरे ला राम छतिया॥

---

१. कालिदासः रघुवंश ३:२, ८। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गीत भाग २ पृ० १९।

जो हम जनितीं ए लोभिया, जइब रे विदेसवा ।
पिया के पयतवां ए लोभिया, छिपइती रे अंचरवा ।।
इह रोवे चकवा चकइया, बिछोहवा कइले रे लोभिया ।
मुँह तोरे हवे ए लोभिया, सूरज के जोतिया ।।
आंखि तोरे हवे ए लोभिया, अमवा के फरिया ।
नाक तोर हवे ए लोभिया सुगवा के टोरवा ।।
भहुँ तोर हवे ए लोभिया चढ़ले कमनिया ।
ओठ तोर हवे ए लोभिया कतरल पनवा ।।
अवरु तोर हवे ए लोभिया कड़ी-कड़ी मोछिया ।
बांहि तोर हवे ए लोभिया सोवरन सोटवा ।।
पेट तोरे हवे ए लोभिया पुरइन पतवा ।
पीठ तोरे हवे ए लोभिया धोबिया के पटवा ।।
गोड़ तोर हवे ए लोभिया केरवा के थुन्हवा ।।"

स्त्री कहती है कि आज मेरा पति परदेस मोरंगदेश को जा रहा है, अतः उसके भावी वियोग की आशंका से मेरी छाती फट रही है। यदि मैं जानती की मेरा पति सचमुच परदेश चला जायेगा तो मैं उसके 'पांयत' प्रस्थान की वस्तु को अपने आंचल में छिपा लेती जिससे न पांयत मिलता और न मेरा प्रियतम परदेश जाता। ऐ मेरे प्रेम के लोभी ! तुम्हारे वियोग में मैं ही नहीं बल्कि तालाव के किनारे रहने वाले चकवा और चकवी भी रो रहे हैं। ऐ लोभी ! तुम्हारा मुख सूर्य की ज्योति के समान प्रकाशमान है, तुम्हारी आंख आम की फली के समान बड़ी है, तुम्हारी नाक तोता के नाक के अग्रभाग के समान नुकीली है और भौं चढ़ी कमान के समान तिरछी है। ऐ लोभी ! तुम्हारा होंठ काटे गये पान के समान पतला, तुम्हारी बांह सोने की लाठी के समान सुन्दर और सुवर्ण, तुम्हारा पेट पुरइन के पत्ते के समान बड़ा, पीठ धोबी के कपड़ा धोने के तख्ते की तरह चौड़ी और तुम्हारे पैर केले के खंभे के समान सुन्दर हैं।

उपर्युक्त गीत में ध्यान देने की बात यह है कि इसमें जो उपमान लिये गये हैं वे देहात को दुनिया से संबंध रखनेवाले हैं तथा वे देहाती सौंदर्य के परिणाम प्रस्तुत करते है। काव्य जगत् से मुख की उपमा चंद्रमा या कमल से, आंखों की उपमा मीन नैन या मृग मीन से, होंठ की उपमा विद्रुम या विंब से दी जाती है। परन्तु इन ग्रामीण कवियों ने इन परंपरा-भुक्त उपमानों को नही अपनाया है। इन स्थान पर उन्होंने इन अंगों की उपमा देहाती जीवन से संपर्क रखने वाली वस्तुओं से दी है।

पेट की उपमा पुरइन के पत्ते से तथा पीठ की उपमा धोबी के पाट से देना कितना स्वाभाविक है। पैर की उपमा केले के खंभे से देना कितना उचित और अनुकूल है। दूसरी विशेषता इन उपमानों की यह है कि ये भोजपुरी समाज की सौंदर्य की कल्पना के प्रतीक हैं। देहात में नाक के अग्रभाग का चोख नोकीला होना सौंदर्य का सूचक माना जाता है। इसीलिये नाक की उपमा तोता के ठोर से दी गई है। इसी प्रकार होठ का पतला होना सुन्दर समझा जाता है। अतः कवि ने होठ की उपमा विंब या विद्रुम से न देकर तराशे गये पान से दी है। विद्वानों से यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि काव्य जगत् की ये उपमायें बिल्कुल अपूर्व, अनूठी और मौलिक हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजियेः—

हूरवा नियर तोर जुरवा ए गोरिया
पूग्रवा नियर तोर गाल।
पनवा नियर तू त पातर बाड़ू गोरिया
लोटवा नियर तोर भाल॥"

कोई ग्रहीर विरहा गाकर यह कह रहा है कि ऐ सुन्दरी स्त्री ! तुम्हारा जूड़ा (बालों को एकत्र कर समेट कर बाँधी गई ग्रंथि) लाठी के हूरा, निचले मोटे भाग की तरह बड़ा है ग्रौर तुम्हारे कपोल मालपुग्रा की भांति सरस, मधुर ग्रौर कोमल हैं। तुम्हारा शरीर पान के समान पतला है ग्रौर तुम्हारा ललाट लोटे के निचले भाग की भांति उन्नत है। देहाती ग्रहीर सदा लाठी लेकर चलता है, लोटे से रात दिन काम लेता है तथा घर में दूध घी की कमी न होने के कारण सर्वदा नहीं तो पर्वों पर ही सही मालपूग्रा भी खाता है। ग्रतः यदि वह किसी स्त्री के ग्रंगों की उपमा ग्रपनी दैनिक प्रयोग में ग्राने वाली वस्तुग्रों से न दे तो ग्रौर किससे दे। कवियों ने "कनक छड़ी सी नायिका" का वर्णन किया है परन्तु जो कोमलता ग्रौर सुन्दरता पान के पत्ते में है वह सोने की बनी छड़ी में कहाँ। ऊपर के विरहे में निपट देहाती उपमानों का प्रयोग किया गया है काव्य में जूरा की हूरा से उपमा कितनी मौलिक है।

इन लोकगीतों में श्लेप ग्रलंकार भी ग्रनायास ग्राये हैं। संस्कृत तथा हिन्दी के कवियों ने ग्रभंग ग्रौर सभंग श्लेप के द्वारा काव्य रचना में बड़ी चातुरी दिखलाई है, परन्तु इन गीतों में यह बात नहीं है। नीचे के इस विरह में श्लेष ग्रलंकार का बड़ा ही सुन्दर विधान मिलता है।

रसवा के भेजलीं भंभरवा के संगिया,
रसवा ले ग्रइले हा थोरे।
ग्रतना हो रसवां में केकरा के बटवों,
सगरी नगरी हित मोर।

स्वाधीन पतिका कोई स्त्री कहती है कि,ऐ मित्र ! मैंने भंवरा को रस लेने को भेजा लेकिन वह थोड़ा सा ही रस ले ग्राया। मेरे पास रस इतना थोड़ा है कि मैं किसे इस रस में से बाँटूं, क्योंकि गाँव के जितने रहने वाले हैं सब मेरे हितू हैं। यहाँ पर भंवरा (भ्रमर ग्रौर पति) तथा रसमधु ग्रौर प्रेम शब्द में श्लेष है जो हृदयों के ग्रन्तस्थल को स्पर्श करता है। सुन्दरी का ग्राशय यह है कि उसके पास प्रेम इतना कम है कि वह एक पुरुष पति के ग्रतिरिक्त ग्रन्य पुरुष से प्रेम नहीं कर सकती। भंवर तथा रस शब्दों ने इस विरहा में जान डाल दी है। भंवरवा में 'वा' प्रत्यय 'स्वार्थक' की भांति नहीं है प्रत्युत प्रेम का सूचक प्रत्यय है।

इन गीतों में कहीं-कहीं रूपक ग्रलंकार भी मिल जाता है। इन रूपकों की विशेषता यह है कि ये कभी दीर्घ तथा सांग नहीं हैं। ग्रारोप का क्रम प्रारंभ करके उसका सांग तथा सम्पूर्ण निर्वाह कहीं नहीं किया गया है। वस्तु के ग्रारोप की प्रक्रिया थोड़ी दूर चल कर ही समाप्त हो जाती है। इसका कारण संभवतः यह जान पड़ता है कि भाव के भूखे तथा रस के प्यासे भोजपुरी कवि को रूपकालंकार के रूप के ग्रारोप का ग्रवकाश कहाँ। उसने तो स्थान विशेष पर जोर देने के लिए ग्रलंकार को पकड़ा ग्रौर फिर उसे छोड़ वह ग्रागे बढ़ गया। उदाहरण लीजियेः

सत सुकीरित के घइलवा, परेम केरा लेजुर हो।
ललना, पनिया भरऊँ भकभोरी माँग भरि सेन्दुर हो॥

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घड़ा है। इस घड़े से प्रेम रूपी रस्सी के द्वारा मांग में सिंदूर लगाकर अच्छी तरह से मैं पानी भरूँगी। अर्थात् प्रेम के द्वारा सुयश तथा सत्य का अवलंबन कर मैं मोक्ष रूपी पवित्र जल को पीऊँगी जिससे अमर हो जाऊँ। यहाँ कुयें से पानी भरने का रूपक बांधा गया है। परन्तु कुयें के वर्णन के अभाव में यह रूपक पूर्ण नहीं हैं।

(ग) रस परिपाक

जैसा कि पहले कहा गया है, इन लोकगीतों में रस की धारा अविच्छिन्न गति से प्रवाहित होती रहती है। ये गीत क्या हैं रस के वे फौवारें हैं जिनका स्रोत कभी सूखता ही नहीं। लोकगीतों में रस परिपाक सुन्दर बन पड़ा है। नारी का जीवन ही दुःख तथा रुदन का दूसरा पर्याय है, यह करुणा की लम्बी कहानी है। इसीलिए राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है।

"अबला जीवन ! हाय तुम्हारी यही कहानी।
आंचल में है दूध और आँखों में पानी ॥"

इन गीतों में स्त्री का समस्त जीवन चित्रित मिलता है। पुत्र या पुत्री के जन्म से लेकर गवना तक वही करुण कथा सुनने को मिलती है। चाहे पुत्रजन्म के गीत हों या जनेऊ के, चाहे विवाह के गाने हों या गवना के, चाहे विरहा, या झूमर इन सभी गानों में स्त्री के कारुणिक जीवन की गहरी छाप हमें देखने को मिलती है। इसलिये इनमें अन्य रसों की अपेक्षा करुण रस की मात्रा प्रचुर रूप में पायी जाती है। परंतु इसके साथ ही शृंगार, हास्य, शांत तथा वीर रसों का भी अभाव नहीं है।

भोजपुरी लोकगीतों में शृंगार रस के दोनों पक्षों, संयोग और वियोग का वर्णन मिलता है। वियोग का वर्णन करुण रस के प्रसंग में आगे किया जायगा। इन गीतों में शृंगार रस का जो स्वरूप पाया जाता है वह नितांत पवित्र, संयत, शुद्ध और दिव्य है। हिन्दी के रीति कालीन कवियों ने संयोग शृंगार का जो भद्दा, अश्लील तथा कुरुचिपूर्ण प्रदर्शन अपनी रचनाओं में किया है उसका यहाँ अभाव है। संभवतः हिन्दी के कवियों ने अपनी कवितायें अपने अन्नदाता राजाओं को प्रसन्न करने के लिये रची थीं परंतु ये गीत स्वांतः सुखाय रचे गये हैं।

विवाह संबंधी गीतों में शृंगार रस का आनन्द अधिक मात्रा में मिलता है। विवाह के बाद जब वर को कोहबर में ले जाते हैं उस समय के गीत शृंगार रस से लबालब भरे होते हैं। इसके अतिरिक्त पुत्र जन्म के उत्सव के अवसर पर गाये जाने वाले सोहरों में भी शृंगार रस के अनुकूल सामग्री की कमी नहीं हैं। गर्भिणी की शरीर-यष्टि का कितना सहानुभूतिपूर्ण वर्णन इस मनोहर गीत में किया गया है।

लीपि पोति अइलों ओबरिया, अंगनवा में ठाढ़ भइलीं रे।
ललना राजा के दुअरिया भितिया ओठंघे, हरदी मुँहवा पियर रे ॥ १ ॥
दुअरा से निकलेले नंदलाल, नाजो के मुखवा देखेले हो।
आमा दुलहिन के ओठवा झुरइले, हरदी मुँहवा पिअर हो ॥ २ ॥
सासु मोरि मुँहवा निरेखे, ननद मुँहवा चूमेले हो।
बहुआ धीरे-धीरे अंगवा बेदनिया होरिल तोहरा होइहें हो ॥ ३ ॥
जनि केहु मुँहवा निरेखे, त जनि गलवा चूमहु रे।
ललना दुअरा सुतेला समझइतवा, बोलाई घरवा ले आवहु रे ॥ ४ ॥

एहि अवसर पिया के भेटिनीं त लाते मूके मरिती हु रे।
ललना ! लपकि के डँडवा त धरीतीं, दुःखवा त आधा बटिती हु रे ।।५।।

प्रसव वेदना से व्याकुल कोई सुकुमार स्त्री अपनी दशा का वर्णन करती हुई कह रही है कि मैंने घर का भीतरी भाग लीप लिया है। अपने प्रियतम की दुलारी मैं, भीत का सहारा लेकर लेट रही हूँ। मेरा मुख पीला पड़ गया है। इतने में उसका पति द्वार पर से घर आता और अपनी स्त्री का पीला मुख देख कर माता से पूछने लगा कि इसके होंठ सूखे क्यों हैं। सास मेरा मुख देखती है, नंद मुख चूमती है और कहती है कि धीरे-धीरे कष्ट को सह लो। इस पर स्त्री कहती है कि कोई मेरी सहायता भले न करे, मेरे पति को बुलाओ। यदि आज वे मुझे मिल जाते तो उनकी अच्छी तरह से मरम्मत करती और लपक कर उनकी कमर को पकड़ कर कहती कि प्रियतम ! मेरे दुःख को आधा बाँट लो क्योंकि इस दुःख को देने वाले तुम्हीं हो।

इस गीत में "सझइतवा" साझी, साथी शब्द बड़ा ही व्यंग्यपूर्ण है। वास्तव में पति ही स्त्री के दुःख और सुख का साथी है। यदि सुख में पति ने साथ दिया तो दुःख में भी यदि वह संगी नहीं तो कौन होगा। गर्भिणी की वेदना का यह कितना मार्मिक चित्रण है।

नीचे के गीत में कृष्ण जी का गोपियों के साथ छेड़खानी करने एवं गोपियों का यशोदा के पास कृष्ण के प्रति उपालंभ करने का कितना मर्मस्पर्शी वर्णन है।

"दही बेचे चलली गोवालिन, सिर पर मुकुट लिहले हो।
डारे गले गजमुकुता के हार त ओढ़ेली पिताम्बर हो।
एक बने गइली दूसरे बने, अवरु तीसरे बने हो ।।
अरे बीचवा कन्हैया बटमरवा, डगरि हमरी रोकेले हो।
दही, दूध दिहली त नाहिं लेले,
आरे मांगेले कन्हैया जी गोरसवा, धरमवा छोड़ावेले हो।
मिलहु सखिया सलेहरि मिली जुलि यशोदा घर चलहु हो ।।
ए मइया बरजो ना आपन कन्हैया, डगरिया मोर रोकले हो।
मेटि घालु सिर के सेन्दुरवा, नयन भरि काजर हो।
ए बहुआ मेटि घालहु दाँते के मिसिया, कन्हैया तोके नाहि रोकिहें हो।
धनि के बइठइबों दाँत मिसिया, नयन भरि काजर हो।
एक डाटि फारि करबो इंगुरवा कन्हैया के ललचाइबि हो ।।"

दही बेचने के लिये ग्वालिन सिर पर मुकुट, गले मे माला तथा पीताम्बर पहने चली जा रही है। रास्ते में कृष्ण ने उनका मार्ग रोक लिया। दूध, दही देने पर कृष्ण ने नहीं लिया और गोरस (इंद्रिय) का रस भोग माँगने लगे। इस पर सब ग्वालिनों ने आकर यशोदा को उलाहना दिया। यशोदा ने कहा कि तुम अपने सिर का सिन्दूर, आँखों का काजल और दाँतों में मिस्सी का लगाना छोड़ दो। परन्तु गोपियों ने उत्तर दिया कि नहीं हम लोग माँग में सिन्दूर लगावेंगी, आँखों में काजल करेंगी और दांतों में मिस्सी लगाकर कृष्ण को खूब ललचावेंगी। इस गीत में गोपियों का उत्तर बड़ा सरल और मर्मस्पर्शी है।

लोकगीतों में स्थान-स्थान पर हास्यरस का भी पुट पाया जाता है यह बड़ी ही मनोरंजक बात है कि इन गीतों का हास्य ग्रामीण होते हुए भी ग्राम्य नहीं है। विवाह होने के पश्चात् कोहबर में वर से अनेक प्रकार की हास्यरस की बातें कही जाती हैं जो

बड़ी ही चुटीली होती हैं। गीतों में आदर्श सती स्त्रियों का चित्रण तो बहुत मिलता है परन्तु कुलटा का बहुत कम। रसानुकूल कुरूपता का चित्रण भी एक कला है। इस दृष्टि से इस गीत में किसी कर्कशा कुलटा स्त्री का चित्रण कितना सुन्दर बन बड़ा है। सुनिये :—

"धनि धनि रे पुरुख तोर भागि, करकसा नारि मिली,
सात घरी दिन सोय के जागी, लिहली बढ़निया उठाय,
निहुरलि निहुरलि अंगना बहारे, घर भर को गरियाय।
करकसा नारि मिली॥
बखरी पर से कौवा रोवे, पहुना अइलें तीन।
आव पाहुन घर में बइठ, कंडा लाईं बीन।
करकसा नारि मिली॥
हड़िया भरि के अदहन दिहलीं, चाउर मिलवली तीन।
कठवति भरि के माड़ पसवली, पिय हिलोर हिलोर।
करकसा नारि मिली।
सात सेर के लिट्ट पकवली, चौदह सेर के एक।
तू दहिजरऊ सातो खइल, हम कुलवन्ती एक।
करकसा नारि मिली॥
डेहरी बइठे तेल लगावे, सेन्दुर भरावे माँग।
आँचर पसारि के सुरुज मनावे, कब होइबि हम राँड़।
करकसा नारि मिली॥"

हे पुरुष! तेरा भाग्य धन्य है जो तुझे ऐसी कर्कशा स्त्री मिली है। सात घड़ी तक वह दिन में सोती है और बाद में झाड़ू उठाकर घर वालों को गाली देती हुई आँगन बुहारती है। टूटे घर के ऊपर कौवा बोल रहा है, उसी समय घर में तीन अतिथि चले आए तब वह स्त्री उनसे कहती है कि तुम लोग बैठो मैं उपले बीन कर ले आऊँ। उसने बड़ी हाड़ी में भरकर पानी डाल दिया और भोजन के लिये केवल तीन चावल ही डाले। उसने कठौता भर माँड़ निकाला और उनसे कहा कि तुम लोग इसे पीओ। उसने सात सेर की रोटी उनके लिए और चौदह सेर की एक ही लिट्टी अपने लिए बनायी। फिर उन्हें गाली देती हुई कहने लगी कि तुम दुष्टों ने सात सेर की रोटी खा डाली और मैंने केवल एक ही खाया। वह दरवाजे पर बैठकर, माँग में सिन्दूर लगा कर सूर्य भगवान् से नित्य यही प्रार्थना करती है कि मैं कब राँड़ (विधवा) हो जाऊँगी।

लोक गीतों में हास्यरस का आस्वादन तो केवल मुँह का मजा बदलने के लिये है। इन गीतों का असली रूप तो करुण रस के गीतों में ही दिखाई पड़ता है। करुण रस में इन गीतों की मनोरमता तथा मार्मिकता पराकाष्ठा पर पहुंच गई है। सच तो यह है कि जैसा मधुर रस परिपाक करुण रस के गीतों में हुआ है वैसा अन्यत्र नहीं। करुणरस के गीतों को हम तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं:—

१. विदाई के गीत।
२. वियोग के गीत।
३. वैधव्य के गीत।

जब कन्या विवाह के पश्चात् पिता के घर से पतिगृह को जाने लगती है उस समय जो गीत गाये जाते हैं उन्हें विदाई या गवना के गीत कहते हैं। ये गीत बड़े मार्मिक तथा करुण रस में सने होते हैं। वास्तव में भोजपुरी प्रदेश से पुत्री के बिदाई का दृश्य बड़ा ही करुणाजनक होवा है। कहीं पिता रोता है, कहीं माता सिर पटकती रहती है, कहीं भाई चिल्लाता है तो कहीं गाँव की स्त्रियाँ आँसू बहाती हुई दिखाई पड़तीं हैं। सचमुच ऐसे समय में जब तपस्वी महर्षि कण्व भी धैर्य्य नहीं धारण कर सके, तो साधारण लोगों की चर्चा ही क्या! विदाई की एक गीत सुनिये—

"दुअरा भूलिये भूलि बाबा जी रोवेले,
कतहीं न देखिले बेटी नुपुरवा तो तोहार।
आंगना भूलिये भूलि आमा जे रोवेली,
कतहीं न देखिले बेटी! रसोइया भाभाकाल॥
घेरवा भूलिये भूलि भऊजी जे रोवेली,
कतहीं ना देखिले बेटी! घरवा भाभाकाल॥"

अर्थात् दरवाजे पर बैठा हुआ पिता रोता हुआ कह रहा है कि बेटी मै तुम्हारी पायजेब को नहीं देख रहा हूँ। रोती हुई माता कहती है कि ए बेटी! तुम्हारे बिना मेरा रसोई घर शून्य है और दुःखी भावज को ननद के बिना सारा घर ही सूना दिखाई पड़ता है।

इतना ही नहीं पिता के लगातार अश्रुप्रवाह से गंगा में बाढ़ आ जाती है और माता के रोने से आँखों के आगे अँधेरा छा जाता है। बहन के विदाई के कारण रोते-रोते भाई की धोती पैर तक भींग जाती है:—

"बाबा के रोवले गंगा बढ़ि अइली,
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजेला,
भऊजी नयनवा ना लोर॥"

पत्नी से पति के वियोग संबंधी गीत बड़े मर्मस्पर्शी हैं। इनको सुनकर पत्थर का हृदय भी पिघल उठता और वज्रहृदय भी टूक-टूक हो जाता है। विप्रलंभशृङ्गार का वर्णन संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक कवियों ने बड़ी सुन्दरता से किया है परन्तु इन गीतों की अपनी विशेषता है। इन गीतों में स्वानुभूति का वर्णन है अतः ये स्वाभाविक, अकृत्रिम तथा मनोरम बन पड़े हैं, परन्तु कवियों का वियोगवर्णन उनकी कल्पना की उड़ान मात्र है उसमें अनुभूति के दर्शन कहाँ।

पति परदेश जाने के लिये तैयार है। स्त्री उसके भावी वियोग की आशंका से दुःखी होकर कहती है कि तुम्हारे वियोग में मैं कैसे रहूँगी, इसकी युक्ति मुझे बतलाते जाओ। यदि तुम परदेश में अधिक दिन तक रहोगे तो अपना चित्र मेरी बाहों पर बनाते जाना, जिसे मैं देखकर अपना दिन काटूँगी। नहीं तो मेरे भाई को बुलाकर मुझे मायके पहुँचा दो। हे स्वामी! यदि तुम बहुत दिन परदेश में र होगे तो तुम्हारा वियोग मुझे असह्य हो जायेगा। अतः तुम मेरी बांह पकड़ कर मुझे गंगा में डाब दो। न मैं जीती रहूँगी और न वियोग के कष्ट को सहूँगी। इस मार्मिक गीत को सुनिये :—

"जुगुती बताये जाव। कवन विधि रहबों राम। टेक
जो तुम साम बहुत दिन बितिहें
अपनी सुरतिया मोरे बहियां पर लिखाये जाव। जुगुति०

जो तुहु सोम बहुत दिन बितिहैं।
बिरना बोलाईं मोके नइहर पहूँचाये जाव ।।२
जुगुति०
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं।
बहियां पकरि मोके गंगा भसियाये जाव ।।३
जुगुति बताये जाव, कवन बिधि रहबों राम।"

यह गीत क्या है करुण रस का कलश है। वियोग की आशंका से उत्पन्न दुःख का इतना सरस, सजीव तथा हृदय-द्रावक वर्णन कहाँ सहज में उपलब्ध होगा। हिन्दी के तोष आदि कवियों ने वियोगिनियों के आँसू से नदियों में बाढ़ आने की जो बात लिखी है वह अलंकार की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो परन्तु श्रोताओं के हृदय पर वह कुछ भी प्रभाव नहीं उत्पन्न करती। इस गीत के "भसियाना" शब्द में बड़ी मार्मिक व्यंजना छिपी हुई है। इसकी सरसता, मधुरता और करुणरसता के विषय में मतिराम का यह पद सर्वथा उपयुक्त जान पड़ता है कि :—

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैनन,
त्यों त्यों खरी निकरे सी निकाई।"

किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है वह वियोग से दुःखी होकर कह रही है कि ए भौंरा! अब तुम कब लौटोगे। मैं तेरी बाट कब तक जोहती रहूँगी। हाय, तुम्हारे आने के दिनों को गिनते-गिनते मेरी अँगुलियां घिस गईं परन्तु तुम नहीं आये। तुम्हारी प्रतीक्षा में अश्रुओं की धारा बह रही है। मैं तुम्हें ढूंढ़ने के लिये एक वन में गई, दूसरे में गई। तीसरे वन में एक गाय चराने वाला मिला। उससे मैंने पूछा कि ए भइया, गोरू के चराने वाले! तुमने मेरे रसवाले भंवरे अर्थात् पति को कहीं देखा है?

"आजु के गइल भँवरा कहिया ले लवटव,
कतेक दिनवां।
हम जोहवि तोरी बटिया, कतेक दिनवां।
गनत-गनत मोर अंगुरी खियायल, चितवते दिनवां ।।
ढुरे नैना से लोरवा, चितवते दिनवां।
एक बने गइलीं, दूसर बन गइलीं, तीसर बनवां।
मिलन गोरू चरवहवा, तीसर बनवा ।।
गोरू चरवहवा तुही मोर भइया कतहूँ देखल ना।
मोर भंवरवा परदेशिया कतहूँ देखल ना ।।"

इन गीतों में पशुहृदय का चित्रण भी अछूता नहीं बचा है। पशुओं के मानसिक भावों का अंकन भी सहानुभूति से किया गया है। पानी के लिये प्यासे प्रियतम हरिन के पकड़े जाने पर हरिनी का यह विलाप बड़ा करुणोत्पादक है। लय से गाये जाने पर यह गीत सचमुच हृदय को विह्वल कर देता है। गीत सुनिये :—

"आरे पानी के पियासल हरिनवा, जमुनवा घाटे रे जाय।
बोअली मैं चीनवा ए रामा हरिनवा चरि रे जाय ।।
बाट के बटोहिया सुनहु मोर बतिया, तुहूँ रे मोर भाय।
एहि राहे देखल हरिनवा, बहेलिया ले ले रे जाय ।।

देखुई मैं देखुई ए पातरि, सोनपूरवा के रे हाट।
हाथ गोड़ बन्हले बहेलिया, आहि हटिया ले ले रे जाय ।।
अ।रे गोड़ तोर थाके बहेलिया, हथवा लागेरे घून।
कवने कसूरवा बहेलिया, मोर सेजरिया कइले सून ।।
चाम, मांसु बेचिहे बहेलिया, हाड़वा दीहे रे मोर ।।
ओही हाड़ लेइ सती होइब, एहि जमुनवा के तीर ।।
पानी के पियासल हरिनवा, जमुनवा घाटे रे जाय ।।''

भाव यह है कि पानी के लिये प्यासा हिरन जमुना के घाट पर गया। चीन के खेत बोया गया था उसे वह चर गया। इस अपराध में बहेलिये ने उसे पकड़ लिया। हरिनी उसके वियोग से दुखी होकर राही से पूछती है कि तुमने इस रास्ते से जाते हुए मेरे हिरन को देखा है। उसने उत्तार दिया हाँ, हरिन के हाथ और पैर को बाँध कर बहेलिया उसे सोनपुर के मेले में लिये जा रहा था। हरिनी कहती है ए बहेलिया ! तेरे पैर चलते-चलते थक जायँ और तेरे हाथों में घुन लग जायँ। तुमने किस अपराध के कारण मेरी सेज को सूनी कर दिया है। अच्छा हिरन को मार कर उसके मांस को बेच लेना परन्तु उसकी हड्डी को मुझे देना क्योंकि उसी हड्डी को लेकर मैं सती होऊँगी। हरिनी का यह पति-प्रेम कितना उत्तम तथा आदर्शपूर्ण है।

एक विरहिणी वियोग-जन्य अपने दुःखों को कितने मधुर शब्दों में व्यक्त कर रही है

"मोरी धानी चुनरिया इतर गमके।
धनि बारी उमरिया नइहर तरसे ।।टेक
सोने की थाली में जेवना परोसलों।
मोर जेवन वाला बिदेस तरसे ।।मोरी धानी०
झंझरे गड़अवा गंगाजल पानी।
मोर पियनवाला बिदेस तरसे ।।मोरी धानी०
लवंग इलाएची के बिरवा लगवलीं।
मोरा चाभन वाला बिदेस तरसे ।।मोरी धानी०
कलिया चुनि-चुनि सेजिया डसवलीं।
मोर सूतन वाला बिदेस तरसे ।।मोरी धानी०

कितना सुन्दर भाव है। "मोरी बारी उमरिया नइहर तरसे" इस पद में कितनी कसक, कितनी वेदना छिपी हुई है, इसे तो सहृदय ही समझ सकते हैं।

वैधव्य के गीतों में विषाद की गहरी रेखा खिची मिलती है, परन्तु अमिट रूप से नहीं। दिन ज्यों-ज्यों ढलते जाते हैं, विषाद की रेखा उतनी ही धीमी पड़ती जाती है। परन्तु बालविधवाओं की मनोवेदना का चित्रण किन शब्दों में किया जा सकता है। इनकी दर्दनाक आहें किसके दिल को नहीं दहला देंगी। एक भोली भाली बाल-विधवा की उक्ति सुनिः—

"बाबा सिर मोर रोवेला सेन्दुर बिनु,
नयनवा कजरवा बिनु ए राम।
बाबा गोद मोर रोवेला बालक बिनु,
सेजरिया कन्हैया बिनु ए राम।"

अर्थात् हे पिता जी ! मेरा सिर सिंदूर के बिना, आँखें काजल के बिना गोद बालक के बिना और मेरी सेज पति के बिना रो रही है। बाल विधवा का यह कितना कारुणिक दृश्य है। कितना हृदयद्रावी वर्णन है।

शान्त रस का एक उदाहरण लीजिये। ईश्वर को पति और अपने को स्त्री मानना रहस्यवादियों तथा भक्तों की प्राचीन परंपरा रही है। यह संसार मायका और शरीर का त्याग ही वह गवना है जब प्रियतम का सहवास मिलता है। इसी आशय का यह गीत सुनिये—

"मोर नइहरवा से नातवा छोड़वले जाला पियवा।
कांचे कांचे बंसवा के डोलिया रे बनवले,
तेहि पर काया के सुतवले जाला पियवा।
चारि कहार मिलि डोलिया उठवले,
आगे-आगे रहिया देखवले जाला पियवा।"

घ. गीतों में कोमलता एवं सरसता

पीछे कहा गया है कि लोक गीतों में कृत्रिमता का नितान्त अभाव है। इनमें पद-विन्यास या शब्द रचना नितान्त स्वाभाविक हुई है। इन गीतों में सीधे-सादे शब्दों में मधुरता कूट-कूट कर भरी हुई है। साथ ही इन शब्दों में जो भावधारा बँधी पड़ी है उसमें जितनी डुबकी लगाइये उतना ही अधिक आनन्द आता है। चैता, निरगुन, जतसार और गवना के गीतों में कोमल पदावली का बड़ा सुन्दर व्यवहार हुआ है। कुछ फुटकर गीतों में भी रस का स्रोत बहता दीख पड़ता है। एक उदाहरण लीजिये:— जिसमें कोई स्त्री अपने प्राण प्यारे पति से उसके वियोग में दिन काटने का उपाय पूछ रही है। इसमें भावी वियोग की वेदना का अनुभव मार्मिक शब्दों में चित्रित है।[1]

"जुगुति बताये जाव,
कवन बिधि रहबों राम। टेक॥
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें,
अपनी सुरतिया मोरे बहियाँ पर लिखाये जाव।
जुगुति बताये॰
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें,
बिरना बोलाके मोके नइहर पहुँचाये जाव।
जुगुति बताये॰
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहें,
बहियाँ पकरि मोके गंगा भसियाये जाव।
जुगुति बताये जाव,
कवन विधि रहबों राम।"

वियोग की आशंका से उत्पन्न दुःख का सरस, सजीव, अकृत्रिम तथा हृदय-द्रावक वर्णन उक्त पंक्तियों में है। इस गीत में वर्णित भाव अपनी अकृत्रिमता के कारण

१. डा॰ उपाध्याय : भो॰ ग्रा॰ गी॰ भाग १ पृ॰ ६१। [पृष्ठ-भाग]

दिल पर सहज की ही में चोट करते हैं। 'बहियां पकरि मोके गंगा भसिआये जाव' आदि पदों में गहरी वेदना छिपी हुई है।

पूरे गीत में कर्णकटु शब्दों का अत्यन्ताभाव है। टवर्ग का कहीं भी प्रयोग नहीं हुआ है। 'युक्ति' के स्थान पर 'जुगुति' का प्रयोग कितना मधुर बन पड़ा है। 'श्याम शब्द स्वयं बड़ा सुन्दर है परन्तु संयुक्ताक्षर होने से कुछ उच्चारण की कठिनता एवं परुषता आ जाती है। इसके लिये गीत में 'साम' शब्द व्यवहृत है जो बड़ा कोमल है। भोजपुरी में 'या' प्रत्यय कोमलता का वाचक है, जैसे दही-दहिया, लड़की-लड़किया। इस प्रकार से यहाँ 'सूरत' और 'बाँह' में 'या' प्रत्यय जोड़कर इनमें अधिक कोमलता की व्यंजना की गई है दूसरी बात यह है कि इस गीत की लय भी इतनी कोमल एवं मधुर है कि सुनते ही बनता है। इस गीत की कोमलता, सरसता एवं मधुरता के विषय में मतिराम का यह पद उपयुक्त जान पड़ता है कि :—

"ज्यों ज्यों निहारिये नेरे ह्वै नैननि,
त्यों त्यों खरी निकरे सी निकाई।"

जांत के गीत बड़े सरस होते हैं। इनमें विरह-वेदना की जितनी मार्मिक व्यंजना होती है उतनी संभवतः अन्य गीतों में नहीं। इसीलिए जतसार रस से लबालब भरे रहते हैं। जब स्त्रियाँ राग लय से उन्हें गाने लगती हैं तो श्रोतागण की आँखों में बरबस आँसू झलक पड़ते हैं। नीचे की जतसार सुनिये जिसमें विधवा की मनोवेदना का उल्लेख किया गया है :—[1]

बगिया में पाँच पेड़ आमवा,
पचीस गो महुअवा बाटे हो राम।
राम तबहू ना बगिया गमक देले,
एकली बेइलिया बिनु हो राम।
राम पाँच सात खइलों मैं पानवा,
पचीस गो सोपरिया खइलों हों राम।
राम तबहूँ ना मुंह भइले लाल,
त एकली खजरिया बिनु हो राम।
राम सेर भरि सोनवा पहिरलों,
पसेर भरि चनिया हो राम।
राम तबहू ना देहिया सुहावनि,
एकली सेनुरवा बिनु हो राम।
राम सासु घर पाँच गो देवरवा,
पचीस गो भसुरवा बाटे हो राम।
राम तबहूँ ना ससुरा सोहावन,
एकली कन्हैया बिनु हो राम।"

इस गीत में करुण रस का स्रोत बह रहा है जिसमें पाठक भी थोड़ी देर के लिए बह जाते हैं। ससुराल में पाँच देवर और पचीस भसुर के विद्यमान रहने पर भी केवल पति के बिना शरीर के सुन्दर न लगने की उक्ति कितनी मार्मिक है। सेर भर सोना का और

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ११५।

पसेरी भर चाँदी का गहना पहनने पर भी केवल सिन्दूर (पति) के बिना शरीरयष्टि का शोभित न होना कितना मर्मस्पर्शी है।

चैता के गीतों में हृदय द्रावकता की अमोघ शक्ति विद्यमान है। उनका पद विन्यास इतना सुन्दर होता है कि कोई भी शब्द अपने स्थान से हटाया नहीं जा सकता। चैता के गाने की लय बड़ी मनोमोहक होती है। जो अत्यन्त श्रुतिसुखद और मधुर है। यह चैता लीजिये :—

"आहो रामा मानिक हमरो हेरइले हो रामा
ओहि जमुना में, केहू नाँहि खोजेला हमरो पदारथ हो रामा
ओही जमुना में।
आहो रामा ओहि रे जमुनवा के चिकटि मटिया
चलत पाँव बिछिलइले हो रामा।
ओही जमुना में।
आहो रामा ओही रे जमुना के करिया पनिया,
देखत मन घबरइले हो रामा।
ओही जमुना में।"

लय से गाये जाते हुए इस चैते को सुनकर हृदय द्रवीभूत हो जाता है। 'ओहि रे जमुनवा के चिकटी मटिया' इन शब्दों को सुनकर मन फिसलने की अपेक्षा वहीं चिपट जाता है। 'मटिया' में 'या' प्रत्यय कोमलता का सूचक है। इस चैते की पदावली जितनी सुन्दर है भाव भी उतना ही रमणीय है।

निरगुन के गीतों में शृङ्गार और भक्ति का संगम पाया जाता है। जहाँ विरहिणी स्त्री के दुःसह वियोग का वर्णन उपलब्ध होता है वहाँ आत्मा की परमात्मा से मिलने की उत्सुकता भी दीख पड़ती है। भक्ति का पुट होने पर भी निरगुन का मुख्य रस शृङ्गार ही है। निरगुन के गीतों में प्रेम का विशेषतः विप्रलंभ शृङ्गार का वर्णन होने से बड़ी सरसता एवं मधुरता आ गई है घर से विरक्त भाई की खोज में जाने वाली बहन की अपनी भावज के प्रति यह उक्ति कितनी मार्मिक है।[1]

"पिसि देहु पिसि देहु भऊजी, जिरहुलि सतुइया हो,
किआहो मोरे रामा, हम जाइबि भइया के उदेशवा नु ए रामा।
एक बने गइलीं रामा, दुई बने गइली हो,
कि आहो मोरे रामा, तीसरे बने धुइयाँ रमावेला ए रामा।
छोड़ु छोड़ु जोगिया रे जंगल के धुइ यवाँ हो,
किआहो मोरे रामा भऊजी के रोवले छतिया फाटेला ए राम।
कइसे के छोड़ी बहिना जंगल के धुइयाँ हो,
कि आहो मोरे रामा दुनियाँ से नेहिया अब त छूटल ए राम।"

इस निरगुन में पति के वियोग में स्त्री की विह्वलता का वर्णन है। भाई के प्रति बहन का प्रेम छलका पड़ता है। वह उसकी तलाश में बन-बन घूमती है और अन्त में घर लौट चलने के लिये आग्रह करती है। इस गीत की भाषा सरस और भाव मधुर है।

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३७९

चैता, निरगुन, जतसार आदि के जो गीत उद्धृत किये गये हैं उनमें सरसता, कोमलता और मधुरता प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। इनकी शब्दावली इतनी मधुर है कि जयदेव की 'कोमल कान्त पदावली' की याद आती है और गाथा एवं 'आर्या सप्तशती' की मधुरता ध्यान में आये बिना नहीं रहती।

ङ. लोकगीत में छन्द विधान

किसी देश के लोकगीत उस देश की जनता की संस्कृति के प्रतिबिम्ब हैं। ये जंगली फूल की तरह स्वतंत्र वातावरण में उत्पन्न होते हैं और उसी में विकास को प्राप्त होते हैं। इसीलिये इन गीतों में सर्वांगीण भाव, भाषा, अलंकार एवं पिंगल आदि की स्वतंत्रता पाई जाती है। ग्रामीण कवि कविता करते समय छन्द शास्त्र के नियमों को याद करके नहीं बैठता और न वह 'जगण' और 'मगण' की भूलभुलैया में ही पड़ता है। उसके निष्कपट हृदय में जो भावधारा अनायास आ जाती है उसे वह 'स्वान्तः सुखाय' प्रकाश में लाता है। इसीलिये लोक गीतों में छन्दविधान का कोई निश्चित नियम नहीं दिखाई पड़ता। ऐसी दशा में लोक गीतों में छन्दविधान के अनुसन्धानकर्ता का कार्य बड़ा ही कठिन हो जाता है।

इन गीतों के विषय में पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि "इनमें छन्द नहीं केवल लय है।"[1] सुप्रसिद्ध भाषाविद् डा० ग्रियर्सन ने 'बिरहा' का छन्दविधान बतलाते हुये लिखा है कि पढ़ते समय छन्द के नियम के अनुसार ये बिरहे शायद ही मिलें, जबतक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिये जायँ। इनमें कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं जो छन्द के अंगभूत नहीं होते।[2] इसी विद्वान् ने आगे चलकर अपना गंभीर मत प्रकट किया है कि "इन लोक गीतों की यह विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमें बड़े शिथिल हैं।"[3] इन उल्लेखों में यह सहज ही में समझा जा सकता है कि लोक गीतों में छन्दों का विशेष ध्यान नहीं रखा जाता है और जहाँ छन्द हैं वहाँ उनके नियमों के पालन में बड़ी शिथिलता होती है।

लोक गीतों में कुछ ऐसे छन्द मिलते हैं जो वर्णिक और मात्रिक दोनों में से किसी कोटि के भीतर नहीं आते। वे केवल लय के ऊपर आश्रित होकर चलते हैं। इन्हें पारिभाषिक शब्दावली में 'तोड़' कहते हैं।

१. बिरहा :—अहीरों का राष्ट्रीय गान बिरहा है। यह एक छन्द है जिसमें चार चरण होते हैं। इसके प्रथम और तृतीय चरण में १६ अक्षर होते हैं और द्वितीय और चतुर्थ चरण में १० अक्षरों का विधान पाया जाता है। इसके साथ ही प्रथम एवं तृतीय चरण के अन्तिम दो अक्षर लघु और गुरु होते हैं। द्वितीय और चतुर्थ चरण के अन्तिम दो अक्षरों में गुरु एवं लघु का क्रम पाया जाता है।

१. त्रिपाठी : कविता कौमुदी भाग ५ पृ० ग्राम गीतों का परिचय। २. (इन रीडिंग देम बिरहाज, दे बिल रेयर्ली बी फाइन्ड टु ऐग्री विथ दिस, अनलेस वी रिमेम्बर दैट मेनी लौंग सिलेबिल्स मस्ट बी रेड ऐज शार्ट दैट इज वन इन्स्टेण्ड। समटाइम्स देयर आर सुपरफ्लुअस वर्ड्स व्हिच डू नोट फार्म पार्ट आफ दि मीटर)। ज० रा० ए० सो० (१८८६) : ३· 'दि पेकुलियेरिटी आफ आल दीज सांग्स इज दैट दि फेटर्स आफ मीटर लाई अपान देम वेरी लूजली इन्डीड।' ज० रा० ए० सी० (१८८५)।

"पिया पिया कहत पियर भइली देहिया,
लोगवा कहेला पिंड रोग।
गंउवा के लोगवा त मरमियो ना जानेला,
भइले गवनवा ना मोर।"

यह बिरहा उक्त नियम की कसौटी पर बड़ा खरा उतरता है। छन्द के नियमानुसार इसके प्रथम और तृतीय चरणों में १६ अक्षर और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में १० अक्षर पाये जाते हैं। इसके साथ ही इन दोनों चरणों के अन्तिम दो शब्द क्रम से दीर्घ और ह्रस्व मात्रा वाले हैं। एक दूसरे बिरहे में, उपर्युक्त नियम का पूरा पालन किया गया है।[1]

"रसवा के भेजलीं भंवरवा के संगिया,
रसवा ले अइले हा थोर।
अतना ही रसवा में केकरा के बटबों,
सगरी नगरी हित मोर॥"

इस बिरहे के प्रथम, तृतीय चरणों के अन्त में लघु, गुरु और द्वितीय चतुर्थ चरणों के अन्त में गुरु, लघु का सम्यक् विधान किया गया है। परन्तु यह नियम सर्वत्र लागू नहीं है। अनेक बिरहों में इसका उल्लंघन किया गया है जैसे—

"पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया,
दूधवा के परिकल बिलार।
आपन-आपन जोबनवां संभरिहे ए बिटियवा,
रहरी में लागल बा हुँड़ार॥"

इस बिरहे के तीसरे चरण में १८ अक्षर हैं जो नियम विरुद्ध है। ये गीत लय के अनुसार गाये जाने के कारण तोड़े मरोड़े एवं जोड़े भी जाते हैं। इसीलिए नियमानुसार इनमें उचित मात्रा में एवं अक्षर नहीं मिलते।

डा० ग्रियर्सन ने बिरहा के प्रत्येक चरण के लिए यह नियम निर्धारित किया है—

प्रथम चरण : ६+४+४+२=१६ अक्षर।
द्वितीय चरण : ४+४+३ =११ अक्षर।
तृतीय चरण : ६+४+४+२=१६ अक्षर।
चतुर्थ चरण : ४+४+४ =१२ अक्षर।

यह नियम उपर्युक्त नियम से प्रथम, तृतीय चरणों में कुछ समानता और द्वितीय एवं चतुर्थ चरणों में भिन्नता रखता है।

च. लोकगीत में भाव व्यंजना और छन्द विधान का सामञ्जस्य

संस्कृत साहित्य में भाव व्यंजना और छन्द प्रयोग का अत्यन्त अधिक सामंजस्य है। विभिन्न भावों के अनुसार विभिन्न छन्दों का प्रयोग दीख पड़ता है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने अपने 'सुवृत्त तिलक' में इस विषय पर बड़ा गंभीर विचार किया है और यह दिखलाया है कि विभिन्न विषयों के वर्णन के लिए भिन्न-भिन्न छन्द उपयुक्त हैं। उन्होंने लिखा है कि वर्षा और प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता अत्यन्त उपयुक्त छन्द है :[1]

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ४६। [पृष्ठ-भाग] २. वही. पृ० ४७। १. "प्रावृट्प्रवासकथने मन्दाक्रान्ता विशिष्यते।"

"मन्दाक्रन्ता" शब्द का अर्थ ही है धीरे-धीरे आक्रमण करने वाला। इसमें लय और भाव की वृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है जिस कारण इस छन्द में प्रवास का वर्णन अत्यन्त उत्तम होता है संभवत: इसीलिये महाकवि कालिदास ने अपने पूरे ग्रंथ मेघदूत में केवल इसी एक ही छन्द का प्रयोग किया है। प्रवास वर्णन में करुण रस की प्रधानता होती है। अत: मन्दाक्रान्ता में यह रस अन्य छन्दों की अपेक्षा अधिक ठीक उतरता है।

क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि जहाँ केवल वस्तु वर्णन और नीति कथन हो वहाँ अनुष्टुप् छन्द का प्रयोग प्रशंसनीय है। इसी प्रकार जहाँ किसी भयंकर वस्तु या प्रचंड रूप का वर्णन हो वहाँ स्रग्धरा आदि लम्बे छन्दों का प्रयोग करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से भाव और छन्द दोनों का प्रभाव एक साथ ही श्रोताओं के ऊपर पड़ता है।

हिन्दी साहित्य में यद्यपि इस विषय में कुछ विशेष विवेचना नहीं उपलब्ध होती फिर भी सवैया छन्द में संभोग तथा विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन विशेष समुचित माना जाता है। यदि किसी वस्तु का लम्बा वर्णन हुआ जिसमें गाढ़ बंध का प्रयोग अभिलषित है तो घनाक्षरी या कवित्त में रचना की जाती है। हिन्दी में घनानन्द और रसखान के सवैये और देव के कवित्त प्रसिद्ध हैं।

लोक गीतों के लेखकों ने भाव व्यंजना का विचार कर के ही समुचित छन्दों का प्रयोग किया है ऐसी बात नहीं जान पड़ती। फिर भी जो गीत उपलब्ध हैं उनके अध्ययन से पता चलता है कि इनमें भावव्यंजना और छन्द विधान का सामंजस्य है।

इन गीतों में जहाँ जीवन की आनन्दात्मक वृत्ति का वर्णन है, जहाँ उछाह, उत्साह एवं संभोग का उल्लेख है वहाँ प्राय: झूमर का प्रयोग किया गया है। झूमर की प्रत्येक पंक्ति छोटी-छोटी होती है। इस छन्द की लय ऐसी सुन्दर और सरस होती है कि उसके पढ़ने से ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। किसी स्त्री की यह उक्ति सुनिये: —[1]

"ना जानो यार झुलनी मोरा काहाँ गिरा। टेक ॥
पनिया भरन जाऊँ राजा ना जानो,
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो। टेक ॥
रोटिया पोवन जाऊँ राजा ना जानो,
यहाँ गिरा ना जानो वहाँ गिरा ना जानो।" टेक ॥

झूमर छन्द का लय बड़ा द्रुत होता है। यह शीघ्रता से गाया जाता है। स्त्रियाँ इसे झूम-झूमकर जल्दी-जल्दी गाती हैं। इस छोटे से छन्द में जिसकी गति भी शीघ्र है आनन्द, हर्ष एवं उल्लास का वर्णन समुचित रूप से किया जा सकता है। अत: संभोग शृंगार का वर्णन ही इसमें उपयुक्त हो सकता है। इसीलिये इस विषय के वर्णन के लिये झूमर छन्द का अधिकतर प्रयोग हुआ है।

जीवन के गंभीर पक्ष की अभिव्यक्ति के लिये, हृदय के मार्मिक भावों की अभिव्यंजना के लिये लम्बे-लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है जिससे रस का स्रोत शीघ्र ही सूख न जाय। इसीलिये विप्रलम्भ शृंगार का वर्णन प्रधानतया जंतसार और निरगुन के गीतों में हुआ है। जांत के गीत प्राय: लोकगीतों में सबसे लम्बे होते हैं। अत: करुण रस की जो सरिता इसमें प्रवाहित होती है उसका स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता रहता है। एक उदाहरण लीजिये:—[2]

---

१. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २८४-८५। २. वही. पृ० २२९।

"ए राम जेहि बन सिकियो ना डोलेला
बघवो ना गुरजेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरि मोर गइलें,
त केहु ना सनेसिया नु ए राम।
ए राम मचिया बइठल तुहुँ श्रामा
त श्रवरु से श्रामा मोरी ए राम।
ए राम बियतलि धियवा रे मंगेरु,
त बियते गवने श्रइलों ए राम।"

जांत का यह गीत झूमर गीत से बहुत बड़ा है। इसकी प्रत्येक पंक्ति झूमर से तिगुनी नहीं तो दुगुनी अवश्य है। इसकी लय मन्दाक्रान्ता की भांति विलम्बित है श्रौर धीरे-धीरे श्रागे बढ़ती जाती है। इसीलिये विरह के वर्णन में 'जंतसार' छन्द बड़ा श्रनुकूल माना जाता है।

जहाँ हृदय की उदात्त भावनाश्रों को श्रंकित करना है, वीरता श्रौर साहस के कार्यों का वर्णन श्रपेक्षित है वहाँ 'श्राल्हा' छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द में टवर्ग की प्रधानता रहती है। जितने भी श्रुति कटु शब्द होते हैं उनका विशेष रूप से इसमें प्रयोग किया जाता है जिससे शब्दों से ही वीरता के भाव प्रकट हों। श्राल्हा छन्द की लय इतनी द्रुत होती है, गाने का स्वर इतना उच्च श्रौर श्रोजपूर्ण होता है कि वीर रस उससे चुश्रा पड़ता है। श्राल्हा छन्द में ही ऐसी विशेषता है जिससे इसमें वीरता का वर्णन श्रधिक प्रशस्त हो जाता है। जैसे:—[1]

"श्रकिले लाखनि की उपटिन में
कोई कुंवर न श्राड़ो पांव।
भगे सिपाही दिल्ली वाले,
श्रपने डारि-डारि हथियार।
हियां की बातें हियनै छाड़ो,
श्रब श्रागे का सुनो हवाल।
घोड़ा प्यावन रुपना बारी,
नदिया बितवै पहुँचो जाय॥"

इस गीत में उपटिन, श्राड़ो, डारि, छाड़ो, घोड़ा श्रादि शब्दों में टवर्ग का प्रचुर प्रयोग हुश्रा है। साथ ही छन्द की लय भी ऐसी है जिससे वीरता के भाव की व्यंजना होती है।

वीररस के वर्णन में 'श्राल्हा' छन्द इतना मंज गया है कि यदि किसी साधारण वस्तु का भी इस छन्द में वर्णन किया जाय तो उससे भी वीरता का श्राभास मिलता है।

संस्कृत साहित्य में हास्य रस की सृष्टि के लिये प्रायः दोधक छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द का लय ही ऐसा है जिसे पढ़कर स्वतः हंसी श्राये बिना नहीं रहती।

भोजपुरी में इसी प्रकार जहाँ हास्यरस का वर्णन श्रभीष्ट होता है वहाँ 'गोड़ऊ' छन्द का प्रयोग किया जाता है। गोंड़ एक जाति है जो सेवा वृत्ति पानी भरने, लकड़ी चीरने श्रादि का काम करती है। ये लोग विवाहादि उत्सवों पर एक विशेष प्रकार के गीत गाते हैं जिन्हें 'गोड़ऊ गीत' कहा जाता है। इन गीतों में हास्य रस की मात्रा श्रधिक रहती है। यह

---

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० १५६।

छन्द हास्य रस के वर्णन के लिये नितान्त उपयुक्त है। इसकी शब्दावली चलती हुई और लय अत्यन्त द्रुत होता है। हास्य रस में गंभीर लय की अवतारणा नहीं होनी चाहिये क्योंकि यह उसकी प्रकृति के विरुद्ध है। एक गीत उदाहरणार्थ दिया जाता है जिससे इन गीतों की हास्य रसात्मक प्रकृति का पता चलता है :—[1]

"हलबल हलबल धुनिया धूने,
सूत काते हलुआई
फुफती तरके झुलनी झूले,
बुटवलि के कामाई।
आरे बुटबलि के कामाई।
खुर खुर टाटी बोले, हम जानी पियवा मोर,
पियवा का भेसे भेसे अइले, काँगना ले गइले चोर।
आरे काँगना ले गइले चोर।"

इस विवेचना से स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी लोकगीतों में भाव व्यंजना और छन्द विधान में गहरा सामंजस्य है।

(६) लोक गीतों में तुक और लय

तुक के प्रयोग से कविता को स्मरण रखने में सहायता मिलती है और वह श्रोत्र सुखद भी होती है। इसीलिये प्राचीन हिन्दी कवियों ने तुकान्त कविता लिखी है। संस्कृत भाषा में तुकान्त कविता नहीं होती तथा अँग्रेजी में बहुत-सी कविताएँ ऐसी पायी जाती हैं जिनमें तुक का अभाव पाया जाता है। यद्यपि तुक काव्य का आवश्यक अंग नहीं है फिर भी इसके होने से कविता में सौन्दर्य आ जाता है। तुकान्त कविता पढ़ने में मधुर मालूम होती है।

भोजपुरी लोक गीत तुकान्त होता है। परन्तु इसमें तुक का पालन कठोरता के साथ नहीं किया गया है। कहीं तो पद के अन्त के स्वर समान मिलते हैं और कहीं व्यंजन। कहीं प्रत्येक पंक्ति में तुक मिलता है तो कहीं एक दो पंक्ति को छोड़कर गाया जाता है। जैसे:—[2]

"फागुन मास बहे फगुनी बयारि
पेड़ के पत्ता सभे झरि जाइ।

इस गीत में अन्तिम 'आइ' स्वर दोनों पंक्तियों में समान है। नीचे के गीत में सभी पंक्तियों में 'के' पाया जाता है।[3]

'कब होइहै दरसनवा हो मोरा साममुनर के।
सपना में देखलीं भवनवा हो, अपना सामसुनर के।
लिखियो ना भेजेला सनेसवा हो अपना साममुनर के।
ना जानि कवने करनवा हो, हमरा के तजि के।
आधी रात बोलेला पपिहरा हो जियरा के वेधि के।

बिरहा आदि गीतों में कहीं-कहीं पर दूसरी और चौथी पंक्तियों में तुक पाया जाता है। यह बिरहा सुनिये—[4]

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३४९-५०। २. वही. भाग २ पृ० १८२। ३. वही. पृ० १६७। ४. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३५०।

"पिसना के परिकल मुसरिया तुसरिया
दुधवा के परिकल बिलार।
आपन आपन जोबना सम्हरिहै बिटुइया
रहरी में लागल बा हुँड़ार।"

एक गीत में दूसरी पंक्ति के बिलार और चौथी में हुँड़ार शब्द में तुक है। इसके साथ ही पहली और तीसरी पंक्ति के अन्तिम अक्षरों में 'आ' स्वर समान पाया जाता है। गीतों में कहीं-कहीं पर तुक का सम्यक् विधान पाया जाता है तथा प्रत्येक पंक्ति में की योजना उचित रीति से की गई पायी जाती है। नीचे यह बहुरा का गीत लीजिये जिसकी प्रत्येक पंक्ति के रेखांकित शब्दों में तुक का विधान सुन्दर हुआ है।[1]

"माथा मीसे गइलीं रामा बाबा के सागरवा,
सखिया सब बोले ए बारि कुँवारि ॥१॥
साभावा बइठल तुहुँ बाबा हो बढ़इता,
कतेक दिनवा रखब हो बारि कुँवारि ॥२॥
तोहरो बिअहवा बेटी नान्हें हम कइलीं,
से तोर कन्त गइले हो जमोराई ॥३॥
जवना ही बटिया बाबा कन्त मोर गइले,
से तवन बटिया देहु ना हो बतलाई ॥४॥
जवन ही बटिया बेटी कन्त तोर गइले,
से तवन बटिया जनमे हो घमोराई ॥५॥
देहु ना बाबा हो ढाल तरुवरिया,
से हमहू कटइबो हो घमोराई ॥६॥
लेहुना बेटी हो डाल भरि सोनवा,
से आपना कन्हैया देहु ना बिसराई ॥७॥
आगि लगईबो बाबा डाल भरि सोनवा,
से आपन कन्हैया बिसरे जोग नाई" ॥८॥

लोक गीतों में प्रायः रे ना, होना, आहो रामा, हू रे जो, ए राम, हा राम, ए, हो, रे, आदि पद प्रायः प्रत्येक पंक्ति के अन्त में पाया जाता है। ये टेक पद हैं जो तुक का काम करते हैं। इनकी आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति के बाद होनी आवश्यक है। कहीं-कहीं तो पूरी पंक्ति की आवृत्ति की जाती है।[2]

"काहे मन मारी खड़ी गोरी अँगना। टेक
धरती के लँहगा, बादरी के चोली,
जोन्ही के बटम, कसबि दूनों जोबना।
काहे मन मारी खड़ी गोरी अँगना।"

कहीं-कहीं पर निरर्थक पदों की आवृत्ति पाई जाती है। जैसे—[3]

"पनवा छेवड़ि छेवड़ि भजिया बनौलों
लौंगन दिहलों धुँअरवा हू रे जी।

१. लेखक का निजी संग्रह। २. डा० उपाध्याय: भो० लो० गी० भाग १ पृ० ३१६। ३. वही. पृ० २४४।

सठिया कूटि कूटि भतवा रिन्हौलों,
उपरा मुंगौश्रा केरि दलिया हू रे जी।"

यहाँ पर 'हू रे जी' इन अक्षरों की प्रत्येक पंक्ति के बाद आवृत्ति हुई है। इसी प्रकार विरहा के गानों में 'आहो रामा' की पुनरावृत्ति होती है। इन टेक पदों का उपयोग गीत में जोर लाना तथा उसे अधिक सुखद बनाना होता है।

तुक की योजना बारहमासा और बिरहा में विशेषरूप से पायी जाती है। यह बारहमासा सुनिये जिसमें तुक की कुछ छटा देखने को मिलती है।[1] जैसे—

"माघ मास रितु आयल बसन्त,
कहति मन्दोदरि सुनु पिया कन्त।
दे डालु जानकी राम अवध फिरि जाई।
नाहीं त निसिचर बंस नसाई।

.. ..

जइसे फागुन उड़त अबीर,
तइसे घेरले राम लखन दुई वीर।

....

खड़बड़ भूमि निसाचर जूथ
अइले कपिदल सेन बरूथ।"

इस बारहमासे में तुक की रचना बड़ी सुन्दर बन पड़ी है और यह अलंकृत कविता की कोटि में पहुँचता दिखाई दे रहा है। एक दूसरा बारहमासा सुनिये जिसमें तुक की योजना बड़े सुन्दर ढंग से की गई है।[2]

"प्रथम मास असाढ़ ए सखी बूंद से झड़ि लागहीं।
साम अइसन निठुर ए सखी, मास असाढ़ ना आवहीं।
भादो रैन भयावनि ए सखी, दूसरे अंधरिया राति हो।
सेज छाड़ि हरि हमरा के गइले, इहेह दुखवा के बाति हो।"

कहीं-कहीं बिरहों में भी तुक पाया जाता है जो बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है।[3] जैसे-

'बइठलि मांजेले बटलोहिया गोरिया,
तूरेले गेड़अवा पर तान।
जेतिना के संइया तोर करले नोकरिया,
हम ओतिना के कचरीला पान।
गंगा जी के हवी मर खोकी ए रामा,
कांचे पकले मर खाई।
गंगा जी के हवी ना निरमल जलवा,
राति दिनवा बहि जाई।

ये तुक नितान्त स्वाभाविक हैं। स्वतः बिना प्रयास के आये हैं। इनको जुटाने के लिये किसी प्रकार के शब्दों की तोड़ फोड़ नहीं की गई है।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १६१-६२। २. वही पृ० १९८-९९। ३. वही. भाग १ पृ० ३५२-५३।

वास्तव में लय ही इन गीतों का मोहक गुण है। जब स्त्रियाँ सामूहिक रूप से किसी गीत को लय पूर्वक गाने लगती हैं तो वे लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहाँ किसी पंक्ति में अक्षर कम होते हैं वहाँ कुछ अक्षरों को जोड़कर पूरा कर लेती हैं। उनके मधुर कंठों से गीतों का लय पूर्ण उच्चारण उस गति में रस का संचार कर देता है। 'लोक गीतों के गाने के प्रकार' वाले अध्याय में इस प्रसंग का विशेष वर्णन किया जा चुका है। शुष्क से शुष्क गीतों में भी लय के द्वारा स्त्रियाँ सरसता का संचार कर देती हैं। यह गीत लीजिये—[1]

लय

जुगुति बताये जाव,
कवना विधि रहबों राम। टेक।
जो तुहु साम बहुत दिन बितिहैं
अपनी सुरतिया मोरे बहियां पर लिखाये जाव।
जुगुति बताये जाव ॥

इस गीत में लय की मोहकता और भाव की रसात्मकता पाषाण हृदय को भी अपनी करुणध्वनि से पिघला देती है।

भिन्न-भिन्न गीतों की लय भिन्न-भिन्न हुआ करती है। लोक गीतों को सुनने में अभ्यस्त मनुष्य केवल लय को सुन कर चाहे गीत को वह स्पष्ट न भी सुन पाये हो यह बतला सकता है कि अमुक गीत गाया जा रहा है। कुछ गीत तार स्वर में गाये जाते हैं और कुछ मन्द स्वर में। बिरहा और आल्हा ऐसे गीत हैं जो सदा उच्च स्वर में गाये जाते हैं। आल्हा के अतिरिक्त अन्य लोक कथाओं विजयमल, लोरकी, सोरठी, कहरवा, नयकवा बनजारा के लिये भी तार स्वर आवश्यक है। हाँ, स्त्रियों के जितने गीत हैं सोहर, जनेऊ, विवाह, गवना, जतसार, रोपनी, और सोहनी आदि वे प्रायः सभी विलम्बित लय में गाये जाते हैं। परन्तु इनमें झूमर का गीत अपवाद है। यह तार स्वर में द्रुत लय में गाया जाता है।

चैता के गाने में दो लय का प्रयोग होता है एक विलम्बित और दूसरा द्रुत। झलकुटिया चैता द्रुत लय के साथ गाया जाता है परन्तु दूसरे चैतों में विलम्बित लय का व्यवहार होता है। चैता की विलम्बित लय बहुत मधुर होती है।

ज. लोक गीतों में प्रेम-पद्धति

लोक गीतों में स्त्री और पुरुष का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है। साहित्य में कवियों ने प्रधानतया दो प्रकार के प्रेम का वर्णन किया है—१. स्वकीय प्रेम २. परकीय प्रेम। स्वकीय प्रेम उसे कहते हैं जो अपनी स्त्री से किया जाता है और परकीय प्रेम इसके ठीक विपरीत होता है। आदि काव्य रामायण में जो प्रेम दिखलाया गया है। वह प्रथम प्रकार का प्रेम है। इसका विकास विवाह संबंध हो जाने के पीछे और इसका पूर्ण उत्कर्ष जीवन की विकट परिस्थितियों में दिखाई पड़ता है। राम के वन जाने के साथ ही सीता के प्रेम का स्फुरण होता है और सीता-हरण होने पर राम के प्रेम की क्रांति सहसा फूटती हुई दिखाई पड़ती है। उभय पक्ष में सम होने पर भी नायक पक्ष में यह प्रेम कर्तव्य बुद्धि द्वारा कुछ संयत सा दिखाई पड़ता है।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३९।

दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह के पूर्व उत्पन्न होता है। यह पूर्व राग से बढ़ कर विवाह में नियमित हो जाता है। इसमें नायक नायिका संसार क्षेत्र में घूमते-फिरते हुए कहीं जैसे उपवन, नदी तट, तीर्थ आदि में एक दूसरे को देख कर मोहित हो जाते हैं और दोनों में प्रीति उत्पन्न हो जाती है। इसमें अधिकतर नायक की ओर से नायिका की प्राप्ति का प्रयत्न होता है। जहाँ पहिले प्रकार में प्रेम की उत्पत्ति विवाह के पश्चात् होती है वहाँ दूसरे प्रेम का प्रादुर्भाव विवाह के पूर्व होता है हिन्दी कवियों ने इन दोनों प्रकार के प्रेम का ही बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

भोजपुरी लोक गीतों में बहुधा पति पत्नी के प्रेम का परिस्फुरण विवाह के उपरांत ही दिखलायी पड़ता है। जिस प्रकार राम और सीता का प्रेम विकट परिस्थितियों में दिव्यता को प्राप्त होता है, उसी प्रकार इन लोक गीतों में जीवन के कठिन अवसरों में प्रेम की अलौकिकता की परीक्षा हुई है। कहीं-कहीं पर विवाह के पूर्व भी पनघट पर अथवा तालाब के किनारे युवक युवतियों में प्रथम दर्शन में प्रेम का प्ररोह अंकुरित होते हुए दिखलाया गया है। परन्तु लज्जा एवं संकोच की गर्म जलधारा से वह शीघ्र ही नष्ट हो गया है। कोई प्रेमी योगी का वेश बना कर किसी स्त्री के प्रथम दर्शन से उसके प्रेम जाल में फंस जाता है और उस स्त्री के पिता से विवाह का प्रस्ताव करता है। परन्तु ऐसा वैवाहिक प्रस्ताव लोक विरुद्ध होने के कारण अस्वीकृत हो जाता है—

"पुरुब से अइले रे जोगी, पछिम कहले जाले।
कवन बाबा चौपरिया रे जोगी, बहसे आसन मारी।
हम त बिआहन अइली ए बाबा, तोहार बिटिया कुँआरी।"[1]

इसी प्रकार से घोड़े पर चढ़ कर जाता हुआ कोई बटोही पनघट पर पानी भरने-वाली ग्राम बालाओं के अलौकिक सौन्दर्य पर प्रथम दर्शन में ही मुग्ध हो जाता है और प्रेम प्रस्ताव की अवतारणा करता है परन्तु स्त्रियों का लोक-लाज इस प्रेम की कलिका पर तुषारपात कर देता है इस प्रकार के प्रसंग लोक-गीतों में बहुत कम पाये जाते हैं।

लोक गीतों में प्रेमकी पूर्ण अभिव्यक्ति विवाह के उपरान्त ही हुई है। पति और पत्नी की प्रेम लता विवाह के पश्चात् ही पनपती हुई पायी जाती है। घनघोर परिस्थितियों में, अनेक आपत्तियों के आने पर भी पति और पत्नी के प्रेम में तनिक भी अन्तर नहीं आता। भवभूति की 'अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववथासु यत्' की उक्ति इस प्रकार के लोक गीतों में वर्णित प्रेम प्रणाली पर पूर्णतया घटित होती है। लोक कथाओं में अनेक स्थानों में ऐसा वर्णन पाया जाता है कि भाग्य के फेर से, दुर्दिन आने पर धनाभाव के कारण पति पत्नी अपना घर छोड़कर दोनों साथ दूसरे देश को चल पड़ते हैं। और भिक्षा वृत्ति से पेट की पूर्ति करते हैं। पति को निर्धन अवस्थामें छोड़ कर पत्नी अपने धनी मायके को जाना पसन्द नहीं करती।[2]

लोक साहित्य में वर्णित प्रेम पद्धति में सबसे अधिक खटकनेवाली बात यह है कि यह उभय पक्ष में समान नहीं है। पत्नी में पति के प्रति जो अलौकिक प्रेम, लोकोत्तर त्याग और अपूर्व सहनशीलता दिखाई पड़ती है उनका पति में नितान्त अभाव है। पति परदेश चला जाता है। वह रुपया, पैसा भेजना तो दूर रहा पत्र तक नहीं भेजता। उसकी स्त्री गरीबी में रो रोकर अपना दिन बिताती है। पत्र भेजती है, आदमी के द्वारा

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १२०। २. लेखक का निजी संग्रह।

संदेश भेजती है परन्तु 'बंगालिन बिटिया' के प्रेम में फँसा हुआ पति उसके पत्र का उत्तर तक नहीं देता। यदि पत्र देता भी है तो उसे दूसरा पति करने का आदेश देता है। स्त्री के पत्र को पढ़कर पति का यह सन्देश सुनिये—[1]

"आधा ही चिठि बचलनि मानावा मुसुकाई निरवामोहिया।
बाट बटोहिया रे सारावा मोर आरे लगबे तें सारावा।
हमारो सनेस लिहले जइहे, धनी से कहिहे समुझाई।
आरे दोसरो खसम कइरै घालू धनिया। निरवामोहिया।"

इस पर स्त्री जो उत्तर देती है वह पत्नी के प्रगाढ़ प्रेम एवं अखंड सतीत्व का द्योतक है—

"दोसरो खसम करे माई रे बहिनियाँ निरवामोहिया।
तोहरा अइसन राखों देवढ़ीदार निरवामोहिया।"

इसी प्रकार पति के प्रति स्त्री का प्रेम हमें ध्रुवतारा की भाँति अटल दिखलाई पड़ता है। चाँदी और सोने के टुकड़ों से स्त्री के इस स्वाभाविक एवं अकृत्रिम स्नेह को खरीदा नहीं जा सकता। परपुरुष का रूप सौन्दर्य उसे मुग्ध नहीं कर सकता। अनेक गीतों में ऐसा वर्णन पाया जाता है जहाँ लम्पट पुरुषों ने धन का लालच दिखला कर किसी सती के सतीत्व का सौदा करना चाहा है परन्तु इस प्रस्ताव का जो उन्हें उत्तर मिला है वह स्वर्णाक्षरों में अंकित करने योग्य है।

कोई लम्पट पुरुप किसी स्त्री से कहता है कि मैं तुम्हें गले में पहनने के लिये सोने की माला दूँगा और मोतियों से तुम्हारी माँग भरूँगा, तुम अपने परदेशी पति की आस छोड़कर मेरे साथ चली आवो—

"गलवा में देबों गलहार, मोतियन मांग भरी।
छोड़ परदेसिया के आस, हमारे संग साथ चली।"

इस पर अपने पति के रूप पर गर्व करनेवाली वह सती स्त्री कहती है—

"अगिया लगै गलहार बजर परै मोती लड़ी।
तोहरो ले पिया मोर सुन्दर गुलाब के फूल छड़ी।"

अर्थात् तुम्हारे हार में आग लग जाय और तुम्हारी मोती की माला नष्ट हो जाय। मेरा पति तो गुलाब के पुष्प के समान है और तुमसे कहीं अधिक सुन्दर है।

इस अरूपहार्य प्रेम से पुरुष के रूपलोभी प्रेम की जब हम तुलना करते हैं तब वह बहुत ही निम्न कोटि का दिखाई पड़ता है। स्त्री और पुरुष के विरह वर्णन की तुलना करने पर भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि प्रेम की मात्रा उभय पक्ष में समान नहीं है। स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा प्रेम की मात्रा अधिक है। पं० रामचन्द्र जी शुक्ल ने लिखा है कि "कवियों को स्त्री की कांचन यष्टि, उत्तुंग कुच, कोमल कपोल एवं तीखे नैनों के वर्णन में जो मजा आता है वह पुरुषों के अंग वर्णन में नहीं। इसलिए उन्होंने स्त्रियों का वियोग वर्णन बढ़ा-चढ़ा कर किया है।"[2]

हिन्दी के रीतिकालीन कवियों के विषय में वह कथन भले ही सत्य हो परन्तु लोक गीतों में विरह का जो वर्णन मिलता है उसमें अतिरंजना की मात्रा नहीं प्रतीत होती।

१. डा० उपाध्याय: भो० लो० गी० भाग १ पृ० २२७। २. जायसी ग्रन्थावली की भूमिका।

किसी स्त्री का पति परदेश गया है। वह उसके वियोग में अपने दिनों को कष्ट से बिता रही है। निर्धनता के कारण जब दुःख असह्य हो जाता है तब वह मायके चली जाती है और अपनी माता, भाई और भावज से बारी-बारी से प्रार्थना करती है कि मैं विपत्ति में पड़ी हुई हूँ अतः मेरी रक्षा करो—[1]

"ए राम जेहि बने सिकियो ना डोलेला
बघवो ना गुजरेला ए राम।
ए राम ताहि बने हरी मोर गइलें
ते केहुना सनेसिया हो राम।
ए राम मचिया बइठलि तुहु आमा,
त अवरु से आमा मोरी ए राम।
ए राम बिपतलि धियवा रे संगेरु,
त विपते गवने अइलों ए राम।"

इस गीत में विरह विधुरा स्त्री के वियोग की बड़ी मार्मिक व्यंजना हुई है। गीत के प्रत्येक पद से प्रेम टपक रहा है।

भोजपुरी लोक गीतों में जहां पति वियोग में स्त्रियों की आँखों की अश्रुधारा सूखती नहीं हैं वहाँ परदेश में बैठा हुआ 'निरमोही' पति गुलछर्रें उड़ाता हुआ दिखाई पड़ता है। इन गीतों के परदेशी पति पर स्त्री के सौन्दर्यपाश में फँसकर अपने कर्त्तव्य से च्युत हो जाते हैं और अपनी सहधर्मिणी का परित्याग कर दूसरा विवाह भी कर लेते हैं। यही कारण है कि जहाँ पति के प्रति प्रगाढ़ भक्ति एवं प्रेम होने के कारण पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी स्त्री सती हो जाती है वहाँ स्त्री की मृत्यु के पश्चात् पुरुष की आँखों से आँसू की एक बूंद भी नहीं गिरती। ऐसे गीत बहुत ही अल्प हैं जहाँ पत्नी के प्रेमवियोग में पुरुष हृदय छटपटाता दिखाया गया हो।

झ. लोक गीत में प्रकृति-वर्णन

साहित्य में प्रकृति का वर्णन प्रधानतया दो रूपों में पाया जाता है—१. आलम्बन विभाग के रूप में और २. उद्दीपन विभाव के रूप में। संस्कृत साहित्य में प्रकृति का जो चित्रण हुआ है वह प्रायः आलम्बन विभाव के रूप में उपलब्ध होता है। आदिकवि वाल्मीकि का यह वर्णन देखिये जहाँ प्रकृति का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है—

प्रकृति वर्णन की पद्धति

"अवश्याय निपातेन क्वचित् प्रविलन्नशाब्दला।
वनानां शोभते भूमिः निर्वृष्टतरुणातपा॥
मेघकृष्णाजिनधराः, धारायज्ञोपवीतिनः।
मारुतापूरितगुहाः, प्राधीता इव पर्वताः॥

इस प्रकार वाल्मीकि का वर्णन बड़ा गम्भीर एवं दिव्य है। परन्तु हिन्दी साहित्य में प्रकृति का जो वर्णन पाया जाता है वह दूसरी श्रेणी में अन्तर्मुक्त होता है। भाषा कवियों ने प्रकृति को प्रायः उद्दीपन रूप में ही देखा है। पति के वियोग में चन्द्रमा की चाँदनी का गर्म लगना कमल के पत्तों में उष्णता की भावना एवं कोकिल की कूक को कटु बतलाना

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १।

इसका उदाहरण है लोकगीतों में भी प्रकृति वर्णन में यही दूसरी पद्धति अपनायी गई है। विरहिणी नायिका को पुरवैया हवा भी विरह की आग जगाने वाली मालूम हो रही है।

"बाग्रा बहेला पुरवैया ए सजनी,
करसिनी जागेला ग्रागि ए।"

इन गीतों में कोकिल को वैरिन कहा गया है क्योंकि उसका कूकना कष्टदायक है। प्रकृति के सारे आनन्ददायक पदार्थ दुःखमयी मालूम होते हैं।

लोक का शरीर और मन गाँवों में बसता है। हरे-हरे खेतों में वे काम करते हैं। ग्राम के पेड़ों के नीचे बैठ कर ये उसकी रखवाली करते हैं, महुआ के पेड़ से 'कोंइता' इकट्ठा कर अँधेरे घर में प्रकाश का प्रबन्ध करते हैं। घर के आँगन में बोई गई 'जमिरिया की गछिया' उन्हें आनन्द देती है और चन्दन का पेड़ सुगन्ध को बिखेरता रहता है। कहीं रात को फूलने वाला बेला का फूल प्रांगण के वातावरण को प्रमोदमय बनाता है तो कहीं 'रावना' और 'मड़ुआ' के फूल शीतला माता की पूजा के लिए खिले हुए दिखाई पड़ते हैं। तुलसी का पेड़ तो ग्रामीण स्त्रियों का चिर साथी है। वे जहाँ भी रहेंगी तुलसी का पौधा अवश्य रहेगा।

इन वनस्पतियों के अतिरिक्त पक्षी भी अपने कलरव शब्द से ग्रामीणों का कुछ कम मनोरंजन नहीं करते। मोर सावन में बादलों को देख कर नाच उठता है, तो पपीहा पी की रट लगाता है। कहीं कोयल की कूक सुनाई पड़ती है तो कहीं घर के छज्जे पर बैठ कर काँव-काँव करता हुआ कौआ प्रिय के आगमन की सूचना देता है। अतः लोक गीतों में प्रकृति का जो वर्णन हुआ है वह इसी रूप में है। इनमें किसी प्राकृतिक दृश्य का सांगोपांग वर्णन नहीं मिलता बल्कि साधारण उल्लेखमात्र उपलब्ध होता है। भिन्न-भिन्न प्रसंगों में विभिन्न पुष्पों, फलों एवं पक्षियों का नाम आया है। परन्तु इनका कहीं भी विस्तृत वर्णन नहीं पाया जाता।

इस प्रकृति प्रेम में एक बात और ध्यान देने योग्य है। मनुष्य जिस वातावरण में रहता है वह उसी से प्रेम करता है। भोजपुरी प्रदेश में खास कर बलिया, गाजीपुर, और छपरा जिले में जहाँ से ये गीत संग्रहीत हैं पर्वत का अभाव है, अतः इन गीतों में पर्वतीय वर्णन की कमी पाई जाती हैं, यहाँ न तो बर्फ से लदी हुई चोटियाँ ही दीख पड़ती हैं और न गिरिगह्वर से कोई नदी ही निकलती है। अतः प्रकृति की दो महान् विभूतियों, पर्वत और नदी के वर्णन से ये गीत वंचित हैं। फिर भी वृक्ष, पक्षी और वायु का वर्णन आदि जनता के प्रकृति प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है।

देहातों में ग्राम और महुआ के पेड़ प्रचुर परिमाण में होते हैं। गाँवों में बड़े बगीचे को 'लखरांव' कहते हैं जो लक्षाराम लक्ष लाख, आराम बगीचा या बाटिका का अपभ्रंश है। इन वृक्षों की घनी छाया में लोग बैठ कर दुपहरी बिताते हैं।

वृक्ष

ऐसे ही ग्राम और महुआ के वृक्षों की घनी छाया के नीचे एक स्त्री उदासीन होकर खड़ी है और कुछ सोच रही है।[1]

---

१. त्रिपाठी : ग्रा० गी० पृ० ६६। [ग्राम गीतों का परिचय]

"अमवा महुइया घन पेड़ तेही रे बीचे राह परी।
रामा तेहि बिच ठाढी एक तिरिया, मने मां वैरागभरी।"

एक दूसरे गीत में आम और महुआ की शीतल और सुन्दर छाया में पलंग बिछाकर सोने वाले 'बाबा' का वर्णन है जो ठंडी-ठंडी हवा लगने के कारण वहाँ 'निरभेद' निश्चिन्त सोया हुआ है:—[1]

"आमावा महुइया शीतल जुड़ छहियां रे,
बहि गइल सीतल बातास रे।
ताहीं तर बाबा पलंग डसावेले,
बाबा सोवेले निरभेद रे।"

देहात में इन दोनों वृक्षों की बड़ी अधिकता होती है। नदी के किनारे भी आम और महुआ के ही पेड़ दृष्टिगोचर होते हैं—[2]

"नदिया के तीरे दुई पेड़ बाटे,
एक महुआ एक आम रे।"

कोई विरहिणी स्त्री आम में मौल मोजर आने और महुआ के फल के टपकने के समय चैत को अपने प्रियतम के लौटने की अवधि मानती है और उस समय तक उसके न लौटने पर अपने दुःख को प्रकट करती है—[3]

"आमवा मोजरि गइले, महुवा टपकेला निरवामोहिया।
निपटे भइले निरवामोहिया, रे लोभिया निरवामोहिया।"

इसी भाव का वर्णन एक दूसरे गीत में इस प्रकार किया गया है:—[4]

अमवा मोजरि गइले, महुआ टपकलें।
कत दिन बटिया जोहइबे रे लोभिया।

वसन्त ऋतु में आम में मौल लगती है और चैत वैसाख में महुआ टपकता है। वसन्त ऋतु में पति का न आना सचमुच दुखःदायी होता है। यहाँ आम में मौल आना और महुआ का टपकना उद्दीपन रूप में वर्णित है।

पीपल का पेड़ बड़ा पवित्र माना जाना है इसका पत्ता बड़ा हलका होता है और तनिक सी भी हवा लगने से हिलने लगता है। तुलसीदासजी ने मन के डोलने की उपमा पीपल के पत्ते से दी है—

"पीपर पात सरिस मन डोला।"

एक गीत में कोई दुलहा गवना कराने जा रहा है। मार्ग में नदी मिलती है जिसमें सेवार (शैवाल) की अधिकता है। इस नदी के किनारे पीपल का वृक्ष है जिसका पत्ता हवा से हिल रहा है।[5]

"पीपर पात पुलइयनि डोले,
नदियन बहेला सेवार ए।"

स्त्रियाँ पीपल के वृक्ष पर उसकी पवित्रता के कारण जल चढ़ाती हैं और सूर्य की पूजा करती हैं। यहाँ घर के पीछे पाकड़ के पेड़ के नीचे खड़ी हुई कोई स्त्री सूर्य की प्रार्थना कर रही है:—[6]

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३७। २. वही. पृ० १३३। ३. वही. पृ० १२६। ४. लोक गीत पृ० १५८। ५. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५०। ६. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १०६।

"मोरा पिछुअरवा बा छाछरी पीपरि, अरु बा छाछरी पीपरि।
ताहि तर ठाढ़ भइली कवनी देई, अदीत मनावेलि हो।"

किसी नदी के किनारे सुन्दर फुलवारी लगी हुई है। वहाँ कृष्णजी अपनी गायों को चरा रहे हैं। उस बगीचे में जामुन, केला और अमरूद के पेड़ लगे हुए हैं। कोई स्त्री कृष्णजी से कहती है कि तुम अपनी गायों को हटा लो नहीं तो ये सब पेड़ों को खा जायेंगी।[1] शिरीष का पुष्प अपनी कोमलता के लिए प्रसिद्ध है। संस्कृत के कवियों ने प्रकृति वर्णन में इसको प्रधानता दी है और नायिका के अंगों की उपमा इसी फूल से दी है। इस पुष्प की सुगन्ध बड़ी मनोमोहक होती है। एक गीत में इसी शिरीष वृक्ष के हवा से हिलने का उल्लेख पाया जाता है। इस वृक्ष के हिलने से नायिका को नींद नहीं आती।[2]

"मोरा पिछुअरवा रे सीरिसिया
हहरे झहर कर ए राम।
सीरिस पात हहरे झहरे,
त नीनियों ना आवेला ए राम।"

लोकगीतों की दुनियाँ में लवंग का बगीचा भी घर के पास लगाया हुआ पाया जाता है। इसका फूल आधी रात को फूलता है। वह इतना मनमोहक और सुन्दर है कि विवाह करने के लिए आया हुआ दूल्हा पालकी से वहीं उतर कर उसे तोड़ने लगता है। वर्णन कितना सुन्दर है।[3]

"मोरे पिछुवरवा लवंगिया की बगिया,
लवंगा फूले आधि राति रे।
तेहि तर उतरे दुलहा दुलरुवा,
तोरहीं लवंगिया के फूल रे।"

एक दूसरे गीत में लंवग के फूल का रात भर चू-चू कर गिरने का उल्लेख किया गया है। पुत्री अपने पिता से कहती है पिताजी ? इस लवंग के वृक्ष को कटवा दीजिये। मैं इसका पलंग बनाऊँगी और अपने स्वामी को लेकर सोऊँगी।

"मोरा पिछुअरवा लवंगवा के गछिया,
लवंग चुवेले सारी रात ए।
आरे लवंग कटाई ए बाबा पलंग सलाई,
हम सामि सोइतो निरभेद ए।"

कोई स्त्री चन्दन की लकड़ी के पलंग बनवा कर उस सुगन्धित पलंग पर अपने पति के साथ सोने की योजना बना रही है[4]—

"कटबों चननवां के गाछ पलंगिया बिनाइब हो।
ताहितर पिया के सोवाइब, बेनिया डोलाइब हो।"

हाथी दाँत के पलंग का वर्णन तो राजाओं के यहाँ सुना जाता है परन्तु लवंग और चन्दन के वृक्ष के पलंग की कल्पना तो लोक गीतों में ही संभव है।[5]

आजकल का समाज प्रकृति से कोसों दूर हटता चला जा रहा है। वह अपने बैठने

१. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० पृ० १६३। २. वही- पृ० २०४। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६। ४ त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० २६१। ५. डा० उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १३४।

और सीने की उपकरणों में भी धातु लोहा, चाँदी, सोना का प्रयोग करता है। परन्तु ग्रामीण समाज प्रकृति के प्रेम में लिपटा पड़ा है।

पुष्प

पुरैन का पत्ता तालाब में सदा ऊपर ही तैरता रहता है। उसमें जरा सी भी हवा लगती है कि वह काँपने लगता है। इसका उल्लेख नीचे के गीत में हुआ है।[1]

"जइसन दहे में के पुरइनि,
दहे बिचे कांपेले हो।"

एक दूसरे प्रसंग में पुरैन के पत्ते का सावन और भादों की वर्षा से भरे हुए तालाब (दह) में हिलोरे मारने का वर्णन है। हवा के चलने से जब बड़े तालाब में लहरें उठने लगती हैं तो पुरैन भी हिलने लगता है।[2]

"सावन भदउवा के दह पोखरि'
पुरइनि हालरि लेइ ए।"

कमल प्रकृति सुन्दरी का परम शृंगार है। प्रकृति नटी की पूजा इस पुष्प के बिना कभी पूर्ण हो नहीं सकती। लोक गीतों में भी कहीं-कहीं इसका उल्लेख पाया जाता है। तालाब में हंस एवं हंसिनी भले ही किलोल करें परन्तु यदि तालाब में कमल नहीं खिला तो उसकी शोभा बिल्कुल नहीं होती है।[3]

आधे तालवा मां हंस चुनें आधे में हंसिनी।
तबहूँ ना तलवा सोहावन एक रे कमल बिन॥

कमल से ही तालाब की शोभा होती है इसका समर्थन संस्कृत के भी किसी कवि ने किया है—

"पयसा कमलं कमलेन पयः, पयसा कमलेन विभाति सरः।"

बेला के फूल का उल्लेख लोक गीतों में अनेक बार हुआ है। सर्वत्र सुलभ होने के कारण लोगों का यह बड़ा ही प्रिय पुष्प है। विरहिणी स्त्री कहती है कि मेरे पति ने बेला का फूल आँगन में लगाया था, उसे दूध से प्रेमपूर्वक सींचा था परन्तु आज प्रियतम के चले जाने के कारण यह सूख रहा है[4]—

"बेइलि एक हरि लायनि दुधवा सिंचायनि।
आप हरि भये बनजारा बेइलि कुम्हिलानि।"

बेला के पौधे को दूध से सींचने की कल्पना बिल्कुल नयी है।

बेला ग्रीष्म का फूल है। दिन में जितनी अधिक गरमी पड़ती है, रात को वह उतने ही शान से खिलता है। शीतकाल के प्रारम्भ तक बेला खूब खिलता है। यह स्त्रियों का परम प्रिय शृङ्गार है। भोजपुरी प्रदेश में वर का सेहरा बेला के फूलों से गूंथा जाता है। इसलिये गीतों में इसकी अधिक चर्चा है। एक भोजपुरी विवाह गीत में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है और आधी रात में उसके खिलने का उल्लेख किया गया है—[5]

"बनवा में फूलेली बेइलिया अतिहि रूप आगरि।

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ७१। २. वही. पृ० १५४। ३. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६। ४, वही. पृ० ६६। ५. देवेन्द्र सत्यार्थी: बेला फूले आधी रात पृ० २२।

जनि छुव ए मालिन, जनि छुव, अबहीं कुंवारी।
आधि राति फुलिहे बेइलिया, त होइबो तोहारीं।

बेला स्त्रियों को इतना प्रिय है कि गाय के द्वारा उसके नष्ट किये जाने की शिकायत वे कृष्णजी से करती हैं। कृष्ण की नटखट गाय जहाँ और फूलों को चर जाती है वहाँ बेला का भी लिहाज नहीं करती :[1]

"सांझि के छुटले कन्हइया के गइया
चरी गइली घनी फुलवारी ए।
एइली चरि गइली बे डली चरि गईलि,
चरी गइली चम्पा के डाढ ए"

कहीं-कहीं बेला के साथ चमेली, कचनार, गेंदा और गुलाब की चर्चा भी पाई जाती है। नीचे के चैता में अनेक फूलों की मादकभरी गन्ध सहृदय को आनन्दमग्न कर देती है।[2]

"कौन मास फूलेला गुलबवा हो रामा,
कि कौना रे मासे।
बेला फूले चमेली फूले....
अवरु फूलेला कचनरवा हो रामा।
गेंदवा जो फूले माघ रे फगुनवां
चैत मासे फूले गुलबवा हो रामा।"

शीतला माता को अड़हुल[3] का फूल अधिक प्रिय होता है। यह उनकी पूजा में चढ़ाया जाता है। चम्पा के फूल से उनके रथ की सजावट होती है परन्तु बेला की सुगन्ध उन्हें मुग्ध कर देती है –[4]

"कौन फूल फूलेला लाहारलि
कवन फूल रथ साजे हो।।
ए मइया कवना फुलवा रहेलु लोभाई
सेवक राउर बाट जोहै हो।।
अड़हुल फूलेला लाहारलि
चम्पा फूल रथ साजे हो
ए सेवका बेला फूल रहीले लोभाई
सेवकवा मोर रथ लाजे हो।"

कुसुम्भी पुष्प की चर्चा भी कहीं-कहीं पाई जाती है देहात में 'बरे' नामक एक पौधा होता है जिसके फूल से रंग और फल से तेल निकाला जाता है। हमारी समझ में गीतों में वर्णित कुसुम्भी पुष्प यही 'बरे' का फूल है। कोई स्त्री कहती है कि मेरा पति योगी हो गया है। अतः कोई 'कुसुमिया' न बोये क्योंकि मैं अब अपनी साड़ी कुसुम्भी रंग नहीं रंगाऊँगी क्योंकि यह शृंगार का चिह्न है।[5]

---

१. देवेन्द्र सत्यार्थी : बेला फूले आधीरात पृ० २५। २. वही. पृ० २७। ३. वही. पृ० २७-२८। ४. विभिन्न प्रान्तों के लोक गीतों में बेला पुष्प के विशेष वर्णन के लिए देखिये: सत्यार्थी: बेला फूले आधी रात पृ० १७-३६। डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ९४।

"जनिकेहु बोग्रहु कुसुमिया,
जनिकेहु बोग्रहु कपास।"

करेला के फूलों का उल्लेख भी दो स्थानों में किया गया है।[1] सावन के महीनों में हाथों में लगाई जानेवाली मेंहदी का भी उल्लेख हुग्रा है।[2] तुलसी का पौधा तो भारतीय घरों में सर्वत्र पाया जाता है। इसकी पूजा भी की जाती है और इसका पत्ता दवा के भी काम में आता है। दवना और महुआ का फूल भी अपनी विशेषता रखता है। इसका उल्लेख शीतला माता के वर्णन में अनेक बार हुआ है।

पक्षी चिरकाल से प्रकृति के सहचर रहे हैं। गाँवों में जहाँ कौआ घर के मुंडेरे पर बैठ प्रिय के आगमन की सूचना देता है वहां आम के पेड़ पर बैठी कोयल ' 'कूहू-कूहू' की आवाज सुना कर स्त्रियों की विरहाग्नि को और अधिक बढ़ाती है। कहीं सावन में मोर के नाच को देख कर मन नाचने लगता है तो कहीं पपीहा की आवाज को सुनकर प्रिय की स्मृति जाग उठती हैं।

पक्षी

इस गीत में बन में कोयल के कुहुकने का उल्लेख किया गया हैं[3]—

"जइसन बन में के कोइलरि,
बने बने कुहुकेले हो।"

कोयल और आम्रवृक्ष का अभिन्न संबंध है। परन्तु लोक गीतों में कोयल का घनी 'बँसवारि' पर चढ़ कर बोलने का उल्लेख मिलता है। कोयल का मधुर शब्द भी विरहिणी स्त्री के कष्ट को बढ़ानेवाला है। इसीलिये उसकी बोली को "बिरहिया" कहा गया है।[4]

"मोरा पिछुवारावा रे घनी बसवरिया।
ताहि चढ़ि कोइल री बोले रे बिरहिया।
राम की ताहि रे चढ़ी ना।
कोइलरी सबद सुनि सँवरिया उठि बइठलि।
राम बढ़निया लेके ना।"

कोई स्त्री बन की कोयल बनकर अपने पति को परदेस जाते समय उसे मधुर शब्द सुनाने की कामना करती है।[5]

कोयल के बाद चकवी का स्थान है। यह तो प्रसिद्ध ही है कि किसी ऋषि के शाप से चकवा और चकवी रात को एक साथ नहीं रहते और चकवी अपने पति के बिछोह में रोया करती है। उसका करुण क्रन्दन इतना मार्मिक है कि उसके रोने से रास्ते में दूब जम जाती है।[6]

"ए राम तालवा में रोवेले चकइया
त बटिया में दूबि जामे ए राम।"

चकवा और चकवी विरही दम्पति के प्रतीक हैं। वे एक दूसरे के वियोग में दुःखी रहते हैं।

---

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० पृ० ५१, ७६। २. त्रिपाठी ग्रा० गी० पृ० ६६। ३. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ८१। ४. वही. पृ०। ५. वही. पृ० २२२। ६. वही. पृ० २२१।

"दाहावा रोवे चाका चकइया,
बिछोहवा कइले निरवामोहिया।"

कौआ स्त्रियों का प्राचीनकाल से प्रिय पक्षी रहा है। ऐसा विश्वास है कि इसका बोलना शुभ शकुन है और किसी प्रिय के भावी आगमन की सूचना देता है। इसीलिये प्राचीनकाल में स्त्रियाँ इसका आदर करती थीं[1] और आज भी कटोरे में दूध भात खिला कर इसके प्रति प्रेम प्रकट करती हैं। प्रिय के देश में जाकर बोली सुनाने के लिए कौआ को पुरस्कार देने की नीचे लिखी बात कितनी रमणीय है।[2]

"कागा हो तोके दूध भात देबों,
सोनवा मढ़इबों दूनो ठोर रे।
जाइ के बोलहु कागा पिया जी के देसवा,
बोल बिरहिया के बोल जी।"

कुछ गीतों में पपीहे का भी उल्लेख पाया जाता है। कालिदास ने अचेतन मेघ से प्रिय के पास सन्देह भेजने का काम लिया था परन्तु यहाँ सचेतन पपीहा इस काम के लिए प्रयुक्त किया गया है। कोई स्त्री हल्दी के समान पीले पपीहे से कहती है कि तुम प्रियतम के देश में जाकर मेरा संदेशा सुनाओ[3]—

"हरदी सरीखे पपीहरा तू चिरई, बोलना
अरे हाँ रे चिरई बोलना।
लालनजी के देसवा जहाँ पिया, बसेले हमार।"

कहीं पर इसी पपीहे की 'पी कहां' की बोली एवं मोर की कूक सुनकर हृदय धड़कता है और छाती फटी जाती है[4]—

"मोरवा के बोलिया सुनत छतिया धड़केसे
पपिहा त करेला पुकार परदेसिया।"

इन पक्षियों के अतिरिक्त मोर, हंस, सारस आदि का भी स्थान-स्थान पर उल्लेख मिलता है। विभिन्न लोकगीतों में मयूर का वर्णन किस प्रकार किया गया है उसकी बड़ी सुन्दर विवेचना देवेन्द्र सत्यार्थी ने की है।[5]

लोक गीतों में पुरवैया हवा का वर्णन प्रचुर मात्रा में हुआ है। संभवतः इसका कारण यही है कि पुरुवा हवा ठंढी होती है और अंगों को सुख देती है। यद्यपि संस्कृत

हवा

के किसी कवि ने 'पुरवैया' की बड़ी निन्दा की है[6] परन्तु लोक गीतों में तो इसे सुखदायी ही माना है। हाँ! विरहाग्नि को जगाने के कारण इसे 'बैरिन' कह कर सम्बोधन अवश्य किया गया है। कोई स्त्री कहती है कि 'पुरवैया' हवा के लगने से मुझे आलस्य मालूम होने लगा और नींद आ गई[7]—

"बाव बहेले पुरवैया अलसि निनिया अइली हो।"

---

१. आयान् सूचितो येन, येनानीतश्च मे पतिः। प्रथमं सखि! कः पूज्यः काकः किम्वा क्रमेलकः। २. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३३४। ३. दुर्गाशंकर: भो० लो० गी० पृ० ६२। ४. वही. पृ०४८५। ५. बेला फूले आधीरात पृ० ३१२-३३४। ६. अंगानि मोटयति वारि करोत्यपे शुष्काण्यपि कथयति व्रणमंडलानि। यद्देशजः भवन एव करोति बाधां तद्देशजाः किमु नराः सुखदाः भवन्ति। ७. डा० उपाध्याय भो०ग्रा०गी० भाग १ पृ० २२२।

पुरवैया हवा का उद्दीपन रूप में यह वर्णन बहुत सुन्दर है। कोई स्त्री कहती है कि ए सखी ! पुरुवा हवा बह रही है। इससे प्रियतम के वियोग में मेरा हृदय वैसे ही जल रहा है। जैसे सूखा गोबर का उपला।[1]

"बाव बहेला पुरवइया रे सजनी,
करसिनि सुनुगेला आगि ए।"

पुरुवा हवा तो धीरे-धीरे बहती है परन्तु उत्तर से आने वाली हवा (उतरही) जोरों से झोंका मारती है[2]—

"बाव बहेला पुरवैया, उतरही झकझोरेले हो।"

वर्षा

सावन और भादों के महीने में जब वर्षा की झड़ी लगी रहती है तो प्रकृति बड़ी सुहावनी लगती है। पेड़ हरे, पौधे हरे और खेतों में हरी घास। इस प्रकार सभी चीजें बड़ी आनन्ददायक हाती हैं। परन्तु विरहिणी का हृदय सूखा रहता है। प्रिय के वियोग में बादलों की गड़गड़ाहट उनके हृदय में कम्पन उत्पन्न करती है और वर्षा के जल जलन पैदा करते हैं। कोई स्त्री कहती है कि ए देव ! बरसो ! परन्तु तुम्हारा बरसना मुझे अच्छा नहीं लगना। मेरा पति लड़कपन से ही शौकीन है। न मालूम वह कहाँ भींगता होगा।

"बरिसहु ए देव बरिसहु मोरा नाहीं मने भावेला हो।
ए देव ! मोर पिया नान्हें के रे बिसनिया रे,
अकेला कहाँ भीजेला हो।"

सावन और भादों की घनी अँधियारी के बीच बिजली जोरों से चमक रही है। परन्तु पति के पास में न होने से स्त्री को कोई चिन्ता नहीं है। बारहमासे के गीतों में प्रकृति का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। खास कर वर्षा के तीन चार महीनों का वर्णन तो हृदयहारी है[4]—

चढ़ले असाढ़ गगन घन गरजे,
बिजुली चमकेले तेहि घन में।
चिहुँकि चिहुँकि चाकिरित होके चितओं,
बैठिके सोंच करों मन में।"
भादो अगम पन्थ नाहि सूझेला,
बेंगवा बोलेला आँगन में।
अरे कोइल होके बने बने फिरीलें,
ताल सुखाइल वृन्दाबन में।"

आधुनिक लोक गीतों के विषय तथा उनमें भाव व्यंजना

कबीर ने जिस भोजपुरी भाषा में कविता की थी, धरनीदास ने जिस भाषा में अपने सरस पद गाये थे, एवं लक्ष्मी सखी ने अपनी मनोरम रचनाओं के द्वारा जिसको सुशोभित किया था उसका प्रवाह अविच्छिन्न रूप से लोक गीतों के रूप में आज भी बहता चला आ रहा है।

---

१. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १९९। भो० लो० गी० पृ० ३३५। २. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० पृ०८२। ३. वही. भाग १ पृ०८८। ४. वही. भाग पृ०१८९।

जन साधारण लोक गीतों का अवगाहन कर आज भी आनन्द लाभ करता है। प्राचीन काल में भोजपुरी जिस प्रकार सन्त कवियों के विचारों और भावनाओं की वाहिका रही है उसी प्रकार यह आज भी हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं तथा उद्गारों को जनता के बीच में प्रचारित करने में समर्थ है। जहाँ इसमें भक्ति को जागरित करने वाले शान्त रस के पद गाये गये हैं वहाँ देश भक्ति में ओतप्रोत वोर रस की कवितायें भी इसमें उपलब्ध हैं।

हमारे देश में, हमारे राष्ट्रीय जीवन में जब-जब उथल-पुथल मची है तब-तब उसका प्रतिबिम्ब इस भाषा पर पड़ा है। देहाती कवियों ने अपनी टूटी-फूटी, काव्यालंकार से रहित भाषा में कविता कर इन नवीन भावनाओं और आकांक्षाओं को जनता के सम्मुख उपस्थित किया है। आज से ३५ वर्ष पूर्व यूरोपीय प्रथम महायुद्ध के समय से लेकर आजतक हमारे देश में जो राष्ट्रीय या सामाजिक घटनायें घटित हुई हैं प्राय: उन सभी का अंकन भोजपुरी कवियों ने किया है। यही नहीं, समाज में सम्प्रति जो विचारधारा प्रवाहित हो रही है उसका भी चित्रण हमें उपलब्ध होता है। इस प्रकार भोजपुरी में आधुनिकता का पुट हमें भी प्राप्त होता है।

सन् १९१४ ई० से १८ ई० तक यूरोप में महायुद्ध होता रहा, जिसमें भारत भी सम्मिलित था। अंग्रेजी सरकार ने यूरोपीय रणस्थली में लड़ने के लिये भारत से लाखों सैनिक भेजे थे। भारत के प्रत्येक प्रान्त में जोरों से भरती (रिक्रूटिंग) शुरू थी। अंग्रेजी सरकार जर्मनों, कैसर के अत्याचार का वर्णन कर, जनता में उसके प्रति घृणा उत्पन्न कर, लोगों को लड़ने के लिये भेजना चाहती थी। इसके लिये उसने देहाती कवियों से ग्राम भाषा में कविता करवा कर ग्रामीण जनता के बीच प्रचार करवाया। बलिया जिले के अन्तर्गत दया-छपरा गाँव के निवासी पं० दूधनाथ उपाध्याय ने जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर 'भरती के गीत' नामक एक पुस्तिका लिखी थी जिसमें 'कैसर' से लड़ कर उसको परास्त करने के लिये भोजपुरी जवानों को ललकारा गया था।

यूरोपीय महायुद्ध समाप्त होने के वाद भारत को पुरस्कारस्वरूप रोलेट एक्ट का प्रसाद मिला जिसके विरुद्ध महात्मा गांधी ने सन् २१,२२ में अपना सुप्रसिद्ध असहयोग आन्दोलन चलाया था। इस आन्दोलन के संबंध में जालियांवाला बाग में जो भीषण हत्या कांड हुआ, उसकी कथा की पुनरावृत्ति की यहाँ आवश्यकता नहीं। किस प्रकार वहाँ जनता पर दारुण अत्याचार किया गया यह इतिहास के पाठकों से छिपा नहीं है। भोजपुरी प्रान्त में इस अवसर पर अनेक कवितायें लिखी गईं, जिसमें इस हत्याकांड की मर्मभेदी कहानी कही गई है। बाबू मनोरंजनप्रसाद सिंह की 'फिरंगिया' नामक कविता में इस विषय का वड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। इसका भी उल्लेख हम पीछे कर आये हैं। इसकी कुछ और पंक्तियाँ सुनिये[1]—

"आजो पंजाबवा के करी के सुरतिया,
से फाटेला करेजवा हमार रे फिरंगिया।
भारत के छाती पर भारत के बच्चन के,
बहल रकतवा के धार रे फिरंगिया।

१. भोजपुरी० भाग १ अंक १, २००१ पृ० ९, १०।

दुधमुंहा लाल सब बालक मदन सम,
तड़प तड़पि देले जान रे फिरंगिया।
छटपट करि करि बूढ़ सब मरि गइले,
मरि गइले सुघर जवान रे फिरंगिया।
जुवति सती से प्राणपति हा, विलग भइले,
रहे जे जीवन के अधार रे फिरंगिया।
हाय हाय खाय सब रोवत विकल होके,
पीटि-पीटि आपन कपार रे फिरंगिया।
जिन कर हाल देखि फाटेला करेजवा से,
असुवा बहेला चउधार रे फिरंगिया।
साधुग्रो के देहवा पर चुनवा के पोतिपोति,
सभका आगे लंगटा बनवले रे फिरंगिया।
हमनी के पसु से भी हालत खराव कइले,
पेटवा के बल पर रेंगौले फिरंगिया,।
भारत बेहाल भइले लोग के इ हाल भइले,
चारो ओर मचल हाय हाय रे फिरंगिया।
तेहू पर अपना कसाई अफसरवा के,
देले नाहीं कवनो सजाय रे फिरंगिया।

उपर्युक्त गीत में जालियांवाला बाग के हत्याकांड का मार्मिक चित्रण किया गया है।

"हमनी के पशु से भी हालत खराब कइले,
पेटवा के बल पर रेगौंले रे फिरंगिया।"

इन पंक्तियों में कितना आत्म-विक्षोभ, कितनी वेदना, कितनी विवशता भरी पड़ी है।

कवि का दुःख यहीं समाप्त नहीं हो जाता। वह प्राचीन भारत के अपार वैभव तथा अलौकिक सुख समृद्धि का स्मरण कर जब अंग्रेजों से शासित दुःखिया भारत की तुलना करता है तो उसके दुःखों का ठिकाना नहीं रहता। वह विषाद प्रकट करते हुए कहता है कि—

सुन्दर सुघर भूमि भारत के रहे रामा
आज उहे भइल मसान रे फिरंगिया।
अन्न धन जन बल वुद्धि सब नाश भइले,
कवनो के ना रहल निशान रे फिरंगिया।"

इन ऊपर की पंक्तियों में ब्रिटिश राज्य के कारण देश की जो दुर्दशा हुई है उसका मार्मिक चित्रण है। नीचे की पंक्तियों में अन्न के अभाव का कष्ट वर्णित है।

"जहवाँ थोड़ ही दिन पहिले ही होत रहे,
लाखों मन गल्ला और धान रे फिरंगिया।
उहवें पर आज रामा मथवा पर हाथ धके,
बिलखी के रोवेला किसान रे फिरंगिया।

घरे लोग भूखे मरे गेहुंआ विदेस जाय,
कइसन बा विधि के बेपार से फिरंगिया ।"

ब्रिटिश राज के कारण हमारा कितना नैतिक पतन हो गया है इसका उल्लेख करता हुआ कवि कहता है कि[1]—

"जहवाँ भइल रहे राना परताप सिंह,
और सुरतान अइसन वीर रे फिरंगिया ।
जिनकर टेक रहे जान चाहे चलि जाय,
तबहू नवाइब ना सिर रे फिरंगिया ।
उहवे के लोग आजु अइसन अधम भइले,
चाटेले विदेसिया के लात रे फिरंगिया ।"

इस फिरंगिया गीत में अंग्रेजी राज में भारत की दुर्दशा हुई थी उसका बड़ा ही सटीक एवं मार्मिक चित्रण किया है ।

असहयोग आंदोलन के दिनों में अनेक ऐसी कवितायें प्रकाशित हुई थीं जिनमें महात्मा गांधी का सन्देश सरल भाषा में जनता तक पहुँचाया गया था । इनमें से कुछ कविताओं के शीर्षक अंगरेजवा, वकीलवा, मोअकिला आदि थे जो आज उपलब्ध नहीं हैं । इनमें से 'वकीलवा' नामक कविता बड़ी लोकप्रिय थी जिसमें वकीलों को वकालत छोड़ कर असहयोग आन्दोलन में भाग लेने के लिए कहा था, उनकी एक दो कड़ी जो स्मृतिपटल पर अधूरी अंकित रह गई है, सुनिये[2]—

"देसवा में गांधी जी त अंधिया वहवले बाड़े,
मानु मानु उनुकर कहल रे ओकिलवा ।
जाई कचहरिया ते झूठ सांच बोलतारे ।
ठगतारे गंवई के लोग रे ओकिलवा ।
लाज नाहीं लागे तोरा झगड़ा लगवला में,
भाई भाई आपसे लड़वले रे ओकिलवा ।"

इस गीत में वकालत पेशे की काफी निन्दा की गई है । इसी प्रकार असहयोग के उन तूफानी दिनों में अनेक फुटकर कवितायें, राष्ट्रीय आन्दोलन के समर्थन में, उसे बल तथा प्रगति प्रदान करने के लिए लिखी गई थीं जिनमें तत्कालीन जन-भावना का बड़ा ही सुन्दर चित्रण था ।

जब असहयोग का आन्दोलन समाप्त हो गया और देश में देशबन्धु के नेतृत्व में स्वराज्य पार्टी का जन्म हुआ तब कांग्रेस ने असहयोग की नीति को छोड़ कर सहयोग को अपनाया । अतः कौंसिल प्रवेश की चर्चा होने लगी । यू० पी० के पूर्वी जिलों से जो चुनाव हुआ था उसमें सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला को मालवीय जी ने उम्मीदवार खड़ा किया था । उनको वोट देने के लिए देहातों में स्वयंसेवकों ने घूम कर प्रचार किया था । इनकी प्रशंसा में कवितायें भी बनाई गई थीं, जिनमें पं० दूधनाथ उपाध्याय की 'बिड़ला बहादुर के ओट देत बानीजा' शीर्षक कविता बड़ी प्रसिद्ध थी । इस कविता की हजारों प्रतियाँ बांटी गई थीं जिनमें बिड़ला जी की गुणगरिमा का वर्णन था तथा उन्हें वोट देने की अपील की गई थी । सुनिये[3]—

१. भो० पृ० ६ । २. लेखक का निजी संग्रह पृ० १४ । ३. लेखक का निजी संग्रह ।

"हमनी का बलिया दुम्राबा के रहनिहार।
रउरा के आपन पारान जानतानि जा।
जाहाँ जाहाँ हिंनू पर बिपत्ति परल ताहाँ,
रउरा उधार कइनी सभे जानतानि जा।
दुःखिया के सुख देनीं, निरधन के धन देनीं,
राउर उपकार हमनी का मानतानी जा।
सतुआ पिसान बान्हि पोलिंग टेसन चलि,
बिरला बहादुर के ओट देत बानी जा।"

यह कविता बड़ी लम्बी है जिसमें बिड़लाजी के विविध गुणों का उल्लेख कर उनको वोट देने की अपील की गई है। उन दिनों में इस कविता का प्रभाव जनता में बहुत पड़ा था।

कौंसिल प्रवेश के पश्चात् सन् १६३० ई० में महात्मा गाँधी का सुप्रसिद्ध नमक सत्याग्रह आरंभ हुआ जिसमें नमक कानून तोड़ने की आज्ञा सबको दी गई थी। उन दिनों भोजपुरी कवि ने भी अपनी टूटी-फूटी वाणी में पद्य रचना कर इस आन्दोलन को बल और सम्वल प्रदान किया था। इन दिनों में प्रसिद्ध "ना रखनी सरकार जालिम ना रखनी" तथा 'सात समुन्दर पार चलल नमक के गोला' शीर्षक कवितायें बड़ी प्रसिद्ध थीं तथा ग्रामीण जनता में इनका बड़ा ही प्रचार था।

सन् १६३०-३२ के नमक सत्याग्रह के बाद सन् ४२ का सुप्रसिद्ध आन्दोलन छिड़ा जिसमें अहिंसा के साथ ही हिंसा का भी अवलम्ब लिया गया था। उत्तर-प्रदेश का सबसे पूर्वी जिला बलिया ने इस आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था। उसने ब्रिटिश राज्य की सत्ता को हटा कर कुछ दिनों तक स्वतंत्रता प्राप्त कर ली थी। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने यहाँ कठोर दमन किया था।

इसी कठोर दमन का वर्णन श्री प्रसिद्ध नारायण सिंह ने बड़े ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है[1]—

"अपना खूनन से सींची सींची,
गड़ली हम झंडा जिला बीच।
गूंजल हमार जब विजय घोष,
आइल तब नेदरसोल नीच।
होखे लागल फिर दुराचार॥
बेपीर पुलिस, बेरहम फौज
डाका डललनि बेखौफ रोज।
गुंडाशाही के रहल राज
रिसवत पर कइले सभे मौज।
उफ जुलुम बढ़ल जइसे पहार॥
गांवनि पर दगलनि गन मशीन,
बेंतन सन मरलन बीन बीन।

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ३२।

बैठाई डाल पर नीचे से,
जालिम भोकलन खच खच संगीन।
बहि चलल खून के तेज धार ।।
घर घर से निकलल आहि आहि
कोना कोना से आहि आहि।
गांवन गांवन में लूट फूंक
मारल, काटल, भागल पराहि।
फिर कवन सुने केकर गुहार ।।"

ऊपर के पद्यों में बलिया पर किये गये कठोर अत्याचारों का जो वर्णन है वह बड़ा मर्मस्पर्शी है। कहने का आशय यह है कि सन् १९१४ से लेकर आजतक जितने भी राष्ट्रीय आन्दोलन हुये हैं प्रायः उन सभी का वर्णन भोजपुरी कवि ने अपनी मीठी भाषा में किया है।

सन् १९३७ ई० में जब अनेक प्रान्तों में कांग्रेसी शासन का सूत्रपात हुआ तब इन सरकारों ने अनेक प्रकार की नयी योजनायें शासन तथा शिक्षा संबंधी सुधार में उपस्थित कीं। इनमें निरक्षरता निवारण भी एक प्रधान विषय था। यू० पी० सरकार ने सभी प्रौढ़ों को पढ़ाने के लिये तथा प्रान्त से निरक्षरता को दूर करने के लिये वृहत् आन्दोलन चलाया था जिसकी ध्वनि दूर देहातों में भी पहुंची थी। भोजपुरी कवि ने निरक्षरता के दोषों को बतलाते हुये लोगों को साक्षर बनने के लिये प्रोत्साहित किया था। अशिक्षा के दूषणों को छोड़ देने की अपील करता हुआ कवि कहता है कि[1]—

"हमनीका मुरुख बनल बानी ओही सेत,
रोज रोज दुःखवा कलेस भोगतानि जा।
कहीं जमींदरवा जो लेत बा लगनवा त,
दोसरे रसीद देला नाही बूझतानि जा।
कतहीं बजरिया में हमनी ठगात बानी,
कम, बेस लेई चुप घरे आवतानी जा।"

इस प्रकार कवि ने अशिक्षा से उत्पन्न होनेवाले दोषों का बड़ी ही सुन्दर रीति से वर्णन किया है। अन्त में कवि सभी लोगों से पढ़ने और पढ़ाने के लिये आग्रह करता हुआ कहता है कि[2]—

"पढ़ल लिखल भाई खाई जा शपथ आजु
सबके पढ़ाइबि जा अपने पढ़बि जा।
बाड़ा दुःख सहली जा रहली निपढ़ जले,
अब नाहीं हमनी का निपढ़ रहबि जा।"

सन् १९४७ की १५ वीं अगस्त को भारत स्वतंत्र हुआ। यह उत्सव बड़े समारोह के साथ हमारे भारत में मनाया गया था। भोजपुरी प्रदेश भी इससे अछूता नहीं बचा था। यहाँ के कवियों ने भी स्वतंत्रता का स्वर अलापा और स्वतंत्र भारत के संदेश को देहातों में भी पहुँचाया। भारत के पूर्ण स्वतंत्रता के इस शुभ दिन पर देहाती कवि की

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ५२७, २८। २. वही.

भी वाणी प्रस्फुटित हो उठी थी और उसने भी अपने टूटे-फूटे स्वरों में अलापा था[1]—

"आजु भइल भारत में सुराज।
आपन बोली आपन विचार,
अपना घर में अपना बा राज।
भोगनी जा हमनी बड़ा दुःख,
जब तक कइलन अंगरेज राज।
धन चूसि चूसि कइलन कंगाल,
बहुतर खातिर भइनी बेलाज।
जय जय गान्ही बाबा तोहार,
अंगरेज खेदि रखल तू लाज।

धनि धनि पनरह तारीख आज,
जवना दिन पवलीं हम सुराज।
भारत माई के आजु भाल,
पर चमकत बा सुन्दर सुताज।
जय जय गान्ही, नेहरू, पटेल,
जे दिहलन भारत बिपति ठेल।
जेकरा डर से अंगरेज लोग,
भागल भारत से जान खेल।
हम फूलन ना बानी समात
मुह से कहलो ना बात जात।
धनि धनि सुभ दिन सुभ मास आज
जा दिन भारत पावल सुराज।"

इस कविता में कवि ने अपने आन्तरिक उछाह का वर्णन किया हैं। स्वतन्त्र भारत का सन्देश गाँवों में पहुँचाने तथा ग्रामीण जनता को अपने राजनीतिक उत्थान को बतलाने में इन गीतों ने अलौकिक कार्य किया है।

जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है भोजपुरी का स्रोत सदा प्रवाहशील रहा है। इस देश में जो-जो प्रधान घटनायें होती रही हैं उनका प्रभाव भोजपुरी कवि के हृदय पर भी पड़ा है और इस अवसर पर उसकी भी वाणी फूट निकली है। तीस जनवरी सन् १९४८ को महात्मा गांधी की हत्या भारतीय इतिहास में एक प्रधान घटना हैं। भारत का शायद हीं कोई ऐसा कोना हो जहां यह दुःखद समाचार न पहुँचा हो। भोजपुरी में तीन पुस्तिकायें अब तक इस विषय की हमारे देखने में आई हैं जिनमें बापू की हत्या का बड़ा ही सजीव वर्णन किया गया है। इन पुस्तकों का विस्तृत उल्लेख अन्यत्र किया जा चुका है। 'हिन्द की आह' में बापू की छाती में गोली लगने और उनके मरने का बड़ा ही मर्मस्पर्शी वर्णन है[2]—

"पूना के रहवइया उत जाति के मराठा,
नाथूराम नाम बताई भारत बसिया।

१. लेखक का निजी संग्रह। २. हिन्द की आह' पृ० २, ४२९ कर्नलगंज प्रयाग।

हनिके पिस्तौल मरलसि बापूजी के छतिया से,
बापू गिरे ले मुरुछाई भारत बसिया।
हरे राम ! हरे राम ! बापू रटे लगले से,
सरग के रहिया दबाई भारत बसिया।"

इसी प्रकार से सोरठी राग में बापू की हत्या का दुःखद वर्णन है। 'गांधी जी का स्वर्गवास' नामक पुस्तिका में बापू की मृत्यु की कथा हृदयद्रावक रीति से कही गई है।[1]

"काहे पपिया मरलस हमरा गांधी जी के जनवाँ
आइ हो दादा। टेक ॥
कइले तोहार कवन कसूर आई हो दादा।
तीस त तारीख रहे दिन शुक्रवार। आई हो०
ऊहे दिनवा गोली के शिकार आई हो दादा।
जात रहले भजे हरिनाम आइ हो दादा,
ओहि समय लागल रहे कहाँ हतियरवा। आई हो०।"

गत पृष्ठों में हमने सन् १६१४ से लेकर १६४८ तक की जितनी प्रधान घटनायें हुई हैं, जितने प्रधान राष्ट्रीय आन्दोलन हुए हैं उनका उल्लेख इन भोजपुरी गीतों में कितनी सुन्दरता से हुआ है, यह दिखलाने का प्रयत्न किया है। भोजपुरी में लोक गीतों के रूप में कुछ ऐसे सामाजिक तथा राष्ट्रीय विषयों की चर्चा भी हुई है जिनका प्रभाव जनता के ऊपर स्थायी रूप से पड़ा है।

चर्खे की चर्चा

सन् १६२० ई० के असहयोग आन्दोलन में महात्मा गांधी ने स्वदेशी वस्त्रों के व्यवहार पर बड़ा जोर दिया था और जनता को आदेश दिया था कि सभी लोग घर घर चर्खा चलावें और अपनी आवश्यकतानुसार स्वयं वस्त्र तैयार करें। उन दिनों लाखों की संख्या में चरखे बनाये गये और हजारों लोगों ने कातना भी शुरू कर दिया। गांधीजी की यह आवाज गाँवों में भी पहुँची और वहाँ भी लोगों ने चर्खा चलाना जो बहुत दिनों से बन्द हो गया था प्रारम्भ किया। लोक गीतों में इस प्रथा का वर्णन पाया जाता है। कोई स्त्री अपने पति से चरखा लाने की प्रार्थना करती हुई कहती है कि मैं चर्खा कातूँगी क्योंकि वह स्वराज प्राप्ति का परम अस्त्र है।

"अब हम कातबि रचखवा, पिया मति जाहु बिदेशवा
हम कातबि चरखा सजन तुहु कात,
मिलिहैं एही से सुराजवा।
पिया मति जाहु। टेक ॥
होइहैं सुराज तबे सुख मिलिहैं,
कटि जइहें सब के कलेसवा। टेक ॥
देसवा के लाज रहे चरखा से,
गांधी के मानों सनेसवा। टेक ॥

1. गांधी जी का स्वर्गवास' पृ० २, ३ दरौंदा छपरा।

कहतारे गांधी जी की चरखा चलावहु,
एही से हटिहे कलेसवा। टेक॥"[१]

इस गीत में चरखा चलाने के लिए जो तर्क दिये गये हैं वे अकाट्य हैं। नेताओं के हजारों व्याख्यानों का जो असर जनता पर पड़ेगा वह केवल इसी एक गीत से पड़ सकता है।

एक दूसरे गीत में भी चरखा चलाने की अपील की गई है।[२]

"इज्जत राखि लेहु भारत भइया,
चरखा चलावहु मसताना।"

स्वराज्य प्राप्ति के लिए चर्खा चलाने का सुन्दर वर्णन चंचरीक जी ने इन पद्यों में किया है।[३]

"सावन भदउँआँ बरसतवा के दिनवा रामा
हरि हरि बैठि के चरखवा घरवां कतबे रे हरी।
अपने त कतबै औरो गोतिन कतबे रामा,
हरि हरि गांधी के हुकुमवा हम मनबै रे हरी।
खोलिभल देबें घरवां चरखा इसकुलवा रामा।
हरि हरि सबके अब चरखवा, हम सिखइबै रे हरी।
अपने नगरियाँ हम त करबै हो सुरजवा रामा,
हरि देसवा के अलखवा हम जगइबं रे हरी।"

चरखा चलाने के साथ ही गांधी जी ने स्वदेशी वस्त्रों का व्यवहार करने तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करने की आज्ञा दी थी। इसका प्रतिध्वनि भी इन गीतों में मिलती हैं।

स्वदेशी के व्यवहार पर जोर

राष्ट्रीय आन्दोलनों के दिनों में विदेशी वस्त्रों के प्रति इतनी घृणा उत्पन्न हो गई थी कि उसका पहनना नितान्त गर्हणीय समझा जाता था। कोई वर जब विवाह करने के लिये विदेशी वस्त्र पहन कर आता है, तब कन्यापक्ष के लोग कहते हैं कि ऐसे वस्त्र से सुसज्जित वर का कौन विवाह करेगा।[४]

"अइलें विदेसिया पहिरि के दुलहा रामा,
के इनकर करिहैं बिआह।
ये लाड़िल बनरा हो।
जाहु जाहु जाहु फिर डोलिया कहँरवा लेके
नाहीं होइहैं अइसन बिआह,
ये लाड़िल बनरा हो।"

कन्या का पिता अपनी लड़की को अविवाहित रखने को तैयार है परन्तु वह विदेशी वस्त्र से सुसज्जित वर से विवाह नहीं कर सकता—

"फिरि जाहु फिरि जाहु घरवां समधिया हो
मोर धिया रहिहैं कुंआरि।
बसन उतारि सब फेकहु विदेसिया हो
मोर पूत रहिहैं उघार।

१. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८२-८३। २. वही. पृ० ३८१। ३. चंचरीकः ग्राम गीतांजलि पृ० १३७। ४. वही. पृ० १०३-४।

बसन सुदेसिया मंगाई पहिरइबें हो
तब होइहैं धिया के बिग्राह ।"

इसके ठीक विपरीत जब बराती खद्दर पहन कर ग्राते हैं तब उनका प्रचुर स्वागत होता है । जब हाथ में कांग्रेसी झंडा लेकर बारात ग्राती है तब उसकी ग्रलौकिक शोभा होती है । कवि कहता है कि[1]—

"सब बरतिहवन के देहिया खदरवा हो,
देखलों न ग्रस बरिग्रात हो ।
हथवा में झंडा भल सोहै मुरजवा के
देसवा के बोलें जै-जै कार हो ।
ग्रइसन कहवां घर मिललें सुदेसिया हो
धनि-धनि धीग्रा कर भागि हो ।"

स्वतन्त्रता संग्राम के ग्रवसर पर स्वदेशी वस्तु का इतना ग्रादर होना स्वाभाविक ही है ।

विदेशी वस्त्रों के बायकाट करने के लिये बजाजों से की गई यह ग्रपील कितनी मार्मिक है[2]

"सुनि लेहि सुनि लेहि भइया बजजवा
कि सुनि लेहु हो ।
मति बेचहु विदेसिया कि सुनि लेहु हो ।
भइया बजजवा न बेचहु विदेसिया,
कि छोड़ि देहु हो ।
सब ग्रस रोजिगरवा, कि छोड़ि देहु हो ।
एहि रे विदेसिया कपड़वा के कारन
कि देखि लेहु हो ।
केतना भइले दुरगतिया कि देखि लेहि हो ।
केतना हजार गइलें जेल दुःख पवलें
कि ग्रवरु खइलें हो ।
सिर पर लठिया के मरिया के ग्रवरु खइलें हो ।"

इस प्रकार इन गीतों में चर्खा की चर्चा, विदेशी वस्त्र का बायकाट एवं स्वदेशी के व्यवहार ग्रादि ग्राधुनिक युग के विविध विषयों का वर्णन किया गया है ।

देश प्रेम की भावना

इन गीतों में देश प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी पड़ी है । कहीं पर देश के उद्धार के लिए जेल जाने की प्रतिज्ञा पाई जाती हैं तो कहीं भारत माता के सेवा के लिए सर्वस्व निछावर करने का प्रण है । कहीं देश को स्वतंत्र बनाने के तो कहीं मातृभूमि की दुर्दशा देख कर दुःख के ग्राँसू बहाये गये हैं । भारतमाता के उद्धार के लिए किसी नवयुवक की यह कठोर प्रतिज्ञा सुनिये[3]—

---

१. चंचरीक ग्राम गीतांजलि पृ० १०५ । २. वही. पृ० १२७, १२८ । ३. चंचरीक ग्रा० गी० पृ० १२४ ।

"देसवा के लागि हम सहबे कलेसवा । टेक ।
दुःखवा के तनिको हम दुःख नाहीं जनबै रामा,
पग पग पर चाहे खइबै ठोकरवा ।
कठिन विपतिया में भारत-देसवा रामा ।

...   .

अँखिया से बरसत गंगा जमुनवाँ ।
ओहि देसवा के हम करबै उधरवा रामा
चाहे देहिया के होइ जइहै बलिदनवां ।

नीचे के पद्य में स्वराज्य की यह एकान्त कामना कितनी सुन्दर बन पड़ी है। भोजपुरी कवि स्वराज्य प्राप्ति के लिए कितना व्याकुल है[1]—

"कब हमरा देसवा में होइहैं सुरजवा । टेक ।।
पहिरे के परदा मिलिहैं पेटवा के अन्न मिलिहैं ।
दुखवा दलिद्दर मिटि जइहैं कलेसवा ।
भेद विभेद नीच ऊँच भाव मिटि जइहैं
हिल मिलि करिहैं सब देस सुधरवा ।
आस अभिलाख कब जियरा के पूरा होइहैं
सत्य धरमवा कै बजिहैं बिगुलवा ।"

लोक गीतों में राष्ट्रीय भावनाओं का इतना अधिक प्रचार हो गया है कि गाँव-गाँव के छोटे-छोटे बच्चे 'सुराज' के गीत गाते फिरते हैं। देहात में जो बारात आती है उनमें गवैयों के द्वारा 'सुराजी गीत' गवाना आवश्यक हो गया है। जिन विवाहों में तिलक दहेज नहीं लिया जाता उन्हें सुराजी विवाह कहने लगे हैं। जो वर विवाह के लिए स्वदेशी वस्त्र पहन कर आता है उसे 'सुराजी वर' की संज्ञा दी गई है। अधिक क्या, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं का भी प्रवेश लोक गीतों में हो गया है और इनके नाम को गीतों में जोड़ कर बड़े हर्ष के साथ स्त्रियां गीत गाती हैं। नीचे के गीत में गाँधी जी तथा भारतीय आन्दोलन में हाथ बटानेवाली स्त्रियों के नाम आदर से उल्लिखित हैं:[2]—

"गांधी के आइल जमाना,
　　　　देवर जेलखाना अब गइले ।
जब से तपे सरकार बहादुर,
　　　　भारत मरे बिनु दाना ।। देवर०
हाथ हथकड़िया वा गोड़वा में बेड़िया ।
　　　　देसवा भरि भइल दिवाना ।।
कमला,, सरोजिनो, विजय के लछमी,
　　　　काम कइली मरदाना । देवर०

इसी प्रकार से कजली के गीतों में मोतीलालजी, मालवीयजी, गांधी जी आदि सभी नेताओं का नामोल्लेख आदर के साथ हुआ है।[3]

१. चंचरीक : ग्रा० गी० पृ० १२१ । २. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३८१ । ३. वही. पृ० १४३ ।

"गांधी के पास में मोतीलाल नेहरू,
अब गांधी के कटल परवाना, जेहलवा में जा बलमू।
गांधी के आस पास मालवी सुहात बाड़े
अब गांधी के कटल परवाना, जेहलवा०
गांधी के आस पास बाड़े सियारदास
अब गांधी के कटल परवाना, जेहलवा०

इस गीत में किसी देश प्रेमिका स्त्री ने महात्मा गांधी की गिरफ्तारी पर अपने पति को जेलखाने जाने का जो आदेश दिया है वह प्रशंसनीय है। साथ ही इसमें अनेक नेताओं के नामों का उल्लेख हुआ है वह उनकी लोकप्रियता का सूचक है। गांधीजी का नाम तो भारत के प्रत्येक गाँव के प्रायः प्रत्येक घर में सुनाई पड़ता है। असहयोग आन्दोलन के समय में गाँव का प्रत्येक बालक यह गाता फिरता था कि—

"देसवा में अन्हिया उठवले रे गन्हिया।"

अर्थात् ए गांधी जी आपने देश में आंधी पैदा कर दी है। इन नेताओं के नाम पर अनेक झूमर तथा कजली के गीत तैयार हो गए हैं। नीचे लिखे गीत में भारत माता के दिव्य रूप की झांकी दिखाई गई है। यह गीत 'बटोहिया' के नाम से भोजपुरी प्रदेश में अत्यन्त लोकप्रिय है। इसकी कुछ कड़ियाँ सुनिये[1]—

'सुन्दर सुभूमि भैया भारत के देसवा से।
मोरे प्रान बसे हिम खोह रे बटोहिया॥ १॥
एक द्वार घेरे रामा हिम कोतवलवा से।
तीन द्वार सिन्धु घहराई रे बटोहिया॥ २॥
... ...
गंगा रे जमुनवाँ के झगमग पनिया हो।
सरजू झमकि लहरावे रे बटोहिया॥ ३॥
ब्रह्मपुत्र, पंचनद, घहरत निसि दिन।
सोनभद्र मीठे स्वर गाये रे बटोहिया॥ ४॥
आगरा, प्रयाग, काशी, दिल्ली, कलकतवा से।
मोर प्रान बसे सरजू तीर रे बटोहिया॥ ५॥"

भारत के प्राचीन गौरव का स्मरण दिलाता हुआ कवि गाता है कि—

"नानक, कबीरदास, शंकर, श्रीराम, कृष्ण।
अलख के गतिया बतावे रे बटोहिया॥ १॥
विद्यापति, कालिदास, सूर, जयदेव, कवि।
तुलसी के सरल कहानी रे बटोहिया॥ २॥
बुद्धदेव, पृथु, वीर अर्जुन शिवाजी के।
फिरि फिरि हिय सुधि आवेरे बटोहिया॥ ३॥

---

१. दुर्गाशंकर सिंह : भो० लो० गी० भूमिका पृ० ५५-५६।

अपर प्रदेश देश सुभग सुघर बेश ।
मोर हिन्द जग के निचोड़ रे बटोहिया ॥ ४ ॥
सुन्दर सुभूमि भैया भारत के भूमि जेहि ।
जन "रघुबीर" सिर नावे रे बटोहिया ॥ ५ ॥

यह गीत क्या है, भारत माता की पुण्य प्रशस्ति है जिसके एक-एक अक्षर में हमारी पुरातन गरिमा और संस्कृति कूट-कूट कर भरी हुई है ।

—:०:—

अध्याय ७

(क) लोक गीतों के गाने की विधि

भोजपुरी लोक गीतों के गाने की विशेष विधि है। जो लोग इस विधि से पूर्णतया परिचित नहीं हैं वे इसके गाने की पद्धति को उचित रूप से नहीं समझ सकते। इन गीतों के गाने की विधि पूर्णरूप से तभी जानी जा सकती है जब इन सभी गीतों की स्वरलिपि (नोटेशन) तैयार की जाय। यूरोपीय देशों के लोकगीतों के संग्रहकर्ताओं ने अपने देश के समस्त लोक गीतों की स्वरलिपि ही तैयार नहीं की है बल्कि इन गीतों को कराल काल के गाल में जाने से बचाने के निमित्त इनका ग्रामोफोन रेकार्ड भी तैयार किया है। अभी भारतीय विद्वानों का ध्यान इन गीतों की संग्रह की ओर भी पूर्णरूप से आकृष्ट नहीं हुआ है फिर इन गीतों के रेकार्ड बनाने की चर्चा तो दूर की बात है। डा० बेरियर इलविन ने अपनी पुस्तक में[1] बैगा तथा करमा जातियों के गीतों की 'स्वरलिपि' दी है जो बहुत ही सुन्दर है। भोजपुरी के समस्त गीतों की स्वरलिपि तैयार करना अत्यन्त आवश्यक है।

लघु गुरु का श्लथ बंधन

यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये कि लोक गीत पिंगल शास्त्र की नपी-तुली नालियों में होकर नहीं बहते बल्कि इनका प्रवाह उस पहाड़ी नदी के समान है जो स्वच्छन्द गति से बहा करती है। गीतों में पिंगल शास्त्र का विशेष बन्धन न होने के कारण इनकी कोई पंक्ति तो बहुत बड़ी है और कोई बहुत छोटी। परन्तु गवैये गाते समय मात्राओं को इस प्रकार से घटा-बढ़ा लेते हैं जिससे छन्दोभंग बिल्कुल नहीं प्रतीत होता। इन गीतों में लघु, गुरु का नियम बड़ा ही श्लथ होता है। अतः गाने में सुविधा के अनुसार कहीं लघु मात्रा को दीर्घ किया जाता है और कहीं दीर्घ मात्रा को लघु। इससे गीत में छन्दोभंग कहीं भी प्रतीत नहीं होता। एक साथ गाते समय स्त्रियाँ गीतों को इस प्रकार गाती हैं जिससे मात्राओं की त्रुटि से उत्पन्न दोष का कुछ पता ही नहीं चलता।

नीचे का यह उदाहरण लीजिये[2]—

"झूठ भइले सधुआ, झूठ वियफइया
झूठ भइले कागवा के बोल।
झूठ भइले बाभना के पतरा ओ पोथिया
कि सइयां नाहीं अइले हा मोर।"

इस बिरहे में 'झूठ' शब्द में तथा 'नाहीं' शब्द में दीर्घ उकार तथा दीर्घ ईकार का उच्चारण लघु होता है। यदि इनका दीर्घ उच्चारण किया जाय जैसा कि होना उचित है तो छन्दोभंग हो जाता है। संस्कृत के आचार्यों ने भी कहा है कि 'आदि माषं मषं कुर्यात्,

१. 'फोक सांग्स आफ कि मैकल हिल्स,' आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित।
२. डा० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३२७।

छन्दो भंगं न कारयेत्' अर्थात् भाव शब्द को 'मष' भले ही लिखा जाय या पढ़ा जाय परन्तु छन्दोभंग नहीं होना चाहिये।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये[1]—

"पांच पचीस कोसे बसेले महाजन हो,
आहो रामा, कवना अवगुनवे हरि मोरे रुसेले हो राम।
बाट बटोहिया हो रामा, तुहु मोरे भइया हो,
आहो रामा, एहि बाटे देखुव हरि मोरे रुसेले हो राम।"

उपर्युक्त गीत में 'बसेले' 'रुसेले' में एकार का, 'हो' ओकार का, 'बाटे' और 'मोरे' में एकार का और 'आहो' शब्द में आकार का उच्चारण लघु है। यदि इन शब्दों का उच्चारण दीर्घ रूप में किया जाय तो छन्द ठीक नहीं बैठता। अतः गाने की सुविधा के लिये इन शब्दों का उच्चारण लघु करना पड़ता है।

कहीं कहीं पर गेय सौन्दर्य के लिये ह्रस्व का दीर्घ भी उच्चारण किया जाता है। छन्द की मात्रा कहीं त्रुटित न हो जाय इसलिये यह परिवर्तन आवश्यक हो जाता है। नीचे का यह गीत सुनिये—

"उड़ल उड़ल सुगा गइले कलकतवा,
कि जाइके बइठेना, मोर सामी जी के पगिया।
कि जाइके बइठे ना।
पगरी उतारि सामी जांघ बइठवले,
कि कह सुगा ना मोरे घर के कुसलतिया।
कि कइ सुगा ना।
माई तोहरा कुटनी बहिनि तोरि पिसनी,
कि जोइया कइली ना, तोर दउरी दोकनिया
कि जोइया कइली ना।"

इस पूर्वी गीत की प्रथम पंक्ति में "उड़ल उड़ल' शब्द यद्यपि लघु स्वरों से युक्त है। परन्तु इसका उच्चारण दीर्घ किया जाता है इसी प्रकार से चोथी पंक्ति में 'कह' शब्द का उच्चारण दीर्घ है। 'पगिया' में 'प' का और 'कुसलतिया' में 'कु' स, ल, ति' आदि वर्णों का उच्चारण दीर्घ है। यदि इनका उच्चारण दीर्घ न किया जाय तो गीत में छन्दोभंग होने का भय है।

दूसरी गीत लीजिये[2]—

"छायक पेड़ छिउलिया तो पतवन गइवर हो।
अरे रामा तिहितर ठाड़ी हरिनियाँ त मन अति अनमनि हो।"

यहाँ तिहितर में 'हि' का उच्चारण दीर्घ है।

लोक गीतों के पढ़ने की दूसरी विधि यह है कि इसके उपान्त्य स्वर गीत के अन्तिम अक्षर के ठीक पहिले के स्वर को लुप्त स्वर में उच्चारण किया जाता है। यह नियम विशेष- तथा बिरहा के गीतों में प्रयुक्त होता है। इसमें अन्तिम स्वर का लघु उच्चारण तथा उपान्त्य स्वर का प्लुत स्वर में उच्चारण किया जाता है। नीचे का यह बिरहा लीजिये[3]—

उपान्त्य स्वर को प्लुत स्वर में पढ़ना

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३६६। २. त्रिपाठी : ग्राम गी०
३. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३१८।

"उड़ली चिरिइया झुरे झांग बइठलि,
राम नामवा के गोहराई।
निचवा जे घूमत बाटे पापी रे बहेलिया,
ऊपर बाजवा रे मेड़राई।"
निचवा से घूमत बाटे पापी रे बहेलिया,
ऊपर बाजवा रे मेड़राई।"

इस बिरहे में गोहराई तथा मेड़राई में जो उपान्त्य स्वर 'रा' है उसका उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है, जैसे गो ह रा...आ...आ ई और मेड़रा...आ ..आ...ई। जब अहीर अपने कानों में अंगुली डाल कर 'राम नामवा के गोहराई' इस द्वितीय चरण में गोहराई शब्द के 'रा' का उच्चारण करता है तो वह दो तीन मिनट तक इसका प्लुत स्वर में उच्चारण करता रहता है। इस शब्द के ठीक उच्चारण का ज्ञान तो बिरहा गाते हुये किसी अहीर के मुख से सुन कर ही हो सकता है परन्तु इन गीतों की जो स्वर लिपि (नोटेशन) दी गई है उससे यह स्पष्ट ही ज्ञात हो सकता है कि बिरहे के उपान्त्य स्वर का उच्चारण किस स्वर में होता है। इसी प्रकार इस उपर्युक्त बिरहे में गोहराई और मेड़राई में अन्तिम दीर्घ स्वर 'ई' का उच्चारण ह्रस्व किया जाता है। इस बिरहे को गाते समय इनका शुद्ध उच्चारण इस प्रकार से किया जायगा।

"राम नामवा के गो ह रा आ-आ-आ-आ-आ-इ।"
ऊपर बाजवा रे मेड़ रा आ-आ-आ-आ-आ-इ॥"

यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह उच्चारण भेद केवल दूसरे और चौथे चरण के अन्तिम शब्दों में ही होता है, प्रथम और तृतीय चरणों के उच्चारण में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये —

"सिरि बिरिनाबनवा के कुंजगलियवा में
राधे ओरमवली हा डारी।
एकहू बहरि राधे तूरहू ना पवली,
देले कान्हा बंशिया बजाई।"

यहाँ पर भी द्वितीय एवं चतुर्थ चरण के अन्तिम शब्द डारी और बजाई में 'डा' और 'जा' का उच्चारण प्लुत स्वर में किया जायगा और इन दोनों शब्दों के अन्तिम अक्षर 'री' और 'ई' का उच्चारण दीर्घ होते हुये भी ह्रस्व ही किया जायगा।

इस बिरहे को गाते समय उच्चारण की दृष्टि से इसका स्वरूप निम्नांकित हागा—

"सिरि बिरिना बनवा के कुंज गलियवा में
राधे ओरमवली हा डा आ-आ-आ-आ-आ-अ...रि
एकहू बहरि राधे तूरहू ना पवली,
देले कान्हा बंसिया ब जा आ-आ-आ-आ-आ-आ-ई।

जहाँ पर बिरहे के द्वितीय तथा चतुर्थ चरण का अन्तिम अक्षर दीर्घ नहीं है अर्थात् ह्रस्व है वहाँ केवल उपान्त्य स्वर ही प्लुत स्वर में पढ़ा जायगा। फिर अन्तिम स्वर जिसका

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३०६। २. वही पृ० ३२६।

उच्चारण लघु है अपने स्वाभाविकरूप में ही उच्चरित होगा। नीचे का यह उदाहरण लीजिए—

"ससुई पतोहिया में लागल बा झगड़वा,
कइली मुसरवा के मार।
आजु पतोहिया के हम बन दिहतीं,
जों जियत रंहते बुढ़ऊ हमार।"

इस बिरहे के द्वितीय तथा चौथे चरण के अन्तिम शब्द 'मार' और 'हमार' के उपान्त्य स्वर 'मा' का उच्चारण प्लुत है तथा अन्तिम अक्षर 'र' का उच्चारण ह्रस्व है। पूर्व नियम के अनुसार यदि यहाँ कोई दीर्घ स्वर होता तो उसका भी उच्चारण ह्रस्व ही करना पड़ता।

यह तो हुई बिरहे की बात। परन्तु पचरा गाते समय इस पद्धति में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। पचरे में तो उपान्त्य स्वर का उच्चारण ज्यों का त्यों रहता है परन्तु अन्तिम स्वर का उच्चारण प्लुत हो जाता है। यह उदाहरण लीजिये[1]—

"डोलिया पर चढ़ि भइली काली मोर देविया हो,
चली भइली कालीपूर के हाट हो।
काली जी से करेली भेटवा चोटवा,
फेरु डोलिया रे लवटाव हो।"

इसमें द्वितीय तथा चतुर्थ चरण के अन्तिम वर्ण 'हो' का उच्चारण प्लुत स्वर में किया जाता है, जैसे—

"चली भइली कालीपुर के हाट हो...ओ...ओ....ओ
फेरु डोलिया रे लव टाव हो...ओ...ओ...ओ

इसी प्रकार अन्य पचरों के गाने में भी इसी पद्धति का व्यवहार किया जाता है।

भोजपुरी लोक गीतों के गाने की पद्धति में एक और विशेषता पाई जाती है। यह विशेषता है गान सौन्दर्य के लिए गीतों के प्रारम्भ, मध्य अथवा अन्त में कुछ नये वर्णों एवं पदों को जोड़ देना अथवा गीत के बीच में मिला देना। गान की सुविधा के लिए जोड़े गए ऐसे पदों को 'जोड़' कहते हैं। भोजपुरी गवैया गीत को गेय बनाने के लिये एवं छन्दोभंग की त्रुटियों को दूर करने के लिए कुछ नये शब्दों को जोड़ता जाता है। कहीं-कहीं अधिक मात्राओं का भी समावेश कर देता है। ऐसा करने से छन्दोभंग के दोष दूर हो जाते हैं, गीत को गाने में सुविधा होती है और श्रोताओं को भी उसे सुनने में अधिक आनन्द आता है। गीतों को गाते समय नये शब्दों को बीच-बीच में जोड़ने की प्रथा बहुत प्राचीन है। सामवेद के गायन में भी नये पदों को जोड़ने की यह विधि आती है जिसे 'स्तोभ' कहते हैं। इसका अर्थ है ऐसी वस्तु जो जोड़ दी जाय।[2] इसी प्रकार से सामगायन में 'पुष्पण' की पद्धति प्रचलित है जिसका अर्थ है गीत के नये शब्दों को जोड़ कर अलंकृत या सुशोभित करना।

स्तोभ की प्रणाली

सामवेद गायन में जो स्तोभ उपलब्ध होता है वह तीन[3] प्रकार का है—१. वर्ण स्तोभ

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३२९। २. अधिकत्वे सति ऋग्विलक्षणो वर्णः स्तोभः। ३ स्तोभः त्रिविध सा. वे.।

२. पद स्तोभ ३. वाक्य स्तोभ। वर्ण स्तोभ उसे कहते हैं जहाँ सामगायन के बीच में वर्णों को जोड़ दिया जाता है। उदाहरण के लिये यह ऋचा लीजिये जिसमें सामगायन में प्रयुक्त वर्ण स्तोभ सहित उसका एक स्वरूप दिखलाया गया है।

स्तोभ के भेद

ऋचा

अग्न आ याहि वीतये।
गृणानो हव्य दातये।
नि होता सत्सि वर्हिषी।

वर्णस्तोभ

ओग्ना इ। आया ही २. वोइ तो या २ इ।
तो या २ इ। गृणानो ह। व्य दा तो या ३ इ।
तो या २ इ। ना इ हो तासा २३. त्सा २ इ।
वा २३४ औ हों वा र्ही २३४ षी।

इस स्तोभयुक्त गान पर विचार करने से स्पष्ट ही पता चलता है कि इसमें अनेक वर्ण गाने की सुविधा के लिए बीच में जोड़ दिये गये हैं। 'अग्न आ' में 'अ' में 'ओ' तथा 'वीतये' में 'ब' में ओ, त में ओ और य में 'आ' जोड़ा गया है। इसी प्रकार से 'निहोता' के न में आ, स त्सि के 'स' में आ 'वर्हिषि के 'व' में आ जोड़ा गया है। इस प्रकार कहीं ओ, कहीं आ कहीं 'हो वा' जोड़ कर यह ऋचा सामगायन के अनुरूप बनाई गई है।

पद स्तोभ में ऋचा के बीच पूरे शब्द का पद जोड़ दिये जाते हैं। इनका भी उद्देश्य प्रधान रूप से छन्द में गेयता लाना ही होता है। यह ऋचा देखिये—

ऋचा

त्वमग्ने यज्ञानां होता।
विश्वेषां हितः
देवेभि र्मानुषे जने।

पद स्तोभ

त्वमग्ने यज्ञानाम्। त्वमग्नाइ।
यज्ञानां होता। विश्वेषां हा २३ इता।
देवे भा २३ इ मा। ने षे जना।
ओ ३ हो वा। हो ५ इ। डा।

यहाँ पर ऋचा के अन्त में 'ओ ३ हो वा' और 'हो' ५ इ' ये दो पद जोड़े गये हैं। कहीं कहीं ये पद बीच में भी जोड़े जाते हैं। परन्तु ये पद कहाँ बीच में और कहां अन्त में जोड़े जायेंगे इसका कोई नियम नहीं बतलाया जा सकता। यह वैदिक लोगों की सुविधा के अनुसार होता है।

वाक्य स्तोभ में पूरे के पूरे वाक्य ऋचा के आदि या अन्त में जोड़ दिये जाते हैं। जो वाक्य, स्तोभ रूप में ऋचाओं में जोड़े जाते हैं उनके कुछ नमूने ये हैं—

"अगन्मज्योतिरमृता अभूम।
"नमोन्नाय नमोन्नपतये।
"ये देवाः देवाः दिविषदः अन्तरिक्षसदः
पृथिवी सदः।

ये वाक्य ऋचाओं में सामगायन के समय जोड़ दिये जाते हैं। इन्हीं को वाक्य स्तोभ करते हैं।

लोक गीतों में स्तोभ

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि सामगायन में वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ और वाक्य स्तोभ का प्रयोग किया जाता था। ये गान की सुविधा के अनुसार मन्त्र के आदि, मध्य एवं अन्त में जोड़े जाते थे।

लोक गीतों के गाने की पद्धति पर जब सूक्ष्म दृष्टि से विचार करते हैं तब हम इन तीनों प्रकार के वर्ण स्तोभ, पद स्तोभ, वाक्य स्तोभ का पाते हैं। कहीं-कहीं मात्रा स्तोभ भी प्राप्त होता है। सामगायन की भांति ये स्तोभ भी कहीं गीत के प्रारम्भ में, कहीं मध्य में और कहीं अन्त में उपलब्ध होते हैं।

१. मात्रा स्तोभ

मचिया बइठली ए सासु, मुनहु बचनिया।
राउर बेटा मोरंग चलले, कवना राम अवगुनिया।[1]

यहां पर 'कवन' कौन शब्द में 'आ' जोड़ा गया है जिससे 'कवना' रूप तैयार हुआ है। इसी प्रकार से 'भड़सल पइसली ए गोतमी, मुनहु बचनिया'[2] इस गीत में 'पइसल प्रविष्ट में 'ई' जोड़ कर इसमें गेयता लाई गई है। अतः ये दोनों उदाहरण मात्रा स्तोभ के हैं।

२. वर्ण स्तोभ

वर्ण स्तोभ के उदाहरण लोक गीतों में प्रचुर परिमाण में पाये जाते हैं। ये कहीं शब्दों के बीच में लगाये जाते हैं और कहीं अन्त में, जांत का यह गीत सुनिये[3]—

बाव बहेले पुरवइया, अलसी निनिया अइली हो।
नीनी भइली बइरिनिया, पिया फिरि गइले हो।
घरवा रोवे घरनी ए लोभिया,
बाहारावा राम हरिनिया।
दाहावा रोवे चाका चकइया,
बिछोहवा कइले निरवामोहिया।

उपर्युक्त गीत के रेखांकित शब्दों में जैसे, निनिया, बइरिनिया, हरिनिया, चकइया आदि के अन्त में 'इया' प्रत्यय जोड़ा गया है। 'निरवामोहिया' का मूल रूप निरमोही (निर्दय) है। इसमें शब्द के बीच में 'वा' और अन्त में 'इया' वर्ण जोड़ा गया है।

भोजपुरी में गीत को गेय बनाने के लिए शब्दों के अन्त में 'इया' अथवा 'वा' जोड़ दिया करते हैं। ऐसे सभी शब्द वर्ण स्तोभ के उदाहरण हैं।[4]

"भाय लागि देवर बारावा बढ़वली हो,
बलमुवा लागि ना।
देवर सचिले जोबनवा हो,
बलमुआ लागि ना।

यहां पर बार, बलमु और जोबन शब्द में 'वा' अक्षर जोड़ा गया है। अतः ये भी वर्ण स्तोभ के उदाहरण हैं।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० २२३। २. वही. ३. वही. पृ० २२२, २२३। ४. वही. पृ० २१७।

३. पद स्तोभ

इसके भी उदाहरण लोक गीतों में बहुत पाये जाते हैं। चैता और जात के गीतों में यह विधि विशेष रूप से पाई जाती है। चैता के गीतों में प्रारम्भ में 'आहो रामा' और अन्त 'हो रामा' प्रायः सर्वत्र जोड़ा जाता है।[1]

"आहो रामा सूतल रहनी पिया संगे सेजिया हो रामा।
बाते बाते, लागि गइले पियवा से रेरिया हो रामा।
बाते बाते।
आहो रामा मुँहवा से निकलेला बोलिया कुबोलिया हो रामा।
ताहि बोलिये, पियवा भइले बयरगिया हो रामा।
ताहि बोलिये॥

यहाँ रेखांकित शब्द सभी पद स्तोभ के उदाहरण हैं क्योंकि ये गीत के मूलभूत अंग न होकर केवल गाने की सुविधा के लिये जोड़े गये हैं। जांत के गीतों में कहीं गीत के आदि में 'ए राम' और अन्त में 'हो राम' और कहीं 'न रे जी', कहीं रे ना, कहीं 'हो ना' आदि विभिन्न प्रकार का पद स्तोभ पाया जाता है। नीचे की जंतसार में आदि और अन्त दोनों में स्तोभ जोड़ा गया है।[2]

"ए राम हरि मोर गइलो विदेसवा,
त दुइ नवरंगिया लगवले हो राम।
ए राम हरिजी के लावल नवरंगिया,
त नवरंग भुरा गइले हो राम।

एक दूसरा गीत लीजिये[3]—

'हाथे गुरदेलिया ए हरिजी,
चढ़ली जवनिया नु रे जी।
कइसे कइसे रहलीं ए हरिजी,
उतरी बनिजिया नु रे जी।"

इस गीत में प्रत्येक पंक्ति में 'नु रे जी' जोड़ा गया है। इसी प्रकार 'हो ना' 'रे ना' आदि उदाहरण समझना चाहिये।[4]

४. वाक्य स्तोभ

कहीं-कहीं गीतों में गाने की सुविधा के लिए पूरा वाक्यांश जोड़ा जाता है। निरगुन के गीतों में पंक्ति के आदि में 'कि आहो मोरे रामा' जोड़ने की प्रथा पाई जाती है, जैसे[5]—

"नदिया के तीरे तीरे बछरु चरावले,
कि आहो मोरे रामा सावनवां रे झड़ी सागेला ए राम।
बाट में चलत बटोहिया भइया हितवा,
कि आहो रामा, हमरो सनेसवा लेले जइह ए राम।

यहाँ पर 'कि आहो मोरे रामा' इतना वाक्यांश स्तोभ रूप में प्रयुक्त हुआ है।

---

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २३५। २. वही. पृ० ८६। ३. वही· पृ० ८७। ४. वही. पृ० १०१। ५. डा० उपाध्यायः भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० ३७१।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामगायन में जिस प्रणाली स्तोभ का प्रयोग किया जाता था, वह ठीक उसी रूप में भोजपुरी लोकगीतों के गाने में उपलब्ध होती है।

ख. लोकगीतों की स्वरलिपि

लोकगीतों की रक्षा के लिए उनका संग्रह एवं स्वरलिपि का निर्माण अत्यन्त आवश्यक है। आधुनिक सभ्यता के प्रचार के साथ लोक गीतों के गवैयों का प्रतिदिन अभाव होता जा रहा है। आजकल घर की बूढ़ी दादियों के कोमलकंठ में ही ये लोकगीत सुरक्षित हैं। पढ़ी हुई आधुनिक लड़कियाँ इन्हें गाना असभ्यता का सूचक समझती हैं। शिक्षित लड़के भारतीय सभ्यता के प्रतीक इन गीतों को हेय दृष्टि से देखते हैं। अहीरों के लड़के बिरहा जिनका जातीय गान है वे भी अपने बपौती गानों को गाने में लज्जित होते हैं। कभी समय था जब गाँवों में लोक गीतों के गानेवालों की कमी नहीं थी। परन्तु अब तो इनके गानेवाले केवल बूढ़े स्त्री पुरुष ही मिलेंगे जिनकी संख्या अँगुलियों पर गिनने योग्य है। अतः इन गवैयों से इन गीतों को गवा कर यदि इनकी स्वरलिपि न बना ली गई तो कुछ दिनों में इनके गाने की विधि को जानना एक विषम समस्या बन जायगी। उचित तो यह है कि इन गीतों को गवाकर इनके रेकार्ड तैयार कर लिये जायँ। परन्तु यह कार्य बड़ा व्ययसाध्य है और किसी व्यक्ति विशेष की शक्ति के बाहर है। इसे तो कोई बड़ी संस्था अथवा सरकार ही सम्पन्न करा सकती है।

जहाँ तक हमें ज्ञात है किसी भारतीय भाषाओं के लोकगीतों की स्वर लिपि (नोटेशन) अभी तक तैयार नहीं हुई है। वेरियर एलविन ने अपनी पुस्तक 'फोक सांग्स आफ मेकल हिल्स' में गोड़ों के कुछ गीतों की स्वर लिपि अवश्य दी है परन्तु वह पूर्ण नहीं है। अत: सम्भवत: यह प्रथम प्रयास है जब कि भोजपुरी के कुछ गीतों की स्वरलिपि यहाँ प्रस्तुत की जाती है। स्वरलिपि के लिए हमने पचीस प्रकार के प्रधान-प्रधान लोक गीतों को चुना है। प्रत्येक गीतों के जितने प्रधान राग हो सकते हैं उनके एक एक नमूने को लिया गया है और उनकी स्वरलिपि तैयार की गई हैं। झूमर, कजली, चैता आदि गीतों के दो-दो, तीन-तीन रागों में गाये जानेवाले गीतों की स्वर-लिपि निबद्ध की गई है जिससे किसी भी राग में गेय गीत की स्वरलिपि लिपिबद्ध होने से वंचित न रह जाय। प्रत्येक गीत को उसके जानेवाले, परम प्रवीण, पेशावाले गवैयों से गवाकर उसकी स्वरलिपि का निर्माण किया गया है। इन गवैयों में एक दो विहारी भी थे। अत: उनके गाने में प्रान्तीयता का पुट पाया जाता है। प्रत्येक गीत के साथ उनका ताल भी दिया गया है जिससे गीतों को समझने में सुविधा हो। संगीत शास्त्र की दृष्टि से इन गीतों की क्या विशेषता है इसका संक्षिप्त विवरण अगले पृष्ठों में प्रस्तुत किया जायगा।

संगीत शास्त्र की दृष्टि से इन लोक गीतों का महत्त्व अत्यधिक है। ग्रामीणों के हृदय की अभिव्यक्ति में शब्दों और स्वरों, दोनों का योग समानरूप से पाया जाता है।

संगीत शास्त्र की दृष्टि से लोक गीतों की विशेषताएँ

यद्यपि लोक गीतों में संगीत का सर्वांगपूर्ण शास्त्री रूप नहीं मिलता' तथापि इससे वे सर्वथा पृथक् हैं ऐसा भी नहीं कहा जा सकता इन लोक गीतों में अधिकतर शास्त्रीय परम्परा के कहरवा ताल, खेमटा ताल और जत ताल प्रयुक्त हुए हैं। जत ताल १४ मात्राओं का है और खेमटा ६ मात्राओं का। कहरवा ताल कुछ गीतों में ४ मात्राओं का अधिक संगत प्रतीत होता है और अन्य गीतों में

८ मात्राओं का भी प्रयोग हुआ है। सभी लोकगीतों में कुल चार थाटों (ठाटों) का ही अंश उपलब्ध होता है। ये ठाट हैं १. बिलावल २. खमाज ३. काफी और ४. भैरव। बिलावल थाट पूर्वी के इस निम्नांकित गीत में पाया जाता है।

'जेठ बैसखवा के तलफी भुभुरिया
हो महेन्दर मिसिर।'
चलत में गोड़वा मोर पिराय,
हो महेन्दर मिसिर।

चैता के इस गीत में खमाज थाट का प्रयोग हुआ है—

"मानिक हमरो हेरइले हो रामा
जमुना में।
केहू नाहीं खोजेला हमरो पदारथ हो रामा,
जमुना में।"

काफी थाट छठी माता के इस गीत में पाया जाता है—

"गंगा का तीरे ती बोअलो में राई।
राजा जी मिरिगा चरि ए चरि जाई।
ए छठी माता करबि सेवकाई।
करबि सेवकाई॥"

भैरव थाट का व्यवहार निम्नांकित पूर्वी गीत में उपलब्ध होता है—

"सभका के देल भोला अन धन सोनवा।
बनवारी हो हमरा के लरिका भतार।
लरिका भतार लेके सुतली अंगनवा।
बनवारी हो जरि गइले एड़ी से कपार।"

परन्तु ये उपर्युक्त गीत इन थाटों के आश्रय रागों के स्वरूप से सर्वथा भिन्न हैं। इनमें केवल कुछ कुछ स्वर साम्य पाया जाता है अधिकांश लोक गीत शुद्ध स्वरों में हैं जैसे बिलावल थाट में कुछ कोमल निषाद[1] और कुछ में दोनों निषादों[2] का प्रयोग पाया जाता है। कुछ लोकगीतों में कोमल गान्धार लगता है जैसे काफी थाट में तथा कभी-कभी यह गान्धार कोमल और तीव्र के बीच का लगता है जो गान्धार की एक श्रुति है। उदाहरण के लिए पाराती का यह गीत देखिये—

"आरे जाग हो दसरथ के दुलरुवा।
तोहरा जगले जगत सभ जागेला
जाग हो दसरथ के दुलरुवा:

यह प्रयोग अत्यन्त सुन्दर लगता है।

भैरव थाठ का यह एक गीत मिलता है।

"अपना बाबा के रेसमी बड़ी रे दुलरुई।
आरे सेर भरि मरिची चबाले गोरिया।
रेसमी।"

परन्तु इसमें भी सभी स्वर इसके नहीं हैं। केवल धैवत कोमल है।

---

१. उदाहरण—सब का देल भोला अन धन सोनवा॥ पूर्वी॥ २. उदाहरण—मानिक हमरो हेरइले हो रामा॥ चैता॥

इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि यद्यपि इन लोकगीतों में शास्त्रीय संगीत का सम्पूर्ण स्वरूप एकत्र नहीं दिखाई पड़ता फिर भी प्राचीन संगीत के बहुत से स्वर, थाट, राग और ताल इनमें पाये जाते हैं। बहुत संभव है कि इन गीतों में विचित्र स्वर राग एवं ताल मिल सकें, जिनका शास्त्रीय संगीत में नितान्त अभाव है। अतः संगीत की दृष्टि से भी इन गीतों का अध्ययन होना अत्यन्त आवश्यक है। लोक संगीत और शास्त्रीय संगीत में किसका किस पर कितना प्रभाव है इस दृष्टि से भी लोक संगीत का अध्ययन महत्वपूर्ण है।

अध्याय ८

लोक गीतों में समान भाव धारा

मानव हृदय सर्वत्र समान है। प्राकृतिक और भौगोलिक विशेषतायें लोक हृदय में भेद नहीं उत्पन्न कर सकतीं। मनुष्यों द्वारा निर्धारित सामाजिक और जातीय भेदभाव के नियम भी उसे अपने बन्धन में नहीं बांध सकते। मानव हृदय के बीच पृथकता की कोई दीवाल नहीं खड़ी की जा सकती और न इसका वर्गीकरण ही किया जा सकता है। मनुष्यों के हृदय में सर्वत्र एक समान ही भाव धारा प्रवाहित होती है और इसका प्रतिबिम्ब उनके लोक गीतों में हमें देखने को मिलता है। यही कारण है कि संसार के लोक साहित्य में सर्वत्र एक ही अन्तर्धारा बहती हुई दीख पड़ती है। क्या लोक गीत, क्या लोक गाथा और क्या लोक कथा सभी में यह बात समान रूप से पायी जाती है। श्री देवेन्द्र सत्यार्थी ने इस सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है कि[1] "प्रान्त-प्रान्त में लोक गीतों की यह आपसदारी हिन्दुस्तानी संस्कृति की एकता का एक जबरदस्त प्रमाण है। अनेक क्षुद्रताओं के बीचों बीच लोक जीवन का रचनात्मक सौन्दर्य हजारों वर्षों से इन गीतों में नाना रंग भरता रहा है। भाषायें बदलती रही हैं, भाषा का चोला बदल-बदल कर भी लोक गीतों ने अपनी पुरातन पुकार कायम रखी है।"

सत्यार्थी जी की उपर्युक्त उक्ति अक्षरशः सत्य है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लोकगीतों के तुलनात्मक अध्ययन से यह बात यथार्थ प्रमाणित होती है। भोजपुरी माता जिस प्रेम के साथ 'लोरी' गाकर अपने बच्चे का मनोरंजन करती है, सुदूर गुजरात में स्थित गुजराती माता भी उसी प्रेम से 'होलरड़ा' गाती हुई दिखाई पड़ती है। राजस्थानी गीतों में पुत्री अपने वर के चुनाव के लिए पिता से जैसा नम्र निवेदन करती है लगभग उसी शब्दावली का प्रयोग मिथिला की कन्या भी करती हुई पाई जाती है। विवाह के पश्चात् गवना के समय पुत्री के वियोग का जो कारुणिक एवं मर्मभेदी वर्णन भोजपुरी लोक गीतों में पाया जाता है वैसा ही मर्मस्पर्शी उल्लेख काश्मीरी, मारवाड़ी, बंगला और मराठी लोकगीतों में उपलब्ध होता है। दक्षिण भारत की तामिल, तेलुगु आदि द्राविड़ भाषाओं में भी यही स्रोत अविच्छिन्न रूप से बहता दिखाई पड़ता है। भारतीय भाषाओं की तो चर्चा दूर रही विदेशी भाषाओं अंग्रेजी, फ्रेंच, ग्रीक एवं जर्मनी के गीतों में भी भारतीय भावों की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है। गीतों की यही समान भावधारा भारतीय संस्कृति की एकता का मूलसूत्र है और मानव हृदय की एकात्मा का प्रबल प्रमाण है।

भोजपुरी प्रान्त में लोरी गाने की बड़ी प्रथा है। छोटे-छोटे बालकों को सुलाने के के लिये मातायें लोरियाँ गाती हैं और अपने प्यारे बच्चे को थपथपाती जाती हैं। भोजपुरी की यह लोरी सुनिये[2]—

"चाना मइया आरे आव पारे आव,
नदिया किनारे आव।

१. सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० ६५। २. लेखक का निजी संग्रह पृ० ६६।

सोनवा के कटोरवा में दूध-भात ले-ले आव ।
बबुआ के मुँहवा में घुटुक ।"

अर्थात् हे माता के समान चाँद तुम आवो । सोने के कटोरे में दूध और भात लेते आवो और मेरे बच्चे के मुँह में धीरे से खिलावो ।

आन्ध्र देश में लोरी का पर्यायवाची शब्द 'जौल पाटा' है । सूर्य के प्रकाश में चाहे शिशु आँखें भले ही न खोले परन्तु चन्द्रमा के शीतल प्रकाश में उसे विशेष आनन्द आता है । तेलुगु लोकगीतों (लोरियों) में चन्द्रमा को मामा कह कर सम्बोधित किया गया है । शिशु चन्द्रमा को पकड़ना चाहता है । उस समय तेलुगु मां गाती है[१]—

"चन्द मामा रावे । जा बिल्ली रावे ।
कंडे कि रावे । कोटि पूलू ते वे ।
बंडि मोदा रावे । बन्ति पूलू तेवे ।"

अर्थात् हे चाँद मामा ! आ ! गाड़ी पर चढ़ कर आ । फूल लेकर आ । पीले-पीले फूल देकर चला जा । जहाँ भोजपुरी में चन्द्रमा को माता कहा गया है वहाँ तेलुगु लोरियों में उसे 'मामा' की उपाधि से विभूषित किया गया है ।

उड़िया भाषा में लोरियों को 'बिल्ला खेला गीतों' कहते हैं । उड़िया की एक लोरी में चन्द्रमा के साथ उपहास किया है[२]—

"जन्हाँ मामू रे जन्हा मामू
मो कहा हो सुनो ।
बिल र माछ चील खाई गला
खइची खंडिए बुणो ।"

अर्थात् चाँद मामा, ओ चांद मामा ! मेरी बात सुनो । खेत की मछली को चील खा गई तुम जाल तैयार करो ।

जिस प्रकार तेलुगु भाषा में चन्द्रमा को मामा कहा गया है उसी प्रकार उड़िया में भी उसे 'मामा' के ही नाम से पुकारा गया है ।

गुजरात में लोरिया को 'होलरड़ां' कहते हैं । श्री झवेरचन्द्र मेघाड़ी ने इन लोरियों का संग्रह इसी उपर्युक्त नाम से प्रकाशित किया है ।[३] कोई गुजराती मां शिशु की व्याख्या कर रही है[४]—

"तमे मारां देवना दिधेल छो ।
तमे मारां मागीली दिधेल छो ।
आत्यां त्यारे अम्मर रई ने थो
यादेव जायो उतावली ने गई चढ़ावूं फूल ।
मादेव जी परसन थये आव्यां तमे अणमूल ।"

"'शिशु' नामक ग्रन्थ में यही भाव महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने मां के मुँह से शिशु के प्रति कहलवाया है ।[५]

---

१. सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० २४४ । २. वही. पृ० २४४ । ३. गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, अहमदाबाद । ४. सत्यार्थी : बेला फूले आधी रात पृ० २४६ । ५. वही. पृ० २४६ ।

"सकले देवतार आदुरे धन।
नित्य कालेर तुई पुरातन।
सबार छिली आमार होली के मोने।"

पुत्र जन्म के अवसर पर किस प्रकार उछाह और उत्सव मनाया जाता है ब्राह्मणों, भिक्षुओं और गुरुजनों को अन्न, धन बांटा जाता है इसका बड़ा सुन्दर वर्णन भोजपुरी सोहरों में पाया जाता है। गत अध्याय में 'सोहर' के चर्चा के प्रसंग में भोजपुरी सोहरों से राजस्थानी एवं मैथिली पुत्र जन्म के गीतों के समान भावों का तुलनात्मक विवेचन किया जा चुका है।

जब लड़की विवाह योग्य हो जाती है तो उसकी अपने लिये सुन्दर वर पाने की उतनी ही अधिक इच्छा होती है जितनी पुरुष की सुन्दरी स्त्री को पाने की। संस्कृत के किसी कवि ने कहा है कि "कन्या वरयते रूपम्" अर्थात् कन्या वर के रूप को ही पसन्द करती है। भोजपुरी लोक गीतों की कोई युवती लज्जा का परित्याग कर अपने पिता से कहती है कि ए पिताजी, मेरे लिये सुन्दर वर खोजना क्योंकि अब मैं विवाह के योग्य हो गयी हूँ।[1]

"छोटी मोटी सीता कवरवनि ठाढ़ी
बाबा से अरज हमार ए:
आरा हमरा के बाबा सुनर वर खोजिह,
अब भइलों बियहन जोग ए।"

परन्तु पिता वर खोजने में भूल कर जाता है और काले वर से विवाह कर देता है। इस पर पिता के प्रति पुत्री की उक्ति कितनी मार्मिक है। यह उक्ति मनोवेदना एवं व्यंग्य से भरी हुई है?[2]

"बाबा न देखी बाग बगइचा
बाबा ना देखी फुलवारी ए।
काहा दल उतरी ए बेटी,
बरियाति टिकाइबि फुलवारी ए।
रउरा चुकलीं ए बाबा हमरी देरिया,
हमरा करियवा वर आये हो।
सांवर सांवर जनि कहु बेटी,
सांवर कृष्ण कन्हाई हो।"

उपर्युक्त गीत की 'रउरा चुकली ए बाबा हमरी बेरिया' इस पंक्ति में कितना व्यंग्य, कितना आत्मक्षोभ भरा पड़ा है। पुत्री के कहने का आशय यह है कि ए पिता जी! आपने मेरे भाई के लिये तो सुन्दर स्त्री को चुना परन्तु जब मेरे लिये सुन्दर वर का प्रश्न आया तो अधिक तिलक या दहेज देने के डर से काला वर खोज दिया।

राजस्थान की एक लड़की भी अपने वर के चुनने के लिये पिता से कुछ इन्हीं शब्दों में प्रार्थना कर रही है। वह पिता से कहती है कि पिताजी, काला वर मत ढूँढ़ना जो कुल को लजावे। गोरा वर मत ढूँढ़ना कि थोड़ा सा परिश्रम करते ही पसीना आ जाय क्योंकि गोरापन सुकुमारता का लक्षण है लम्बा वर मत खोजना जो खड़ा-खड़ा ही सांगर शमी वृक्ष की फली को तोड़ ले और न ठिंगना वर खोजना जिसे लोग बौना कहें। मेरे लिये ऐसा वर खोजना जो काशीवास (अध्ययन) कर चुका हो। जब वह हाथी पर

१. डा० उपाध्याय भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० १५६। २. वही. पृ० १६१।

चढ़ कर आवेगा तो तुम्हारी बाई के मन को भावेगा।[1]

"कालो मत हेरो बाबाजी, कुल ने लजावे,
गोरो मत हेरो बाबाजी, अंग पसीजे,
लाँबो मत हेरो, बाबा, सांगर चूंटे,
ओछो मत हेरो, बाबा, बावन्यू बतावे,
ऐसो वर हेरो, कासी रो वासी,
बाई रे मन भासी, हसती चढ़ आसी।'

राजस्थानी कन्या की रुचि भोजपुरी कन्या की अपेक्षा बड़ी परिष्कृत ज्ञात होती है। अब गुजराती कन्या की विनती सुनिये जो अपने पिता से कहती है कि दादा, मेरे लिये ठिगना वर मत खोजना क्योंकि लोग उसे वामन कहेंगे। काला वर मत खोजना क्योंकि उससे कुटम्ब की लज्जा होगी, अपमान होगा। गोरा भी मत खोजना क्योंकि वह सदा आत्म प्रशंसा करता रहेगा। मेरे लिये श्यामल द्युतिवाला वर चाहिये जो मेरे मन को भावे।[2]

'एक ऊँचो ते वर नो जोजो रे दादा,
ऊँचो ते नित नूँबाँ मोंगशे।
एक नीचो ते वर नो जोजो दादा
नीचो ते नित ठेवे आवशे।
एक कालो ते वर नो जोजो रे दादा,
कालो ते कटुंब लजावशे।
एक गोरो ते वर नो जोजो रे दादा
गोरो ते आप वखाणशे।
एक कब्यर पातली यो ने मुख रे शामलीयो
ते मारी सैयर वखाणीयो।"

इन उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट पता चलता है कि अपने भावी पति के चुनाव के संबंध में भोजपुरी कन्या के मानस में जो मनोकामना हिलोरें मार रही है उससे राजस्थानी कन्या का भी हृदय चंचल हो उठा है, और इस चंचलता का प्रतिबिम्ब गुजराती कुमारी के मनमुकुर में स्पष्ट दिखाई पड़ता है।

भोजपुरी गीतों में गवना के गीत बड़े ही करुणा जनक होते हैं। जब बेटी अपने पिता से बिदा होकर ससुराल जाने लगती है उस समय का दृश्य सचमुच ही बड़ा हृदय-विदारक होता है। इस अवसर पर बड़े-बड़े धैर्यशालियों का भी धीरज छूट जाता है। कालिदास ने शकुन्तला की बिदाई के अवसर पर कण्व जैसे वीतराग महर्षि के भी रोने का वर्णन किया है। फिर बेटी की बिदाई का यह भोजपुरी गीत कितना मर्मस्पर्शी है—[3]

"बाबा के रोअले गंगा बढ़ि अइली
आमा के रोवले अनोर।
भइया के रोवले चरन धोती भीजे,
भउजी नयनवा ना लोर।"

१: पारीक: रा० लो० गी० भाग १ पृ० १६०, १६१। २. वही. पृ० १२ भूमिका। ३. डा० उपाध्याय भो० गी० भाग १ पृ० ३७ (भूमिका)।

अर्थात् पुत्री के वियोगजन्य दुःख से पिता के रोने के कारण गंगा में बाढ़ आ गई। माता के रोने से उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया है। भाई के रोने से उसके पैर तक की धोती भींग गई है। परन्तु भावज की आँखों में तनिक भी आँसू नहीं हैं।

एक दूसरे गीत में पुत्री अपने पिता से कहती है कि ए पिताजी! आज की रात के कष्ट को सह लीजिये। मैं कल प्रात:काल ही यहाँ से बड़ी दूर चली जाउँगी। आपका घर जंगल हो जायगा और आंगन भादो की रात के समान भयावना मालूम पड़ेगा।[1]

"सहु बाबा सहु रे बाबा आज की रतिया हो।
बाड़ा हो पाराते हो बाबा, जाइबी दूर।
दुवरां राउर होइहें ए बाबा रन रे मन।
आंगन रउरा होइह ए बाबा भदउवा निसुराती।"

एक पंजाबी लोकगीत में कन्या अपने पिता से बिदाई के समय यह कह रही है कि मैं तो एक चिड़िया हूँ, मुझे तो एक दिन उड़ जाना होगा। मेरी उड़ान बड़ी लम्बी है। मुझे किसी अनजान देश में उड़ कर जाना होगा, हे पिता! मेरे बिना तेरा चौका बर्तन कौन करेगा? तुम्हारे महल के बीच में मेरी अम्मा रो रही है।

"साडा चिड़ियाँ दा चम्बा वे, बाबल असी उड़ जाना।
साडी लम्बी उड़ारो वे, बाबल केहड़े देश जाना।
तेरा चौका भांडा वे, बाबल तेरा कौन करे।
तेरा महल दाँ बिच बिच वे, बाबल मेरी मां रोवे।[2]"

उपर्युक्त गीत में पुत्री की उपमा चिड़ियां से दी गई है जो बहुत सुन्दर है। पंजाबी गीत के 'साडी लम्बी उड़ारो वे, बाबल केहड़े देश जाना' और भोजपुरी गीत की इस निम्नांकित पंक्ति 'बाड़ा हो पाराते हो बाबा, जाइबि बड़ी दूर' में कितना भावसाम्य है।

इसी प्रकार एक गुजराती बहिन (बेन) अपनी दशा का वर्णन करती हुई कहती है कि मैं तो एक हरे-भरे जंगल की चिड़िया हूँ। आज दादा जी के देश में हूँ कल उड़ कर परदेश चली जाऊँगी।[3]

"अमे रे लीलुड़ा बननी चर कलड़ी,
उड़ी जाशुं परदेश जो।
आज रे दादा जा ना देश मां,
काले जाशुं परदेश जो।"

राजस्थानी भाषा में कन्या की बिदाई के गीतों को 'बधावा' कहते हैं। एक राजस्थानी गीत में लड़की की बिदाई पर माता के विरह क्लान्त हृदय की भावनाओं को देखिये[4]—

"कोयल ए कोयल बैरण, पिहु पिहु बोल।
हाँ ए बैरण, पिहु पिहु बोल।
चढ़ती बाई ने ये सबद सुणाइयो।
डूंगर रे डूंगर राजा, नीचो सो झुक जाय।
हाँ ओ राजा, नीचो सो झुक ज्याय

---

१. डा० उपाध्याय : भो० लो गी० भाग १ पृ० ३७ [पृष्ठभाग]। २. वही. भो० ग्रा० गी० भाग १ पृ० ३८। ३. मेघाणी : लोक साहित्य पृ० १८३। ४. पारीक. रा० लो० गी० भाग १ पृ० ·००।

चढ़ती बाई को वो दीखे रंग चूनड़ी ।
चढ़ते जंवाई की दीखे पचरंग पागड़ी ।'

ए री बैरिन कोयल ! तू बिदा होती हुई बाई को 'पिऊ-पिऊ' का मीठा शब्द सुना । ए मेरे पर्वतराज ! तू जरा नीचा झुक जा जिससे मैं बिदा होकर जाती हुई अपनी प्यारी बेटी की चूनड़ी को दूर तक नजर भर कर देख सकूं और सकूं प्यारे जमाई की पचरंग पगड़ी को ।

मैथिली में गवना के गीत 'समदाऊनि' के नाम से विख्यात हैं जिनके करुण रस की सरिता अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित हो रही है । यह गीत सुनिये[1]—

"गैया जं हुंकरय दुहान केर बेर ।
बेटी क माए हुंकरय रसोइया केर बेर ।
धियवा के कनइत में गंगा बढ़ि गेल ।
दमदा के हंसइत में चादरि उड़ि गेल ।

अर्थात् दूध दूहने के समय गाय अपने बछड़े के लिए हुंकारती है और बेटी की जुदाई में भोजन करने के समय बिसूर रही है । माता से बिदा होने के समय पुत्री के रोने से गंगा में बाढ़ आ गई और दामाद के हंसने से चादर उड़ने लगी ।

भोजपुरी के गवने के गीत और इस समादाऊनी में कितना साम्य है । पहिले गीत में माता की ममता दिखाई गई है तो दूसरे में पुत्री के प्रेम की पराकाष्ठा का वर्णन है । पुत्री की बिदाई के समय भोजपुरी माता का जो प्रगाढ़ प्रेम लक्षित होता है उसका प्रतिबिम्ब राजस्थानी, पंजाबी, मैथिली आदि सभी गीतों में स्पष्ट दिखाई पड़ता है ।

स्त्रियों के दिव्य सतीत्व की झांकी भी हमें इन लोक गीतों में दिखाई पड़ती है । किस प्रकार सती कुसुमा देवी ने अपने सतीत्व की रक्षा आततायी यवनों से की यह लोक गाथा प्रसिद्ध है । कुसुमा देवी का यह गीत भोजपुरी भाषा के साथ ही अवधी भाषा में भी पाया जाता है । इसका रूपान्तर अन्य भाषाओं में भी पाया जाता है जिससे पता चलता है कि सतीत्व की कल्पना या भावना सभी प्रदेशों में प्राय: एक समान ही है । भोजपुरी प्रदेश में जिस प्रकार बिहुला और बाला लखन्दर का प्रेम गाथा प्रसिद्ध है उसी प्रकार पंजाब में हीर और रांझा की प्रेम कहानी सर्वत्र गाई जाती है । राजस्थान में ढोला और मारु की प्रेम कथा भी ऐसी ही प्रसिद्ध है । बंगाल में भी बिहुला की कथा का बड़ा प्रचार है । ढोलामारु और हीरा-रांझा की प्रेम गाथाओं में नाम का अन्तर भले ही हो परन्तु प्रेम की जो पवित्र सरिता ढोला और मारु के हृदय में बह रही है उसी से हीर रांझा और बिहुला बाला लखन्दर का मानस भी अप्यायित हो जाता है ।

करुण के साथ वीर रस की भी सुन्दर अभिव्यक्ति अनेक लोकगीतों में हुई है । भोजपुरी में आल्हा और ऊदल की वीर गाथा बड़ी प्रसिद्ध है । गवैये बरसात के दिनों में ढोल बजाकर बड़े ऊंचे स्वर से 'आल्हा' गाते हैं । इस वीर गाथा को सुनकर बूढ़ों के हृदय में भी जोश भर आता है । बुन्देलखंडी बोली में भी 'आल्हा' पाया जाता है जो संभवत: मूल 'आल्हा' का परिवर्तित रूप है । वीर गाथाओं का प्रचार केवल इसी प्रान्त में नहीं बल्कि अन्य प्रान्तों में पाया जाता है ।

१. राकेश : मै० लो० गीत० पृ० १७३१-७४ ।

भारतीय संस्कृति की वीणा से आज भी वीर स्वर निकल रहे हैं। सुदूर आसाम प्रान्त की मणिपुर रियासत के लोकगीत का यह वीर रस पूर्ण उद्‌गार सुनिये[1]—

"खुंगा बी पांगो लू लामे
लू लामे लू लामे।
टराँग लू लाम का थाया
खुंगा बी पांगों लू लामे।"

अर्थात् सिर काट लिया गया, युद्ध का गीत गाओ, युद्ध का गीत गाओ। सिर काटना कितना शुभ कार्य है। सिर काट लिया गया, गीत गाओ।

उड़ीसा के 'बरहमपुर गंजाम' जिले की उदयगिरि एजेन्सी में 'कोढ़' नामक एक पहाड़ी जाति बसती है। यह जाति जंगल में शिकार करने में बड़ी दक्ष है। शेर के शिकार का यह वीरतापूर्ण गीत सुनिये[2]—

"एड़ा वाईना वाईना वाईना।
कताजामू कताजामू कताजामू।
कड़ाड़ी वाईना ड़े कताजामू।
एरा वाईका वाईना कताजामू।"

अर्थात् शेर आता है उसे काट डालो।

कोई पंजाबिन स्त्री गाती है कि मेरे भाई की लाठी काले रंग की है। वह जहाँ भी चोट करती है, बादल की तरह गरजती है।[3]

"जित्थे वज्जदी बछला बांगू गज्जदी।
काली डांग मेरे वीर दी।"

इसी प्रकार से भोजपुरी के निम्न गीत में वीर रस कूट-कूट कर भरा पड़ा है।

बिरना हाली हाली जेवों
बिरन मोरा बलैया लेऊँ बीरन।
बिरना मुगल लड़ैया के ठाड़
बलैया लेऊँ बीरन।"

जिस प्रकार नदी के प्रवाह में सदा परिवर्तन होता रहता है उसी प्रकार मानव हृदय में भी परिवर्तन स्वाभाविक है। उसमें कभी करुण, कभी शृङ्गार और कभी वीर रस का प्रादुर्भाव होता है। वह समय की गति के साथ परिवर्तनशील है। यही कारण है कि लोक हृदय के प्रतिबिम्ब स्वरूप इन लोक गीतों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। महात्मा गांधी के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव लोक गीतों पर भी पड़ा है जिसका विस्तृत वर्णन आधुनिक लोक गीतों के विषय तथा उनमें भाव व्यंजना वाले प्रसंग में किया जा चुका है। यहाँ पर इस वर्णन का उद्देश्य केवल इतना ही है कि गांधीजी और उनके आन्दोलन की चर्चा किस प्रकार प्रायः सभी भाषाओं के लोक गीतों में हुई है। सर्वप्रथम भोजपुरी का यह विरहा सुनिये जिसमें अंग्रेजी शासन की आलोचना की गई है—

"गांधी के लड़इया नाहीं जितबे फिरंगिया,
चाहे करु केतनो उपाय।
भलभल माजवा उड़ौले एहि देसवा में,
अब जइहै कोठिला बिकाय।"

---

१. सत्यार्थी : बेला फूले आधीरात पृ० २३१। २. वही. पृ० २३३। ३. वही. पृ. २३७।

एक अवधी विरह में गांधी जी की उस कलकत्ता यात्रा का वर्णन किया गया है जो उन्होंने सन् ४७ ई० में वहाँ शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से की थी—

"सुमिरौ गांधी और गंगा,
बस्तर पहिरे रंगा रंगा
+ +
बैठे गांधी पूजा करते
फेर रहे तुलसी माला ।" आदि-आदि

पंजाबी लोक गीत गांधी जी के यशोगान में अत्यन्त अग्रगामी नजर आते हैं। अनेक बार गाँव की स्त्रियाँ 'गिद्धा' नृत्य की रंगभूमि पर गा उठती हैं—

"आप गांधी कैद हो गया
सानूं दे गया खद्दर का बाणा ।
+ +
गांधी कहे फिरंगिया वे
हुण छड्ड दे हिन्दुस्तान ।"

मध्य प्रान्त के गोंड लोगों के भी लोक गीतों में गान्धी जी का सन्देश पहुँच गया है ? कोई गाता है[1]—

"अद्दल गरजे बाद्दल गरजे
गरजे माला गजराला हो
फिरंगी राज के गरजे सिपाइरा रामा
गांधी क राज होने वाला हाय रे ।"

संथाली लोक गीत भी गांधीजी का यशोगान करने से नहीं चूकता। सुदूर आन्ध्र देश के लोक गीतों ने भी गांधी जी के चरणों में श्रद्धा के पुष्प अर्पित किये हैं[2]। गांधीजी का जय घोष भारतीय लोक संस्कृति की एकता की एक नई परम्परा का सूचक है। एक तामिल लोक गीत में जनता की प्रतिभा कह उठी है कि गांधी ऋषि हमारी रक्षा करता है। वह महान् ऋषि है—

"गांधी ऋषि ननमें कार्यातुम महाऋषि[3] ।
गांधी ऋषि ।"

बेला का वर्णन

लोक हृदय की आन्तरिक भावनाओं के चित्रण में तो लोक गीतों में समानता पाई ही जाती है परन्तु इसके साथ ही प्रकृति के वर्णन में भी इनमें एकरूपता दृष्टिगोचर होती है। बेला जनता का परम प्यारा पुष्प है। इसीलिये इसका उल्लेख सभी लोक गीतों में अनेक बार हुआ है। एक भोजपुरी विवाह गान में कन्या की तुलना बेला के फूल से की गई है।

एक मैथिली झूमर में पुष्प शय्या की कल्पना की गई है जिसमें बेला के फूलों ने

१. सत्यार्थी: वही पृ० ३९७, २. पृ० ३९६, ३. वही, पृ० ४०५.

उपयुक्त स्थान पाया है। मैथिली 'चेतावर' में भी बेला का वर्णन पाया जाता है: ।[१]

'बेला चमेली फूले बगिया में
जोवना फूलल मोरे अँगिया हे रामा
नईं भेजे पतिया।'

एक कन्नड़ लोक गीत में भी शिव की पूजा के लिये बेला के फूल चुने जाते हैं। इसी प्रकार बंगला लोक गीतों में इस पुष्प की चर्चा अनेक बार हुई है। बेला का सुन्दर स्वरूप, उसकी मनोहर सुगन्ध और अनुपम लावण्य लोकहृदय को बहुत प्यारा लगा है इसीलिये इसका सर्वत्र उल्लेख किया गया है[२]।

—:०:—

१. वही पृ० ८६. २. सत्यार्थी: बेला फूले आधी रात पृ० १७-३६.

द्वितीय खण्ड

लोक-गाथा

अध्याय १

क. लोकगाथा

नामकरण

भोजपुरी में जो लोक गीत पाये जाते हैं वे दो प्रकार के हैं। पहले वे गीत हैं जो गेय हैं आकार में छोटे हैं, और जिनमें किसी प्रकार की कथा या आख्यान का अभाव है। दूसरे वे गीत हैं जिनमें गेयता तो अवश्य है परन्तु उनकी प्रधान विशेषता उनका लम्बा कथानक है। अंग्रेजी भाषा में पहिले प्रकार के गीतों के लिए लिरिक (lyric) और दूसरे प्रकार के गीतों के लिये बैलेड (ballad) शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। हिन्दी में इन्हें लोक गीत और लोक गाथा का नाम देना उपयुक्त है। दूसरे प्रकार के गीतों को 'गीत कथा' या 'कथा गीत' भी कहा जा सकता है। परन्तु हमारी सम्मति में लोक गाथा शब्द इन दोनों शब्दों से अधिक भावाभिव्यंजक है। 'गाथा' शब्द का प्रयोग गेय पदावली लिरिक्स के लिए प्राचीन समय से होता आया है। हाल की 'गाथा सप्त शती' इसका उदाहरण है। भोजपुरी में गाथा का अर्थ कथा या कहानी होता है। जैसे 'का आपन गाथा सुनवले बाड़' तुम अपनी कथा क्या सुना रहे हो। इस प्रकार 'गाथा' शब्द में गेयता और कथानक का अंश दोनों विद्यमान हैं जो बैलेड की विशेषता है। राजस्थानी लोक गीतों के संग्रहकर्ता श्री सूर्यकरण पारीक ने भी ग्राम गीत और लोक गीत में पार्थक्य दिखलाने का प्रयत्न किया है और बैलेड शब्द के लिये उन्होंने 'गीत कथा' का प्रयोग किया है।[1] परन्तु पूर्वोक्त कारणों से 'लोक गाथा' शब्द अधिक समुचित है एवं यही समीचीन जँचता है।

लोक गाथा की परिभाषा

बैलेड अथवा लोक गाथा की परिभाषा अनेक विद्वानों ने अनेक प्रकार से की है। प्रो० केट्रीज़ का मत है कि बैलेड वह गीत है जो किसी कथा को कहता है अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गयी हो।[2] हैजलिट् ने बैलेड की परिभाषा बतलाते हुए इसे 'गीतात्मक कथानक' कहा है।[3] फ्रैंक सिजविक ने अपनी पुस्तक में बैलेड की परिभाषा में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए इसे अमूर्त पदार्थ बतलाया है।[4] आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी के प्रधान सम्पादक डा० मरे ने बैलेड की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'बैलेड वह साधारण स्फूर्तिदायक कविता है जिसमें कोई जन प्रिय आख्यान रोचक ढंग से वर्णित हो।''[5]

इस प्रकार ऊपर अंग्रेजी विद्वानों द्वारा बैलेड शब्द की जो परिभाषा दी गई है उसकी

१. सूर्यकरण पारीक:राजस्थानी लोक गीत पृ० ७८, ८५. २. "ए बैलेड इज़ ए सांग देट टेल्स ए स्टोरी, और टु टेक दि अदर प्वाइंट आफ व्यू ए स्टोरी टोल्ड इन सांग" इंगलिश एन्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स भूमिका पृ० ११. ३. लिरिकल नैरेटिव. ४. दि बैलेड पृ० ८. ५. "ए सिम्पल स्पीरीटेड पीएम इन शार्ट स्टेन्जाज़ इन व्हिच सम पापुलर स्टोरी इज ग्राफिकली टोल्ड" आ० इ० डि०।

पर्यालोचना करने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि बैलेड में गेयता और कथानक इन दोनों का होना अत्यन्त आवश्यक है। लोक गाथा के विषय में भी ये ही बातें लागू हैं। अतः लोक गाथा वह गाथा या कथा है जो गीतों में कही गयी हो।

लोकगीत और लोक गाथा में अन्तर

लोक गीत और लोक गाथा के अन्तर को दो प्रधान भागों में बाँट सकते हैं।[1] स्वरूपगत भेद २. विषयगत भेद। स्वरूपगत भेद के विषय में इतना जानना आवश्यक है कि गीत आकार या स्वरूप में छोटा होता है परन्तु लोक गाथा का आकार अत्यन्त विशाल होता है। बिरहा लोक गीत है जो चार कड़ियों में ही समाप्त हो जाता है। परन्तु लोक गाथा का विस्तार सैकड़ों पृष्ठों तक चलता रह सकता है। आजकल जो आल्हा खंड[1] उपलब्ध होता है यद्यपि वह मूलरूप में उपलब्ध नहीं है, वह एक लोक गाथा है। कुछ ऐसी भी लोक गाथायें हैं जो छोटी हैं, जैसे क्षत्रियाणी भगवती की गाथा। फिर भी लोकगाथाओं का आकार लोक गीतों से कहीं अधिक बड़ा होता है।

दूसरा भेद विषयगत है। लोक गीतों में भिन्न संस्कारों-पुत्र जन्म, मुंडन, यज्ञोपवीत, विवाह, गवना; ऋतुओं में वर्षा, वसन्त, ग्रीष्म और पर्वों पर गाये जानेवाले गीत सम्मिलित हैं, जिनमें घर, गृहस्थी, प्रेम, परित्याग वन्ध्या, विधवा आदि के सुख दुःखों का चित्रण ही प्रधान विषय रहता है। कहीं कोई वन्ध्या स्त्री अपने भाग्य को कोस रही है, तो कहीं विधवा का करुण आलाप सुनाई देता है। कहने का आशय यह है कि घर के संकुचित क्षेत्र में जीवन की जिन अनुभूतियों का साक्षात्कार मनुष्य करता है उन्हीं की झाँकी हमें इन लोक गीतों में देखने को मिलती है, परन्तु लोक गाथा का विषय लोकगीत से कुछ भिन्न है। इसमें सन्देह नहीं कि इन गाथाओं में भी प्रेम का पुट गहरा रहता है। लेकिन इस प्रेम में एक महान् संघर्ष दिखलाया जाता है जिसका लोक गीतों में नितान्त अभाव है। लोक गाथाओं में वीरता, साहस, एवं रहस्य रोमांच का पुट अत्यधिक पाया जाता है। यहाँ विवाह भी बिना युद्ध किये नहीं होता। आल्हा का विवाह इस विषय का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'सोरठी' की गाथा में रहस्य एवं रोमांच का भाव अधिक है। कहीं-कहीं- पर इन गीतों में अनेक वीर पुरुष लोक त्राता या जन रक्षक के रूप में भी अंकित किये गये हैं। हमें अनेक गीत ऐसे मिले हैं जिनमें मुगलों के अत्याचार से स्त्रियों को बचाने के लिये अनेक वीरों ने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी है। यह उस राजपूती वीरता की समानता रखता है जिसका दर्शन हमें राजस्थान के इतिहास में मिलता है।

ख. लोक-गाथाओं की उत्पत्ति

लोक गाथाओं की उत्पत्ति कैसे हुई यह कहना बड़ा कठिन कार्य है। अनेक विद्वानों ने इस विषय पर गंभीरता से विचार किया है परन्तु किसी का मत एक-दूसरे से नहीं मिलता। प्राचीन काल में इन लोक गाथाओं की रचना किसी व्यक्ति ने की अथवा ये किसी जाति के सामूहिक प्रयास के फलस्वरूप हैं, इस संबंध में जो प्रधान मत प्रचलित हैं उनका संक्षिप्त रूप से दिग्दर्शन कराया जाता है।

१. बाबू बैजनाथ प्रसाद बुकसेलर, राजादरवाजा, बनारस सीटी सन् १९३२ से प्रकाशित।

१. ग्रिम का सिद्धान्तः समुदायवाद ।
२. स्थेन्थल का सिद्धान्तः जातिवाद ।
३. बिशाप पर्सी का सिद्धान्तः चारणवाद ।
४. फ्रान्सिस चाइल्ड का सिद्धान्त व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद ।
५. श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद ।

ग्रिम महोदय का यह मत है कि लोक गाथाओं की उत्पत्ति किसी व्यक्ति विशेष की काव्यप्रतिभा से नहीं हुई बल्कि इनके निर्माण का श्रेय एक समुदाय कम्युनिटी को है ।[1] जैसे किसी व्यक्ति विशेष के हृदय में हर्ष, विषाद, दुःख की भावना जागरित होती है उसी प्रकार किसी समुदाय के लोग भी समष्टि रूप में इसी भावना का अनुभव करते हैं । किसी उत्सव के समय, किसी मेला के अवसर पर अथवा किसी धार्मिक पर्व पर लोगों का समुदाय एकत्र होता है । इन्हीं समुदाय के लोगों ने एक साथ मिलकर इन लोक गीतों की रचना की होगी । ग्रिम के मत का यह आशय है कि मान लीजिये कि किसी सामाजिक अवसर पर कुछ व्यक्ति एकत्रित हैं । सभी आनन्द में मस्त हैं । उनमें से किसी एक ने गीत की कोई कड़ी बनाई । दूसरे ने उसमें दूसरी कड़ी जोड़ दी और तीसरे ने तीसरी कड़ी इस प्रकार कुछ देर में एक पूरा गीत तैयार हो गया ।

आजकल भी हम देखते हैं कि कजली गाने वाले दो दलों में विभक्त हो जाते हैं और प्रत्येक दल में पाँच-सात आदमी होते हैं । पहले एक दल का व्यक्ति एक कड़ी सुनाता है । पुनः दूसरे दल का व्यक्ति उसके उत्तर में एक नई कड़ी बनाकर तुरन्त तैयार कर देता है । फिर प्रथम दल का आदमी दूसरी कड़ी बनाता है, और यह क्रम घंटों तक चलता रहता है । इस प्रकार कजली, लखनी आदि के अनेक गीत तैयार हो जाते हैं । परन्तु यह कहना कि अमुक कजली को अमुक समुदाय अथवा व्यक्ति ने बनाया है अथवा अमुक होली के गीत को अमुक सज्जन ने रचा है, ठीक न होगा, क्योंकि उसकी रचना में एक व्यक्ति का हाथ हो सकता है और अनेक व्यक्तियों का सहयोग भी ।

स्थेन्थल का मत ग्रिम के मत से मिलता-जुलता है । परन्तु वह उससे भी थोड़ा आगे बढ़ा हुआ है । स्थेन्थल का मत है कि 'लोक गीतों का निर्माण समाज के कुछ विशिष्ट लोगों ने नहीं बल्कि पूरी जाति (रेस) के लोगों ने किया । लोक गाथा किसी जाति के समस्त व्यक्तियों के प्रयास के फल हैं । अनेक देशों में बहुत सी ऐसी जातियाँ हैं जिनके सम्पूर्ण सदस्य एकत्रित होकर कोई उत्सव मनाते हैं । संभवतः ऐसे अवसर पर वे अपने गीतों की रचना करते हैं । इस प्रकार लोक गाथाओं की सृष्टि होती है । परन्तु स्थेन्थल का सिद्धान्त किसी छोटी जाति के लोगों के विषय में तो सत्य हो सकता है परन्तु भारत-वर्ष जैसे विशाल देश जो महाद्वीप के समान है, के लिये तो बिल्कुल लागू नहीं हो सकता । यद्यपि इस सिद्धान्त में भी ग्रिम की भाँति सत्य की मात्रा अधिक है परन्तु यह सर्वत्र समान रूप से लागू नहीं हो सकता ।

बिशाप पर्सी इंगलैंड के बहुत बड़े गीत संग्रहकर्ता थे । उनका मत है कि इंगलैंड को लोक गाथाओं की रचना चारण या भाटों के द्वारा हुई । ये चारण लोग प्राचीन काल में

१. Dos Folk Daschest. कीट्रिज—इंगलिश एन्ड स्कटिश पापुलर बैलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १८.

इंगलैण्ड में ढोल अथवा सारंगी—हार्प पर गाना गाते हुए भिक्षा की याचना किया करते थे और साथ ही गीतों की रचना भी करते जाते थे। ऐसे गीतों को वहाँ 'मिन्स्ट्रल बैलेड" के नाम से पुकारते हैं। भारत में भी चारणों के द्वारा अनेक गाथाओं की रचना हुई है। आल्ह खंड का रचयिता जगनिक परमर्दिदेव के दरबार में चारण था और पृथ्वीराज रासो का लेखक चन्दबरदाई भी पृथ्वीराज का चारण ही था। परन्तु सभी गाथाओं की रचना चारणों के ही द्वारा हुई है, यह कहना न्याय-संगत न होगा।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् श्लेगल का मत है कि जिस प्रकार से अलंकृत कविता का रचयिता कोई व्यक्ति विशेष होता है उसी प्रकार से लोक गीतों का भी लेखक कोई व्यक्ति अवश्य होगा। बिना व्यक्ति विशेष के गाथाओं की रचना असंभव है। ग्रिम के सिद्धान्त का खंडन करते हुए श्लेगल ने लिखा है कि "सारा समुदाय लोक गीतों की रचना करता है, यह उक्ति उतनी ही हास्यास्पद है, जितना सारी जाति शासन करती है यह कथन। जिस प्रकार प्रत्येक कला किसी कलाकार की कृति होती है, प्रत्येक कविता किसी कवि की रचना होती है, प्रत्येक घर किसी गृह निर्माण विशारद के प्रयत्नों का फल होता है, उसी प्रकार लोक गाथा किसी रचयिता की रचना अवश्य होगी, चाहे वह रचयिता अनपढ़ ही क्यों न हो। लोक गाथा समुदाय की सम्पत्ति अवश्य है परन्तु उसकी रचना भी समुदाय के द्वारा की गई होगी, यह सिद्धान्त मान्य नहीं है।

लोक गाथाओं के परम आचार्य डा० फ्रान्सिस चाइल्ड भी इसी मत को स्वीकार करते हैं। परन्तु उनके मतानुसार इतना अन्तर अवश्य है कि लोक गाथाओं में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उसकी वाणी में तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परंतु उसका व्यक्ति बिल्कुल नहीं रहता। लोक गाथाओं का रचयिता इन गाथाओं की सृष्टि कर जनता के हाथों में इन्हें समर्पित कर स्वयं अंतर्हित हो जाता है। उपर्युक्त दोनों सिद्धांतों में विशेष अंतर नहीं है। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।[१]

हमारी धारणा सार्वदेशीय लोक गीतों अथवा गाथाओं की उत्पत्ति के सम्बंध में यह है कि प्रत्येक गीत या गाथा का रचयिता मुख्यत: कोई न कोई व्यक्ति अवश्य है। साथ ही कुछ गीत या गाथा जन समुदाय (फोक) का भी प्रयास हो सकता है। लोक गाथाओं की परम्परा सदा से मौखिक रही है। अतः यह बहुत संभव है कि गाथाओं के लेखकों का नाम लुप्त हो गया हो। आज तक किसी भी भोजपुरी गाथा की प्राचीन हस्त-लिखित प्रति उपलब्ध नहीं हुई है जिससे उसके लेखक का नाम हम जान सकें।

एक लेखक का होने पर भी मौखिक परम्परा के कारण भिन्न-भिन्न गवैयों ने इन गाथाओं में इतना अधिक अंश जोड़ दिया है कि वे अब एक लेखक की कृति न होकर पूरे समाज की सम्पत्ति बन गये हैं। एक ही गीत भिन्न-भिन्न जिलों में भिन्न-भिन्न रूपों में पाया जाता है। इसका प्रधान कारण यही है कि व्यक्ति विशेष की रचना होने पर भी उनमें स्थानीय भाषा के पुट के कारण अथवा गवैयों के द्वारा परिवर्तन के कारण भेद उत्पन्न हो गये हैं।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने इस विषय पर विचार करते हुए किसी निश्चित मत का प्रतिदान नहीं किया है। वे लिखते हैं कि—[२]

१. इन विभिन्न मतों के विस्तृत वर्णन के लिये देखिये : गूमर : ओल्ड इंगलिश बैलड्स भूमिका पृ० ३५ २. त्रिपाठी : ग्राम गीत (ग्राम गीतों का परिचय) पृ० २१।

'गीतस्रष्टा स्त्री पुरुष दोनों हैं। किन्तु ये स्त्री पुरुष ऐसे हैं, जो कागज और कलम का उपयोग नहीं जानते हैं। यह संभव है कि एक-एक गीत रचना में बीसों वर्ष और सैकड़ों मस्तिष्क लगे हों इस उदाहरण से यह निष्कर्ष निकलता है कि त्रिपाठी जी भी ग्रिम के समुदायवाद के ही पक्षपाती हैं।

—:o:—

अध्याय १०

भोजपुरी लोक-गाथाओं के प्रकार

लोक-गाथाओं के अनेक प्रकार हैं, परन्तु इन्हें हम प्रधानतया तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं:—

१. प्रेम कथात्मक (Love Ballads),
२. वीर कथात्मक (Heroic Ballads) और
३. रोमांच-कथात्मक (Supernatural Bellads)

इनमें से भोजपुरी में प्रथम दो प्रकार की गाथायें ही अधिक पायी जाती हैं प्रेम तो गाथाओं का प्राण ही है अतः इनमें इसकी अधिकता होना स्वाभाविक ही है। यह प्रेम साधारण परिस्थिति में उत्पन्न नहीं होता प्रत्युत विषम वातावरण में पैदा होता है और उसी में पलता है। फलस्वरूप इसमें संघर्ष भी उत्पन्न होता है भोजपुरी की कुसुमा देवी भगवती देवी और लचिया की गाथाएँ ऐसी हैं जिनमें प्रेम एक ही ओर पलता है और उसका परिणाम बड़ा विषम होता है। विहुला की कथा प्रेम का प्रबन्ध काव्य है। इस गाथा में कहा गया है कि विहुला के अप्रतिम रूप को जो भी देखता था वह मूर्छित हो जाता था। इसके अलौलिक सौन्दर्य पर मोहित अनेक नोजवानों ने पाणि-ग्रहण के समय अपना हाथ फैलाया परन्तु वे सफलीभूत नहीं हुए। अन्त में एक चतुर मनुष्य ने जिसका नाम बाला लखन्दर था विहुला के प्रेम को जीतने में सफलता प्राप्त की। 'शोभा नयका बनजारा' भी एक दूसरा प्रणय आख्यान है, जिसमें पति पत्नी के प्रेम विवाह तथा वियोग का वर्णन बड़ी ही रोचक एवं मर्मस्पर्शी भाषा में किया गया है। 'भरथरी चरित्र' में ही राजा भरथरी का अपने गुरु के उपदेश से घर छोड़कर जंगल में चला जाना वर्णित है। उनके विरह में उनकी पत्नी की दयनीय दशा का जो चित्र खींचा गया है वह बड़ा ही सुन्दर उतरा है। कहने का आशय यह है कि जो गाथाएं उपलब्ध होती हैं उनमें अधिकांश में प्रेमाख्यानों की ही प्रधानता पायी जाती है। अंग्रेजी आदि साहित्यों में भी जो बैलैड पाये जाते हैं उनमें से अधिकांश का कथानक प्रेम ही होता है। 'क्रूयल ब्रदर' शीर्षक अंग्रेजी बैलेड इसका उदाहरण है।

भोजपुरी के दूसरे प्रकार के गीत वीरकथात्मक हैं, जिसमें किसी न किसी वीर के साहस-पूर्ण एवं शौर्य-सम्पन्न किसी कार्य का वर्णन रहता है। इन कथानकों में वह वीर पुरुष आप-द्ग्रस्त किसी अबला का उद्धार करता हुआ दिखलाई पड़ता है अथवा अपने शत्रुओं का वीरता से सामना कर न्याय पक्ष के लिये लड़ाई में जूझता हुआ दृष्टिगोचर होता है।[1] कहीं पर अलौकिक वीरता का वर्णन का मात्र ही इन गाथाओं का चरम लक्ष्य है। कहीं पर किसी युवती का पाणिग्रहण करने के लिये भीषण संग्राम करना पड़ा है। वीर कथात्मक गाथाओं में 'आल्हा' का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। इन दोनों वीर भाइयों आल्हा और ऊदल ने किस प्रकार

१, त्रिपाठी: ग्राम गीत पृ० ४०५.

अपनी मातृभूमि की रक्षा के हेतु महाप्रतापी पृथ्वीराज से भीषण युद्ध किया, यह बात पाठकों से छिपी नहीं है। आल्हा को अपने विवाह के लिये भी लड़ाई लड़नी पड़ी थी। "लोरिकायन" नामक गाथा में लोरिकी की जीवन कथा, उसका विवाह तथा उसकी वीरता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। कुंवर विजई जिसको विजयमाल भी कहते हैं, के वीर चरित से कौन भोजपुरी परिचित नहीं है। इनके साहस एवं वीरतापूर्ण कार्यों की गाथा समस्त भोजपुर प्रदेश में बड़े चाव से गाई और सुनी जाती है। इस प्रदेश में आल्हा और विजयमल का इतना अधिक प्रचार है जितना तुलसीदास जी की रामायण का उत्तरी भारत में।

भोजपुरी की तीसरे प्रकार की गाथायें वे हैं जिनमें रोमांच अथवा 'रोमांस' पाया जाता है। इसके अन्तर्गत 'सोरठी' का सुप्रसिद्ध गीत आता है। सोरठी एक साधारण घर की लड़की थी जो कुसमय में पैदा होने से लोकलाज के कारण माता द्वारा परित्यक्त कर दी गई। उसको एक छोटे से पालने में सुलाकर नदी में बहा दिया गया। परन्तु 'जाको राखे साइयां मारि न सकिहैं कोय' सोरठी खटोले पर पड़ी बहती हुई चली जा रही थी। एक मल्लाह ने उसे वेगवती धारा में बहती हुई देखा और उसे पकड़ कर अपने घर लाकर उसे पालने-पोसने लगा। धीरे-धीरे सोरठी बड़ी हुई और उसका विवाह हुआ। सोरठी की कथा इतनी अलौकिक तथा रोचक है कि पढ़ते समय यही मालूम पड़ता है कि 'रोमांस' पढ़ रहे हैं। अंग्रेजी साहित्य में इस प्रकार के बैलेड बहुत हैं, परन्तु हमारे यहाँ इनकी संख्या अत्यन्त सीमित हैं।

डा० चाइल्ड ने लोक गाथाओं को दो भागों में विभक्त किया है:—१. चारण गाथायें (मिनस्ट्रेल बैलेड्स) और २. परम्परा गाथायें (ट्रेडिशनल बैलेड्स)। चारण गाथाओं से उनका अभिप्राय उन गाथाओं से है जिन्हें घूमते-फिरते भाट या चारण स्वयं निर्माण कर गाते फिरते थे। परम्परागत गाथाओं का अभिप्राय उन गाथाओं से है जो चिरकाल से चली आ रही हैं और जनता के बीच में प्रचलित हैं। परन्तु विषय-विभाजन के आधार की दृष्टि से यह वर्गीकरण कुछ ठीक नहीं जंचता। उक्त गाथाओं के अतिरिक्त भोजपुरी में कुछ गाथायें और मिलती हैं जिनमें किसी सामाजिक घटना का उल्लेख है। ऐसी गाथाओं को प्रकीर्णक के ही अन्तर्गत रखना समुचित है।

—:o:—

अध्याय ११

भोजपुरी की लोक-गाथाओं की विशेषताएँ

लोक गाथाओं की अनेक विशेषताएं हैं जो इन्हें अलंकृत कविता से स्पष्टतः पृथक् करती है। इन विशेषताओं पर ध्यान देने से यह स्पष्ट ही पता चल जायगा कि अमुक कविता गाथा है अथवा अलंकृत काव्य। गाथाओं की इन विशेषताओं को हम प्रधानतया दस भागों में विभक्त कर सकते हैं, जो निम्नांकित हैं—

१. रचयिता का अज्ञात होना।
२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव।
३. संगीत और नृत्य का अभिन्न साहचर्य।
४. स्थानीयता का प्रचुर पुट।
५. मौखिक हैं, लिपिबद्ध नहीं।
६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव।
७. अलंकृत शैली का अभाव, अतः स्वाभाविक प्रवाह।
८. टेक पदों की पुनरावृत्ति।
९. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव।
१०. लम्बा कथानक।

१. रचयिता अज्ञात

लोक गाथाओं के रचयिता अज्ञात होते हैं। किस गीत को किस मनुष्य ने कब बनाया, यह बतलाना नितान्त कठिन है। यही कारण है कि आज हजारों गाथाओं के रहने पर भी हम भी उनमें से एक के भी रचयिता के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं बतला सकते। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है कि इन गीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री पुरुष हैं।[1] जो बात लोक गीतों के ऊपर लागू है वही गाथाओं के विषय में भी कही जा सकती है। आल्हा का रचयिता जगनिक माना जाता है, परन्तु लोरकी, सोरठी, विजयमल, भरथरी आदि गाथाओं के रचयिता कौन थे इसका हमें पता नहीं चलता। कबीरदास जी के नाम से बहुत से 'निरगुन' पाये जाते हैं परन्तु वे वास्तव में कबीर के ही रचित पद हैं, यह कहना कठिन है। 'कहत कबीर सुनो भाई साधो' या 'गावेले कबीर दास यह निरगुनवां' ऐसे पद अनेक गीतों में पाये जाते हैं परन्तु उन्हें कबीर की रचना नहीं माना जा सकता। राबर्ट ग्रेव्स ने लिखा है कि आजकल के वर्तमान युग में किसी लेखक का अज्ञातनामा होना यह सिद्ध करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा करता है परन्तु प्राचीन समाज में इसका कारण अपने नाम के विषय में लेखक की लापरवाही ही समझनी चाहिये।[2]

---

१. त्रिपाठी : ग्राम गीत भूमिका पृ० २१. २. एनोनीमिटी इन दि प्रेजेन्ट स्ट्रक्चर आफ सोसाइटी यूजअली इम्पालाइज देट दि आथर इज अशेम्ड आफ हिज आथरशिप, बट इन प्रिमिटिव सोसाइटी इज डू यू जस्ट टू दि केयरलेसनेस आफ दि आथर्स नेम. दि इंगलिश बैलेड पृष्ठ १२.

अन्य कविताओं की भाँति इन गाथाओं का भी कोई न कोई कर्ता अवश्य होगा, जिसने अपने सहवासियों के साथ आनन्द में मस्त होकर इनकी रचना की होगी। परन्तु किसने यह गाने रचे यह बतलाना कठिन है। परम्परा रूप में अनेक सदियों से चली आने वाली इन गाथाओं के रचयिता के विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता।

भोजपुरी चैता या घाटों के रचयिता बुलाकीदास माने जाते हैं और वास्तव में कुछ घाटों उनकी रचना हैं भी। परन्तु अन्य हजारों चैता और होली के गानों की रचना किसने की, यह बतलाना नितान्त कठिन है। सच तो यह है कि इन लेखकों ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिए अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है। रघुवंश और उत्तर रामचरित के रचयिता कालिदास और भवभूति का नाम हमें ज्ञात है और इनके जीवन चरित के विषय में भी थोड़ी बहुत सामग्री हमें उपलब्ध होती है परन्तु इन लोकगाथाओं के रचयिताओं का नाम भी ज्ञात नहीं है; फिर इनके जीवनवृत्त की चर्चा करना तो व्यर्थ ही है।

२. प्रमाणिक मूल पाठ का अभाव

लोक-गाथाओं का कोई प्रामाणिक मूल पाठ नहीं होता। लेखक-गाथा की रचना कर उससे पृथक् हो जाता है। अब वह गाथा समाज की वस्तु हो जाती है और प्रत्येक मनुष्य उसे अपनी निजी सम्पत्ति समझता है। इसीलिये किसी गाथा का कोई वास्तविक एवं शुद्ध मूल पाठ नहीं होता। हम किसी भी एक पाठ के विषय में यह नहीं कह सकते हैं कि यही विशुद्ध पाठ है और अन्य सभी अशुद्ध हैं।[1] कुछ लेखकों ने गाथा की उपमा एक विशाल नदी से दी है और यह उपमा वास्तव में उचित भी है। जिस प्रकार कोई नदी प्रारम्भ में किसी स्थान विशेष से अत्यन्त पतले रूप में निकलती है। आगे चलने पर उसमें छोटे-छोटे नदी-नाले मिलते हैं जिससे उसके जल में वृद्धि होती रहती है। कहीं-कहीं भूमि की विशेषता के कारण मिट्टी के पीली या काली होने के हेतु उसके जल के रूप में अन्तर पड़ जाता है। जब वह समुद्र में गिरने लगती है तो उसके विशाल रूप और जल के रंग के परिवर्तन के कारण उसका पहिचानना भी कठिन हो जाता है। उसी प्रकार इन गाथाओं की भी दशा है। जब रचयिता इन गाथाओं का निर्माण करता है तभी तक इनका रूप मौलिक रहता है। बाद में ये जाति या समुदाय की वस्तु बन जाती हैं। इनके निर्माण के साथ ही इनकी समाप्ति नहीं होती, बल्कि वास्तविक बात तो यह है कि उस समय इन गाथाओं के निर्माण का प्रारम्भ होता है।[2] ये गाथायें मूल लेखक के हाथों से निकल कर अब जनता के पास मौलिक प्रचार (ओरल ट्रांसमिशन) के लिये आती हैं। यदि जनता ने इस गाथा को अपना लिया तब वह लेखक के अधिकार से बाहर चली जाती है और जनता की सम्पत्ति बन जाती है। समय के बीतने के साथ लोग उस मूल गाथा में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहते हैं। भिन्न-भिन्न गवैये गाथाओं को अपने अनुकूल बनाकर उसे गाते हैं। यदि इन गीतों का प्रचार दूर-दूर के प्रदेशों में भी हो गया तो उस गाथा की मूल भाषा

१- दि इङ्गलिश बेलेड पृ० १३ २. दि मीयर ऐक्ट आफ कम्पोजिशन व्हिच क्वाइट ऐजलाइकली टूबी ओरल ऐज रिटेन इज नोट दि कनक्लुजन आफ दि मैटर, इट इज़ रादर दि बिगनिंगफीट्रीज: इङ्गलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बेलेड्स (इन्ट्रोडक्शन) पेज १७.

से भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। अनेक स्थानीय घटनाओं का पुट उसमें मिल जाने से उसकी ऐतिहासिकता में भी अन्तर पड़ जाता है। भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों के द्वारा प्रयुक्त होने पर इसके विभिन्न पाठ तैयार हो जाते हैं। ऐसी दशा में उस मूल गीत का रूप इतना परिवर्तित और परिवर्धित हो जाता है कि मूल लेखक के लिये भी उसे पहचानना कठिन हो जाता है।

आल्हा का मूल लेखक जगनिक था, जिसने हिन्दी की बुन्देलखंडी बोली में अपनी अमर कृति की रचना की थी। इस ग्रंथ में आल्हा औ' ऊदल के पराक्रम का वर्णन था। किस प्रकार इन वीर बाँकुड़ों ने अपनी माता की आज्ञा मानकर देश प्रेम के कारण परम प्रतापी राजा पृथ्वीराज का सामना किया था, यही जगनिक का मुख्य वर्णन विषय था। जगनिक की यह कृति बहुत बड़ी नहीं थी। परन्तु आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है उसका आकार "जगनिक" के आल्ह खंड से कई गुना बड़ा है तथा इसमें ऐसी अनेक घटनायें पीछे से जोड़ दी गई हैं जिनका मूल "आल्हखंड" में वर्णन नहीं था। जगनिक ने मूल ग्रंथ बुन्देलखंडी में ही लिखा था, परन्तु उत्तरी भारत में आल्हा के सर्वत्र प्रचार होने के कारण इसके अनेक पाठ मिलते हैं, जिनमें कन्नौजी, बुन्देलखंडी और भोजपुरी प्रसिद्ध हैं। कन्नौजी और भोजपुरी पाठ तो प्रकाशित भी हो गया है। संभव है आल्हा के ब्रज एवं अवधी पाठ भी विद्यमान हों। इस प्रकार आजकल जो "आल्हा" उपलब्ध होता है, उसके पाठ विभिन्न बोलियों में भिन्न-भिन्न हैं और उसकी घटनाओं में भी बहुत कुछ अन्तर है। राजा गोपीचन्द के गीत में भी यही बात पाई जाती है। गोपीचन्द के जो गीत भोजपुरी में मिलते हैं वे बंगला गीतों से पृथक् हैं। घटनाओं में भी भिन्नता है। कहने का सारांश यह है कि लोक गाथा का कोई मूल एवं प्रमाणिक पाठ नहीं होता। यह जनता की मौलिक सम्पत्ति है। अतः इसमें परिवर्तन एव परिवर्तन होना नितान्त स्वाभाविक है। इस विषय में प्रोफेसर कीट्रीज का मत कितना ठीक एवं समुचित है। वे लिखते हैं कि इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि किसी वास्तविक लोकप्रिय गाथा का कोई निश्चित एवं अन्तिम रूप नहीं हो सकता। कोई प्रामाणिक पाठ नहीं हो सकता। उसके विभिन्न पाठ हो सकते हैं परन्तु केवल एक ही पाठ नहीं हो सकता।"[1]

३ संगीत का अभिन्न साहचर्य

संगीत और गाथा का अभिन्न साहचर्य है। सच तो यह है कि कि संगीत के बिना किसी गाथा के सुनने में आनन्द ही नहीं आता। अंग्रेजी के बैलेड शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के "बैलारे" धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ नाचना होता है। अतः बैलेड का मूल अभिप्रय उस गीत से है जिसे किसी नर्तकी मंडली के लोग साथ-साथ "कोरस" में गाते हैं। प्राचीन काल में यूरोपीय देशों में चारणों के द्वारा, जिन्हें मिन्स्ट्रल कहते थे, ढोल अथवा सितार बजाकर "बैलेड" गाने का वर्णन मिलता है। डा० चाइल्ड और विशप पर्सी ने ऐसे चारणों का विशेष रूप से उल्लेख किया है। डा० चाइल्ड ने तो इन चारणों के द्वारा गाये जाने के कारण से ही कुछ गीतों को "मिन्स्ट्रल बैलेड" के नाम अभिहित किया है।

१. "इट फौलोज दैट ए जेम्युअलो पापुलर बैलेड कैन हैव नो फिक्सड ऐण्ड फाइनल फौर्म, नो सोल आथेण्टिक वर्शन. देयर आर टेक्सट्स वट देयर इजं नो टेक्सट." इङ्गलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स पेज १८.

भारतवर्ष में भी गाथा और संगीत का अभिन्न संबंध दीख पड़ता है। वर्षा के दिनों में आल्हा गाने की बड़ी प्रथा है। अल्हैत जब आल्हा गाने के लिए तैयार होता है तब वह अपने में ढोल बाँध लेता है और उसे बजाकर आल्हा गाता है। आल्हा के गाने की गति ज्यों-ज्यों तीव्र होती जाती है ढोल बजाने की गति में भी वैसा ही परिवर्तन होता जाता है और गाने के पराकाष्ठा (क्लाइमेक्स) पर पहुँचने पर ढोल इतने तार स्वर बजने लगता है।

गोरखपन्थी साधु जो जोगी के नाम से प्रसिद्ध हैं प्रायः गोपीचन्द और भरथरी के गीत गाते हुए पाये जाते हैं गीत गाते समय वे सांरगी को बजाते हैं। उनकी मधुर वाणी सांरगी की मधुरता में मिलकर बड़ा आनन्द देती है। सांरगी उनका अनन्य साधन है। संभवतः उसके बिना उसकी स्वर लहरी में कम्पन ही न उत्पन्न हो।

गीत और संगीत का संबंध इतना घनिष्ट है कि देहतों में जहाँ कोई भी वाद्य यन्त्र उपलब्ध नहीं होता वहाँ स्त्रियाँ काठ के कठौते को उलट कर लाठी के हूरे से उसकी पीठ को रगड़ती हैं जिससे एक विचित्र प्रकार की संगीत ध्वनि उत्पन्न होती है। जहाँ यह भी उपलब्ध नहीं है वहाँ करतल ध्वनि समय-समय पर तागी बजाकर वाद्ययन्त्र का काम चला लेती हैं। लोक गीत सामूहिक रूप कोरस में गाये जाने से विशेष आनन्द देते हैं। यह बात भी उनकी संगीतात्मक प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। इस प्रकार लोक गीत एवं लोक गाथाओं का संगीत से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

४. स्थानीयता का पुट

लोक गाथाओं में स्थानीयता का पुट विशेष रूप से पाया जाता है। इनमें भले ही राजा, रानी और जमींदारों एवं रईसों का वर्णन हो फिर भी ये स्थानीयता की गंध को लिये हुए रहते हैं। यदि कोई गाथा भोजपुरी प्रदेश में गाई जाती है तो प्रादेशिकता का रंग उसमें अवश्य विद्यमान रहेगा। कहीं-कहीं स्थानीय ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख के राजा" का बारम्बार उल्लेख पाया जाता है। बलिया जिले में हलदी एक गाँव है। इसी प्रकार से बिहार प्रान्त में गाये जाने गीतों में अमर सिंह का उल्लेख पाया जाता है।

५. मौखिक हैं लिपिबद्ध नहीं

लोक-गाथायें चिरकाल से मौखिक परम्परा के रूप में चली आ रही हैं। जिस प्रकार प्राचीन काल में वेद मौखिक रूप में गुरु-शिष्य की परम्परा से चले आते थे। गुरु अपने विद्यार्थियों पढ़ाता था और ये शिष्य पुनः अपने शिष्यों को पढ़ाते थे। इसी प्रकार इन गाथाओं की भी परम्परा समझनी चाहिये। एक गवैया किसी गाने को गाता है, उससे दूसरा गवैया गाना सीख लेता है और फिर उससे तीसरा सीखता है। इस प्रकार यह परम्परा अक्षुण्ण रूप से चलती रहती है। इन गवैयों में भी, जिनका प्रधान काम गाना गाकर भिक्षा की योजना करनी हैं, गुरु शिष्य परम्परा पाई है। गाँवों में बूढ़ी माता या दादियाँ अपनी पुत्री और पौत्रियों को गीत सिखलाती हैं जिससे मौका पड़ने

१. डॉ० उपाध्याय : भो० ग्रा० गी० भाग १.

पर उनके काम आवे। इस प्रकार इन गीतों की परम्परा सदा चालू रहती है। ये गीत लिपिबद्ध नहीं किये जाते। फ्रैंक सजविक का मत है कि इन गीतों को लिखना इन्हें मृत्यु के मुख में डालना है। फ्रेंच लोग कहते हैं कि गाथा तभी तक जीवित रह सकती है जब तक यह मौखिक साहित्य के रूप में है।[1]

सिजिविक का मत वास्तव में यथार्थ है। जब हम किसी लोक गाथा को लिपि-बद्ध कर लेते हैं तो उसकी बाढ़ मारी जाती है। उसकी वृद्धि आगे नहीं होने पाती। वह तभी तक बढ़ सकेगा जब तक वह अक्षरों के शिकंजे में नहीं कस दिया जाता। यही कारण है कि आज आल्हा और लोरकी की प्राचीन हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध नहीं हैं। यद्यपि लोक गाथाओं के अनुसन्धान कर्त्ताओं के लिये यह दुर्भाग्य की बात है परन्तु अन्य दृष्टि से यह लाभप्रद ही सिद्ध हुआ है। यदि आल्हा या विजयमल लिपि-बद्ध कर लिये गये होते तो आज उसके जो विभिन्न पाठ (वरसंस) देखने को मिलते हैं वे न प्राप्त होते। गाथाओं के कलेवरों में यह वृद्धि उनके जीवित और जनप्रिय होने का प्रमाण है। आल्हा की ही भाँति गोपीचंद गीत के तीन पाठ भोजपुरी, मगही और बंगला उपलब्ध होते हैं[2]। इस प्रकार लोक गीतों की परम्परा सदा से मौखिक रही है।

६. उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव

लोक गाथाओं में उपदेश देने अथवा नीति बतलाने की मनोवृत्ति का नितांत अभाव रहता है। उनका प्रधान उद्देश्य कथानक का प्रवाह रहता है। लोरकी, विजयमल और आल्हा की गाथाओं में देश भक्ति, माता की आज्ञा का पालन, साहस, शौर्य और प्रेम के अनेक ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनसे उपदेश वा शिक्षा ली जा सकती है। परंतु इन गीतों के रचयिता की प्रवृत्ति इस ओर नहीं थी। कुसुमदेवी और भगवती की गाथाओं से उनके अलौकिक तथा पवित्र आचरण से हमें बहुमूल्य शिक्षा प्राप्त होती है परंतु उनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव है।

७. अलंकृत शैली का अभाव

लोक गाथाओं में अलंकृत शैली का नितांत अभाव रहता है। अलंकृत कविता किसी कलाकार कवि के द्वारा लिखी जाती है जो अपनी रचना को सुरक्षित बनाने के लिये विभिन्न अलंकार, छंद, रस और कल्नना को उसमें अवतारणा करता है। वह अपनी कृति में अलंकारों की योजना करता है और उसे किसी विशिष्ट छंद के साँचे में ढालने के लिये उसमें काट-छाँट भी करता है। ऐसी कविता को अलंकृत कविता (पोइट्री आफ आर्ट) कहते हैं जो प्रयासपूर्वक लिखी जाती है। परंतु गाथाएँ जनता की कविता (पोइट्र आफ फोक) कही जाती हैं, इससे बिल्कुल पृथक् है। इसमें एक स्वाभाविक प्रवाह रहता है जो सर्वत्र समान रूप से पाया जाता है। लोक गीतों और गाथाओं की उपमा यदि

१. इन दि एक्ट आफ राइटिंग ईच वन डाउन, यू मस्ट रमेम्बर दैट यू आर हेल्पिंग टू किल दैट बैलेड. "विदम वीलिटेयर पर औरा" इज दि लाइफ आफ ए बैलेड. इट रीमेंस व्हाट दि फ्रेंच, विथ ए चार्मिंग कनफ्यूजन आफ आइडियाज, काल "ओरल लिटरेचर" दि बैलेड पेज ३१. २. डा० ग्रियर्सनः ज० ए० सो० बं० भाग ५४ (१८८५) पार्ट १.
थ वर्शन्स ओफ दि सौंग आफ गोपीचंद।

स्वच्छ सरिता से दी जाय तो कुछ अत्युक्ति न होगी। जिस प्रकार सरिता का जल अविच्छिन्न रूप से बिना प्रयास के निरन्तर बहता रहता है, उसी प्रकार लोक-गाथाओं की भावधारा समान रूप से चला करती है। इसमें प्रयत्न पूर्वक अलंकारों का विधान नहीं पाया जाता।[१] पिंगल शास्त्र के नियमानुसार इनको नाप-तौल कर रखने की भी आवश्यकता नहीं है। यही कारण है कि लोक गाथाओं में पिंगल शास्त्र का नियम शिथिल है।

पं० रामनरेश त्रिपाठी ग्राम गीतों का अलंकृत कविता से पार्थक्य बतलाते हुए लिखते हैं :[२]

"ग्राम गीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीत हृदय का धन है और महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत में रस है महाकाव्य में अलंकार। रस स्वाभाविक है और अलंकार मनुष्य निर्मित।" एक दूसरे स्थान पर लोक गीतों की विशेषता बतलाते हुए आप कहते हैं कि:[३]

"ग्राम गीत प्रकृति के उद्‌गार हैं। इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है। छन्द नहीं, केवल लय है, लालित्य नहीं, केवल माधुर्य है।"

इसमें सन्देह नहीं कि कहीं-कहीं लोक गाथाओं में अलंकार भी इधर-उधर बिखरे पड़े मिल जाते हैं परन्तु वे अनायास आ गये हैं। प्रयत्नपूर्वक उन्हें रखने का प्रयत्न किसी ने नहीं किया है। यही कारण है कि अपनी सादगी एवं स्वाभाविक प्रवाह के कारण लोगों को ये अधिक प्रिय लगते हैं।

८. टेक या अन्य पदों की पुनरावृत्ति

लोक गाथाओं की एक अन्य विशेषता यह भी है कि उनके टेक पदों अथवा अन्य शब्दों की पुनरावृत्ति होती रहती है। अनेक विद्वानों के मत से यह आवृत्ति उनका आवश्यक धर्म है। टेक पदों की आवृत्ति का बहुत बड़ा महत्त्व है। लोक गाथायें सामूहिक रूप से कोरस गाने की वस्तु हैं। प्राचीन काल में इन गीतों को दल का नेता गायक पहिले गाता था और बाद में साधारण जनता उसका अनुगमन करती थी। प्रारम्भ में नेता एक पद को कहता था और जनता उसके टेक पद को दुहराती थी। इससे गवैया की नीरसता दूर हो जाती थी क्योंकि जनता के द्वारा आवृत्ति होने से उस गाथा में नवीन जीवन का बारम्बार संचार होता था।[४] आजकल भी होली और चैता गाते समय गवैयों के दो दल हो जाते हैं। पहिला दल किसी गीत की एक पंक्ति को गाता हैं तो दूसरा दल उसके टेक पद की आवृत्ति करता है। जैसे चैता में यदि एक दल "आरे छोटी मोटी ग्वालिन हई पनिहारिन हो रामा" गायेगा तो दूसरा दल "चलि भइली" इस टेक पद का गान करेगा। इस प्रकार से यह प्रक्रिया गीत के अन्त तक चलती

१. इट हैज बीन नीटेड दैट दि बैलेड प्रोपर इज नॉट हाइली ऐडवान्स्ड इन टेकनिक. बाई एडवान्स्ड टेकनिक इज मीन्ट कम्प्लीकेटेड वर्स फोर्म्स, दि इनजीनियस यूज आफ मेटाफोर एन्ड एलेगरी एन्ड ए प्रेजेण्टेन्शन आफ आइडियाज व्हिच इज 'पोएटिकल' बिफोर इट इज 'पीएटिक' आर्टिस्टिक बिफोर इट इज इमेजिनेटिव, म्यूजिकल बिफोर इट इज इन्टेन्डेड फार सिंगिग—रावर्ट. २. त्रिपाठी: ग्राम गीत ग्राम गीतों का परिचय पृ० ६. ३. वही. पृ० १. ४. दि सिम्पर्स मोनोटोनी इज रेगुलर्ली रीलीव्ड बाई दि ऑडियन्स ज्वाइनिंग इन विथ ए रिपीटेड फ्रेज. फ्रैंक—सीजविक: दि बैलेड, पेज २७.

रहती है। इससे गीत की नीरसता भंग हो जाती है और दूसरा लाभ यह होता है कि गवैया को थोड़ा अवकाश मिल जाता है। यदि एक ही गवैया सम्पूर्ण गीत की एक बार में गाना चाहे तो यह उसके लिये संभव भी नहीं है। अतः श्रोताओं के द्वारा उस गीत में हाथ बँटाने से गवैया को सांस लेने के लिये अवकाश मिल जाता है। इस आवृत्ति का तीसरा उपयोग श्रोताओं के ऊपर गीतों का प्रभाव उत्पन्न करना है। यदि कोई गीत एक ही बार में सीधे सादे ढंग से गा दिया जाय तो उससे जनता के हृदय पर कुछ विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। परंतु उसी गीत की जब बार-बार आवृत्ति होती है तो उसका प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पड़ता है और वह स्थायी भी होता है। श्रोताओं को सुनने में आनन्द भी अधिक आता है। यही कारण है कि अच्छी कविता को लोग बार-बार सुनना चाहते हैं। लोक गाथाओं को जितना ही अधिक गाया जाय उनकी मनोरमता उतनी ही अधिक होती है। फुटबाल मैच में जब दर्शकगण "हुर्रे-हुर्रे" करते हैं तब उसका अभिप्राय खेल में अधिक प्रभाव उत्पन्न करना ही होता है।[1] रस्साकशी और कबड्डी के खेल में 'ले लिया" "ले लिया" कहने वाले दर्शकगण खेल में जोश एवं प्रभाव उत्पन्न करने के लिये हीं ऐसा करते हैं।

इन टेक पदों का प्रयोग गाथाओं के लिये वांछनीय ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। इससे गीतों में संजीवनी शक्ति का संचार होता है और वे रुचिकर बन जाते हैं। यदि इस पुनरावृत्ति को गीतों की जान कहें तो कुछ अत्युक्ति न होगी। प्रोफेसर गूमर ने इस प्रकार की आवृत्ति को 'वृद्धिपरक आवृत्ति' (इन्क्रीमेन्टलन रिपीटीशन) नाम दिया है, जिसका अर्थ है " ऐसा पद जो पूर्व पद के सारांश को बतलावे, परन्तु उसमें कुछ भिन्नता होनी चाहिए और साथ ही कथानक भी आगे बढ़ता रहे।" इसका उदाहरण अंग्रेजी का प्रसिद्ध बैलेड 'निर्दयी भाई' (क्रूयल ब्रदर) है। जिसमें एक पद की पुनरावृत्ति विभिन्न शब्दों में कई बार हुई है।

यह आवृत्ति तीन प्रकार की पाई जाती है। अंग्रेजी भाषा में आवृत्यात्मक पदावली के लिये तीन शब्द पाये जाते हैं: कोरस, रिफ्रेन और बर्दन। परन्तु इन तीनों में थोड़ा अन्तर है। गाथाओं में 'बर्दन' उस मूल भूत अंश या चरण को कहते हैं जो गीत के केवल अन्त में नहीं गाया जाता, प्रत्युत प्रत्येक पद में विद्यमान रहता है। नीचे के इस गीत :[2]

"बिरना झीनी झीनी पतिया अमिलि कइ
बिरना डोभइ वरियवा क पूत,
बलैया लेउँ बीरन।"

में 'बलैया लेउँ बीरन' की आवृत्ति प्रत्येक के अन्त में हुई है। इसी प्रकार एक दूसरे गीत में 'एहि रन बन में' की आवृत्ति प्रत्येक पद के साथ हुई है।[3] 'हो राम' 'हो जी, जी, हूरे जी, रे ना' आदि शब्दों की आवृत्ति अनेक गीतों के प्रत्येक पद में हुई है। "निर्गुन" का प्रत्येक पद प्रारम्भ में 'कि या हो रामा' की आवृत्ति से प्रारम्भ होता है। भगवती देवी के

१. ए मोमेन्टस रिफ्लेक्शन शुड सफाइस टू कनविन्स एनी परसन आफ दि रीयल पोपुलरटी आफ रिपीटीशन ऐज ए मीन्स आफ सक्योरिंग एफेक्टिवनेस. दि लोकल विट इन दि विलेज टैप रूम फाइन्ड् दैट दि आफेनर ही सेज्इट दि मोर इट इज ऐप्रीशियेटेड. दि स्पेक्टेटर आफ दि फुटबाल मैच हू सेड "हुर्रे हुर्रे" वाज यूजिंग इन्क्रीमेन्टल रिपीटीशन फार दि सेक आफ एफेक्ट. फ्रैंक सिजविक:दि बैलेड पेज ३०, २. त्रिपाठी:ग्रामगीत पृ० ४०५. ३.वही

सुप्रसिद्ध गीत में 'हूरे जी' इन तीन अक्षरों की आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति में हुई है। चैता की प्रत्येक पंक्ति 'आहो रामा' से प्रारम्भ होती है और उसका अन्त होता है। उदाहरण:[1]

'आहो रामा ऊंचे ही मन्दिल चढ़ि,
मोर संइया सोवे हो रामा।
हम धनि बेनिया डोलाइबि हो रामा।'

अतः ऊपर की आवृत्यात्मक पदावली को 'बर्दन' के नाम से अभिहित किया जाता है। हिन्दी में इसके लिये कोई विशिष्ट शब्द नहीं है अतः इसे टेक पद कह सकते हैं।

लोक गाथाओं में कुछ पद ऐसे पाये जाते हैं जिनकी आवृत्ति गीत की प्रत्येक पंक्ति के साथ नहीं होती बल्कि वे थोड़ी देर में किसी पद की समाप्ति के बाद दुहराये जाते हैं। ऐसे पदों को अंग्रेजी में 'रिफ्रेन' कहते हैं।[2] अहीर लोग जब बिरहा गा चुकते हैं तब प्रत्येक बिरहा की समाप्ति के बाद 'बाजरबोई' की आवृत्ति करते हैं परंतु यह आवृत्ति प्रत्येक पंक्ति के बाद नहीं होती। एक बिरहा की समाप्ति के बाद और दूसरे प्रारम्भ होने के पहले यह गाया जाता है। झूमर के गीतों में भी टेक पदों की आवृत्ति एक निश्चित स्थान पर निश्चित समय से होती है जैसे—

'अइसन खटाईदार निबुआ रे गमके मोर आंगना'

यह झूमर लीजिये। इसमें प्रत्येक दो पंक्तियों के पश्चात् इस पंक्ति की आवृत्ति होती जाती है। झूमर के प्रत्येक गीत में इसी क्रम से आवृत्ति हुआ करती है। 'रिफ्रेन' और 'बर्दन' में पार्थक्य बतलाना एवं दोनों की निश्चित सीमा निर्धारित करना बड़ा कठिन कार्य है। वस्तुतः हिन्दी में इन दोनों शब्दों के लिये कोई पृथक्-पृथक् पद नहीं हैं, अतः हमने इन दोनों के लिये टेक पद का ही प्रयोग किया है। 'कोरस' उस समस्त स्टेन्जा को कहते हैं जिसकी सामूहिक आवृत्ति किसी गीत के पद के समाप्त होने पर की जाती है। भोजपुरी गीतों में कोरस प्रणाली की आवृत्ति नहीं मिलती।

अर्थ की दृष्टि से विचार करने पर इन टेक पदों को हम दो श्रेणी में विभक्त कर सकते हैं।[1] सार्थक और निरर्थक। सार्थक पद वे हैं जिनका कुछ अर्थ होता है, जैसे–'ऐहि रन बन में', 'बलैया लेउँ बीरन' 'ए साँवर गोरिया' अँचरवा छाड़िदे' और 'मोहन ना भुलै रे' इत्यादि। निरर्थक टेक पद वे हैं जिनका कुछ भी अर्थ नहीं होता परन्तु उनका उपयोग गीत के प्रभावोत्पादन में है। जैसे–आहो रामा, बाजर बोई, हूरे जी, रे हो ना, जी इत्यादि। ये पद निरर्थक हैं परन्तु गीत के गाने में इन पदों का अत्यधिक मूल्य है।

६. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव

गाथाओं में उनके रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव उनका प्रधान गुण है। ये लेखक अज्ञात ही नहीं हैं बलिक इनकी सत्ता भी नहीं के बराबर है। इन गाथाओं के रचयिता का कुछ विशेष महत्त्व नहीं होता। दूसरी कविताओं की भाँति इनमें लेखक की आत्मानुभूति का वर्णन नहीं पाया जाता है। इन गीतों में उत्तम पुरुष सर्वनाम का नितान्त अभाव

१. डा० कृष्णदेव उपाध्याय: भो० ग्रा० गी० भाग २ पृ० २५१. २. दि रिफ्रेन इज दि रिपीटीशन ग्राफ ए सर्टेन पेसेज एट रेगुलर इन्टरवल्स एन्ड इज दस ग्राफ सर्विस इन मेकिंग ग्राफ ए स्टेन्जा. गूमर : दि ग्रोल्ड इंगलिश बैलेड्स पृ० ३५.

रहता है। गाथाओं का रचयिता उसके कथानक के किसी अंश पर अपनी टीका, टिप्पणी भी नहीं करता। उसका कार्य तो सच्ची घटना का कथन मात्र है। यदि किसी कथा का स्वतः कहना उसके वक्ता के अभाव में भी शक्य हो सकता है तो लोक गाथा ऐसी ही कथा होती।[1] फ्रेंक सिजविक का भी यही मत है कि किसी लोक-गाथा की विशेषता उसके रचयिता के व्यक्तित्व की सत्ता में नहीं बल्कि उसके व्यक्तित्व के नितान्त अभाव में है।[2]

१०. लम्बा कथानक

लोक गाथाओं की अन्तिम परन्तु सबसे बड़ी विशेषता उनका लम्बा आख्यान है। यह एक ऐसी विशेषता है जो इन्हें लोक गीतों से अथवा अन्य कविता में स्पष्ट ही पृथक् कर देती है। लोक गाथाएँ आख्यानपरक होती हैं। इनमें किसी प्रेमकथा अथवा वीरता की कहानी का वर्णन रहता है। परन्तु लोक गीतों का वर्ण्य-विषय छोटा होने के कारण उनका आकार भी लघु होता है। अंग्रेजी में जो बैलेड पाये जाते हैं उनमें से कुछ का आकार अवश्य बड़ा है परन्तु वे इतने लम्बे नहीं हैं जितने लम्बे आल्हा और विजयमल। इनकी तुलना तो आकार में संस्कृत के किसी महाकाव्य से ही की जा सकती है। भोजपुरी में सोरठी, विजयमल, लोरकी और आल्हा का कथानक बहुत विस्तृत है।



१. "इम्परसेनिलिटी इन ए बैलेड इज वेरी इम्पोरटेन्ट...दि टेलर आफ दि टेल हैज नो रोल इन इट. अनलाइक अदर सांग्स, इट इज नॉट दि परपर्ट टू गिव अटरेन्स टू दि फीलींग्स आर दि मूड्स आफ दि सिङ्गर...इफ इट उड बी पौसुबल टू कनसीव ए टेल ऐज टेलिंग इट-सेल्फ, विदाआउट दिइन्स्ट्रूमेन्टेलिटी आफ ए कान्शस स्पीकर दि बैलेड उड बी सच ए टेल." कीट्रिज : इ० स्का० पा० बै० पृ० ११ (भूमिका). २. दि बैलेड पृ० ११.

तृतीय खण्ड

लोक-कथा

अध्याय १२

क. लोक-कथाओं की भारतीय परम्परा

लोक गीतों की भाँति लोक कथाओं की परम्परा भी अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक संहिताओं में सर्व प्रथम हमें कथाओं का उद्गम दिखाई पड़ता है। ऋग्वेद में बहुत से ऐसे सूक्त उपलब्ध होते हैं जिनमें दो या तीन पात्रों में परस्पर कथनोपकथन विद्यमान है। इन सूक्तों को 'संवाद सूक्त' कहते हैं। भारती साहित्य के अनेक अंगों कथा, नाटक आदि का उद्गम इन्हीं संवाद सूक्तों से होता है। 'यम यमी' और 'विश्वामित्र एवं नदियां' ऐसे ही संवाद सूक्त हैं। इनके अतिरिक्त सामान्य स्तुतिपरक सूक्तों में भी भिन्न-भिन्न देवताओं के विषय में अनेक मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद आख्यानों की उपलब्धि होती है। ऋग्वेद[1] में ऋषि शुनःशेप प्रसिद्ध आख्यान उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के एक दूसरे सूक्त में सोभरी काव्य की कहानी कही गई है।[2] अपाला आत्रेयी के आदर्श नारी चरित्र का चित्रण हमें सर्व प्रथम इसी वेद में देखने को मिलता है।[3] अपाला का चरित्र वैदिक साहित्य में सुप्रसिद्ध है। वह बड़ी विदुषी थी और ऋग्वेद के एक सूक्त की ऋषि द्रष्टा थी।

च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कथा भी हमें ऋग्वेद में प्राप्त होती है।[4] यह कथा भारतीय नारी चरित्र का एक नितान्त उज्जवल आदर्श उपस्थित करती।

ब्राह्मण ग्रन्थों में भी हमें अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। शतपथ ब्राह्मण में पुरुरवा और उर्वशी की कथा नितान्त प्रसिद्ध है।[5] इसी कथा को लेकर महाकवि कालिदास ने अपना 'विक्रमोर्वशी' नामक नाटक लिखा है। तांड्य ब्राह्मण में तो भी च्यवन भार्गव और सुकन्या मानवी की कहानी पाई जाती है।[6] ऐतरेय ब्राह्मण में शुनःशेप के आख्यान का वर्णन हुआ है।[7] शाट्यायन ब्राह्मण में महर्षि वृश नामक पुरोहित के वैदिककालीन गौरव का प्रदर्शन किया गया है।[8] इसी प्रकार शतपथ ब्राह्मण दध्यङ् आथर्वणं की कथा पायी जाती है जिनका पौराणिक लोकप्रिय नाम ऋषि दधीच है। इन्हीं की हड्डी से वज्र बना था जिससे इन्द्र ने वृत्र को मारा था।

ब्राह्मण ग्रन्थों के पश्चात् उपनिषदों में भी अनेक कथाओं का उल्लेख पाया जाता है। नचिकेता की सुप्रसिद्ध कहानी कठोपनिषद् में उल्लिखित है जिसने अपनी विलक्षण प्रतिभा के द्वारा यम से अमर बनने का साधन पूछा था। उपनिषद् की इस कहानी में ब्रह्मज्ञान-उपदेश प्रधान लक्ष्य है। अग्नि और यक्ष की कथा का केनोवनिषद् में वर्णन पाया जाता है। ब्रह्म समीप में भी है तथा दूर भी। जो अहंकारी हैं उसने वह दूर है और जो विनयी हैं उनके पास है। इस तथ्य का प्रतिपादन इस कहानी का लक्ष्य है। जनश्रुति के पुत्र राजा जानश्रुति की कथा का चित्रण छान्दोग्य उपनिषद् में हुआ है।[9]

---

१. ऋ. १:२४:३०. २. ऋ. वे. ८:१९. ३. वही. ८:९१. ४. वही. १०:३९: ४.५. श. ब्रा. ११:५: १.६. ता. ब्रा. १४:६:११.७: ए. ब्रा. ७:३. ८. शा. ब्रा. ५: २:६, छा. उ. ४:१:३,

वैदिक संहिता एवं उपनिषदों में जिन कथाओं की केवल सूचना मात्र मिलती है उनका विस्तृत वर्णन 'बृहद्देवता' में और षड्गुरु शिष्य रचित 'कात्यायन सर्वानुक्रमणी' की 'वेदार्थ दीपिका' टीका में किया गया है। यास्क ने निरुक्त में तथा सायणाचार्य ने अपने भाष्य में इन गाथाओं के रूप तथा प्राचीन को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है। द्या द्विवेद नामक पंडित का उद्योग इस विषय में अत्यन्त श्लाघनीय है। ये गुजरात के रहने वाले थे और १५ वीं शताब्दी उत्पन्न हुए थे। इन्होंने समस्त वैदिक कहानियों का अध्ययन कर उनसे प्राप्त शिक्षाओं को प्रदर्शित करते हुए एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक लिखी है जिसका नाम 'नीति मंजरी' है।[१] इस ग्रन्थ में किसी कथा का उदाहरण देते हुए उपदेश की बातें कही गई हैं।

पंचतन्त्र और उसका अनुवाद

परन्तु भारतीय कथा साहित्य का समुद्र पंचतन्त्र है। यह विश्व साहित्य को भारतीय साहित्य की महती देन है। पंचतन्त्र की कहानियों के भ्रमण की कथा नितान्त रोचक एवं उपदेशप्रद है। ईसा की छटीं शताब्दी में पंचतन्त्र की कहानियों का अनुवाद पहलवी भाषा प्राचीन फारसी भाषा में हुआ। इसके पचास वर्ष के पश्चात् ही इसका अनुवाद सीरियन भाषा में प्रस्तुत किया गया। इसके बाद इसका अनुवाद अरबी भाषा में हुआ। मध्ययुग में अरबी भाषा का बड़ा प्रचार था। पंचतंत्र का अरबी भाषा में अनुवाद होते देर नहीं हुई कि कहानियाँ पश्चिमी जगत् के साहित्य में प्रवेश कर गईं और भिन्न-भिन्न देशों की भाषाओं इसके अनुवाद प्रस्तुत होने लगे। लैटिन, ग्रीक, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश तथा अंग्रेजी आदि भाषाओं में इसके अनुवाद धीरे-धीरे १६ वीं शताब्दी तक होते रहे। ग्रीस के सुप्रसिद्ध कथा संग्रह 'ईसाप की कहानियाँ' और अरब देश की मनोरंजक कहानियाँ 'अरेबियन नाइट्स' की आधारभूत ये ही कहानियाँ हैं। इन कहानियों का प्रभाव मध्ययुग के कथा साहित्यक में अत्यधिक मात्रा में पड़ा है।[२]

पंचतंत्र भारतीय कहानियों का सबसे मौलिक एवं प्राचीन ग्रंथ है। पंच का पाँच और तन्त्र का अर्थ भाग होता है। क्योंकि इन ग्रंथ के पांच भाग १. मित्रभेद २. मित्र-लाभ ३. सन्धिविग्रह ४. लब्धप्रणाश ५. अपरीक्षित कारक हैं, अतः यह पंचतन्त्र कहा जाता है। प्रत्येक तन्त्र में मुख्य कथा एक ही है जिसके अंग को पुष्ट करने के लिये अनेक गौण कथाएँ कही गई हैं। इस ग्रंथ के लेखक विष्णु शर्मा हैं जिन्होंने राजकुमारों को नीतिशास्त्र की शिक्षा देने के लिये इस ग्रंथ का निर्माण किया था।

भिन्न-भिन्न शताब्दियों में तथा भिन्न-भिन्न प्रांतों में पंचतंत्र के अनेक संस्करण हुए। इनमें सबसे प्राचीन 'तंत्राख्यायिका' के नाम से प्रसिद्ध है जिसका मूलस्थान काश्मीर है। पंचतंत्र के भिन्न-भिन्न चार संस्करण उपलब्ध हैं। १. पंचतंत्र का पहलवी अनुवाद, जो अब उपलब्ध तो नहीं है, परन्तु जिसकी कथाओं का परिचय सीरियन तथा अरबी अनुवाद से प्राप्त है। २. दूसरा संस्करण गुणाढ्य की बृहत्कथा में अन्तर्निविष्ट है।

१, चौखम्भा संस्कृत सिरीज, काशी से प्रकाशित एवं सीताराम जोशी द्वारा सम्पादित।

२, पंचन्त्र के विभिन्न भाषा में अनुवादों और प्रभाव के विस्तृत विवेचन के लिये देखिये:—डा० कीथ:—हि०सं०लि०पृ०२४४ ÷ ४५, प्रो०बलदेव उपाध्याय-सं०सा०इ०पृ० ३१० ÷ ३०६,

३. तृतीय संस्करण 'तन्त्राख्यायिका' तथा उसी से सम्बद्ध जैन कथा-संग्रह है। आजकल का प्रचलित पंचतन्त्र इसी का आधुनिक प्रतिनिधि है। ४. चौथा संस्करण दक्षिणी पंचतन्त्र का मूलरूप है। इस प्रकार पंचतन्त्र एक सामान्य ग्रन्थ न होकर विपुल साहित्य का प्रतिनिधि है।

२. हितोपदेश

नीति कथाओं में पंचतन्त्र के बाद हितोपदेश का नाम आता है। इसके रचयिता *नारायण* पंडित थे जो बंगाल के राजा धवलचन्द्र के आश्रम में रहते के। इस ग्रन्थ की रचना १४ वीं शताब्दी के आसपास हुई। ग्रन्थाकार ने स्वयं लिखा है कि उसका मूल आधार पंचतंत्र ही है। हितोपदेश की प्रायः आधी कथाएँ पंचतन्त्र से ली गई हैं। यह पंचतन्त्र की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय है। अतः संस्कृत के अभ्यासी छात्रों के लिये यह ग्रंथ अत्यन्त उपयोगी है।

३. बृहत्कथा

संस्कृत में दो प्रकार की कथाएँ पायी जाती हैं : १. उपदेशात्मक २. मनोरंजक। उपदेशात्मक कथाओं का संग्रह पंचतन्त्र में पाया जाता है। तथा मनोरंजक कथाओं का प्राचीनतम संग्रह 'बृहत्कथा' में निबद्ध है। इसके रचयिता गुणाढ्य थे जो महाराज हाल के स्वाभाविक थे। मूलवृहत्कथा पैशाची भाषा में लिखी गई थी परंतु यह ग्रंथ रत्न आज-कल उपलब्ध नहीं है। इस समय बृहत्कथा के तीन संस्कृत अनुवाद उपलब्ध होते हैं।

४. बृहत्कथा श्लोक-संग्रह

इसके रचयिता बुधस्वामी हैं। ये नेपाल के रहने वाले थे। इनका समय आठवीं या नवीं शताब्दी माना जाता है।

यह ग्रंथ सम्पूर्णरूप में उपलब्ध नहीं है। परंतु जितना ग्रंथ मिला है उसमें २८ सर्ग हैं और ४५३९ श्लोक हैं। बुधस्वामी ने अपने ग्रन्थ में मूल ग्रंथ का आनन्द लाने का प्रयत्न किया है।

५. बृहत्कथा मंजरी

इस ग्रन्थ के रचयिता क्षेमेन्द्र हैं जो संस्कृत साहित्य में अपनी प्रभूत रचनाओं के लिये प्रसिद्ध हैं। ये काश्मीर के राजा अनन्त के आश्रित कवि थे। इनका समय ११वीं शताब्दी है। बृहत्कथा मंजरी में ७५०० श्लोक हैं। कविता उच्चकोटि की है परंतु मूल कथानक की कितनी रक्षा हो सकी है यह कहना कठिन है।

६. कथा सरित्सागर

इसके रचयिता सोमदेव हैं जो काश्मीर के राजा अनंत तथा कवि क्षेमेन्द्र के समकालीन थे। बृहत्कथा का यह सबसे प्रसिद्ध अनुवाद है जिसमें २४,००० श्लोक हैं इस ग्रंथ की रचना सन् १०६३ ई० से १०८१ ई० के बीच में हुई थी। जैसा कि

इसके नाम से ही ज्ञात होता है, यह भारतीय कथा रूपी नदियों के लिये वास्तव में समुद्र है।

इस प्रकार संस्कृत साहित्य में कथा ग्रन्थों की प्रचुरता पायी जाती है। ऊपर जिन-जिन कथा-ग्रंथों का उल्लेख किया गया है वे प्रधानतया उपदेशात्मक एवं मनोरंजक हैं। संस्कृत में कुछ ऐसे भी ग्रंथों की रचना हुई है जिनमें रहस्य एवं रोमांच की ही अधिक प्रधानता है।

७. बेताल पंचविंशति एवं अन्य कहानियाँ

इस ग्रंथ की रचना का श्रेय शिवदास नामक लेखक को दिया गया है। इस गद्य ग्रन्थ में राजा विक्रम से सम्बद्ध पचीस रोचक कहानियाँ सरल संस्कृत में कही गई हैं। प्रत्येक कथा में राजा की व्यावहारिक बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलता है। ये कहानियाँ बहुत प्राचीन हैं क्योंकि बृहत्कथा मंजरी तथा कथा सरित्सागर (११वीं शताब्दी) में इनका विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है 'बेताल पचीसी' के नाम से इस ग्रन्थ का हिन्दी में अनुवाद भी हो चुका है। 'शुक सप्तति' तथा सिंहासन द्वाविंशिका (सिंहासन बतीसी) की कहानियाँ मनोरंजन की दृष्टि से नितान्त उपादेय हैं। इसी प्रकार भट्ट विद्याधर के शिष्य आनन्द ने 'माधव नल कथा' नामक पुस्तक लिखी है जिसमें प्राकृत और संस्कृत में श्लोकों की रचना हुई है। शिवदास का 'कथार्णव' ग्रन्थ पैंतिस कहानियों का संग्रह है जिसमें मूर्खों और चोरों की कहानी कही गई है। प्रसिद्ध मैथिली कवि विद्यापति ने 'पुरुष-परीक्षा' ग्रन्थ की रचना की है जिसमें चौवालीस कहानियों का संग्रह है। इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत-साहित्य में कहानियों का अक्षय भंडार भरा पड़ा है।

जातक

बौद्ध-साहित्य में भी कथा साहित्य की प्रचुरता पायी जाती है। बौद्ध कहानियों का संग्रह जातकों में पाया जाता है। ये जातक भगवान् बुद्ध के प्राचीन पूर्व जन्म की मनोरंजक कहानियाँ हैं। इन कहानियों का उद्देश्य यह दिखलाना है कि अनेक जन्म में पारमिताओं के अभ्यास करने से बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। ये जातककथाएँ संसार की संभवत: सर्व-प्राचीन कहानियाँ हैं। इनकी संख्या ५५० है। इनके भीतर विपुल ज्ञातव्य ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक एवं धार्मिक सामग्री मिलती है जिनके अनुशीलन करने से बुद्ध के समय अथवा उससे भी प्राचीन काल के भारतीय इतिहास का रमणीय चित्र उपलब्ध होता है। अत्यंत प्राचीन काल से दन्तकथा या लोक कथा के रूप में जो कहानियाँ चली आती थीं, उनका इन जातकों में विशाल संग्रह है।[1] ये सभी जातक पाली भाषा में निबद्ध हैं। जातकों में रुछपाल जातक प्रसिद्ध है जिसमें यथा नाम तथा गुण न होने का वर्णन किया गया है। इस जातक की कथा भोजपुरी ठनठनपाल की कहानी से बिल्कुल मिलती-जुलती है। जातक और भोजपुरी कथा में यह साम्य आश्चर्यजनक है। 'अट्ठ कथा' में बुद्ध के उपदेश से संबंध रखने वाली अनेक कहानियों का संग्रह किया गया है जो बहुत ही सुन्दर एवं मनोरंजक हैं।

१, इन जातकों का हिन्दी में अनुवाद हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से तीन भागों में प्रकाशित हुआ है.

अनेक बौद्ध पंडितों ने जातक की कहानियों को संस्कृत भाषा में भी लिखा है। 'दिव्यावदान' एवं 'अवदान शतक' ऐसी ही रचनाएँ हैं जिनमें भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्म से संबद्ध कहानियाँ विद्यमान हैं। आर्यशूर द्वारा रचित 'जातकमाला' ग्रन्थ में जातकों की कथाएं पद्य रूप में निबद्ध हैं। यह काव्य चतुर्थ शतक के आसपास लिखा गया था। इत्सिंग नामक चीनी यात्री ने जिसका समय ७ वीं शताब्दी है, आर्यशूर को अपने समय का विशेष लोकप्रिय कवि बतलाया है।

प्राकृत एवं अपभ्रंश

प्राकृत भाषा में भी अनेक कथा ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं जिनमें उपदेशात्मक एवं मनोरंजन कहानियाँ पाई जाती है। अपभ्रंश भाषा के 'पउम चरिअ' एवं 'भविस्सत्थ कहा' नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं जिनमें अनेक उपदेशप्रद कहानियाँ उपलब्ध होती हैं।

इस प्रकार वैदिक संवादसूक्तों से कथा साहित्य की जो धारा प्रवाहित हुई वह निरन्तर अविच्छिन्न रूप से आज भी बहती चली जा रही है। कथा कहने का उपदेशात्मक एवं मनोरंजनात्मक जो उद्देश्य प्राचीन काल में था वह आज भी पाया जाता है।

ख. भारतीय भाषाओं में लोक-कथाओं का संग्रह

भारत की प्राचीन लोक कथाओं के संग्रह की ओर विद्वान् सदा उपेक्षा दिखलाते रहे हैं। जहाँ आधुनिक नवीन कहानियों की प्रचुरता है वहाँ जनता को युग-युग से आनन्द प्रदान करने वाली इन लोक कहानियों का धीरे-धीरे नाश हो रहा है। यदि इनका शीघ्र संग्रह नहीं किया गया तो इसमें आश्चर्य नहीं कि भारतीय संस्कृति की प्रचुरांशी ये कहानियाँ सदा के लिये विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायंगी। गत शताब्दो में ग्रियर्सन आदि अंग्रेज विद्वानों ने लोक गीतों का संग्रह कर उन्हें प्रकाशित किया था परन्तु लोक कहानियों के संग्रह की ओर उन्होंने भी कुछ ध्यान नहीं दिया। इसीलिये लोक-कथाओं का संग्रह अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था है। लोक गीतों की भाँति लोक कथाओं के भी एक-दो संग्रह अब प्रकाश में आने लगे हैं।

जहाँ तक हमें ज्ञात हुआ है, लोक कथाओं का जितना संग्रह बंगला साहित्य में हुआ है उतना अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं। डाक्टर दिनेश चन्द्र सेन ने जो बंगला लोक-साहित्य के उद्धारकर्ता हैं अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'फोक लिटरेचर आफ बेंगल' में बंगला भाषा में संग्रहीत लोक कथा संबंधी पुस्तकों का बड़ा सुन्दर एवं प्रमाणिक वर्णन उपस्थित किया है। इन पुस्तकों में 'ठाकुर दादार झुली' अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस पुस्तक में जनता में प्रचलित लोक-कथाओं का संग्रह किया गया है। इसके अतिरिक्त बंगला में अन्य पुस्तकें भी हैं जिनका वर्णन डा० सेन ने बड़े विस्तार के साथ किया है। इन्होंने अपनी पुस्तक में 'मलंच माला' शीर्षक एक अत्यन्त रोचक लोक कथा का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है।

इधर राजस्थानी विद्वानों ने भी अपनी भाषा की कहानियों के संग्रह में तत्परता दिखलाई है और राजस्थानी लोक गीतों की भाँति लोक-कथाओं का भी संकलन प्रस्तुत किया है। पं० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी बातां' नाम से राजस्थानी लोक कहानियों

का संग्रह प्रकाशित किया है। विद्वान् सम्पादक ने राजस्थानी भाषा में इन कथाओं के कहने वाले के मुँह से जैसा सुना ठीक उसी रूप में उनको निबद्ध कर दिया है। अतः इन कहानियों की शुद्धता एवं मौलिकता पर किसी प्रकार से अविश्वास नहीं किया जा सकता। 'राजस्थानी बांता' में राजस्थानी जीवन की झलक हमें देखने को मिलती है। इस संग्रह में व्रत, मनोरंजन, शिक्षाप्रद एवं रहस्य रोमांच से संबंद्ध रखने वाली अनेक प्रकार की कहानियों का संग्रह हुआ है। यह संग्रह बड़ा सुन्दर और पठनीय है।

गुजराती लोक साहित्य के विद्वान् श्री झवेरचन्द्र मेघाड़ी ने अथक परिश्रम और अदम्य उत्साह के साथ लोक गीतों एवं कथाओं का संग्रह और सम्पादन किया है। मेघाड़ी जी ने गुजरात की लोक-कथाओं का संग्रह कर उन्हें अनेक जिल्दों में प्रकाशित किया है जिनमें 'सौराष्ट्रनी रसधार' प्रसिद्ध है। यह पुस्तक पाँच भागों में प्रकाशित हुई है।[1] इनमें मेघाड़ी ने गुजरात को ही नहीं बल्कि समस्त सौराष्ट्र प्रदेश की लोक-कथाओं का बड़ा सुन्दर संग्रह किया है। इनकी दूसरी पुस्तक 'सोरठी बाहार बटिया' है जो तीन भागों में प्रकाशित हुई है।[2] इसमें लोक कथाओं का रमणीय संग्रह हुआ है। इनके अतिरिक्त 'कुरजानीनी कथाओं' में कुछ कहानियों का संग्रह है।[3] इन पुस्तकों को प्रकाशित कर मेघाड़ी ने लोक-साहित्य का बड़ा उपकार किया है।

इधर ब्रजभाषा के प्रेमियों ने 'ब्रजसाहित्य मंडल' की स्थापना कर ब्रज साहित्य की उन्नति के साथ ही साथ व्रज के लोक-साहित्य के संरक्षण का भी बीड़ा उठाया है। इस मंडल के तत्वावधान में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ है। डाक्टर सत्येन्द्र एम, ए. पी. एच. डी. ने 'व्रज की लोक कहानियाँ' नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें उन्होंने व्रज की कथाओं का संग्रह प्रकाशित किया है।[4] ब्रज में प्रचलित लोक कहानियों का लोक-भाषा में ही किया गया यह सुन्दर कहानी संग्रह है जिसमें विद्वानों और भाषा-शास्त्रियों के अध्ययन के लिये पर्याप्त सामग्री है। इस ग्रंथ में बालकों, युवकों और बूढ़ों सभी के लिये मनोरंजक कहानियाँ है। इसमें स्त्रियों के व्रत और त्योहारों की कहानियाँ भी दी गई है। इन कथाओं में व्रज के वास्तविक जीवन की झाँकी हमें देखने को मिलती है।

भोजपुरी बोली में यद्यपि लोक-गीत संबंधी चार-पाँच पुस्तकें इधर प्रकाशित हुई है परन्तु विद्वानों ने भोजपुरी लोक-कथाओं के संग्रह की ओर अभी ध्यान नहीं दिया है। भोजपुरी में अभी तक लोक-कथा संग्रह संबंधी कोई भी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई। भोजपुरी में लोक-कथाओं का अक्षय भंडार भरा पड़ा है। बूढ़ी दादियों और गाँव के बूढ़े लोग तो इन कथाओं के अनन्त कोष हैं। बड़े परिश्रम एवं कठिनाई के साथ हमने 'भोजपुरी लोक कथाओं का संग्रह किया है जो अभी तक अप्रकाशित है।[5]

मोतिहारी विहार के श्री गणेश चौबे ने भी कुछ भोजपुरी कहानियों का संग्रह किया है परन्तु वह संग्रह भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है।

१. गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय. गान्धी रोड, अहमदाबाद से प्रकाशित. २. वहीं से प्रकाशित. ३. वही. ४ ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा, से प्रकाशित. ५, इस संग्रह को हमने अपनी परम पूजनीय माता श्रीमती मूर्तिदेवी जी के मुँह से सुनकर लिखा हे. पूजनीया माताजी को जिस प्रकार अनन्त लोकगीत याद थे उसी प्रकार उनको अनेक सुन्दर एवं रोचक कहानियाँ भी स्मरण थीं. रात्रि के समय जब वे

श्री कृष्णानन्द गुप्त के प्रशंसनीय उद्योग से जो 'लोकवार्ता परिषद्' के तत्त्वावधान में 'लोकवार्ता' नामक पत्रिका प्रकाशित होती थी उसमें कुछ बुन्देलखंडी लोक-कथाओं का प्रकाशन हुआ था परन्तु वे पुस्तकाकार रूप में अभी नहीं प्रकाशित हुई हैं। 'बुन्देलखंड की कहानियाँ' नामक अभी प्रकाशित हुई है, जिनकी भाषा खड़ी बोली है।[1] अवधी की लोक कहानियाँ अभी भी प्रकाशित नहीं हुई है। वैसवाड़ी और छत्तीसगढ़ी का भी अभी यही हाल है। सुप्रसिद्ध लोक साहित्य प्रेम वैरियर इल्विन ने महाकोशल की कहानियों का संग्रह 'फोक टेल्स फ्राम महाकोशल' के नाम से प्रकाशित किया है जो अंग्रेजी भाषा में है। इस ग्रन्थ में सबसे बड़ी कमी यह है कि इसमें मूल कहानियों का नितान्त अभाव है।

कहानियाँ कहने लगती थीं तब उनका ताँता ही नहीं टूटता था। ये कहानियाँ उनके मुँह से जिस रूप में सुनी गई हैं उसी रूप में निबद्ध की गई हैं। १. शिव सहाय चतुर्वेदी द्वारा संग्रहीत.

अध्याय १३

भोजपुरी लोक-कथाओं के प्रकार

भोजपुरी लोक गीतों के समान लोक-कथाएँ भी प्रचुर परिमाण में पायी जाती हैं। ये कथाएँ लोक जीवन की अंगभूत हो गई हैं। बूढ़ी दादियाँ अपने बच्चों को रात को कथा सुनाकर उनका मनोरंजन किया करती हैं। बूढ़ा किसान चौपाल में बैठा हुआ, जाड़े के दिनों में 'कउड़ा' आग तापता हुआ सुन्दर कहानियाँ सुनाया करता है। बालक आपस के वार्तालाप में छोटी कहानियाँ सुनाकर अपनी मित्र मंडली का मन बहलाव करते हैं। स्त्रियाँ व्रतों और त्योहारों के अवसर पर कहानियाँ कहती और सुनती हैं और इसके पश्चात् अपने व्रत की समाप्ति करती हैं। इस प्रकार इन कहानियों के कहने के अवसर भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं। इन कहानियों के सम्यक् अनुशीलन करने पर इनके अनेक भेद प्राप्त होते हैं।

प्रकार भोजपुरी लोक कथाओं को हम प्रधानतया छः भागों में विभक्त कर सकते हैं।

१. उपदेशात्मक।
२. मनोरंजनात्मक।
३. व्रतात्मक।
४. प्रमात्मक।
५. वर्णनात्मक।
६. सामाजिक।

भोजपुरी में जो लोक कहानियाँ उपलब्ध होती हैं उनमें से अधिकांश उपदेशात्मक हैं। छोटी-छोटी भोजपुरो कहानियों में भी गूढ़ उपदेश भरा पड़ा है। कहानी चाहे प्रेमात्मक हो चाहे मनोरंजात्मक, उसमें प्रायः कोई न कोई उपदेश पाया जाता है। अधिकांश कहानियाँ स्त्रियों के चरित्र, समाज की अवस्था से संबंध रखने वाली हैं। इनको पढ़कर लोगों को स्त्रियों की कुटिलता एवं सामाजिक बुराइयों से बचने का उपदेश दिया गया है। 'तिरिया चरित्तर' नामक कहानी इसी उपदेशात्मक कथाओं के अन्तर्गत आती है।[1] इसमें स्त्री चरित्र की कुटिलता का वर्णन बड़े रोचक ढंग से किया गया है। किस प्रकार मायावी स्त्रियाँ सीधे-सादे पति को परेशान करती हैं और उसे चक्कर में डाल देती हैं, यही इस कहानी का उद्देश्य है। विदेश को जाते हुए पति से कोई स्त्री 'तिरिया चरित्तर' लाने की प्रार्थना करती है। उसका, सीधा-सादा पति इस वस्तु को खोजते-खोजते परेशान हो जाता है परन्तु वह कहीं भी नहीं मिलती। उसे क्या पता कि 'तिरिया-चरित्तर' कोई क्रेय वस्तु नहीं बल्कि स्त्रियों का मायावी चरित्र है। इस प्रकार कथाकार ने दुष्ट स्त्रियों के जाल से बचने का सदुपदेश लोगों को दिया है। 'कर्कशा'[2] नारी'

१. लेखक का निजी संग्रह अप्रकाशित पृ० १५. २. वही पृ० २३.

नामक कहानी में दुष्टा भावज के चरित्र का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसी प्रकार से 'उदयभानु की कथा'[१] शीर्षक कहानी में भी उपदेश का प्रचुर पुट पाया जाता है।

दूसरे प्रकार की कहानियाँ मनोरंजनात्मक हैं जिनका प्रधान उद्देश्य श्रोताओं का दिलबहलाव करना है। जो कहानियाँ बालक आपस में कहा करते हैं उनका एकमात्र लक्ष्य यही होती है। 'ढेला और पत्ती' की कहानो इसी श्रेणी में आती है।[२] इस कहानी का अन्त है।

'ढेला भिहिलाइ गइले,
पतई उड़िआइ गइले,
काथा ओराइ गइले।'

इन पदों में बाल मनोरंजन की बहुमूल्य सामग्री छिपी पड़ी हुई है। इस प्रकार की अनेक छोटी-छोटी कहानियाँ भोजपुरी में मिलती हैं।

भिन्न-भिन्न जानवरों कुत्ता, बिल्ली, गीदड़ एवं नेवला और पक्षियों सुग्गा, मैना, कौवा एवं कोयल आदि से संबंध रखने वाली अनेक कहानियाँ देहातों में प्रचलित हैं जो बालकों और बूढ़ों का समान रूप से मनोरंजन किया करती है। 'सियार पांडे' की कहानी ऐसी ही दिलचस्प कहानी है जिनमें गीदड़ की जो सियार पांडे के नाम से अभिहित किया गया है अलौकिक चतुरता का वर्णन पाया जाता है। इस प्रकार की बहुत सी कहानियाँ पाई जाती हैं।

तीसरे प्रकार की कहानियाँ व्रतात्मक है। इन कहानियों में स्त्रियों के व्रतों की कथाओं का उल्लेख है। ऐसी कथाओं में बहुरा, जिउतिया जिसे जीवत्पुत्रिका भी कहते हैं, करवा चौथ, अहोई, गनगौर और पिड़िया की कथाएँ प्रधान है। पिड़िया का व्रत पूरे मास भर रहता है। रात को जब तक स्त्रियाँ पिड़िया की कथा नहीं सुन लेती तब तक भोजन नहीं करती हैं। पिड़िया का व्रत कुमारी बालिकाओं का प्रधान व्रत है। जीवित-पुत्रिका व्रत जो 'जिउतिया' के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, आश्विन कृष्ण अष्टमी को किया जाता है। इस दिन स्त्रियाँ अन्न तो क्या जल भी ग्रहण नहीं करतीं। इसीलिये इस व्रत को 'खर जिउतिया' भी कहा जाता है।

इस दिन चील और सियारिन की कथा कही जाती है, चील और सियारिन दोनों ने इस दिन व्रत रखा था परन्तु भूख के मारे सियारिन ने चुपके से भोजन कर लिया परंतु चील ने निर्जल व्रत किया। इसी दिन से सियारिन के जितने बच्चे हुए वे सब मरते गये और चील के सभी बच्चे जीवित रहे। पुराणों में जीवितपुत्रिका व्रत की कथा के साथ जीमूत वाहन की कथा संबद्ध है। यह वही जीमूतवाहन है जिसने नाग या सर्पो की रक्षा के लिये अपने देहका त्याग कर दिया था। हर्षवर्धन ने अपने नागानन्द नाटक में इस जीमूत वाहन का चरित्र चित्रण बड़े सुन्दर ढंग से किया है। दूसरों की प्राण रक्षा करने के लिये अपना आत्मोत्सर्ग कर देना ही इस कथा का उद्देश्य है।

करवा चौथ के व्रत में उस राजा और रानी की कहानी कही जाती है जो दूसरों के बालकों से घृणा करते थे। अतः उन्हें कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। अन्त में जब दोनों

१. वही. पृ० २७. २. वही.

स्त्री-पुरुष ने भगवान् सूर्य की उपासना की तब उन्हें पुत्र-रत्न प्राप्त हुआ। इसी प्रकार विभिन्न व्रतों में विभिन्न कथाएँ पाई जाती हैं। व्रतात्मक कथा होने पर भी इनमें किसी न किसी उपदेशात्मक तथ्य की ओर संकेत पाया है।

चौथी प्रकार की कहानियाँ प्रेमात्मक है। इन कहानियों में प्रेम की कथा बड़ी सुन्दर रीति से कही गई है। माता का पुत्र के प्रति प्रेम कितना वात्सल्यपूर्ण होता है, पत्नी का का पति प्रेम कितना दृढ़ और स्वाभाविक होता है और वह किस प्रकार विकट परिस्थितियों में भी अपने पति का साथ नहीं छोड़ती है, इसका वर्णन इन कहानियों में पाया जाता है। इन प्रेम कहानियों में एक बात विशेष रूप से देखने में आती है कि पति के प्रति जो उत्कृष्ट एवं विशुद्ध प्रेम स्त्रियों में है वह पुरुषों में नहीं पाया जाता। पत्नी परदेशी पति की प्रतीक्षा में बारह और पन्द्रह वर्ष तक ब्रह्मचारिणी रहकर दुःखमय जीवन व्यतीत करती है परन्तु पति उसकी खोज खबर भी नहीं लेता।

एक भोजपुरी कहानी[1] में कोई स्त्री अपने पति की, जो कोढ़ी और जिसके शरीर में हजारों कांटे चुभे हुए हैं, निरन्तर सेवा करती है। पति के मना करने पर भी वह पति-सेवा से विरत नहीं होती। उसे किसी देवता का वरदान मिला था जिस दिन ये हजार काँटे इस कोढ़ी के शरीर से निकाल दिये जायेंगे उस दिन यह अच्छा हो जायगा। परन्तु एक दिन में एक से अधिक काँटा नहीं निकाला जा सकता। उस पति-परायणा नारी ने अनन्त धैर्य के साथ उस कोढ़ी पति की सेवा की और अनेक वर्षो के उपरान्न रोगमुक्त किया। इसी प्रकार महेन्द्र सिंह[2] की कहानी में पुत्र के प्रति माता के अलौकिक प्रेम का चित्रण बड़ी सुन्दर रीति से किया गया। किसी कारण से महेन्द्र सिंह का पिता उसको बनवास देता है। परन्तु माता उसे बन में जाने नहीं देती। परन्तु जब महेन्द्रसिंह जाने के लिये विवश किया जाता है तब माता का वात्सल्यपूर्ण हृदय अधीर हो उठता है। जाने के पूर्व माता उसे अनेक प्रकार का भोजन कराती है और जाते समय उसे चार मोहर देकर रोती हुई विदा करती है। इस प्रकार इस पूरी कहानी में माता का प्रेम छलका पड़ता है। भाई और बहन के अलौकिक प्रेम से संबंध रखने वाली भी अनेक कहानियाँ हैं जिनमें बहन का भाई के प्रति स्वार्थ-हीन प्रेम दिखलाया गया है। विपत्ति के दिनों में दुःख का मारा और भाग्य का सताया हुआ भाई बहन के पास जाता है और धनी बहन अपने भाई का हृदय से स्वागत करती है। उसे अपने घर में आश्रय देती है। इसी तरह दिव्य और निस्वार्थ प्रेम का वर्णन हमें इन कथाओं में मिलता है।

पाँचवीं प्रकार की कहानियाँ वर्णनात्मक हैं जिनमें किसी घटना विशेष का वर्णन सीधी सादी भाषा में किया गया है। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य केवल वर्णन मात्र है। उपर्युक्त चार श्रेणियों में जो कहानियाँ अन्तर्भुक्त नहीं हैं, उन्हें इस श्रेणी में रखा जा सकता है। विभिन्न राजाओं और महाराजाओं के संबंध की कहानियाँ इसी कोटि में आती है। इन कहानियों का प्रारंभ इस प्रकार से हुआ करता है। 'एगो राजा रहले, उनुकरा सात गो लड़ीका रहले स....आदि आदि', इस प्रकार की अनेक कहानियाँ हमारे निजी संग्रह में विद्यमान हैं :

इन कहानियों के अतिरिक्त छठीं प्रकार की सामाजिक कहानियाँ भी पाई जाती हैं,

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ॰ ५०. २. लेखक का निजी संग्रह पृ० ३१, ३७.

इस दिशा में श्री अवध बिहारी जी 'सुमन' का प्रयत्न स्तुत्य है जिन्होंने आधुनिक भोजपुरी समाज को लक्ष्य बनाकर इन कहानियों का एक संग्रह प्रकाशित किया है। इन कहानियों में भोजपुरी समाज का यथार्थ वर्णन बड़ी सुन्दर रीति से किया गया है। 'मलिकार' नामक कहानी में तिलक की कुत्सित प्रथा की निन्दा की गई है तथा लड़की के विवाह में किस प्रकार पिता को परेशानी उठानी पड़ती है इसका सजीव चित्रण पाया जाता है। आजकल भोजपुरी समाज में लड़कियों का विवाह एक विषम समस्या बन गई है। इसी का चित्रण लेखक ने अपनी ग्रामीण भाषा में किया है। 'भंवनी बाबा' नामक कहानी में साधु समाज के अधःपतन का दिग्दर्शन कराया गया है। किस प्रकार कामी दुश्चरित्र, लम्पट और लोभी पुरुष साधु का वेष धारण कर समाज को ठगते फिरते हैं, अनाचार फैलाते हैं और सत्य के नाम पर असत्य एवं धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार करते हैं इसका सुन्दर वर्णन इस कहानी में पाया जाता है।

'आत्मघात' शीर्षक कहानी में संसार की विषम परिस्थिति से ऊब कर बलिराम नामक युवक अपना आत्मघात कर लेता है। आये दिन ऐसी घटनाएँ रोज ही सुनने में आती हैं कि अमुक व्यक्ति ने जीवन से ऊब कर अपना प्राण त्याग कर दिया। बलिराम इन्हीं युवकों का प्रतीक है। 'कतवारू दादा' नामक कहानी में वृद्ध-विवाह का सजीव चित्रण किया गया है। किस प्रकार बूढ़े बाबा लोग, पोपला मुँह लिये, बाल पके हुए और झुकी हुई कमर वाले होने पर भी चौथेपन में दुहमुंही बच्चियों से विवाह करते हैं और कुछ दिनों के बाद परलोक गमन कर उनके जीवन को संकटमय बना देते हैं। इसी का रोचक चित्रण इस कहानी का प्रधान लक्ष्य है। 'चउर क पूजा' कहानी में प्राचीन अंध-विश्वास का वर्णन किया गया है। 'किसान भगवान्' में समाजवादी दृष्टिकोण के किसान की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए उसकी दुर्दशा का चित्र खींचा गया है। इस प्रकार इस पूरी पुस्तक में भोजपुरी समाज का बड़ा ही मनोरंजक चित्रण उपस्थित किया गया है। सुमन जी की 'जेहल' क सनद'[1] की कहानियाँ सामाजिक कहानियों की उत्कृष्ट प्रतिनिधि हैं।

इन छः प्रकार की कहानियों के अतिरिक्त रहस्य-रोमांच की भी कथाएं पाई जाती हैं जिनमें किसी अलौकिक मनुष्य, देवदूत, भूतदूत अथवा राक्षस का वर्णन पाया जाता है। इन कहानियों का उद्देश्य बच्चों को डरवाना अथवा लोगों में आश्चर्य उत्पन्न करना होता है। इन कहानियों के सुनने में कौतूहल तो अवश्य उत्पन्न होता है परन्तु हृदय पर उसका कुछ स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता। ऐसी कहानियों की संख्या अधिक नहीं है।

डा० दिनेश चन्द्र के अनुसार कहानियों के भेद डा० दिनेश चन्द्र सेन ने अपने ग्रंथ[2] 'फोक लिटरेचर आफ बेंगाल' में कहानियों को प्रधानतया चार भागों में विभक्त किया है।

१. रूप-कथा (Supernatural Tales)
२. हास्य-कथा (Humorous Tales)
३. व्रत-कथा (Religious Tales)
४. गीत-कथा (Nursery Tales)

१. यह पुस्तक नया बिहार प्रेस, लिमिटेड, कदमकुंआ, पटना से प्रकाशित है. २. देखिये : फोक लिटरेचर आफ बेंगाल.

डा० सेन के मतानुसार रूप कथाएँ वे हैं जिनमें किसी अमानवीय, अप्राकृतिक वस्तु का वर्णन हो, इसमें भूत, दूत, प्रेत, देवता, दानव आदि की कहानियाँ अन्तर्भुक्त हैं। कहानियों में अलौकिकता का पुट होना एक आवश्यक अंग माना जाता है और संभवतः बंगाल की कहानियों में यह अलौकिकता अधिक है। इसीलिए डा० सेन ने इस प्रकार की कहानियों को एक पृथक् श्रेणी में समाविष्ट किया है। दूसरी प्रकार की कथाएँ हास्य कथा हैं जिनको सुनकर हास्यरस का आनन्द आता है। ऐसी कथाएँ बालकों के लिए बड़ी मनोरंजक होती हैं। भोजपुरी में ऐसी कथाओं की संख्या बहुत थोड़ी है। व्रत कथा उन कथाओं को कहते हैं जो किसी विशेष पर्व अथवा उत्सव के अवसर पर कही जाती हैं। भोजपुरी में पिड़िया, गन गौर और जिउतिया आदि व्रतों की कथाएँ जिनका उल्लेख पीछे हो चुका है इसी कोटि में आती हैं। अन्तिम प्रकार की गीत-कथाएँ हैं जिन्हें पालने की कथायें या 'नर्सरी टेल्स' कहते हैं। बूढ़ी माताएं और दादियाँ अपने बच्चों को गोद अथवा पालने में रखकर जो कहानियाँ उन्हें सुनाती हैं उन्हें डा० सेन ने गीत कथा का नाम दिया है। भोजपुरी में इस प्रकार की अनेक कथाएँ हैं। इनका अन्तर्भाव मनोरंजक एवं उपदेशात्मक कहानियों में हो जाता है।

—:o:—

अध्याय १४

क. भोजपुरी लोक-कथाओं की विशेषताएँ

लोक-कथाओं का कहानी साहित्य में एक विशेष स्थान है। इनकी विशेषताओं को हम निम्नलिखित आठ विभागों में विभक्त कर सकते हैं—

१. प्रेम का अभिन्न पुट
२. अश्लील शृंगार का अभाव
३. मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य
४. समृद्धि और मंगल कामना की भावना
५. संयोग में अन्त।
६. रहस्य, रोमांच एवं अलौकिकता की मात्रा की प्रधानता।
७. उत्सुकता की प्रबल भावना
८. वर्णन की स्वाभाविकता

इन लोक-कथाओं में प्रेम का अभिन्न पुट पाया जाता है। गृहस्थ जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली इन कहानियों में प्रेम का वर्णन होना स्वाभाविक है। इन कथाओं में कहीं तो भाई और बहन का विशुद्ध प्रेम पाया जाता है तो कहीं माता का पुत्र के प्रति अकृत्रिम वात्सल्य प्रेम। अनेक कहानियों में पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का वर्णन पाया जाता है। जिस प्रकार माता अपने प्यारे पुत्र को हृदय हृदय से अधिक प्यार करती है, गरीबी में अपने दुःख के दिनों को बिताते हुए भी अपने लाडिले लाल को कष्ट नहीं होते देती और बालक के बड़े हो जाने पर उसे अपनी आँखों से ओझल नहीं करना चाहती, आदि अनेक प्रकार के सुन्दर चित्र इन कहानियों में देखने को मिलते हैं। पुत्रोत्पत्ति की इच्छा माताओं के हृदय में कितनी उत्कट होती है इसका उदाहरण हमें 'चील्हो और सियारो' की कथा में मिलता है। किस प्रकार माता अपने पुत्र की मंगल कामना करती है इसका पता हमें जीवित्पुत्रिका व्रत की कथा से चलता है। इस व्रत के दिन स्त्रियाँ अन्न तो क्या जल भी ग्रहण नहीं करतीं और ईश्वर से अपने पुत्र के स्वास्थ्य की कामना करती हैं।

पति-पत्नी के आदर्श तथा निःस्वार्थ प्रेम के अगणित प्रसंग इन गीतों में पाये जाते हैं। पति-परायण स्त्री पति-सेवा को ही अपना धर्म समझती और पति चाहे जिस किसी भी दशा में हो उसकी आज्ञा का पालन ही अपने जीवन का उद्देश्य मानती हैं। इन कथाओं में कहीं-कहीं गृह-कलह भी दिखाई पड़ता है परन्तु उसमें भी प्रेम का रंग झलकता दीख पड़ता है।

अश्लीलता का अभाव

आधुनिक कहानियों में अश्लीलता का जो नग्न-नृत्य दिखाई पड़ता है उसकी विशेष विवेचना करने की आवश्यकता नहीं। 'माया' और 'मनोहर कहानियाँ' के पृष्ठ इस शृंगारिक अश्लील मनोवृत्ति के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। परन्तु प्राचीन लोक-कहानियों में अश्लीलता का नितान्त अभाव पाया जाता है। कुत्सित प्रेम का जो, आधुनिक कहानियों की आधार शिला है, दर्शन भी इन

कथाओं में नहीं मिलता। इनका प्रेम गंगाजल की भाँति शुद्ध और निर्मल है। यही कारण है प्रेमात्मक इन कथाओं को बालकों के भी समक्ष कहते हुए तनिक भी लज्जा का अनुभव नहीं होता। परन्तु आधुनिक कहानियों के विषय में ऐसी बात नहीं कही जा सकती।

मूल प्रवृत्तियों से सम्बन्ध

इन लोक-कहानियों में मानव की मूल प्रवृत्तियों से निरन्तर साहचर्य स्थापित किया गया है। मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों से हमारा अभिप्राय उन वस्तुओं से है जो सदा से मनुष्य के जीवन का अंगभूत बनी रही हैं। माता-पुत्र, स्त्री-पुरुष और भाई-बहन में प्रेम, सुख एवं मंगल की कामना, दुःख का अनुभव, कौतूहल की शान्ति, उत्साह, वीरता एवं लोकसंग्रह का भाव, निर्बलों की रक्षा और दीनों के दुःख की निवृत्ति आदि ऐसे विषय हैं जो मानव सृष्टि के प्रारम्भ से चलते आ रहे हैं। ये मनुष्य की ऐसी मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं जो सदा से बनी रही हैं और बनी रहेंगी। इन्हीं मूल प्रवृत्तियों का वर्णन इन कहानियों में पाया जाता है। आजकल की अनेक कहानियाँ किसी क्षणिक घटना को लक्षित कर लिखी जाती हैं, अतएव उनका प्रभाव स्थायी नहीं होता। उस घटना के पुरानी पड़ जाने पर उनका प्रभाव नष्ट हो जा जाता है और पाठकों को उसमें आनन्द नहीं आता परन्तु लोक कहानियाँ किसी वर्तमान घटना विशेष अथवा किसी पात्र विशेष को लेकर नहीं लिखी गई हैं। ये जीवन की मौलिक प्रवृत्तियों प्रेम, करुणा, हर्ष, शोक, दुःख, विषाद आदि को लेकर लिखी गई हैं। इनमें जिन पात्रों का वर्णन हुआ है वे किसी व्यक्ति विशेष के प्रतिनिधि नहीं बल्कि शाश्वतिका सत्य के प्रतीक हैं। मानिकचन्द की कथा ऐसी ही है। मानिकचन्द भाग्य की परिवर्तनशीलता का प्रतीक है जिसकी जिन्दगी में अनेक उलट-फेर पाये जाते हैं। इसी प्रकार 'लछटकही की कथा' पति-पत्नी के आदर्श एवं स्थायी प्रेम का प्रतीक है जिसमें जरा, कुरूपता, दुःख और आपत्तियों के आने पर भी कभी विकार नहीं उत्पन्न होता। 'तिरिया चरित्तर' शीर्षक कहानी स्त्रियों के कुटिल एवं अगम्य चरित्र की प्रतिनिधि रूप है जिसके विषय में संस्कृत के किसी कवि ने बड़े अनुभव पूर्ण शब्दों में कहा है—

"स्त्रीणां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं,
दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः"

गोस्वामी तुलसीदास ने कुछ इन्हीं शब्दों से मिलते-जुलते शब्दों में अपना यही मत व्यक्त किया है—

"नारि चरित्र अति अगम अगाधू"

"तिरिया चरित्तर" संसार में संभवतः स्त्रियों की सृष्टि के साथ ही उत्पन्न हुआ था जिसका प्रत्यक्ष रूप हम मन्थरा के रूप में पाते हैं। तब से आज तक मन्थरा की परम्परा बन्द नहीं हुई है और इस "तिरिया चरित्तर" नामक कहानी में मन्थरा की माया का रूप हमें देखने को मिलता है। सांराश यह है कि इन कहानियों का वर्ण्य विषय क्षणिक घटना नहीं बल्कि स्थायी मानवीय प्रवृत्तियाँ हैं जो सदा से रही हैं और रहेंगी।

इन लोक-कथाओं की विशेषता मंगल कामना की भावना है। समाज में सुख और समृद्धि का विस्तार हो, सभी लोग सुख-पूर्वक आपस में रहें, कोई दुःखी और विपन्न न रहे, यही इन कहानियों का लक्ष्य है। आजकल की अनेक कहानियों की भाँति समाज में विशृंखलता का प्रचार करना या अनाचार का फैलाना एवं दुःख और दरिद्रता की कल्पित करुण कहानी सुनाकर भारतीय समाज को दुःखी एवं उच्छृङ्खल बनाना इन कहानियों का ध्येय कदापि नहीं रहा है। उपर्युक्त कथन का यह आशय नहीं कि समाज की दरिद्रता और दुःख का वर्णन इन कहानियों में नहीं है। ये चित्र हैं अवश्य परन्तु उनका चित्रण कर समाज को सुखी और समृद्ध बनाना ही इन कथाओं का लक्ष्य है।

मंगल कामना की भावना

उक्त उद्देश्य के अनुसार इन कहानियों का अन्त सदा संयोग में पाया जाता है। जिस प्रकार संस्कृत नाटक वियोगान्त नहीं होते उसी प्रकार इन कहानियों का भी वियोग में अन्त नहीं होता। इन कहानियों के पात्रों को भी दुःख और विपत्तियों का सामना करना पड़ा है, वे भी दरिद्रता एवं घोर कष्ट के पात्र बने हैं, परन्तु उनके जीवन का अवसान सदा सुख में ही हुआ है। 'मानिकचन्द की कथा' में मानिकचन्द ने अपने जीवन में घोर दुःखों का सहन किया। उसने भाड़ भी झोंका, एवं नाना प्रकार की विपत्तियों को झेला परन्तु उसका अवसान सुखदायी हुआ। अन्त में वह राजा की लड़की से विवाह कर सुख के दिन बिताने लगा। 'लछटकही' की कथा भी इसी प्रकार की है। वह जीवन भर कष्ट झेल कर अन्त में सुख पाती है। इसीलिये इन कहाहियों का 'भरत-वाक्य' सदा यह पाया जाता है—

संयोग में अन्त

"भगवान् जइसे'''अमुक आदमी के दिनवा लवटवलें
ओसही सबके दिनवा लवटावसु"

इससे अधिक मंगल कामना और क्या हो सकती है।

लोक-कथाओं में अलौकिकता का अंश प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। कुछ कहानियों में रहस्य, रोमांच, भूत, पिशाच, प्रेत, दानव आदि से सम्बन्ध रखनी वाली बातों का वर्णन अधिक होता है। ऐसी कथाओं को अंग्रेजी में 'सुपर-नेचुरल टेल्स' कहते हैं, जिन्हें हिन्दी में अद्‌भुत कहानियाँ कह सकते हैं। इन कहानियों को सुनने में रोचकता बनी रहती है। इन कथाओं का लक्ष्य श्रोताओं में उत्सुकता को बनाये रखना और उन्हें अद्‌भुत रस का आस्वादन कराना है। राक्षस, पिशाच, भूत, दूत, बूड़ा, चुड़ैल आदि की कहानियाँ इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। राजाओं और वीरों के अलौकिक पराक्रम की कहानियाँ भी इसी कोटि में आती हैं। चन्द्रभानु राजा[1] की कहानी इसका उदाहरण है जिसके सात लड़कों ने विभिन्न देशों में जाकर वीरता के अद्‌भुत कार्यों का सम्पादन किया था। भोजपुरी में इस श्रेणी की कहानियाँ बहुत अधिक नहीं हैं।

अलौकिकता की प्रधानता

---

१. लेखक का निजी संग्रह पृ०६०.

कहानी का सबसे बड़ा गुण उत्सुकता की भावना को बनाये रखना है। जिस कहानी को सुनने के लिये श्रोता उत्सुक न हो तो समझ लेना चाहिये कि उस कहानी में कोई आकर्षण नहीं है। कथा को सुनते समय जब श्रोताओं की उत्सुकता बनी रहे तब समझना चाहिये कि कहानी रोचक एवं सुन्दर है। इस कसौटी पर कसने पर भोजपुरी बड़ी खरी उतरती है। इसको सुनते समय श्रोता की उत्सुकता की भावना बनी रहती है। विशेष कर उत्सुकता यह रूप कथाओं में अधिक पाई जाती। जब ये कहानियाँ बालकों को सुनाई जाती हैं तब वे उन्हें बिना सम्पूर्ण रूप से सुने चैन नहीं लेते और बराबर पूछते हैं कि 'इसके बाद क्या हुआ।' 'उदयभानु की कथा'[1] ऐसी ही है जिसमें राजा के परदेश जाने और उसकी रानी का उसके विरह दुःख से विलाप करने का वर्णन हैं। रानी राजा को सुग्गा के द्वारा सन्देश भिजवाती है। राजा परदेश में घूमते-घूमते 'कँवरू कमच्छा' के देश में चला जाता है जहाँ कोई स्त्री अपने माया-जाल में उसे फँसा लेती है। राजा बड़ी कठिनाई से घर लौटता है। इस कहानी में रहस्य, रोमांच सभी कुछ पाया जाता है। अतः इसे आद्योपान्त सुनने के लिये चित्त लालायित रहता है। यही बात अन्य लोक-कहानियों के विषय में भी कही जा सकती हैं।

उत्सुकता की प्रबल भावना

लोक-कथाओं में वर्णन की स्वाभाविकता पाई जाती है। जो घटना जैसी है उसका वैसा ही यथार्थ वर्णन इन कथाओं की विशेषता है। इनमें अतिशयोक्ति का पुट बहुत कम पाया जाता है। जिस घटना का जो मूलरूप है वह उसी रूप में चित्रित की गई है। इसीलिये इन कथाओं में भारतीय संस्कृति का सच्चा चित्रण उपलब्ध होता है। आधुनिक कहानियों में अतिरंजन की जो प्रवृत्ति दीख पड़ती है उसका इन कथाओं में प्रायः अभाव है। उदाहरण के लिये 'ढेला और पत्ती' की कहानी को लीजिये, जिसमें एक छोटी घटना का कितना अकृत्रिम वर्णन किया गया है। 'तिरिया चरित्तर' नामक कथा में भी स्वाभाविकता कूट-कूट भरी हुई है। इस कहानी की घटना आज इतने युगों के बाद भी अक्षरशः सत्य दिखाई पड़ती है। वर्णन की यही अकृत्रिमता इन कहानियों की जान है।

वर्णन की स्वाभाविकता

प्राचीन लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में बड़ा अन्तर है जिसे हम, १. रूपगत और २. विषयगत इन दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। आधुनिक कहानियाँ बहुधा अधिक लम्बी पाई जाती हैं। प्रेमचन्द की कई कहानियों ने, जैसे तीन सखियाँ और पिसनहारी का कुंआ तो छोटे-मोटे उपन्यास का रूप धारण कर लिया है। लोक-कथाओं का कथानक प्रायः बहुत बड़ा नहीं होता। शायद ही ऐसी कोई कहानी हो जिसको सुनाने में दस, पन्द्रह मिनट से अधिक समय लगे। वास्तविक बात तो यह है कि लोक-कथा जितनी छोटी होगी वह उतनी ही सुन्दर और मनोरंजक होगी।

प्राचीन लोक-कथाओं एवं आधुनिक कहा-नियों में अन्तर

जब हम दोनों कहानियों के विषय पर ध्यान देते हैं उस समय भी हम दोनों में अन्तर

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ८०.

पाते हैं। आजकल की कहानियों में सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक कोलाहल और धार्मिक शोषण का चित्रण पाया जाता है। आधुनिक समाज की जो दशा या दुर्दशा है उसी का चित्रण इन कहानियों में किया गया है। प्रेम का अश्लील और भद्दा प्रदर्शन भी कुछ कहानियों का अंग हो गया है। कुछ कहानियों में तो हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करने के लिये हिन्दू लड़कियों का प्रेम-सम्बन्ध मुसलमानों के साथ दिखलाने का उद्योग किया गया है। इस प्रकार अनेक आधुनिक कहानियाँ आचार-शुद्धि का उपदेश न देकर व्यभिचार का प्रचार करती हैं। परन्तु लोक-कथाओं में न तो सामाजिक वैषम्य का वर्णन है और न आर्थिक शोषण का। राजनैतिक चहल-पहल भी हमें इन कथाओं में देखने को नहीं मिलती। इनमें जिस समाज का वर्णन है वह सुखी है। इनमें न तो रोटी की आवाज सुनाई पड़ती है और न मजदूर की वाणी। इस प्रकार हमें लोक-कथाओं और आधुनिक कहानियों में उपर्युक्त दोनों प्रकार का भेद स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है।

ख. लोक-कथाओं की शैली

समाजशास्त्र की दृष्टि से लोक-कथाओं का मूल्य तो है ही, साहित्यिक दृष्टि से भी इनका महत्त्व है। इन कथाओं की भाषा शैली बड़ी सुन्दर और मनोहारिणी है, जिनको सुनकर हृदय प्रसन्न हो जाता है। इनका स्वाभाविक कथानक और सरल भाषा का हृदय पर स्थायी प्रभाव पड़ता है।

चम्पू शैली का ग्रहण

लोक-कथाएँ प्रधानतया गद्य में ही पाई जाती हैं परन्तु बीच-बीच में इनमें पद्यों का भी प्रयोग किया गया है। चम्पू काव्य की परिभाषा लिखते समय संस्कृत के आचार्य ने इसे गद्य-पद्यमय काव्य कहा है।[1] इस प्रकार इन कथाओं में चम्पू शैली का ग्रहण किया गया है। ज्ञात होता है कि श्रोताओं पर स्थायी प्रभाव जमाने के लिये गद्य के बीच-बीच में पद्य की अवतारणा की गई है। कुछ कहानियों में तो पद्यों की संख्या बहुत अधिक है। प्रायः यह देखा गया है कि जहां कथानक के बीच में कोई पद्य नहीं है वहाँ अन्त में ही कोई पद्य देकर कहानी की समाप्ति की गई है। जैसे, ढेला और पत्ती की कथा के अन्त में यह पद्य दिया गया है :

"ढेला भिहिलाई गइले,
पतई उड़िआई गइले,
कथा ओराई गइले।"

यद्यपि छन्द शास्त्र की कसौटी पर कसने पर इसे पद्य नहीं कहा जा सकता, परन्तु इसमें तुकबन्दी अवश्य है। मानिकचन्द की कथा के बीच में एक बड़े सुन्दर पद्य का प्रयोग किया गया है। जब भाग्य के परिवर्तन के कारण मानिकचन्द ने राजा के यहाँ नौकरी कर ली, तब उसकी नौकरानी सदा उसे 'दुबरा' कहकर पुकारा करती थी। यह सुनकर मानिकचन्द को मार्मिक पीड़ा होती थी और उसका शोक इस श्लोक पद्य के रूप में अनायास हृदय से निकल पड़ता था :

---

१. गद्यपद्यमयं काव्यं चम्पूरित्यभिधीयते.

"अन्न बिना हम दुबरा भइली,
दूबरा परल मोर नाव,
एहि नगरी में पैर पुजवलीं,
मानिक चन्दर मोर नाम।"

'लछटकहीं' की कथा में जब सुभलायक अपनी स्त्री के पास चुपके से जाता है और उसके बन्द कमरे के दरवाजे को खटखटाता है, तब वह समझती है कि कोई कुत्ता या बिल्ली है और उसे दूर हट जाने के लिये कहती है। इस पर सुभलायक जो उत्तर देता है वह बड़ा ही मर्मस्पर्शी और हृदयहारी है :

"ए राम दुरु दुरु कुकुरा बिलरिया रे ना।
ए राम नाहिं हम कुकुरा बिलरिया रे ना।
ए राम आगा आगा आवेला तिलंगिया रे ना।
ए राम तेकरा आगे आवे मोर पलकिया रे ना।"

इसी प्रकार उदयभानु की कथा में जब रानी ने अपने परदेशी पति के पास लौटने का सन्देश भिजवाया तब वह उत्तर देता हुआ कहता है कि ऐ रानी ! मैं तब यहाँ से प्रयाण करूँगा जब बट के वृक्ष में जटाएं 'बरोह' उत्पन्न हो जायेंगी और यह शंकर नामक तोता उड़ने लायक हो जायगा :

"बरवा के जामे बरोहिया,
कि संकर होइहैं उड़ियान,
ए रानी हम तब करबि,
पूरुब देस से पयान।"

इसी प्रकार अन्य कहानियों में भी गद्य, पद्य का मिश्रण पाया जाता है। बीच-बीच में इन पद्यों के आ जाने से कथा की रोचकता और अधिक बढ़ जाती है। चम्पू शैली का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से चला आ रहा है। लोक-कथाओं में इस शैली का प्रयोग इसी प्राचीन परम्परा का अनुकरण है।

लोक-कथाओं में अतिरंजित शैली का प्राय: अभाव पाया जाता है। लोक गीतों में एक-दो स्थानों में चाहे अतिशयोक्ति पूर्ण भले ही मिल जाय परन्तु कथाओं में इसकी उपलब्धि नहीं होती। इन प्राचीन कहानियों में जो वस्तु जैसी है उसका उसी रूप में यथार्थ वर्णन किया गया है।

अतिरंजित शैली का अभाव

किसी घटना को बढ़ा-चढ़ाकर कहने की प्रवृत्ति इन कथाओं में नहीं पाई जाती है। 'उदयभानु की कथा' में राजा के परदेस चले जाने पर उसकी पत्नी बिरह के कष्टों को भोगती बिरह की वेदना को सहती है। परन्तु बिहारी की नायिका की तरह उसकी विरहाग्नि से न तो पत्ते ही भुनकर पापड़ बन जाते हैं और न शीशी का जल ही सूखता है। विरह का जितना संयत वर्णन इन कथाओं में मिलता है लोक-गीतों में उतना नहीं मिलता। प्राचीन कथाकार बड़े मितवाक् थे। अत: उन्होंने इन कथाओं के कहने में आवश्यकता से अधिक वाणी और समय का प्रयोग नहीं किया है। किसी भी वस्तु का वर्णन इन कहानियों में उतना ही हुआ है

जिससे श्रोताओं पर उसका प्रभाव सम्यक् रीति से पड़ सके। 'जेहल क सनदि' नामक कहानी की पुस्तक में इसके लेखक ने कहीं भी अत्युक्ति या अतिशयोक्ति का आश्रय नहीं लिया है प्रत्युत यथार्थ वस्तु का ही वर्णन किया है। 'मंवनी बाबा' और 'कतवारू दादा' ऐसी ही कहानियाँ हैं जिसमें समाज में फैली हुई सच्ची प्रथाओं का उल्लेख है। इनमें अतिरंजना कहीं भी नहीं पायी जाती।

इन कहानियों की भाषा बड़ी सीधी, सादी और सरल है। कहीं भी समसित पदावली का प्रयोग नहीं किया गया है। वाक्य छोटे-छोटे और असमस्त हैं। दैनिक व्यवहार में आने वाले, प्रचलित शब्दों का ही अधिक प्रयोग किया है। कोई भी ऐसा शब्द नहीं आया है जो व्यवहार के क्षेत्र से उठ गया हो। इन कहानियों में ठेठ भोजपुरी का दर्शन होता है। लछटकही की दुर्दशा का वर्णन करता हुआ लेखक लिखता है कि :—

सीधी सरल भाषा, प्रवाह-युक्त शैली

"ओ घर के सभ लड़िका एकरा के ए लछटकही, ए लछटकही, कहि के पुकारस। लछटकही दिन-रात आपन हाड़ तोरि के घर के काम करे। दिनभरि काम कइला के बाद राति का एगो लिट्टी खाये के मिले अवरु ओहि के खाइ के उ सूति जाई। जब निसबद राति में नींद टूटे तब लछटकही रोज आपन दुरदसा सोचि के रोवे लागे।"[1]

ऊपर के अवतरण की मीमांसा करने पर यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि इसमें जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे सभी ठेठ भोजपुरी के हैं। इसमें संस्कृत के जो शब्द लिये गये वे तत्सम रूप में नहीं बल्कि तद्भव रूप में ग्रहीत हैं। 'निसबद' और 'दुरदसा' शब्द ऐसे ही हैं जिनका शुद्ध संस्कृत रूप निःशब्द और दुर्दशा है।

कहीं-कहीं एक-आध उर्दू भाषा के भी शब्द इन कहानियों में पाये जाते हैं। परन्तु ये शब्द ऐसे हैं जो भोजपुरी में आकर बिल्कुल मिल गये हैं। भोजपुरी ने इन्हें बिल्कुल पचा लिया है। यह उदाहरण लीजिए—

"जब कोहबर में बर पहुंचल तब ओकरा मेहरारू के सखी कहलस कि ए दुलहा! तू तिलंगिया बैल के दहेज में माँग। ससुर दूसर कवनो चीज दहेज में देसु त बिल्कुल मति ल। दुलहा के मन दहेज माँगे खातिर अपने अकुताइल रहेला फिर केहू पट्टी पढ़ाइ दे तब का पूछे के।"

इस अवतरण में 'बिल्कुल और' 'खातिर' शब्द उर्दू भाषा के हैं परन्तु भोजपुरी ने इन्हें आत्मसात् कर लिया है अतः इनका प्रयोग कुछ भी नहीं खटकता।

कथाओं की जो भाषा हमें उपलब्ध होती है वह बड़ी ही मुहावरेदार है। स्थान-स्थान पर भोजपुरी मुहावरों और कहावतों का ऐसा सुन्दर सन्निवेश किया गया है। जिससे भाषा में जान आ गई है और वर्णन शैली रोचक बन गई है। कुछ उदाहरण लीजिये :[2]

"जिनगी भर के जमुराज आजु महातमा थोरे हो जइहन।
सोझिया अदिमी बउराह गिनाला।
बरियारा के लउरी माहें कपार।
चीलमि जवना पर अंगारी चढ़ति बा,

१. लेखक का निजी संग्रह पृ० ११. २. जेहल क सनदि पृ० १, १०.

उहे बताई सकेले कि आगि कइसन होले ।
देयाद और दालि के गलबले क मोल हवे ।
घरमदेव राम देखते भोकास पारि के रोवे लगलन् ।
बरियारा क पंचायति गजरा क संख होले ।
अम्बर पर उनचास बयारि ।
विपति के झोंक एक ओर ले ना आवे ।"

इन ऊपर के उदाहरणों में अनेक भोजपुरी कहावतें, मुहावरे एवं सुगठित वाक्य हैं जिनका प्रयोग कहानियों में यथास्थान किया गया है ।

इन कहानियों की शैली में प्रवाह पाया जाता है । कथा का वेग अविरत गति से अन्त तक चलता ही गया है । कथा की धारा अथवा प्रवाह कहीं रुका नहीं है । इसका उदाहरण 'मलिकार'[1] नामक कहानी है । 'सनकी'[2] भी इसी प्रकार की कहानी है जिसको पढ़ते समय कहीं भी रस भंग नहीं मालूम होता ।

इन लोक-कथाओं की शैली की तुलना यदि हम वैदिक उपाख्यानों से करें तो कुछ अनुचित न होगा । वेदों में पुरुरवा-उर्वशी, विश्वामित्र एवं नदियाँ और यम-यमी के ऐसे प्राचीन उपाख्यान मिलते हैं जिन्हें हम आधुनिक लोक-कहानियों का पूर्व रूप कह सकते हैं । बहुत संभव है कि इन लोक-कहानियों की उत्पत्ति इन्हीं वैदिक उपाख्यानों से हुई हो । वैदिक उपाख्यानों में गद्य और पद्य दोनों का मिश्रण पाया जाता है अर्थात् उनकी रचना चम्पू शैली में हुई है । यही बात इन कहानियों के विषय में भी पायी पाती है । वैदिक उपाख्यानों में वार्तालाप या कथोपकथन का प्रयोग पाया जाता है । इन कथाओं में भी कहीं-कहीं पर कथोपकथन की प्रणाली व्यवहार में लायी गई है । दोनों के पात्र जीते-जागते व्यक्ति की भाँति हमारे सामने आते हैं जिससे इन कथाओं में रोचकता उत्पन्न हो गई है । इस प्रकार वैदिक उपाख्यानों एवं लोक कथाओं में कई प्रकार की समानता पायी जाती है ।

वैदिक शैली से तुलना,

१. जेहल क सनदि पृ० १ । २. वही पृ० ६४

चतुर्थ खण्ड

प्रकीर्ण-साहित्य

अध्याय १५

प्रकीर्ण-साहित्य.

भोजपुरी साहित्य में बहुत-सी लोकोक्तियाँ, मुहावरे और पहेलियाँ पायी जाती हैं जिनका प्रयोग इस भाषा के बोलने वाले नित्य प्रति किया करते हैं। इन लोकोक्तियों और मुहावरों में गम्भीर भाव छिपा रहता है। इनमें व्यंग्य का गहरा पुट भी पाया जाता है। यदि हिन्दी खड़ी बोली में इन मुहावरों तथा कहावतों का प्रयोग किया जाय तो इससे हमारी राष्ट्र भाषा का भण्डार बढ़ेगा। हमने भोजपुरी गालियों को भी प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। इन उपर्युक्त गीतों के सम्यक् अध्ययन करने से भोजपुरी समाज के ऊपर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

क लोकोक्तियाँ.

भोजपुरी लोक-साहित्य में लोकोक्तियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी संख्या बहुत ही अधिक है। यदि इनका संग्रह किया जाय तो एक विशाल ग्रन्थ तैयार हो जाय। किसान लोग बातचीत के प्रसंग में इन लोकोक्तियों का प्रयोग प्राय: किया करते हैं। स्त्रियाँ दैनिक व्यवहार में अनेक कहावतों का प्रयोग किया करती हैं। छोटे-छोटे बालक भी खेल के अवसर पर इन लोकोक्तियों को कहते पाये जाते हैं।

डाक्टर वासुदेव शरण अग्रवाल एम. ए.. डि. लिट्. ने लोकोक्ति साहित्य के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए लिखा है कि 'लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्त काल तक धातुओं को तप कर सूर्य-रश्मि नाना प्रकार के रत्नों-उपरत्नों का निर्माण करती जिसका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है।........इनसे लोकोक्तियों से जीवन की गुत्थियाँ या उलझनों को सुलझाने में बहुत बड़ी सहायता मिलती है। लोकोक्ति का आशय पाकर मनुष्य की तर्क बुद्धि शताब्दियों के संचित ज्ञान से आश्वस्त-सी बन जाती है और उसे अँधेरे में उजाला दिखाई देने लगता है। वह अपना कर्त्तव्य निश्चित करने में तुरन्त समर्थ बन जाती है।''[1]

महत्त्व

लोकोक्तियाँ जनता के सामूहिक ज्ञान तथा अनुभवों से जन्म लेती हैं। इनकी प्रेरणा सदा देश की सामाजिक गति-विधि की ऋणी रहती है। इनका एक-एक शब्द इस बात का प्रमाण होता है कि भाषा की टकसाल ने अपनी जिम्मेवारी कहाँ तक निभाई है। मौखिक परम्परा का इतिहास बहुत पुराना है और यह कहा जा सकता है कि किसी भी देश के निवासियों के जीवन का वास्तविक चित्र उनकी लोकोक्तियों के अध्ययन के बिना अपूर्ण ही रहता है। भोजपुरी भाषा के विद्वान् डाक्टर उदयनारायण तिवारी एम.ए.डि.लिट्. का भी यही मत है कि : 'वास्तव में लोकोक्तियां अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। शताब्दियों से किसी जाति की विचार धारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो तो उस जाति की लोकोक्तियों का अध्ययन आवश्यक है।''[2]

---

१. राजस्थानी ÷ लोकोक्ति संग्रह की भूमिका. २. डा० तिवारी : 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १५९–२१६.

लोकोक्तियों के संग्रह की ओर अभी विद्वानों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट नहीं हुआ है। अभी तो हिन्दी की विभिन्न बोलियों के लोक-गीतों का संग्रह भी पूरा नहीं हो पाया है, फिर लोकोक्तियों की कथा तो दूर रही। इस विषय पर हिन्दी में अभी विशेष सामग्री प्रकाश में नहीं आई है। हाँ, सन् १८८६ ई० में डा० फेलन ने अपना लोकोक्तिकोश प्रकाशित अवश्य किया था जो बहुत ही खोजपूर्ण और उपयोगी है।[1] ओझा अभिनन्दन ग्रन्थ[2] में प्रकाशित श्रीमती सुमित्रा देवी शास्त्रिणी लिखित 'देरेवाली कहावतें' और नागरी प्रचारिणी पत्रिका में श्री शालिग्राम वैष्णव लिखित 'गढ़वाली भाषा में पखाणा' इस दिशा में अच्छे प्रयत्न हैं। श्री लक्ष्मी लाल जी जोशी ने मेवाड़ की लगभग १००० कहावतों का संग्रह करके एक आवश्यक अंग की पूर्ति की है। कृष्णानन्द जी गुप्त की अध्यक्षता में बुन्देलखण्डी लोकोक्तियों का कुछ संग्रह हुआ है परन्तु पुस्तकरूप में वह हमारे देखने में नहीं आया है। भोजपुरी की लोकोक्तियों का सुन्दर संग्रह डा० उदयनारायण तिवारी ने बड़े परिश्रम और लगन के साथ किया है।[3] लोकोक्तियों का हमारा निजी संग्रह भी है जो अभी अप्रकाशित है।

लोकोक्ति संग्रह

लोकोक्तियाँ चिरसंचित अनुभव की निधि हैं। लोकोक्तियों का वर्गीकरण करके इनमें राजनैतिक, सामाजिक तथा भाषा का इतिहास सम्बन्धी सामग्री प्रचुर परिमाण में उपलब्ध की जा सकती है। इन कहावतों के अध्ययन से हमें भोजपुरी लोगों की जातीय विशेषताओं का पता चलता है। कहीं ब्राह्मणों की भोजनप्रियता का इन कहावतों में उल्लेख किया गया है, तो कहीं कायस्थों की चतुरता का। कहीं पर बल अथवा शक्ति की प्रशंसा की गई है तो कहीं विभिन्न जातियों के स्वभाव का वर्णन पाया जाता है। कहीं व्यंग्य के बाण मारे गये हैं तो कहीं किसी ऐतिहासिक तथ्य का उद्घाटन किया गया है। भारती नारी के सतीत्व की अभिव्यक्ति भी इनमें अच्छी हुई है। आर्थिक एवं सामाजिक दशा का चित्रण तो प्रचुर मात्रा में पाया जाता है।

वर्ण्य विषय

भोजपुरी लोकोक्तियों में भोजपुरी लोगों की विशेषता का वर्णन होना स्वाभाविक ही है। ग्रियर्सन ने भोजपुरी को एक बलशाली जाति की बोली कहा है। यह जाति एकमात्र बल में विश्वास करती है तथा इसे ही संसार में अपना अनन्य साधन मानती है। एक कहावत है, 'जेब्बर के लाठी सिर पर' अर्थात् बलवान् मनुष्य की लाठी सदा सिर पर रहती है, उससे दबना पड़ता है। 'जेकर लाठी ओकर भैंस' यह कहावत तो भोजपुरियों का महामन्त्र ही है। 'जेकर हाथ जोर ओकरे हाथ मुलुक'[4] कहावत का अर्थ है, जिसके हाथ में शक्ति है देश उसी का है। संस्कृत

कहावतों में भोजपुरियों की स्वभावगत विशेषताएं

१. फेलन : डिक्शनरी आफ हिन्दूस्तानी प्रावर्ब्स १८८६. २. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित। ३. हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग से प्रकाशित 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका अप्रैल सन् १९३९ पृ० १५९–२१६. 'हिन्दुस्तानी' पत्रिका जुलाई १९३९ पृ० २४५–२९०. ४. हिन्दुस्तानी अप्रैल १९३९ पृ० २०५.

में वीर 'भोग्या वसुन्धरा' लोकोक्ति इसी सत्य को प्रतिपादित करती है। भोजपुरी 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' की नीति में विश्वास रखता है। इसीलिये वह कहता है कि 'खल के दवा पीठि पूजा' अर्थात् दुष्ट पीटने से ही ठीक रहता है। सो दुराचरन एक दुराचरन' में भोजपुरियों का शक्ति पूजा 'माइट इज राइट' का सिद्धांत कूट-कूट कर भरा हुआ है।

भोजपुरियों की दूसरी विशेषता इनकी स्पष्टवादिता है। ये सच्ची बात को सीधे ढंग से बिना कुछ नमक-मिर्च मिलाये कह देते हैं। केवल शुद्ध सत्य बोलना भोजपुरियां का स्वभाव है, चाहे वह बात अप्रिय होने से दूसरे लोगों को बुरी भले ही लगे। एक कहावत है :[1]

'बात कहीं फरिचा, मीठ लगे चाहे मरिचा'

अर्थात् बात स्पष्ट कहनी चाहिये। वह किसी को गुण के समान मीठी लगे चाहे मिरचा के समान कड़वी। एक दूसरी लोकोक्ति है :[2]

'काठ गढ़ले चीकन होला, बात गढ़ले रूखर होला'

अर्थात् काठ को गढ़ने पर चिकना होता है परन्तु किसी बात को गढ़ने पर नमक-मिर्च मिलाने पर उसमें और रुखाई आती है। इन लोकोक्तियों से स्पष्ट पता चलता है कि भोजपुरी लोग शक्ति के उपासक और स्पष्टवादी होते हैं।

विभिन्न जातियों की विशेषता

इन लोकोक्तियों के सम्यक् अनुशीलन से विभिन्न जातियों की विशेषताओं का भी हमें परिचय प्राप्त होता है। सबसे पहिले ब्राह्मण को ही लीजिये। प्रायः एक ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण से द्वेष करता है। एक दूसरे को समृद्ध देखना नहीं चाहता। इसी विषय को इस लोकोक्ति में कहा गया है :

'बाभन, कुकुर, भाट, जाति जाति के काट'

अर्थात् ब्राह्मण, कुत्ता और भाट ये अपनी जाति वालों को ही काटते हैं। इसी प्रकार एक दूसरी कहावत में भाट की जगह पर (नाई) हजाम का नाम जोड़ कर इसी तथ्य का पुनः प्रतिपादन किया गया है.

'बाभन कुकुर नाऊ, आपन जाति देखि गुर्राऊ'

ब्राह्मण की भोजन-प्रियता तो प्रसिद्ध ही है। यजमान के यहाँ से भोजन का निमन्त्रण आया नहीं कि शीघ्र ही तैयार हो गये। वे इस बात का विचार नहीं करते कि कितनी दूर जाना है और मार्ग की क्या कठिनाइयाँ हैं। यदि चिउड़ा-दही खाने को मिले तो वे बारह कोस को तैयार रहते हैं और पूड़ी मिल गई तो अठारह कोस तक का धावा बोल सकते हैं :

'चिउड़ा-दही बारह कोस, लुचुई अठारह कोस'

'चारि कवर भीतर तब देवता और पीतर यह; कहावत भी उनकी इसी भोजन-भट्टता की ओर संकेत करता है।

कनौजिया ब्राह्मणों में छूवाछूत का बड़ा भारी भेद है। वे स्वपाकी होते हैं और

---

१. हिन्दुस्तानी जुलाई १९३९ पृ० २५६. २. वही. पृ० २५८.

किसी का छुआ हुआ नहीं खाते। इसी बात को व्यंग्य पूर्वक कितनी सुन्दर रीति से कहा जाता है—

'तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा'

जानवरों में गीदड़ और आदमियों में नाई अपने काइयाँपन के लिए मशहूर हैं। एक कहावत में नाई की नव बुद्धि का उल्लेख किया गया है—

'नउवा के नव बुधि ठकुरवा का एके'[1]

अर्थात् नाई को नव—अधिक बुद्धि होती है परन्तु क्षत्रिय को एक ही।

देहातों में पटवारी लोग, जो प्रायः कायस्थ जाति के होते हैं, बड़ी गड़बड़ी करते हैं। वे अपने रजिस्टर में एक आदमी का खेत दूसरे के नाम लिख देते हैं और अपनी कलम की नोक से सफेद का स्याह कर देते हैं। उनके इस कार्य की ओर संकेत करने वाली यह लोकोक्ति सुनिये—[2]

'जब एक कलम घसके,
तब बावन गाँव खसके।'

अर्थात् मुन्शी जी की एक कलम के घिसकने-चलने से बावन गाँव खिसक कर दूसरे आदमी के हाथ में चले जाते हैं।

बनियाँ कम तौलने के कारण कुप्रसिद्ध है। वही 'डाँडी मार कर' ग्राहक को कम सौदा तौल देता है और अपना स्वार्थ सिद्ध करता है। उसका 'पासंग' ही उसकी आशा है। इसी बात को कितने व्यंग्यपूर्ण ढंग से कहा गया है :[3]

'बनियाँ का पसंघे के आस'

इतना होने पर भी चार जाति के लोगों को लायक-योग्य बतलाया गया है :[4]

'चारि जाति लायक, बाभन, बनियाँ, छतिरी, कायथ'

देश या स्थान की विशेषता

इन लोकोक्तियों में भिन्न-भिन्न देशों और स्थानों की विशेषताओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। बलिया जिले के पश्चिमी भाग को 'बाँगर' कहते हैं। यहाँ जल की कमी के कारण अन्न बहुत कम पैदा होता है। इसी विषय का उल्लेख नीचे की कहावत में किया गया है—[5]

'का बाँगर का अन्ने, का जोलाहा के धन्ने'।

अर्थात् बाँगर के अन्न से क्या होता है और जुलाहे के धन से क्या? मगध देश में भोजन अच्छा नहीं मिलता। भुजिया चावल और बुरी दाल खाने को मिलती है। अतः वहाँ जाने का निषेध किया गया है—[6]

'उसिना चावल दाल खमोरी,
मगह देस जनि जइह मुरारी'।

१. हिन्दुस्तानी : अप्रैल १९३९ पृ० २१५. २. वही. पृ० १९७. ३. हिन्दुस्तानी : अप्रैल १९३९ पृ० २५३. ४. वही. १९२. ५. वही. १८०. ६. वही. १७२.

कलकत्ता शहर में रहने वालों के लिए क्या ही सुन्दर उपदेश दिया गया है—[१]

'घोड़ा गाड़ी, नोना पानी, और राँड़ के धक्का।
ए तीनों से बचल रहे, त केलि करे कलकत्ता'।

अर्थात् घोड़ा गाड़ी, खारा पानी और विधवा व्यभिचारिणी स्त्रियों के जाल से यदि आदमी बचा रहे तब कलकत्ता में आनन्द से रह सकता है। कलकत्ते का पानी खराब है यह तो प्रसिद्ध है। वहाँ गाड़ियों से बचकर चलना भी आवश्यक है, नहीं तो दुर्घटना हो जाती है। व्यभिचारिणी स्त्रियों से बचना तो आवश्यक है ही। काशी के विषय में भी ऐसी ही उक्ति कही गई है—[२]

'राँड़ साँड़ सीढ़ी संन्यासी।
इनसे बचे त सेवे कासी।'

इन लोकोक्तियों में अनेक ऐतिहासिक घटनाओं का भी उल्लेख पाया जाता है।

ऐतिहासिक वृत्त

'कहाँ राजा भोज और कहां भोजवा तेली'[३] इस कहावत में धारा के सुप्रसिद्ध संस्कृत प्रेमी राजा भोज का उल्लेख हुआ है। 'अन्हरा का सूझे बहराइच' इस छोटी सी कहावत में बहुत बड़ा इतिहास छिपा हुआ है। आज से कई सौ वर्ष पूर्व सैयद सालार जंग उर्फ गाजी मियां नामक मुसलमान सेनानायक की पराजय एवं उसका बध बहराइच में स्थानीय हिन्दू राजा के द्वारा किया गया था। जिस स्थान पर सालार जंग मारा गया वहां उसकी कब्र बनाई गई। यहां पर प्रति वर्ष बहुत बड़ा मेला गर्मियों में लगता है।

यहाँ पर एक तालाब है जिसके जल में नहाने से अन्धे को दिखाई पड़ने लगता है, ऐसी किंवदन्ती प्रसिद्ध है। इसी ऐतिहासिक घटना की ओर इस कहावत का संकेत है।

व्यंग्य

इन लोकोक्तियों में कहीं-कहीं गहरा व्यंग्य भरा पड़ा है जो देखते ही बनता है। यज्ञ के हवन में खाद्य सामग्री विशेषतया घी का जलाना भोजपुरियों को कदाचित् अप्रिय है। इसके संबंध में एक लोकोक्ति है—[४]

'करवा कोंहार के, घीव जजमान के, स्वाहा स्वाहा'

अर्थात् करवा मिट्टी का पात्र जिसके द्वारा घी यज्ञकुंड में डाला जाता है कुम्हार का है और घी यजमान का है। पुरोहित जी खूब स्वाहा-स्वाहा कीजिये इसमें आपका क्या नुकसान है। अंग्रेजी में एक कहावत है—

'फूल्ज़ मेक फीस्ट्स एंड वाइज़ मेन ईट्स देम'

अर्थात् मूर्ख लोग निमन्त्रण देते हैं और चतुर लोग भोजन करते हैं। खड़ी बोली में इसके समान दूसरी लोकोक्ति हमें ज्ञात नहीं, परन्तु भोजपुरी की निम्नांकित लोकोक्ति इसके समान है—

१. वही. १९१. २. लेखक का निजी संग्रह. ३. 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १७८. ४. 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १७७.

'आन कर आटा, आन कर घीव ।
चाबस-चाबस बाबा जीव ।'

पराम भोजी लोगों के ऊपर यह कितनी सुन्दर फबती कसी गई है। दूसरों का माल हड़पकर सेठ बनने वालों के ऊपर यह व्यंग्योक्ति कितनी सुन्दर है—[1]

'आन का धन पर बिकरम राजा'

बाहरी तड़क-भड़क रखने वाले लोगों को लक्षित कर यह उपर्युक्त व्यंग्योक्ति कही गई है—[2]

'ऊंच हवेली, फोंफर बांस, करज खाये बारहो मास ।'

अर्थात् घर तो बहुत ऊंचा है परन्तु बारहों महीने कर्ज ही लेना पड़ता है ।

घर वाले स्वार्थवश बूढ़े माता, पिता से भी काम लिया करते हैं। ऐसे लोगों को लक्षित कर कही गई यह व्यंग्योक्ति कितनी सुन्दर है—[3]

'थाकल बैल गोनि भइल भारी ।
अब का लदबे ए बेपारी ।'

अर्थात् यह बूढ़ा बैल पिता अब थक गया, गोनि भारी हो गई । ऐ व्यापारी, अब इस पर क्या लादोगे । अर्थात् यह भार वहन के अयोग्य है ।

आजकल अनेक साधु-महात्मा रामानुजी टीका लगा लेते हैं, मीठी वाणी बोलकर लोगों को अपने साधु नेत्र में फँसाते हैं। परन्तु उनका आचरण चोर, डाकू और व्यभिचारी मनुष्यों के समान होता है ऐसे ढोंगी साधुओं के लिए यह उक्ति कितनी मार्मिक है—

'तीनि फकिया टीका, मधुरी बानो ।
चोर चाइं के इहे निसानी ।'

इस प्रकार से अनेक व्यंग्यभरी उक्तियाँ पाई जाती हैं ।

देहातों में पुरुष स्त्री का समुचित आदर नहीं करते । व्याही स्त्री का तिरस्कार कर दूसरी स्त्री को सम्मान प्रदान करते हैं । इस सामाजिक दुर्गुण की ओर इस कहावत में संकेत किया गया है—[4]

'घर के बीबी के खासा ना, बेसवा के मलमल ।'

अर्थात् घर की स्त्री को तो मोटा कपड़ा भी पहनने को नहीं मिलता परन्तु वेश्या को मलमल दिया जाता है ।

लोकोक्तियों में ऋतु-संबंधी अनेक बातें उपलब्ध होती हैं। जब आधा माघ आता है, जाड़ा बहुत कम हो जाता है, तब लोग कन्धे पर कम्बल लेकर चलते हैं। पूस से दिन छोटा होने लगता है परन्तु माघ के आते ही फिर वह बड़ा होने लगता है—[5]

'आधा माघे कम्मर काँधे ।
'पूस से दिन फूस ।
माघ से दिन बाघ ।'

१. लेखक का निजी संग्रह. २. 'हिन्दुस्तानी' अप्रैल १९३९ पृ० १७२. ३. लेखक का निजी संग्रह. ४. लेखक का निजी संग्रह. ५. वही.

कहीं-कहीं इन लोकोक्तियों में भारतीय संस्कृति का उल्लेख पाया जाता है।

संस्कृति

सतीत्व की बड़ी सुन्दर एवं दिव्य अभिव्यक्ति इन कहावतों में हुई है। किसी साध्वी स्त्री से कोई दुराचारी पुरुष अनुचित प्रस्ताव करता है। इस पर वह मुँहतोड़ जवाब देती हुई कहती है कि तुम्हारा पेट आगे निकला है और पीछे कूबड़ है। तुम मेरे पति से क्या अधिक सुन्दर हो। जो तुम्हें मैं चाहूँगी—

'आगे कूबर, पाछे कूबर
हमरा भतार ले बड़ा सूघर।'[1]

स्त्रियों के व्रतों का भी उल्लेख कहीं-कहीं हुआ है। जैसे—

'आजु तोहार मातारी खर जिऊतिया कइले रहलीं हा'

इस कहावत में जीवित्पुत्रिका व्रत का उल्लेख है जिसे स्त्रियां अपने पुत्र को विपत्ति से बचाने के लिये किया करती हैं।

इसी प्रकार से हजारों ऐसी लोकोक्तियां हैं जिनमें देहाती जीवन के किसी न किसी पहलू की ओर संकेत किया गया है। लोक-साहित्य के विद्यार्थी के लिये इनका अध्ययन नितान्त आवश्यक एवं उपादेय है।

ख. मुहावरे

लोकोक्तियों की भाँति मुहावरों की संख्या भी भोजपुरी में बहुत है। इनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में आबाल-वृद्ध-वनिता सभी करते हैं। 'गाल फुलाना' अथवा 'गंठजोड़ाव' की व्युत्पत्ति बालक भले न समझे परन्तु वह इसका प्रयोग अवश्य करता है। कितनी स्त्रियाँ तो मुहावरों में ही बातें करती हैं।

मुहावरों का अर्थ

मुहावरा अरबी शब्द है। इसका अर्थ है, 'परस्पर बात-चीत और सवाल जवाब करना' इसे अंग्रेजी में 'ईडियम' कहते हैं। संस्कृत में इस शब्द के यथार्थ अर्थ का बोधक कोई शब्द नहीं है। कतिपय विद्वानों ने 'प्रयुक्तता', 'वाग्रीति', भाषा सम्प्रदाय' और 'रमणीय प्रयोग' आदि शब्दों को मुहावरे के स्थान पर प्रयुक्त किया है; किन्तु वास्तव में ये शब्द उपयुक्त नहीं जँचते, क्योंकि इनसे मुहावरे के अर्थ का भली भाँति प्रकाशन नहीं होता।

अरबी में मुहावरा शब्द का अर्थ सीमित तथा संकुचित है। किन्तु हिन्दी और उर्दू में यह विकसित होकर व्यापक हो गया है। हिन्दी एवं उर्दू में लक्षणा अथवा व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। मुहावरे के अर्थ में अभिधेयार्थ से कुछ विलक्षणता होती है।

---

१. हिन्दुस्तानी : अप्रैल १६३६ पृ० १६७. २. 'बोलचाल' पृ० १३६-३७. खंग विलास प्रेस, पटना से प्रकाशित.

मुहावरों की उत्पत्ति

मुहावरों की उत्पत्ति के संबंध में पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय लिखते हैं कि 'मनुष्य के कार्य क्षेत्र विस्तृत हैं। उसके मानसके भाव भी अनन्त हैं। घटना और कार्य-कारण परम्परा से जैसे असंख्य वाक्यों की उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार मुहावरों की भी। अनेक अवसर ऐसे उपस्थित होते हैं जब मनुष्य अपने मन के भावों को कारण विशेष से से संकेत अथवा इंगित किंवा व्यंग द्वारा प्रकट करना चाहता है। कभी कई एक ऐसे भावों को थोड़े शब्दों में विवृत्त करने का उद्योग करता है, जिनके अधिक लम्बे-चौड़े वाक्यों का जाल छिन्न करना उसे अभीष्ट होता है। प्रायः हास-परिहास, घृणा, आवेग, उत्साह आदि के अवसर पर उस प्रवृत्तिके अनुकूल वाक्य योजना होती देखी जाती है। सामयिक अवस्था और परिस्थिति का भी वाक्य-विन्यास पर बहुत कुछ प्रभाव पड़ता है। और इसी प्रकार के साधनों से मुहावरों का आविर्भाव होता है।'

उपाध्याय जी ने मुहावरों की उत्पत्ति के विषय में जो कुछ लिखा है वह बिल्कुल ठीक है।

मुहावरों का महत्व

वास्तव में मुहावरे किसी जीवित भाषा के प्राण होते हैं। यह कहा जा चुका है कि लक्षणा और व्यंजना द्वारा सिद्ध वाक्य को ही मुहावरा कहते हैं। इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग से सबसे अधिक लाभ यह होता है कि केवल कतिपय वाक्यों के सहारे ही अनेक भावों की अभिव्यंजना हो जाती है। मौलाना हाली इनके महत्त्व के संबंध में 'मुकद्दमा शेर व शायरी' में लिखते हैं—

'मुहावरा अगर उम्दा तौर से बांधा जावे तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।' इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उचित मुहावरों के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौन्दर्य और शक्ति आ जाती है। अधिक विस्तृत भाव को थोड़े शब्दों में प्रकट करना मुहावरों का ही काम है। इनके प्रयोग से भाषा में चुस्ती आती है और उसका प्रभाव अधिक गहरा होता है।

भोजपुरी मुहावरे

भोजपुरी मुहावरों के सम्यक् अध्ययन से हमें अनेक बातों का पता चलता है। इन मुहावरों में कहीं भोजपुरियों की विशेषता का उल्लेख पाया जाता है तो कहीं उनकी विभिन्न सामाजिक प्रथाओं का। कहीं किसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन है तो कहीं पौराणिक गाथा का। शकुन विचार से संबंध रखने वाले भी अनेक मुहावरे हैं। कहीं-कहीं व्यंग्य का पुट भी इनमें गहरा पाया जाता है। किसी जाति की विशेषता और उसके स्वभाव का चित्रण भी उपलब्ध होता है। इनके अनुशीलन से अनेक शब्दों की निरुक्ति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार भोजपुरी मुहावरों का महत्त्व बहुत है।

भोजपुरियों की स्वभावगत विशेषताओं के द्योतक मुहावरे ये हैं—

१. ताथा बाढ़ावल — ढोंग तथा पाखंड बढ़ाना।
२. पोंभि बाढ़ावल — ,, ,, ,, ,,
३. खटराग बाढ़ावल — ,, ,, ,, ,,
४. टिमाक बाढ़ावल — ,, ,, ,, ,,

इन सभी मुहावरों का प्रयोग किसी पाखंडी के ढोंग को लक्षित कर किया जाता है।

'लतियाना' और 'कचरना' में बल प्रयोग की व्यंजना स्पष्ट प्रतीत होती है। 'चिकसि निकलना' में मारने की भावना स्पष्ट लक्षित होती है। इसी प्रकार 'खोंखि खंखार के बोलना' में स्पष्टवादिता की झलक स्पष्ट झलकती है।

संस्कार एवं प्रथाओं का उल्लेख

अनेक मुहावरों में भोजपुरी प्रथाओं और संस्कारों का उल्लेख पाया जाता है। 'छीपा बजाना' ऐसा ही मुहावरा है। जिस समय लड़का पैदा होता है उस समय कोई स्त्री थाली बजाती है, इसे 'छीपा बजाना'[१] कहते हैं। पुत्री के जन्म पर थाली नहीं बजाई जाती। अतः इस मुहावरे का अर्थ है लड़का पैदा होना। बालक पैदा होने के छठे दिन पूजा होती है और पुत्र जन्म के उत्सव में बन्धु-बान्धवों को भोजन कराया जाता है। इसे 'छठियार' कहते हैं। इस मुहावरे का प्रयोग उस समय होता है जब किसी व्यक्ति का विशेष परिचय पूछा जाता है। उत्तर देनेवाला व्यंग में कहता है कि कि 'उनके हम का जानत बानी, का हम उनुकर छठियार खइले बानी' अर्थात् मैं उनके विषय में भला क्या जानता हूँ क्या मैंने 'छठियार' खाया है।[२] विवाह तथा कथा आदि में स्त्री-पुरुष एक साथ मंडप में बैठते हैं। इसे 'चौका बैठना' कहते हैं। कभी-कभी यह पूछने के लिये कि तुम्हारे घर कथा कब होगी, इस मुहावरे का प्रयोग करते हैं। जैसे 'तोहन लोग कब चउका बइठब।' जब बालक या बालिका का विवाह होता है उस दिन 'मातृ पूजा' के समय माता-पिता का एक साथ चौका मंडप में बैठकर अनेक वैवाहिक विधियों का सम्पादन करते हैं। इसे 'चउका चनन बइठल' कहते हैं। इस मुहावरे का अर्थ हुआ, विवाह संबंधी विशेष विधि का सम्पादन। डा० उदय नारायण तिवारी ने इस मुहावरे का अर्थ कुछ दूसरा ही किया है। परन्तु हमारा मत उनसे भिन्न है।[३]

स्त्री और पुरुष का जब विवाह होने लगता है तब दोनों के कपड़ों को लेकर आपस में गाँठ बाँध देते हैं। इसे 'गंठ जोड़ाव' कहते हैं। संभवतः यह अभिन्न प्रेम का द्योतक है। अतः इस मुहावरे का अर्थ है अभिन्न साहचर्य। जब वर-कन्या का विवाह होने लगता है उस समय वर तथा कन्या दोनों के पूर्वजों का नाम लेकर गोत्र का उच्चारण किया जाता है। इसे 'गोतरुचार' कहते हैं। संभवतः इसमें कुलीनता की भावना छिपी है। परन्तु 'गोतरुचार करना' इस मुहावरे का अर्थ है गाली-गलौज करना। इसमें वैवाहिक प्रथा का उल्लेख भी है और गहरी व्यंजना की भी अभिव्यक्ति होती है। विवाह के लिये जब वर और उसके कुटुम्बी आते हैं तब विदाई के समय प्रायः सभी को पीली धोती दी जाती है। जिसे 'कन्हावर देना' कहते हैं। अतः इस मुहावरे का भाव है अत्यधिक सत्कार

१. लेखक का निजी संग्रह. २. हिन्दुस्तानी: अक्टूबर १९४०, पृ० ४३१. ३. हिन्दुस्तानी: अक्टूबर १९४०, पृ० ४२५.

करना। इसी प्रकार जब बेटी की बिदाई होती है तब उसके आंचल में चावल, रुपया और हल्दी बाँध दी जाती है क्योंकि ये पदार्थ मंगल या शुभ समझे जाते हैं। भाई जब बहन के पास 'बउरहत' लेकर जाता है तब 'कुंडा' में खाजा और मिठाई ले जाता है, इसे 'कुंडा' लेके आना कहते हैं। इसी प्रथा के कारण इस मुहावरे का अर्थ है सौगात में कोई चीज लाना। देहात में प्रायः कहते हैं कि उनुकरा के हम का पूछी का कवनो कुंडा लेके आइल बाड़े।'[1]

मृत्यु के दूसरे दिन दाह संस्कार करने वाला व्यक्ति अपने संबंधियों के साथ गाँव के बाहर किसी पीपल के पेड़ में मिट्टी का एक छोटा घड़ा बाँधता है जिसमें 'दाही' प्रतिदिन जल और तिल प्रेतात्मा की शान्ति के लिये देता है। इसे 'घंट बाँधना' कहते हैं। इसमुहावरे का अर्थ है मृतक के दूसरे दिन का संस्कार। आक्रोश में इसका अर्थ होता है मृत्यु को प्राप्त करना। एक दूसरा मुहावरा है 'खउर होना'[2] इसमें भी एक भोजपुरी प्रथा काउल्लेख है। मृतक संस्कार में एगारहवें दिन को 'खउर' कहते हैं, इसी दिन 'महाब्राह्मण' आता है तथा कुटुम्ब के सभी लोग सिर मुँड़ाते हैं। अतः इस मुहावरे का अर्थ है 'मृत्यु होना'। कभी कभी स्त्रियाँ अभिशाप देते हुये कहती हैं 'तोहार खउर होखो' अर्थात् तुम मर जावो।

स्त्रियों के व्रतों का उल्लेख भी इन मुहावरों में कहीं-कहीं पाया जाता है। 'गोधन कुटाइल' एक मुहावरा है जिसका अर्थ है, खूब पीटा जाना।' स्त्रियाँ कार्तिक शुक्ल द्वितीया जिसे भ्रातृद्वितीया भी कहते हैं, को गोधन कूटती हैं। इसी प्रथा का उल्लेख इस मुहावरे में हुआ है।

ऐतिहासिक

इन मुहावरों के द्वारा अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की ओर भी संकेत हुआ है। भोजपुरी में 'कंजड़ भइल'[3] एक मुहावरा है जिसका अर्थ है कंजूस होना या दरिद्र स्वभाव का होना। कंजड़ एक विशेष जाति है। ये लोग अपना घर-बार लिये हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं। दरिद्र होने के कारण ये स्वभावतः कंजूस होते हैं। 'उजुबुक भइल' का अर्थ होता है 'मूर्ख होना' यह 'उजुबुक' शब्द उजबेक से बना है।[4] रूस देश के अन्तर्गत उजबेकिस्तान के निवासियों को उजबेक कहते हैं, जो अभी कुछ दिन पूर्व मुसलमान धर्म के अनुयायी थे। पहिले वहाँ आधुनिक सभ्यता का प्रकाश नहीं फैला था। संभवतः इसीलिये उन्हें असभ्य या मूर्ख समझा जाता था। गोरखपुर जिले के पयहारी बाबा जो केवल दूध मात्र पीने के कारण पय–दूध, हारी–ग्रहणकर्त्ता कहे जाते हैं स्वयं भोजन करने के पूर्व अपनी जमात के एक विशेष ब्राह्मण को पक्वान्न आदि सुन्दर भोजन कराते हैं। भोजन करने वाले महात्मा मोटे-ताजे और प्रायः भोजनभट्ट होते हैं। इन्हें 'गाफा बाबा' कहते हैं। इस प्रकार 'गाफा बाबा भइल'[5] इस मुहावरे का अर्थ हैं खूब खाने वाला। जैसे, 'यहाँ का गाफा बाबा हउँ। अतने से पेट ना भरी।'

पौराणिक

ऐतिहासिक घटनाओं के अतिरिक्त पौराणिक वस्तुओं का उल्लेख अनेक स्थानों पर इन मुहावरों में हुआ है। 'चउथी[6] के चान देखल' यह भोजपुरी मुहावरा है जिसका

---

१ वही. पृ० ३९८. २. वही पृ० ४०७. ३. हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९४० पृ० ३९७. ४. कुछ विद्वान् इस शब्द की व्युत्पत्ति 'ऋजुक' (सीधा) शब्द से मानते हैं, ५. हिन्दुस्तानी अक्टूबर १९४०, पृ० ४१७. ६. लेखक का निजी संग्रह।

अर्थ है दोष रहित मनुष्य के ऊपर दोषारोपण करना। इस मुहावरे में एक पौराणिक उपाख्यान का संकेत है। भाद्रपद मास को शुक्ल पक्ष की चतुर्थी को चन्द्रमा का दर्शन करना निषिद्ध माना जाता है। जो भूल से चन्द्रदर्शन कर लेता है उसके ऊपर निष्कलंक होने पर भी दोषारोपण होता है। यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि एक बार कृष्ण भगवान् ने इसी दिन चन्द्रदर्शन कर लिया था और निर्दोष होने पर भी उनके ऊपर मणि चुराने का अपराध-कलंक लगा था। तबसे इस दिन चन्द्र-दर्शन निषिद्ध समझा जाता है। एक दूसरा मुहवारा 'भंडेसरि राजा भइल'[1] है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि भविष्य में एक ऐसा युग आयेगा जब मनुष्य अंगूठे के बराबर लम्बे होंगे। उस युग में जिस मनुष्य के पास एक 'कूंडा'—मटका अन्न होगा, वह सबसे बड़ा धनी समझा जायेगा तथा उसी की 'भंडेसरि राजा' की पदवी होगी। इस मुहावरे का प्रयोग व्यंग्य में उस गरीब के लिये होता है जिसकी आर्थिक स्थिति थोड़ी अच्छी हो। 'कापारे पर बरम्ह चढ़ल' मुहावरे का अर्थ होता है अत्यन्त क्रोधित होना। अकाल मृत्यु से मरा हुआ ब्राह्मण 'ब्रह्म' कहलाता है। जब वह किसी के सिर पर चढ़ता है तब वह मनुष्य हाथ, पैर और सिर हिलाने लगता है। क्रोध में आकर बक-झक करता है। अतः ब्रह्म चढ़ने का अर्थ हुआ क्रोधित होना। 'गूलरी के फूल परल'[2] मुहावरे का अर्थ है किसी वस्तु अन्न, धन आदि का नित्यप्रति बढ़ते जाना, कमी न घटना। लोगोंका ऐसा विश्वास है कि किसी वस्तु में यदि गूलर का फूल पड़ जाय तो वह वस्तु कभी घटती नहीं प्रत्युत बढ़ती जाती है। किसी व्यक्ति के दिखाई न पड़ने पर 'गुलरी के फूल भइल' का प्रयोग किया जाता है।[3] लोगों का ऐसा विश्वास है कि गूलर का फूल कभी दिखाई नहीं पड़ता। लोक की इसी धारणा की अभिव्यक्ति इन मुहावरों में हुई है।

जातियों की विशेषता

विभिन्न जातियों की विशेषताओं का उल्लेख भी इन मुहावरों में पाया जाता है। 'महाब्राह्मण' एक जाति है जो मृतक के श्राद्ध में भोजन करती और दक्षिणा लेती है। इन्हें 'काराटहा' भी कहा जाता है। ये बड़े भोजन भट्ट होते हैं और बिना निमन्त्रण दिये ही श्राद्ध या ब्रह्म भोज में पहुँच जाते हैं और खूब खाते हैं। इसलिये खाने-पीने में सन्तोष न करने वाले व्यक्ति के लिये 'काराटहा भइल'[4] मुहावरे का प्रयोग करते हैं। इससे 'महाब्राह्मणों' की विशेषता प्रकट होती है। कोइरी एक जाति है जो खेती करती है और शाक सब्जी को पैदा कर अपना जीवन निर्वाह करती है। ये लोग बड़े सीधे-सादे होते हैं। इनके सीधापन की अभिव्यक्ति 'कोइरी का देवता'[5] नामक मुहावरे में हुई है जिसका अर्थ अत्यन्त शान्त प्रकृति का होना है।

व्यंग्योक्ति

भोजपुरी मुहावरों में व्यंग्य वाक्यों की प्रचुरता है। इनमें व्यंग्य की अभिव्यंजना बड़ी सुन्दर हुई है। भोजपुरी में 'बोकरना' का अर्थ उल्टी या कै करना होता है और इसका प्रयोग विशेषकर जानवरों के लिये होता है। 'अइनि बोकरना'[5] एक भोजपुरी मुहावरा है, जिसका शाब्दिक अर्थ है कानून को उगलना। जो

---

१. हिन्दुस्तानी : अक्टूबर १६४० पृ० ३६८. २. लेखक का निजी संग्रह. ३. वही. ४. लेखक का निजी संगह. ५. हिन्दुस्तानी : अप्रैल १६४० पृ० १७६.

लोग बेकार में कानून 'छाँटते हैं और बहस मुबाहिसे के लिये तैयार रहते हैं उनके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें कितना गहरा व्यंग है यह कहने की आवश्यकता है। 'अकेला घर में छकेला मारल' का भाव है परम स्वतन्त्र होकर मौज करना। इसमें उच्छृं-खलता की भावना छिपी हुई है। गृहस्थ लोग जब साधु बन जाते हैं तो कंठ में माला पहिन लेते हैं, इसे 'कंठी लेना' कहते हैं। इसका अर्थ है 'बैरागी बन जाना।' जो लोग अपनी बुरी आदतों को न छोड़ते हुए साधु बनने का पाखंड करते हैं उनके लिये इसका प्रयोग होता है। 'कोल्हू का बैल होना' या 'तेली का नाटा होना' प्रसिद्ध मुहावरा है। जिस प्रकार तेली का बैल दिनरात काम करता है उसी प्रकार जो आदमी सदा कार्य में लगा रहता है उसके लिये इसका प्रयोग किया जाता है। इसमें मन्द बुद्धिता व्यंग्य है।

शकुन विचार

मुहावरों में शकुन विचार भी पाया जाता है। देहातों में उल्लू का बोलना बुरा और कौवे का बोलना शुभ समझा जाता है। 'उरुआ बोलना' का अर्थ होता है उजाड़ होना। 'कौआ बोलना' किसी प्रियतम के शुभ आगमन की सूचना देता है। 'आँखि फरकल' शुभ शकुन का सूचक है। पुरुष की दाहिनी आँख और स्त्री की बायीं आंख का फड़कना शुभ माना जाता है। 'खड़लिचि देखल' एक मुहावरा है। 'खँड़रिचि' खंजन पक्षी को कहते हैं जिसका दर्शन चित्रा नक्षत्र में मंगल सूचक समझा जाता है। इस मुहावरे का प्रयोग उस समय किया जाता है जब किसी व्यक्ति को कुछ लाभ होता है। जैसे—आजु तूं 'खड़लिचि देखि के उठल रहल ह'।

खेती

खेती के संबंध वाले भी कुछ मुहावरे पाये जाते हैं। 'आँजुरी दिहल' एक मुहावरा है। बोआई के समय प्रतिदिन संध्या समय जो अनाज बच जाता है उसे अंजलि में भर-भर कर बढ़ई, लोहार तथा हलवाहे को देते हैं। इसे आँजुरी देना'[1] कहते हैं। जब किसी खेत में फसल कमजोर हो जाती हैं तो उसकी रक्षा न करके उसे पशुओं को चरा देते हैं। इसे 'उछिटा देना' कहते हैं।[2] इसी प्रकार खेती से संबंध रखने वाले अन्य मुहावरे भी पाये जाते हैं।

ग. पहेलियाँ

पहेलियों का अधिक प्रचार बालकों के समाज में ही है। पहेली को भोजपुरी में 'बुझौवल' कहते हैं और पहेली पूछने को 'बुझौवल बुझाना'। जब दो-चार बालक इकट्ठा हो जाते हैं और उन्हें खेल खेलने की इच्छा नहीं रहती तब वे आपस में 'बुझौवल बुझाना' शुरू कर देते हैं। एक लड़का पहेली कहता है और दूसरा उसका उत्तर देता है। इस प्रकार यह क्रम बहुत देर तक जारी रहता है। जब कोई लड़का उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है तब उसकी हार हो जाती है।

इन पहेलियों का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन है। अतः इनमें ऐसी-ऐसी बातों का वर्णन होता है जो हास्यरसोत्पादक होती हैं। लड़के इन पहेलियों को सुनते हैं और खिलखिला-कर हँस पड़ते हैं। जैसे यह पहेलो लोजिये :[3]

१. अप्रैल १९४० हिन्दुस्तानी पृ० १८२. २. वही, पृ० १८६. ३. लेखक का निजी संग्रह.

'एक चिरइया चटनी, काठ पर बइठनी।
काठ खाले गुबुर गुबुर, हगेले भुसकनी।'

अर्थात् एक चिड़िा भोजन की बड़ी इच्छा करती है। वह काठ पर बैठती है, धीरे-धीरे काठ खाती है। इसका उत्तर 'आरी' जिससे काठ चीरा जाता है। यह पहेली केवल 'मनोरंजात्मक' है। 'हगेले भुसकनी' सुनते ही सभी लड़के खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। एक दूसरा उदाहरण लीजिये।[1]

'हती चुकी गाजी मियाँ, हतवत पोंछि।
इहे जाले गाजी मियाँ, धरिहे पोंछि।'

अर्थात् गाजी मियाँ तो छोटे हैं परन्तु उनकी पूँछ बड़ी है। देखो गाजी मियाँ जा रहे हैं। इनकी पूँछ पकड़ लो। इसका उत्तर है सुई डोरा। सुई को गाजी मियाँ कहा गया है और डोरा सूत उनकी दुम है।

ढेंकुल के ऊपर भी एक बड़ी हास्यास्पद पहेली कही गई है—[2]
'आकास गइले चिरई, पाताल गइले बच्चा।
हुचुबक मारे चिरई, पियाव मोर बच्चा।''

परन्तु इन पहेलियों में केवल मनोरंजन ही नहीं है। कहीं-कहीं साधारण गणित के प्रश्न भी इनमें पूछे गये हैं जिनको बतलाने में बालकों को दिमागी कसरत करनी पड़ती है। कुछ सोचने-समझने के बाद ही वे उसका उत्तर दे सकते हैं।[3] जैसे—

'चार आना बकरी, आठ आना गाय,
चार रुपैया भैंस बिकाय, बीसे रुपया बीसे जीऊ।'

अर्थात् चार आना में बकरी, आठ-आना में गाय और चार रुपया में एक भैंस बिकती है। कुल बीस रुपये हैं और कुल बीस ही जानवर खरीदने हैं तो बताओ कि प्रत्येक जानवर कितने-कितने दाम में खरीदने होंगे। इस पहेली का उत्तर है तीन भैंस, पन्द्रह गाय और दो बकरी,। यह पहेली क्या है, गणित का प्रश्न है जिसे हल करने के लिए बालकों का बुद्धि से काम लेना पड़ता है। इन पहेलियों से बालकों के मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है और उनको सोचने की आदत पड़ती है।

किसी-किसी पहेली में पौराणिक कथा का भी उल्लेख पाया जाता है। जब तक कोई बालक पौराणिक उपाख्यानों से पूर्ण परिचित न हो तब तक वह उस पहेली का उत्तर ही नहीं दे सकता। ऐसी पहेली को 'बूझने' के लिए उसे अपने पूर्वज्ञान को फिर से ताजा करना पड़ता है।[4] जैसे—

'स्याम बरन मुख उज्जर केतना,
रावन सीस मँदोदरि जेतना।
हनुमान पिता करि लेबि,
तब राम पिता भरि देबि।'

अर्थात् श्याम रंग वाले उड़द का भाव क्या है? उत्तर है जितना रावण और मन्दोदरी का सिर है अर्थात् एगारह सेर। प्रश्न है हनुमान के पिता अर्थात् वायु से साफ करके लूँगा

१. वही. २. वही, ३. त्रिपाठी, हमारा ग्राम साहित्य पृ० २८३। ४. लेखक का निजीसंग्रह.

उत्तर है राम के पिता दशरथ के बराबर दूँगा अर्थात् दस सेर। इस पहेली में जब तक बालक को यह पौराणिक उपाख्यान न मालूम हो कि रावण के दस सिर थे, हनुमान के पिता का नाम वायु और राम के पिता का नाम दशरथ था, तब तक वह इसका उत्तर नहीं दे सकता। इसी प्रकार एक दूसरी पहेली है।[१]

'दु बेकती मिलि बाइस कान'

अर्थात् जिन दो व्यक्ति स्त्री और पुरुष के मिलकर बाइस कान हैं वे कौन हैं ? उत्तर रावण मन्दोदरी। यहाँ भी रावण के दस सिर होने की बात जाने बिना इसका उत्तर देना कठिन है।

कहीं-कहीं किसी जाति की विशेषता भी इन पहेलियों में प्रकट की गई है। भोजपुरी में एक कहावत है, जिसमें ब्राह्मणों को भोजन-प्रियता की ओर संकेत है। इस पहेली मे भी इसी बात की पुष्टि होती है।[२]

'अगहन पइठ चैत के प्याट
तेहि पर पंडित करें झप्पाठ।
है नेरे पैहो ना हेरे
पंडित कहे बिगहपुर केरे।

इसका उत्तर कचौड़ी है। इस पहेली में कचौड़ी को देखकर ब्राह्मण के झपटने की बात कही गई है।

संसार की असारता का चित्रण भी इन पहेलियों में बड़ा सुन्दर बन पड़ा है। शरीर को पिंजरा और मन को पक्षी मानकर जो रूपक बांधा गया है वह परम रमणीय है।[३]

'सोने के मन तिवारी सोने के पिंजड़ा।
उड़ि गइले मन तिवारी परल बा पिंजड़ा।'

इसका उत्तर 'प्राण' है।

बालक गेहूँ की रोटी खाता है और चने की दाल व्यवहार में लाता है। अतः इन अन्नों के संबंध में पहेलियों का होना स्वाभाविक हैं। इनमें इन अन्नों के स्वरूप का वर्णन प्रधान है जैसे चने के अग्रभाग का टेढ़ा होना और गेहूँ के मध्य भाग का फटना। ये दोनों ही बातें इन पहेलियों में विद्यमान हैं।[४]

'छोटी मुटी दाई के पेटवे फाटल।'
'छोटी मुटी दाई के नकिये टेढ़।'

पहले का उत्तर गेहूँ और दूसरे का चना है।

विभिन्न फसलों के काटने के समय को लक्षित करते हुए भी कुछ पहेलियाँ कहीं गई हैं।[५] जैसे—

१. लेखक का निजी संग्रह. २. त्रिपाठी: हि० ग्रा० सा० पृष्ठ २८५. ३. लेखक का निजी संग्रह. ४. वही. ५. वही.

'गोल गोल गुटिया सुपारी अइसन रंग।
एगारह देवर लेवे अइले, जेठ के गइलि संग।'

अर्थात् उसका रूप गोल है और सुपारी के समान रंग है। एगारह देवर उसे लेने के लिये आये परन्तु वह अपने जेठ—भसुर के ही साथ गई। इसका उत्तर अरहर है। भाव यह है अरहर अन्य एगारह महीनों में नहीं काटी जाती, परन्तु ज्येष्ठ मास में पकने पर काटी जाती है। यहाँ 'ज्येष्ठ' शब्द में श्लेष है, जो बड़ा सुन्दर है।

आदर्श प्रेम की अभिव्यक्ति भी इन पहेलियों में बड़ी सुन्दर रीति से हुई है। पति की मृत्यु पर स्त्रियों के सती होने का उल्लेख तो बहुत मिलता है परन्तु 'बत्ती' के सती होने का वर्णन शायद ही कहीं उपलब्ध हो। यह पहेली सुनिये—[१]

'नाजुक नारि पिया संग सूतलि, अंग में अंग मिलाई।
पिय के बिछुड़त जानि के, संग सती हो जाई।'

इसका उत्तर बत्ती और तेल है। तेल के जल जाने पर बत्ती भी जल जाती है। इसी एक साधारण घटना को कविता का कितना सुन्दर रूप दिया गया है।

घ. प्रकीर्ण सूक्तियाँ

कहावतों, मुहावरों और पहेलियों के अतिरिक्त बहुत-सी ऐसी प्रकीर्ण उक्तियाँ विद्यमान हैं जो अनेक अवसरों पर कही जाती हैं। ये उक्तियाँ घाघ और 'भड्डरी' के नाम से प्रसिद्ध हैं।

घाघ—जीवनवृत्त

घाघ अकबर बादशाह के जमाने में हुए थे। ये जाति के दूबे ब्राह्मण थे। कन्नौज के पास इनके नाम से एक पुरवा—छोटा गाँव बसा हुआ है जिसका नाम अब बदल गया है। परन्तु पुराने कागजों में 'पुरे घाघ' का उल्लेख मिलता है। घाघ के वंशज अब भी उस गाँव में रहते हैं।

घाघ का संबंध छपरा और गोरखपुर जिले, जिसमें आजकल का देवरिया जिला सम्मिलित था, से भी बताया जाता है। संभव है घाघ किसी संबंध से वहाँ रहे हों। इसीलिये भोजपुरी कहावतों में घाघ का नाम बार-बार आता है और जिन कहावतों में इनका नाम नहीं है उनमें इनकी छाप तो अवश्य ही है। इनकी कहावतें युक्तप्रान्त के किसानों में बहुत लोक-प्रिय हैं। घाघ के जीवनवृत्त का कुछ विशेष पता नहीं चलता। यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उनकी पतोहू बड़ी चतुर थी और उससे इनकी बड़ी नोक-झोंक रहती थी। घाघ जो कहावत कहते थे इनकी पतोहू उसका उल्टा जवाब देती थी। कुछ कहावतों में घाघ और उनकी पतोहू—पुत्र-बधू का उत्तर प्रत्युत्तर-बराबर चलता है।[२]

---

१. वही. २. त्रिपाठी : ग्रा० सा० पृ० २५४-२५५.

भड्डुरी कौन थे, कहाँ और कब हुए, इन बातों का कुछ भी पता नहीं चलता। ऐसी किंवदन्ती है कि ये ब्राह्मण पिता और अहीरिन माता के पुत्र थे।[1] इनका नाम कुछ ऐसा विचित्र है जिससे इनकी उच्च जाति के विषय में सन्देह उत्पन्न होता है। इन्होंने वर्षा विषयक बहुत-सा अनुभव अपनी कहावतों में कहा है जो अधिकांश में सच्चा निकलता है। अब तो भड्डुरी नाम की एक जाति ही बन गई है जो भड्डुरी की कहावतों के आधार पर वर्षा का भविष्य बताया करती है।[2] इस जाति के लोग गोरखपुर जिले में अधिक हैं। राजपूताने में 'भड्डुरी' नाम की स्त्री की कहावतें मिलती हैं जो भड्डुरी की कहावतों से विशेष समानता रखती है।'

वर्ण्य विषय

घाघ और भड्डुरी की कहावतों में से घाघ की उक्तियाँ ही अधिक प्रसिद्ध हैं। सभी किसान इन्हें जानते हैं और समय-समय पर कहा करते हैं। इन कहावतों का वर्णन विषय बड़ा विस्तृत है। किसान के जीवन से संबंध रखने वाली सभी वस्तुओं का उल्लेख इनमें मिलता है। खेत बोने का उचित समय, वर्षा विज्ञान, जोताई, बोआई, सिंचाई कटाई, मड़ाई, ओसाई, खाद, फसल के रोग, बीज की पहचान, उत्तम बैल की परीक्षा आदि कृषि-शास्त्र संबंधी विषयों पर अनुभव भरी उक्तियाँ इनमें उपलब्ध होती हैं। किस मास में किस वस्तु के भोजन करने से स्वास्थ्य को लाभ पहुँचता है और किस वस्तु के सेवन से नुकसान करता है इनका उल्लेख इन कहावतों में पाया जाता है। ये कहावतें ठोस अनुभव के आधार पर लिखी गई हैं। घाघ का नीरोग रहने का नुसखा तो सचमुच प्रशंसनीय है।

पथ्य भोजन—

विभिन्न मासों में पथ्य एवं भोज्य पदार्थों की यह सूची देखिये—

'सावन हर्रे भादों चीत, क्वार मास गुड़ खायो मेरे मीत।
कातिक मूली, अगहन तेल, पूस में करो दूध से मेल
माघ मास घिउ-खिचरी खाय, फागुन उठि के प्रात नहाय
चैत नीम, बैसाखे बेल, जेठे सयन असाढ़ क खेल।'

घाघ ने फागुन में प्रातःस्नान का विधान बतलाया है। वैद्यक शास्त्र में 'वसन्ते भ्रमणं पथ्यम्' लिखा है। इस भ्रमण के साथ स्नान भी हो जाय तो अति उत्तम है। इसी प्रकार विभिन्न मासों में वर्जित भोजन के पदार्थों की सूची भी दी गई है।[3]

कहीं पर किसी भोज्य वस्तु के साथ किन-किन चीजों का प्रयोग स्वादिष्ट होता है इसका भी उल्लेख है। खिचड़ी के साथ घी, पापड़, दही और अचार का होना है। इसके ये अभिन्न साथी हैं।[4]

---

१. वही. २. त्रिपाठी: ह० ग्रा० मा० पृ० २६५. ३. वही. पृ० २५१. ४ वही. पृ० २५०.

'खिचड़ी के चार यार ।
घी, पापड़, दही, अचार ।'

इन कहावतों में वायु-परीक्षा का सुन्दर उल्लेख है । हवा किस समय में बहती है और कब नहीं बहती, किस नक्षत्र में वायु बहने से वर्षा होगी आदि विषयों का सुन्दर प्रतिपादन किया गया है । घाघ कहते हैं कि जेठ मास में पुरवैया हवा चले तो सावन में भी धूल उड़ेगी अर्थात् वर्षा बिल्कुल नहीं होगी :[1]

वायु परीक्षा

'जब जेठ, चले पुरवाई,
तब सावन धूरि उड़ाई '

परन्तु यदि यही पुरवैया पूर्वाषाढ़ नक्षत्र में बहे तो इतनी अधिक वृष्टि होगी कि सूखी हुई नदियों में भी नाव चलने लगेगी :[2]

'जो पुरुबा पुरवाई पावै,
सूखी नदियां नाव चलावै ।'

वायु परीक्षा के अनन्तर वर्षा-विज्ञान का बड़े विस्तार से वर्णन किया गया है। किस मास में गर्मी पड़ने पर कितनी वर्षा होगी और कब न होगी, इसका वर्णन पाया जाता है। घाघ कहता है कि माघ में गर्मी हो, जेठ में जाड़ा पड़े, और प्रथम बार वर्षा होने पर ही तालाब भर जाय तब उस समय वर्षा बिल्कुल न होगी और धोबी कुँआ खोदकर के कपड़ा धोयेंगे :[3]

वर्षा-विज्ञान

'माघ के ऊखम जेठ क जाड़,
पहिले बरखा भरिगा ताल ।
कहै घाघ हम होब वियोगी
कुंआ खोदिके धोइहैं धोबी ।'

जब ज्रेष्ठ मास में खूब गर्मी पड़े तब जानना चाहिये कि वर्षा खूब होगी । यदि मृगशिरा नक्षत्र में खूब गर्मी पड़े तब वर्षा का होना निश्चित है :[4]

'जेठ मास जो तपे निरासा,
तब जानो बरखा के आसा ।
... ...
तपे मृगसिरा जोय, तो बरखा पूरन होय ।'

काला बादल गरजता है परन्तु बरसता नहीं, परन्तु सफेद बादल जल बरसाता है यह वैज्ञानिक सत्य है । इसी बात को कितने सीधे-सादे ढंग से इस कहावत में कहा गया है :[5]

'करिया बादर जी डरवावे,
भूरे बादर पानी लावे ।'

१. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० २६६. २. वही. पृ० २६७. ३. वही. पृ० ३००. ४. त्रिपाठी : हमारा ग्राम साहित्य पृ० ३०१. ५. वही. पृ० ३०२.

किस प्रकार से खेत को जोतने पर उसमें अन्न अच्छी तरह से पैदा होता है, इसका बड़ा सुन्दर वर्णन इन कहावतों में किया गया है। खेत

जोताई

को खूब अच्छी तरह से जोतना चाहिये। वह जितना ही अधिक गहरा जोता जायगा उतना अधिक अन्न पैदा होगा। इसी बात को इस कहावत में कहा गया है—

'हला लगा पताल, तो टूट गया काल'

लर्थात् जब हल पाताल में पहुँचा अधिक जुताई हुई तो अन्न की अधिकता से अकाल दूर हो गया। ईख पैदा करने में बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। बार-बार उस खेत को जोतना पड़ता है। तीन बार हल चलाया जाय और तेरह बार उसे गोड़ा-कुदाली से खोदा-जाय तब ईख के अंकुर दिखाई पड़ते हैं[1]

'तीन कियारी तेरह गोड़, तब देखो ऊखी के पोर।'

बोआई एवं निराई

बीज अच्छा हो, परन्तु बोने का तरीका खराब हो, तो फसल अच्छी नहीं होती। गाँवों में बोआई के बारे में बहुत-सी कहावतें प्रचलित हैं। जौ, चना, कपास और ईख कैसी बोनी चाहिये इसका वर्णन सुनिये—[2]

छी छी भली जो चना, छी छी भली कपास,
जिनकी छी छी ऊखड़ी, उनकी छोड़ों आस।

अर्थात् जौ, चना, कपास को अलग-अलग फासले पर बोना चाहिये परन्तु ईख को घनी बोना उचित है। अन्न बो देने पर उसका सींचना आवश्यक है। 'साठी' चावल साठ दिन में होता है परन्तु उसे आठवें दिन पानी से अवश्य सींचना चाहिये। धान, पान और खीरा इन्हें पानी देना आवश्यक है।

'साठी होवे साठवें दिन, पानी पावे आठवें दिन।'

... ...

'धान-पान और खीरा, तीनों पानी के कीरा।'

सिंचाई होने पर खेत की निराई भी होनी चाहिए। सावन और भादों में खेत का निराना आवश्यक है नहीं तो अन्न की उपज अच्छी नहीं होगी।

बैल की पहिचान

बैल किसान का सर्वस्व है। यह उसकी खेती का अनन्यतम साधन है। अतः उसके खरीदने में किसान को विशेष सावधानी से काम लेना चाहिये। बैल की सींग मुड़ी हुई, माथा ऊंचा, मुंह गोल, रोवां मुलायम, कान चंचल और गति तेज हो ऐसा बैल अच्छा होता है—[3]

'सींग मुड़े माथा उठा, मुँह का होवे गोल
रोम नरम चंचल करन, तेज बैल अनमोल।'

१. वही. पृ० ३२८. २. त्रिपाठी : ह० ग्रा० सा० पृ० ३३४. ३. वही. पृ० ३१८.

अध्याय १६

उपसंहार

गत पृष्ठों में भोजपुरी लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक कथा तथा प्रकीर्ण साहित्य का जो वर्णन किया गया है उससे यह स्पष्टतया प्रतीत होता है कि भोजपुरी लोक साहित्य काव्य और भाषा शास्त्र की दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। किस प्रकार भोजपुरी शब्दावली जैसे खेती-बारी के शब्द लोहार एवं बढ़ई के विभिन्न औजारों के नाम हिन्दी शब्द कोष में अपनाये जाने पर उसकी श्रीवृद्धि करेगी, इसका वर्णन गत अध्यायों में किया जा चुका है। हिन्दी शब्दों की निरुक्ति जानने के लिये भोजपुरी सहायक सिद्ध होगी तथा अनेक शब्दों के विकास के इतिहास को इसकी सहायता के बिना लिखना कठिन है।

सांस्कृतिक दृष्टि से भी भोजपुरी का संरक्षण नितान्त आवश्यक है। भारत की सभ्यता ग्रामीण है और यह सभ्यता लोक साहित्य में छिपी पड़ी है। भारतीय संस्कृति का सच्चा इतिहास इन्हीं लोक गीतों के मधुर एवं श्रुति-सुखद स्वरों में भरा पड़ा है। भोजपुरी लोक-साहित्य के अनुसंधान तथा संरक्षण की अनेक दिशाएँ हैं जिनका संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जाता है।

भोजपुरी प्रान्त में लोक साहित्य समिति की स्थापना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में विशेषत: इंगलैण्ड में वहाँ के लोक साहित्य के संग्रह तथा प्रकाशन के लिये लोक-वार्ता-समिति (फोक लोर सोसाइटी) बनी है, जिनके केन्द्र प्रत्येक बड़े-बड़े स्थानों में हैं। इस समिति की ओर से वेतनभोगी कार्यकर्त्ता नियुक्त हैं, जिनका काम गाँवों में घूम-घूमकर लोक-साहित्य का संग्रह करना है। इन लोक वार्ता-समितियों को गवर्नमेन्ट की ओर से प्रचुर सहायता मिलती है तथा धनी जनता भी इसे राष्ट्रीय कार्य समझ धन से इसे प्रोत्साहित करती है। इस देश में भी ऐसी ही 'लोक साहित्य समिति' की आवश्यकता है।

इस समिति के द्वारा भोजपुरी के जानकार योग्य कार्यकर्त्ता रखे जायँ जिनका काम गाँव-गाँव में घूमकर लोक साहित्य का संग्रह करना हो। दूसरी आवश्यक बात जो इन कार्यकर्त्ताओं को ध्यान देने योग्य है यह कि वे एक गीत के जितने भी विभिन्न पाठ मिलें उन सबका संग्रह करते जायें। किसी एक ही पाठ को शुद्ध समझकर अन्य पाठों को लिपि-बद्ध न करना अनुचित होगा। किसी पाठ की क्या विशेषता है इसे तो विशेषज्ञ ही समझ सकता है। अतः संग्रहकर्ताओं को चाहिये कि एक गीत के जितने भी पाठ उपलब्ध हों उन सबको लिपिबद्ध कर लें।

लखनऊ में डा० डी० एन० मजुमदार रीडर, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय के प्रयत्न से एक लोक-संस्कृति-समिति (फोक कल्चर सोसाइटी) की स्थापना हुई है। इस समिति की ओर से कुछ कार्य भी हो रहा है। जहाँ तक हमें ज्ञात है कि इस समिति की ओर से 'स्नो बाल्स आफ गढ़वाल' और 'फिल्ड सांग्स आफ छत्तीसगढ़' आदि दो-चार ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ है। परन्तु जिस प्रगति से यह कार्य हो रहा है उससे विशेष आशा नहीं की जा सकती है।

भोजपुरी लोक-गीतों का संग्रह तथा प्रकाशन नितान्त आवश्यक है। प्रत्येक लोक-गीत में स्थानीय पुट मिला रहता है। यदि उत्तर प्रदेश के वलिया जिले में भोजपुरी का कोई गीत गाया जाता है तो उसमें इस जिले का स्थानीय पुट अवश्य रहेगा। साथ ही उस गीत की भोजपुरी 'आदर्श भोजपुरी' होगी। परन्तु यदि वही गीत गोरखपुर अथवा बिहार के आरा जिले में मिले तो वहाँ की भाषा में थोड़ा अन्तर अवश्य मिलेगा। इसके अतिरिक्त स्थानीय रीति-रिवाज में भी पार्थक्य मिलेगा। ऐसी दशा में इन तीनों जिलों में मिलने वाले गीतों के एक होने पर भी भाषाशास्त्र की दृष्टि से इनका अपना विशिष्ट महत्व होगा। अतः संग्रहकर्ताओं को चाहिये कि एक गीत के जितने भी पाठभेद मिल सकें उन सबका संग्रह करे। पं० रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'ग्रामगीत' में अनेक स्थानों पर इस वैज्ञानिक पद्धति का अनुसरण किया है और उत्तर प्रदेश के पूर्वी और पश्चिमी जिलों तथा बिहार में मिलने वाले एक ही गीत के अनेक पाठों को दिया है।[1]

लोक-गीतों का संग्रह तथा प्रकाशन

लोक गीतों के सुयोग्य संग्रहकर्ताओं का दूसरा कर्तव्य गीतों के गाने की विधि बतलानी है। कौन-सा गीत किस ताल, सुर अथवा राग में गाया जायगा, यह बतलाना भी आवश्यक है। पाठक गीतों को पढ़कर उसके गाने की प्रणाली को ठीक-ठीक समझ जायँ, इसके लिये संग्रहकर्ताओं को प्रत्येक गीत की स्वरलिपि देनी चाहिये। मध्यप्रदेश के गीतों के उत्साही संग्रहकर्ता वेरियर हलबिन ने अपने 'फोक सांग्स आफ दि मैकल हिल्स' नामक पुस्तक में गोंड़, बेगा तथा अन्य पार्वत्य जातियों के प्रत्येक गीतों की स्वरलिपि बड़े परिश्रम से दी है। इतना ही नहीं, उन्होंने इस पुस्तक में इन जातियों के विभिन्न नृत्यों का मानचित्र डयग्राम भी दिये हैं जिससे नृत्य के अवसर पर विभिन्न पात्रों के खड़े होने का स्थान जाना जा सकता है। परन्तु हिन्दी में लोक-गीतों के ऊपर जितनी भी पुस्तकें अभी तक प्रकाशित हुई हैं उनमें यह स्वरलिपि नहीं मिलती। इसका फल यह होता है कि पाठक गीत से भली-भाँति परिचित हो जाने पर भी गाने की विधि से नितान्त अनभिज्ञ रहता है।

भोजपुरी लोक-गीतों के रेकार्ड तैयार कराना

भोजपुरी गीत लुप्त होते जा रहे हैं। इसका प्रधान कारण आधुनिक सभ्यता का विस्तार है। आजकल की नयी पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इन प्राचीन गीतों को गाना असभ्यता का सूचक समझती हैं। इन गीतों को गाने वाली अब केवल बूढ़ी स्त्रियाँ रह गई हैं। पुरुषों के गीत बिरहा, पचरा, सोरठी आदि की भी यही दशा है। यदि इन गीतों को शीघ्र रक्षा नहीं की गई तो ये बहुमूल्य गीत स्वल्पकाल में ही कराल काल के गाल में सदा के लिये विलीन हो जायेंगे। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन गीतों के रेकार्ड तैयार करा लिये जायँ।

१. देखिये कविता कौमुदी भाग ५ (ग्राम गीत.)

लोक-गीतों के ह्रास का एक यह भी प्रधान कारण है कि इनके गवैयों को कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया और न सभ्य समाज में लोक-कविता पढ़ने का ही उन्हें अवसर मिलता है। ऐसी दशा में अपनी कला को निकृष्ट तथा गँवारू समझ कर वे उसे खोते जा रहे हैं। सभ्य समाज में इन गवैयों को अपनी कविता सुनाने का अवसर मिलना चाहिये और इन्हें पुरस्कार प्रदान कर प्रोत्साहित करना चाहिये।

रेडियो द्वारा गीतों का प्रचार

परन्तु इन गीतों के सबसे अधिक प्रचार का साधन रेडियो है। रेडियो के देहाती प्रोग्राम में इन कवियों की शिष्ट कविता सुनाने का आयोजन होना चाहिये। आल इंडिया-रेडियो के इलाहाबाद स्टेशन से भोजपुरी में अब 'टॉक' होने लगा है। इससे भोजपुरी को प्रोत्साहन मिलेगा।

यदि उपर्युक्त दिशाओं में कार्य किया जाय तो आशा है कि भोजपुरी की उन्नति शीघ्र ही होगी।

जय हिन्दी, जय भोजपुरी !

—:०:—

परिशिष्ट

सहायक सामग्री

हिन्दी

१. भोजपुरी ग्राम गीत, भाग १, (सं० २००० वि०)
२. भोजपुरी ग्राम गीत, भाग २, (सं० २००५ वि०)
सम्पादक : डा० कृष्णदेव उपाध्याय एम० ए०, पी० एच-डी०
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

३. भोजपुरी लोक-गीतों में करुण रस, सम्पादक : श्री दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

४. भोजपुरी ग्राम्य गीत, सम्पादक : डब्लू० जी० आर्चर, आई० सी० एस० और संकटा प्रसाद, प्रकाशक : बिहार रिसर्च सोसाइटी,, पटना ।

५. कविता कौमुदी, भाग ५, (ग्राम गीत), सम्पादक : पं० रामनरेश त्रिपाठी, प्रकाशक : हिन्दी मन्दिर प्रयाग ।

६. हमारा ग्राम साहित्य, संपादक एवं प्रकाशक : वही ।

७. सोहर, सम्पादक एवं प्रकाशक : वही ।

८. मैथिली लोक-गीत, संपादक : रामएकबाल सिंह 'राकेश' ।
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

९. छत्तीसगढ़ी लोकगीत, सम्पादक : डाक्टर श्यामाचरण दूबे, एम० ए०, पी० एच० डी० ।

१०. ब्रज लोक संस्कृति, सम्पादक : डाक्टर सत्येन्द्र एम० ए०, पी० एच० डी०, प्रकाशक : ब्रज साहित्य मण्डल, मथुरा ।

११. ब्रज लोक साहित्य का विवरण, वही ।

१२. ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, वही, प्रकाशक : साहित्य रत्न भंडार, आगरा ।

१३. हिन्दी लोक गीत, लेखक : श्रीमती रामकुमारी श्रीवास्तव, एम० ए०
प्रकाशक : साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग, (सन् १९४६) ।

१४. बेला फूले आधी रात, धरती गाती है, चट्टान से पूछ लो ।
लेखक : श्री देवेन्द्र सत्यार्थी, प्रकाशक : राजकमल पब्लिकेशन, नई दिल्ली ।

१५. ईसुरी के फाग, प्रकाशक : लोक वार्ता परिषद, टीकमगढ़ ।

१६. ब्रज की लोक कहानियाँ, सम्पादक : डा० सत्येन्द्र ।
प्रकाशक : ब्रज साहित्य मंडल, मथुरा ।

१७. बुन्देलखंड की कहानियाँ, सम्पादक : शिवसहाय चतुर्वेदी ।

१८. गाँव की कहानियाँ, सम्पादक : रमेश वर्मा ।

१९. पृथ्वी पुत्र, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ।

राजस्थानी

१. राजस्थान के लोक-गीत, भाग १, २, सम्पादक : श्री सूर्यकरण पारीक, ठाकुर राम सिंह, पंडित नरोत्तम दास स्वामी, प्रकाशक : राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता (सन् १६३८) ।
२. राजस्थानी लोक-गीत, सम्पादक : श्री सूर्यकरण पारीक,
प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।
३. राजस्थान रा दूहा, भाग १, सम्पादक : पंडित नरोत्तमदास स्वामी,
प्रकाशक : भिलाणी राजस्थानी सीरीज ।
४. ढोला मारू रा दूहा, सम्पादक : श्री सूर्यकरण पारीक, ठाकुर रामसिंह, पंडित नरोत्तमदास स्वामी, प्रकाशक : नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ।
५. बीकानेर के गीत, देश के गीत, बालकों के गीत : नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ से प्रकाशित ।
६. राजस्थानी बातों, सम्पादक : श्री सूर्यकरण पारीक, प्रकाशक : भिलाणी राजस्थानी ग्रन्थमाला, (जयपुर) ।
७. राजपूताने के ऐतिहासिक प्रवाद, लेखक : प्रो० कन्हैयालाल सहल ।
८. राजस्थानी लोकोक्ति संग्रह, सम्पादक : प्रो० कन्हैयालाल सहल ।

गुजराती

१. रढियाली रात, भाग १, २, ३, ४, सम्पादक : झवेरचन्द मेघाणी,
प्रकाशक : गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, गांधी रोड, अहमदाबाद ।
२. ऋतु गीतो, सम्पादक तथा प्रकाशक : वही ।
३. धरती नुं धावण, वही ।
४. सोरठ नुं तीरे तीरे, वही ।
५. लोक-साहित्य, लेखक : झवेरचन्द मेघाणी,
प्रकाशक : वही, राणापुर (काठियावाड़) ।
६. लोक साहित्य नुं समालोचन, लेखक : वही, प्रकाशक : बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई ।
७. सौराष्ट्र नां खंडेरोमां, लेखक : वही, प्रकाशक : नागरदास मोहनलाल, राणापुर, काठियावाड़ ।
८. नागर स्त्रियों मां गवातां गीत, सम्पादक : नर्मदाशंकर लाल शंकर,
प्रकाशक : दि गुजराती प्रिण्टिंग प्रेस, अहमदाबाद ।

बँगला

१. पूर्व वंग गीतिका भाग १, २, ३, ४ ।
२. मैमन सिंह गीतिका, सम्पादक : डाक्टर दिनेशचन्द्र सेन,
प्रकाशक : कलकत्ता विश्वविद्यालय, कलकत्ता ।
३. हारामणि, मुहम्मद मन्सूरउद्दीन द्वारा सम्पादित, प्रकाशक : वही ।
४. ठाकुर दादार झूली ।

पत्रिकाएँ

नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भोजपुरी लोक गीतों में गौरी का स्थान। "भोजपुरी" १९४८, भाग १, फिरंगिया की रचना।

हिन्दुस्तानी, अप्रैल १९३६, पृ० १५६, जुलाई १९३९, पृ० २४५, भोजपुरी लोकोक्तियाँ, लेखक : डाक्टर उदयनारायण तिवारी।

हिन्दुस्तानी, अप्रैल १९४० पृ० १६७; अक्टूबर १९४० पृ० ३९७; जनवरी १९४१ पृ० ४९, भोजपुरी मुहावरे, लेखक : वही।

हिन्दुस्तानी, अक्टूबर १९४२, पृष्ठ २६७।

हिन्दुस्तानी, अक्टूबर १९४८, भोजपुरी लोक गीतों में कवित्व, लेखक : कृष्णदेव उपाध्याय।

हिन्दुस्तानी, 'भोजपुरी ग्राम गीत', लेखक : प्रो० बलदेव उपाध्याय।

हिन्दुस्तानी, भाग १६, अंक २, पृ० १२०, १४४, भोजपुरी व्याकरण, लेखक : लालजी सिंह।

—

अंग्रेजी ग्रन्थ

विशिष्ट

1. Hindi Folk Songs by *A. G. Shirreff* (Published by : Hindi Mandir, Allahabad.)
2. Field songs of Chhattisgarh by *Dr, S. C. Dube,*
3. Snow Balls of Garhwal by *N. S. Bhandri.*
4. Lonely Furrows of the Borderland by *K. S. Pangtey.*
5. The Gondwana and the Gonds by *Dr. Indrajit Singh.*
   These above four books are published by the Universal Publishers Ltd., Hazratganj, Lucknow.
6. The Blue Grove by W. G. Archer (Oxford University Press)
7. Folk Songs of the Maikal Hills by *Dr. Varrier Elvin* (O.U.P.)
8. Folk Tales from Mahakoshal by *the same author.*
9. Eastern Bengal Ballads Vols. 1,2,3,4, Edited by *Dr. D. C. Sen.* (Published by : Calcutta University)
10. Folk Literature, of Bengal by *the same author.*
11. Folk Art of Bengal by *G. S. Datta, I. C. S.*
12. English & Scottish Popular Ballads by *F. T. Child in* 5 Vols. (Boston 1882-98)
13. The same in one Volume, Edited by *H. C. Sergent & G. L. Kittredge.* (Published by George G. Harrop & Co. Ltd., London).
14. Ballads of All Nations—Translated by *George Borrow,* (Published by Alstor Rivers Ltd., London).
15. Old English Ballads—Selected & edited by *Francis B. Gummare.* (Published by Ginn & Company, Newyork).
16. The English Ballad, Edited by *Robert Graves.* (Published by Ernest Benn Ltd., London)
17. The Ballad by Frank Sidgwick (Published by Martin Secker, London).
18. Anthology in Folk Lore by *G. L. Gomme.*
19. Folk Lore in Early British History by *the same author.*
20. The Popular Ballad, Edited by *F. B. Gummere.*
21. The Beginnings of Poetry by *the same author.*
22. The Reliques by *Bishop Percy.*
23. Popular Ballads of Olden Times by *Sidgiwick.*
24. Introducation to Folk lore by *M. R.* Cox.
25. Popular Rhymes of Scotland by *Chambers.*

JOURNALS

1. Bulletin of The School of Oriental Studies, Vol. I. Part III (1920) pp. 87 - The Popular Literature of Northern India by *Dr. Grierson.*
2. Eastern Anthropologist, Vol. III. (1949-50), pp. 57—Bihu songs of Assam by *P. D. Goswami.*
3. Indian Antiquary, Vol. XIV (1885), pp. 209—The Song of Alha's Marriage.
4. Indian Antiquary, Vol, XIV A Summary of the Alha Khand, pp. 255.
5. J. A. S. B., Vol. III (1868) New Series, pp. 483—Notes on the Bhojapuri Dielect of Hindi spoken in Western Behar by *F. Beams.*
6. J. A. S. B. Vol XIII, Part I No. 3, The Song of Manik Chandra, (Collected & Edited by *G. A. Grierson*).
7. J. A. S, B. Vol. LII (1883) pp. 1—Folk Lore from Eastern Gorakhpur (Collected by *Huge Fraser* and edited with notes by *Dr. Grierson*).
8. J. A. S. B. Vol. LIII (1884) pp. 232—Baiswari Folk Songs, (Collected by *Babu Yogendra Nath Rai* and edited by *W, Irvine.*
9. J. A. S. B. Vol. LIII (1884), Part III, pp. 94-The Song of Bijay Mal (Edited and translated by *Grierson*).
10. J. A. S. B. Vol. LIV (1885), Part I, pp 35-Two versions of the Song of Gopichand.
11. J. R. A. S., Vol. XVI (1884) Page 196 and on Some Behari Folk Songs (by *Dr, Grierson*).
12. J. R. A. S., Vol. XVIII (1886) pp. 207—Some Bhojapuri Folk Songs (*Grierson*).
13. Man in India, Vol. XXII & XXIII, Songs of Tribes of Central Provinces.
14. Man in India, Folk Song Number.
15. Z. D. M. G., Vol. XXIX, Page 617—Git Netrak by *Dr. Gri rson.*
16. Z. D. M. G., Vol XLIII (1889), pp. 468—Selected Specimens of the Behari Language, Part II—The Behari Dielect, The Git Naika Banajarwa.